आशीर्वचन

जीव विज्ञान (बॉयलॉजी) विज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है। जीवन विज्ञान शिक्षा की एक शाखा है। इसके द्वारा जीवन को समझने, उसके रहस्यो को अनावृत्त करने तथा मनोबल को विकसित करने और चेतना के रूपान्तरण का प्रयत्न अभ्यास और प्रयोग किया जाता है। व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास और सामाजिक हितो के लिए उसका उपयोग —शिक्षा की यह अवधारणा होनी चाहिए। खडित व्यक्तित्व का निर्माण कर कोई भी व्यक्ति समाज की अखडता की अनुभूति नही कर सकता है और न उसकी अखडता को चिरस्थायी बना सकता। जीवन विज्ञान की प्रतिष्ठा इस अवधारणा की वेदी पर हुई है।

चेतना का रूपान्तरण मस्तिष्कीय प्रशिक्षण अथवा हृदय परिवर्तन के द्वारा हो सकता है। अणुव्रत ने चेतना को बदलने का सकल्प प्रस्तुत किया। प्रेक्षाध्यान के द्वारा बदलने की प्रक्रिया सामने आई। जीवन विज्ञान मे वे दोनो समन्वित हो गए और उसने परिवर्तन के पुरोधा का दायित्व अपने पर ओढ लिया। इसका प्रयोग केवल शिक्षा के क्षेत्र मे ही नही, जीवन की हर कार्य प्रणाली मे किया जा सकता है और वांछित परिणाम प्राप्त किया जा सकता है। उसका प्रयोग नशा, मुक्ति, व्यसन मुक्ति, पारिवारिक सामजस्य, सहिष्णुता विकास आदि अनेक क्षेत्रो मे हो रहा है। शिक्षा के क्षेत्र मे उसके प्रयोग प्रथम कक्षा से एम ए तक के अध्ययन मे चल रहे हैं। इस विषय के प्रति जैसी व्यापक अभीप्सा जाग रही है, वैसे ही व्यापक और विशाल साहित्य की अपेक्षा है। अभी इस विषय पर बहुत कम लिखा गया है। मुनि धर्मेशजी ने 'जीवन विज्ञान की रूपरेखा' नामक ग्रथ का लेखन कर अपेक्षा पूर्ति की दिशा मे एक अच्छा कार्य किया है। इससे शिक्षक और विद्यार्थी, प्रयोग कराने वाले और करने वाले—सब व्यक्तियो को सुविधा मिलेगी। अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन विज्ञान की त्रिवेणी का जो मूल्याकन हुआ है, उससे पूरी मानव जाति लाभान्वित होगी। इस वैज्ञानिक युग मे जीने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपने बौद्धिक विकास की सीमा और आध्यात्मिक विकास के असीम क्षेत्र को समझने मे समर्थ हो सकेगा।

जैन विश्व भारती, लाडनू
दिनाक—१६-१०-१९९६

—अणुव्रत अनुशास्ता तुलसी
—आचार्य महाप्रज्ञ

भूमिका

धर्म और विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं—सभी क्षेत्र के विद्वान ऐसा विश्वास करने लगे हैं। गुरुदेव श्री तुलसी और आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने भी यह मत प्रकट किया है कि "धर्म बिना विज्ञान और विज्ञान बिना धर्म अधूरा होता है।" केवल एक पक्ष का ज्ञान अन्धविश्वास और कुतर्क से भरा होता है। इस सदर्भ की अभिव्यक्ति विद्वान लेखक की पुस्तक से होती है। पुस्तक की सामग्री मे जहा धार्मिक तत्वो का वर्णन किया गया है, वही पर उनको वैज्ञानिकता की कसौटी से परखा गया है। अर्थात वैज्ञानिक तथ्यों के माध्यम से भारतीय जीवन-दर्शन का विश्लेषण करके नवीन विचारधाओ को अपनाया गया है।

जीवन विज्ञान की विचारधारा का निरूपण १० अध्याय के अन्तर्गत किया गया है। लगभग जीवन के सभी पक्षो पर प्रकाश डाला गया है। प्रथम खण्ड मे भारतीय सस्कृति की चर्चा करते हुए जीवन विज्ञान की उपयोगिता का वर्णन किया गया है। सस्कृति मे जो ह्रास हो रहा है वह व्यक्तित्व के असतुलन का कारण बन रहा है। इसलिये व्यक्ति को अध्यात्म और योग का ज्ञान कराना आवश्यक है। इसके लिये जीवन-सुख के मूल-मन्त्र अहिंसा के प्रशिक्षण पर बल दिया जाना चाहिये। इसी प्रकार जीवन विज्ञान की उपयोगता, व्यक्तित्व का विकास तथा शिक्षा मे विद्यार्थी एवं अध्यापक के लिये जीवन विज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रो में जीवन विज्ञान के अध्ययन सामग्री के प्रशिक्षण की क्या आवश्यकता है, इस पर गम्भीरता से विचार किया गया है। अन्त मे जो प्रयोग किये गये हैं उनके निष्कर्षों की समीक्षा की गई है।

दूसरे अध्याय मे जीवन विज्ञान के उद्भव एव विकास की चर्चा की गई है। ऐसे कौन से कारण और परिस्थितिया थी जिन्होने गुरुदेव एव आचार्यश्री को एक ऐसी कल्याणकारी योजना एव विचारधारा के प्रचार और प्रसार के लिये प्रेरित किया। इस प्रकार के चिन्तन से गुरुदेव ने अपने मौलिक विचारो को अणुव्रत आन्दोलन का रूप दिया। इसी प्रकार आचार्यश्री ने जीवन-मूल्यो मे जो ह्रास हो रहा है और शिक्षा अपने मूलभूत उद्देश्य से हट रही है पर गहन अध्ययन करने के बाद जीवन विज्ञान के

अध्ययन का प्रतिपादन किया। इन तथ्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की सरल भाषा मे बडे रोचक ढग से विद्वान लेखक ने चर्चा की है। इस अध्याय मे अणुव्रत, प्रेक्षा-ध्यान, जीवन विज्ञान की प्रकृति, उद्देश्य, लक्ष्य, दृष्टिकोण और विभिन्न अगो का विश्लेषण किया गया है।

दूसरे खण्ड मे जीवन विज्ञान की प्रविधियो का वर्णन किया गया है। इस खण्ड के अन्तर्गत जीवन विज्ञान की अध्ययन-सामग्री का विस्तृत विश्लेषण है। जीवन विज्ञान विषय के प्राण 'अणुव्रत' की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के जनक आचार्यश्री तुलसी ने अणुव्रत-सघ, जिसे बाद मे अणुव्रत आन्दोलन मे बदल दिया गया, के विकास हेतु समस्त देश की पद यात्रा की। तदुपरात १९७५ मे अणुव्रत के साथ प्रेक्षा-ध्यान के प्रायोगिक अभ्यास का विकास हुआ। इसी अध्याय मे अणुव्रत के तत्वो और आचार सहिता का क्रमबद्ध, वर्णन किया गया है। प्रेक्षाध्यान के मूल-स्रोत और सिद्धान्तो की चर्चा करते हुए लेखक ने प्रेक्षा-ध्यान के मुख्य अगो की समीक्षा की है। प्रेक्षाध्यान किस प्रकार व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक रोगो की रोक-थाम मे सहायक हो सकता है, इसको उपचार-विधि के रूप मे समझाया गया है। अन्त मे प्रशिक्षण की प्रक्रियाओ और उनके परिणामो की विवेचना की गई है।

मुनिश्री धर्मेश कुमार जी ने जीवन विज्ञान के जिज्ञासु विद्यार्थियो के लिये 'जीवन विज्ञान की रूपरेखा' नामक पुस्तक की रचना कर एक बहुत बडी कमी को पूरा किया है। इस विषय पर कई पुस्तकें उपलब्ध थी, किन्तु स्नातक एव स्नातकोत्तर स्तर पर अध्ययन करने वाले विद्यार्थियो को नवीन विषय की क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित सामग्री उपलब्ध नही हो पा रही थी। बहुत परिश्रम करके विषय से सम्बन्धित सामग्री का सकलन कर मुनिश्री धर्मेश कुमारजी ने शैक्षिक पाठ्यक्रम की आवश्यकता को पूरा किया है। सम्पूर्ण पुस्तक पढने के बाद मैं यह मानता हूं कि प्रस्तुत ग्रन्थ जीवन विज्ञान विषय का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियो को निश्चित रूप मे लाभान्वित करेगा। इसके साथ-साथ जो लोग जीवन विज्ञान को समझने के लिये उत्सुक रहते हैं वह भी यह समझ सकेंगे कि जीवन विज्ञान क्या है? विद्यार्थियो और जन-साधारण के लिये उपयोगी इस ग्रथ के निर्माण मे मुनिश्री धर्मेश कुमारजी का परिश्रम निश्चय ही प्रेरणा के स्रोत के रूप मे सभी को लाभान्वित करेगा, यह मेरा विश्वास है।

—डॉ० आर० के० ओझा
प्रोफेसर एव अध्यक्ष,
जीवन विज्ञान विभाग, जै वि भा. स (मान्य विश्वविद्यालय)

प्रस्तुति

जीवन विज्ञान क्या है ? क्या यह जीव विज्ञान (Biology) ही है या उससे भिन्न ? अनेक प्रश्न सामने आये। मैंने भी अपने आपसे पूछा। प्रश्न की खोज प्रारम्भ हुई। उत्तर मिला। जीवन को समझने और जीवन-मूल्यो को विकसित करने की नई विद्या शाखा का नाम है—जीवन विज्ञान। गुरुदेव श्री तुलसी ने जीवन विज्ञान का बीज वपन किया। आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने २८ दिसम्बर १९७८ को जीवन विज्ञान को मूर्त्त रूप दिया।

इसमे है—अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय। बचपन से ही अध्यात्म, विज्ञान और ध्यान साधना के प्रति तीव्र अभिरुचि रही। पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी एव आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुग्रह से जैन विश्व भारती सस्थान मान्य विश्वविद्यालय की स्थापना (२० मार्च १९९१) के प्रथम वर्ष से ही 'जीवन विज्ञान एव प्रेक्षाध्यान' विभाग मे अध्ययन का अवसर मिला। अध्ययन सामग्री की प्रचुरता के बावजूद विकीर्ण होने से विद्यार्थी वर्ग कठिनाई का अनुभव कर रहा था। समस्या के समाधान हेतु सामग्री का सकलन किया गया। द्वितीय वर्ष मे अध्यापन का सौभाग्य भी मिला। अध्ययन, अन्वेषण, अध्यापन व लेखन के क्रम मे सामग्री को व्यवस्थित रूप मिलता गया। इसकी निष्पत्ति है—प्रस्तुत ग्रन्थ।

दूसरे शब्दो मे जीवन विज्ञान मूल्यपरक शिक्षा का अभिनव प्रयोग है। प्रस्तुत ग्रन्थ के चार खण्ड हैं—१ जीवन विज्ञान का परिचय, २ जीवन विज्ञान की प्रविधि, ३. जीवन विज्ञान के मूल तत्त्व एव उनका प्रशिक्षण और ४. जीवन विज्ञान का अनुप्रयोग।

प्रथम खण्ड मे मूल्यो की आवश्यकता और उसके विकास मे जीवन विज्ञान की भूमिका को प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त जीवन विज्ञान के उद्भव एव विकास तथा उसके स्वरूप पर चिंतन किया गया है। दूसरे खण्ड मे जीवन विज्ञान की प्रविधि—अणुव्रत एवं प्रेक्षाध्यान को विस्तार से समझाया गया है। तीसरे खण्ड मे जीवन विज्ञान के तत्त्व—शरीर, श्वास, प्राण, मन, चित्त और भाव/लेश्या पर विस्तार से विमर्श करते हुए उनके प्रशिक्षण की प्रविधि—प्रेक्षा ध्यान पद्धति को प्रस्तुत किया गया है। अन्तिम खण्ड मे जीवन विज्ञान का शिक्षा जगत् मे किस प्रकार उपयोग किया गया है ? इस पर विचार किया गया है। इसमे शिक्षा जगत् की दृष्टि से इसके

दर्शन, स्वरूप, आधार आदि पर विमर्श किया है।

आभारोक्ति

प्रस्तुत कृति के प्रणयन मे शताधिक कृतियो का उपयोग हुआ है। उन सभी कृतिकार, लेखको के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हू। अधिकाश आवश्यक कृतियो का उल्लेख विद्यार्थियो की सुविधा हेतु अध्याय के अन्त मे कर दिया है।

गुरुदेव श्री तुलसी एव आचार्य श्री महाप्रज्ञ की दृष्टि, निर्देशन, अनुग्रह एव साहित्य इस कार्य की गति का आधार रहा है। महाश्रमण श्री मुदित कुमारजी, मुनिश्री सुखलालजी, मुनिश्री किशनलालजी, मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी व मुनिश्री धनञ्जय कुमारजी के विचार व ग्रन्थो ने मेरा मार्ग प्रशस्त किया। विश्वविद्यालय के जीवन-विज्ञान विभाग के विद्यार्थी इस कार्य के निमित्त बने। विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष डा कृष्ण कुमार का महत्त्वपूर्ण योगदान है जिन्होने मनोविज्ञान को गहराई तक समझने की दृष्टि विकसित की एव जीवन विज्ञान को आज के सदर्भ मे प्रस्तुत करने का बीज वपन किया। वर्तमान विभागाध्यक्ष डा राजकुमार ओझा ने ग्रन्थ के सपादन मे आद्योपान्त मार्ग दर्शन किया तथा "भूमिका" लिखकर ग्रन्थ की उपयोगिता प्रस्तुत की। विभाग के अन्य प्राध्यापकगण समणीश्री स्थितप्रज्ञा, समणीश्री मल्लिप्रज्ञा, डा जे पी एन मिश्रा, डा बी पी गौर के चिन्तन, मनन का भी समय-समय पर योग मिला। मुनिश्री दुलहराजजी के वात्सल्य एव प्रेरणा ने इस कार्य को गतिशील बनाया। मुनिश्री श्रीचन्दजी, मुनिश्री राजेन्द्र कुमारजी, मुनिश्री मानसजी, मुनिश्री जयकुमारजी का सतत आत्मीय भाव इस कार्य की निष्पत्ति मे निमित्त बना। सबके प्रति कृतज्ञ भाव एव मंगल भावना।

इस ग्रन्थ मे अनेक कमिया अनेक नवीन सभावनाए दोनो हैं। विषय की स्पष्टता और सदर्भ को सुस्पष्ट करने के लिए कुछ अशो का अनेक बार भी उल्लेख हुआ है। प्रस्तुत ग्रन्थ जीवन विज्ञान के स्नातक एव स्नातकोत्तर विद्यार्थी, जीवन विज्ञान-प्रशिक्षक, प्रेक्षा-प्रशिक्षक, अणुव्रत प्रचेता एव कार्यकर्ताओ की पाठ्य-सामग्री की आवश्यकता को पूरा करेगा। साथ-साथ जीवन मूल्यो के विकास हेतु कार्य करनेवाले शिक्षाशास्त्री, सामाजिक कार्यकर्ता एव अधिकारी वर्ग मे भी एक नई दृष्टि व सोच पैदा कर सकेगा।

—मुनि धर्मेश

जीवन विज्ञान में अवदान

अणुव्रत अनुशास्ता तुलसी

आप राष्ट्र के महान् सन्त हैं। आपका चिन्तन साम्प्रदायिक सकीर्णता से सर्वथा मुक्त है। आपने सम्पूर्ण मानव जाति मे जीवन मूल्य—चारित्रिक व नैतिक मूल्यो के उत्थान के लिए अणुव्रत आदोलन का प्रवर्तन किया। अणुव्रत के माध्यम से आपने आदर्श मानव की परिकल्पना प्रस्तुत की। पर वह बने कैसे ? इसकी प्रक्रिया के रूप मे आपके निर्देशन मे प्रेक्षाध्यान का विकास हुआ। आपने मानवीय स्वभाव के रूपान्तरण मे अणुव्रत और प्रेक्षा-ध्यान का समन्वित प्रयोग किया। अच्छे परिणाम आये। आपने सस्कार निर्माण व मूल्यो के विकास के लिए विद्यार्थियो पर ध्यान केन्द्रित किया। आपके दिशा-दर्शन के इस समन्वित प्रक्रिया को विकसित कर 'जीवन विज्ञान' के रूप मे शिक्षा जगत् मे प्रस्तुत किया गया।

आपने इस भागीरथ कार्य मे अपने साधु समाज को नियोजित किया। साथ-साथ अनेक सस्थाए जीवन विज्ञान के विकास के लिए सक्रिय हुईं—जीवन विज्ञान अकादमी—जैन विश्व भारती, जैन विश्व भारती सस्थान (मान्य विश्वविद्यालय), अणुव्रत विश्व भारती, अणुव्रत शिक्षक ससद आदि। आप जैन विश्व भारती, सस्थान के अनुशास्ता भी हैं।

प्रेक्षा प्रणेता आचार्य महाप्रज्ञ

अध्यात्म, धर्म-दर्शन, न्याय, व्याकरण, कोष, मनोविज्ञान, आयुर्वेद, समाजशास्त्र आदि विषयो के तलस्पर्शी अध्ययन तथा आध्यात्मिक अभ्यास द्वारा जैन योग व वैज्ञानिक पद्धति "प्रेक्षाध्यान" का आपने आविष्कार किया। आपने इसके साथ "जीवन विज्ञान" के रूप मे नवीन शिक्षा पद्धति का आविष्कार किया जो शिक्षा जगत् मे एक अमूल्य अवदान है तथा समाजिक समस्याओ का समाधान भी है।

आप मूर्धन्य प्रवक्ता, साहित्यकार, कवि, योगी तथा दार्शनिक हैं। हिन्दी, सस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी, गुजराती आदि विविध भारतीय भाषाओ पर आपका पूर्ण अधिकार है। आपने विविध विषयो पर सैकडो ग्रन्थ लिखे हैं। 'जीवन विज्ञान' पर भी अनेक मौलिक ग्रन्थो की रचना की है। आपका प्रेक्षा-साहित्य व अणुव्रत साहित्य नई दृष्टि प्रदान करनेवाला है। इस साहित्य के माध्यम से आपने समसामयिक समस्याओ का सटीक समाधान प्रस्तुत किया है।

प्रेक्षा प्राध्यापक मुनि किशनलाल

जीवन विज्ञान को सैद्धान्तिक और प्रायोगिक दोनो स्तरो पर प्रतिष्ठित करने मे आपका महत्त्वपूर्ण योगदान है। जीवन विज्ञान की कक्षा १ से १० तक पाठ्यपुस्तको के निर्माण मे आपने दृढ़ निष्ठा और धैर्य से कार्य किया है। आपके साथ श्री शुभकरण सुराणा ने भी इसमे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। शिक्षको, प्राचार्यों और शिक्षा विदो और शिक्षा सेवियो को जीवन विज्ञान का प्रशिक्षण देने मे आपका अहर्निश प्रयत्न रहा है। आपकी योग और अध्यात्म से सबद्ध अनेक कृतिया प्रकाश मे आई हैं और आध्यात्मिक प्रशिक्षण के शिविरो की समायोजना मे भी आपका श्रम मुखरित हुआ है। अणुव्रत अनुशास्ता तुलसी द्वारा प्रदत्त 'प्रेक्षा प्राध्यापक' अलकरण आपके इसी कर्तृत्व का मूल्याकन है।

प्रेक्षा प्राध्यापक मुनि महेन्द्र कुमार

बम्बई विश्वविद्यालय से सन् १९५७ में भौतिक विज्ञान से स्नातक उपाधि अर्जित करने वाले मुनि महेन्द्रकुमार सप्रति जैन विश्व भारती, सस्थान (मान्य विश्वविद्यालय) के मानद प्रोफेसर हैं। अध्यात्म और विज्ञान के समन्वयक हैं। प्रेक्षाध्यान का वैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुतीकरण, प्रेक्षा-पुष्पो के सपादन एव निर्माण मे आपका कर्तृत्व सदा प्रभावी रहा है। आपके साथ श्री जेठाभाई जवेरी का भी इस कार्य मे महत्त्वपूर्ण योग रहा। दर्शन व विज्ञान तथा अध्यात्म विज्ञान की समन्वयपरक अनेक कृतियो का निर्माण आपकी साहित्यिक प्रतिभा के साक्ष्य हैं। शिविर समायोजन, सचालन तथा जीवन विज्ञान स्नातक एव स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम निर्माण मे आपकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अणुव्रत अनुशास्ता श्री तुलसी द्वारा प्रदत्त 'प्रेक्षा प्राध्यापक' अलकरण आपके इसी कर्तृत्व का मूल्याकन है।

अनुक्रम

विषयानुक्रम

तालिका-अनुक्रम

प्रथम खण्ड

जीवन विज्ञान का परिचय
(Introduction to Jeevan Vigyan)

अध्याय-१
भारतीय संस्कृति और जीवन विज्ञान की उपयोगिता
(Indian Culture and Utility of Jeevan Vigyan)

रूपरेखा

१. सांस्कृतिक संकट (Cultural Crisis)
२. सांस्कृतिक संकट का उपचार (Prevention of Culture Crisis)
३. स्वस्थ और सतुलित संस्कृति (Balanced and Healthy Culture)
४. संस्कृति का स्थायित्व (Stability of Culture)
५. अध्यात्म और योग (Spirituality and Yoga)
६. सस्कृति और अहिंसा (Culture and Non-violence)
७. संस्कृति का प्रशिक्षण एवं शिक्षा (Training and Education of Culture)
८. व्यक्तित्व-विकास में जीवन विज्ञान (Jeevan Vigyan in Personality-Development)
९. शिक्षा में जीवन विज्ञान (Jeevan Vigyan in Education)
१०. प्रशासन में जीवन विज्ञान (Jeevan Vigyan in Administration)
११. चिकित्सा-विज्ञान में जीवन विज्ञान (Jeevan Vigyan in Medical Science)
१२. सामाजिक जीवन में जीवन विज्ञान (Jeevan vigyan in Social Life)
१३. उद्योग में जीवन विज्ञान (Jeevan Vigyan in Industry)
१४. सारांश (Summary)
१५. सहायक पठनीय सामग्री (Reference Books)
१६. अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions)

१. भारतीय संस्कृति एवं जीवन विज्ञान की उपयोगिता

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी कहते है "किसी भी राष्ट्र के अस्तित्व का मौलिक आधार उसकी भौगोलिक सीमाए नही अपितु उसकी सस्कृति है। सस्कृति से कटकर किसी भी राष्ट्र को परिभाषित नही किया जा सकता। सस्कृति एक प्रवाह है। वह चलता रहे तब तक ठीक है। गति रुकने का अर्थ है उसकी मृत्यु, फिर दुर्गन्ध के अतिरिक्त कुछ मिलने का नही।"[1] यह सत्य है कि विश्व के मानचित्र पर अनेक संस्कृतियो का उदय हुआ और अनेक सस्कृतिया अस्त हो गई। पर भारतीय सस्कृति अमिट है। विगत पाच हजार वर्षो मे अनेक उतार-चढावो के बाद भी यह अक्षुण्ण रही। इस सस्कृति की सरिता निरन्तर प्रवाहित होती रही है। निरन्तरता इसकी विलक्षणता है। इस विलक्षणता की पृष्ठभूमि मे शाश्वत मूल्यो का हाथ है। वे शाश्वत मूल्य हैं—अध्यात्म, अहिंसा, समन्वय, सहिष्णुता आदि। ये शाश्वत मूल्य आज भी उतने ही प्रासगिक है, जितने अतीत मे थे। वर्तमान काल अनेक सस्कृतियो का सक्रमण काल है। इसमे भारतीय सस्कृति की अक्षुण्णता के लिए इन मूल्यो को नई पीढी को हस्तान्तरित करना अत्यन्त आवश्यक है। इस दिशा मे जीवन विज्ञान का प्रशिक्षण शिक्षा जगत् मे एक अभिनव और विनम्र प्रयास है।

१. सांस्कृतिक संकट (Cultural Crisis)

आज का जनमानस सास्कृतिक सकट के दौर से गुजर रहा है। इसके अनेक कारण हैं। सास्कृतिक सकट तब खडा होता है जब राष्ट्रीय चरित्र मे गिरावट आती है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और व्यवस्था के बीच का सतुलन टूट जाता है। अनेक अन्तर्विरोधो के बीच सामजस्य और सतुलन नही हो पाता। अधिकार बोध का प्राबल्य एव शक्ति के अधिकतम सग्रह की बलवती भावना बढती है।

सस्कृति का विकास कुठित हो रहा है। इसके कारण हैं[2]—

---

१ एक बूद एक सागर, स समणी कुसुमप्रज्ञा
प्र. जैन विश्व भारती, लाडनू (राज)

२. एक बूद एक सागर, पृ. १४२०

- शिक्षा के दृष्टिकोण का विपर्यास
- दूसरो के महत्त्वाकन की दास्यपूर्ण मनोवृत्ति
- पडितों की रूढवादिता, समयानुकूल परिवर्तन की उपेक्षा
- गुरुकुल प्रणाली का उच्छेद

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और व्यवस्थागत नियन्त्रण का सतुलन आवश्यक है। शासन, अनुशासन और आत्मानुशासन ये तीनो समाज के लिए आवश्यक हैं। आत्मानुशासन के न रहने से स्वतन्त्रता पागलपन और अपराध है।[1]

संस्कृति के सक्रमण काल मे परिवार, नारी एव बालक को गौण कर दिया गया है जिसका परिणाम स्नेह की जगह विद्रोह है। अनेक अन्तर्विरोधी मूल्यो में सामञ्जस्य सस्कृति की स्वस्थता के लिए आवश्यक हैं। डा हरद्वारी लाल शर्मा के अनुसार "माता से अनेक मूल्य प्राप्त होते हैं—स्नेह, माधुर्य, सहानुभूति, दया, करूणा, सौंदर्य, प्रेम, सहयोग, सहकार' श्रद्धा, मार्दव आदि। इसी प्रकार पिता से भी अनेक मूल्य प्राप्त होते हैं—न्याय, समता, स्वतत्रता, वीरता, श्रम-शीलता, दण्ड के लिए आवश्यक कठोरता, सघर्ष के लिए सत्य, साहस, धैर्य आदि। स्वस्थ, सतुलित और समन्वित मानव जीवन मे इन दोनो प्रकार के मूल्यो मे भी समन्वय सतुलन होना अपेक्षित है। ऐसा नही हो रहा है। यह आज हमारे सास्कृतिक विप्लव का कारण है।[2]

आज अधिकार-बोध की प्रबलता बढ़ती जा रही है। त्याग, भावना एव कर्त्तव्य-बोध दुर्बल हो रहे हैं। इसका परिणाम है—सास्कृतिक सघर्ष। इसी पृष्ठभूमि मे है—राजनीति। इसने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे हस्तक्षेप किया है। राजनीति ने अधिकार-बोध को जन्म दिया है। इसने कर्त्तव्य-बोध को दुर्बल बना दिया। "अधिकार-बोध के साथ पैदा होते हैं—समानता, स्वतत्रता, स्पर्धा, असहिष्णुता, व्यक्तिगत सम्मान की कमी, गभीर धार्मिक अनुभूति का विरोध, ऐहिकता का प्राबल्य, सघर्ष के लिए तत्परता और तैयारी। इस अधिकार-बोध की प्रचुरता से पुराने मूल्य धुधला गए हैं। तप, त्याग, वैराग्य, अनासक्ति, सौहार्द, सहज स्नेह, श्रद्धा और विश्वास आदि शाश्वत मूल्यो पर विचार, तर्क, वैज्ञानिकता, बौद्धिकता, सदेह आदि हावी हो रहे है। इन सबके परिणामस्वरूप बाहर से भी अधिक हमारे अन्दर आधिया उठ रही है, अधेरा छा रहा है, सघर्ष की लपटे उठ-रही है।"[3]

---

१. सस्कृति विज्ञान की रूपरेखा

२. सस्कृति विज्ञान की रूपरेखा, २३०

३. संस्कृति विज्ञान की रूपरेखा, ३३९

२. सांस्कृतिक संकट का उपचार (Prevention of Cutlural Crisis)

सास्कृतिक सघर्ष एव सकट का उपचार राष्ट्रीय चरित्र के उन्नयन मे है। शासन, अनुशासन और आत्मानुशासन के समन्वय मे है। अन्तर्विरोधी मूल्यो के सामजस्य एव समायोजन मे निहित है। अधिकार-बोध के साथ कर्त्तव्य-बोध एव त्याग भावना को जगाने मे है। शक्ति पर अकुश लगाने वाली नैतिक चेतना को विकसित करने मे है। आज इसी आदर्श और उद्देश्य की जानकारी स्पष्ट नही है। अतः अनवरत स्वार्थो का सघर्ष चल रहा है। यह तब तक रुक नही सकता जब तक कोई रचनात्मक राह नही सूझती।"[1]

प्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्रकुमार के अनुसार—"मानव सबधो को लेकर सस्कृति बनती है। इन सबधो मे जब हिंसा आती है तभी विकृति आती है और सस्कृति के लिए सकट उपस्थित होता है। इन्ही के शब्दो मे इसका उपचार है—आदमी का आदमी पर प्रहार न हो, दबाव न हो, असम्मान न हो, बल्कि हर दो के बीच सहानुभूति, सम्मान और सहयोग का सबध हो, हर दो पडोसी भाई-चारा रखे, अर्थ सबध सहकार के आधार पर हो, समाज स्वैच्छिक सहयोग पर बने और व्यक्तित्व की निजता को अवसर और अवकाश हो—ये सस्कृति की आवश्यकता और लक्षण है।"[2]

शक्ति पर रोक लगाने वाली शक्ति मानव की स्वय की नैतिक चेतना है। उचित-अनुचित का विवेक, धर्म चेतना से उत्पन्न पुण्य-पाप का बोध, मनुष्य-मनुष्य के प्रति सवेदनशीलता और प्राणी-मात्र मे आध्यात्मिक अनुभूति —ये सब मिलकर शक्ति पर नियमन करते हैं। आज सास्कृतिक सतुलन के लिए नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यो की पुनर्स्थापना एव प्रशिक्षण आवश्यक हैं।

सस्कृति का चरम प्रयोजन बहुर्मुखी समायोजन होता है। परिस्थिति, मनस्थिति व वस्तुस्थिति के साथ सफल समायोजन से तृप्ति, तुष्टि, सुख-शाति, उत्साह और आनन्द की वृद्धि होती है। सृजनात्मक प्रयासो के लिए अवकाश का परिवेश बनता है। सास्कृतिक सकट का उपचार मात्र अधिकार-बोध नही कर सकता। इसके लिए आवश्यक है, महानजनो का त्याग, तप, बलिदान और आचार। "सास्कृतिक पतन के युग मे धन, अधिकार शक्ति व प्रभुत्व को ही महान् होने का आधार मान लिया जाता है। यहा अभिनेता, राजनेता, बलवान, धनवान अधिकारी और प्रभु लोगो को महान् माना जाता है। इस मिथ्या अभिनिवेश से समाज और राष्ट्र के पतन से पहले ही

---

१ सस्कृति विज्ञान की रूपरेखा २३५

२ शिक्षा और सस्कृति जैनेन्द्र कुमार ८४-८५

उसकी सास्कृतिक मूल्यो की चेतना का पतन हो जाता है। यर्थाथ में महान् वह है जो अहकार, जड़ता, अन्धता, कषाय आदि पाशविक बंधनो से मुक्त होता है ।"

३. स्वस्थ और संतुलित संस्कृति (Healthy and Balanced Culture)

(अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी के अनुसार—"वह सस्कृति सफल होती है जो कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्तियो को जन्म देती है) कोई भी देश अपनी संस्कृति, सभ्यता, कला और राष्ट्रीय अखंडता की सुरक्षा सतो और ऋषि महर्षियो के बल पर ही करता है।[1]

सस्कृति की प्रक्रिया का पहला मानक है कि समष्टि ने अपने समूह मे कितने श्रेष्ठजनो को पैदा किया है जो इतरजनो के लिए मूल्यो के प्रमाणित मानदण्डो की स्थापना, मात्र विचारो से नही जीकर करते हैं।

सस्कृति का स्वस्थ स्वरूप मात्र महानजन या श्रेष्ठजन से ही नही बनता। वह इतरजनो से भी बनता है। इसलिए अपेक्षा है कि समाज मे ऐसे वृद्धजन भी हो जो सहज आदर्शवादी हो। ऐसी युवतियां हो जो जीवन के महामूल्यो की रक्षा के लिए कष्ट सह सकती हो। ऐसे किशोर-किशोरिया हो जो सब प्रकार से सतुलित जीवन स्वीकार करने के लिए तत्पर हो। ऐसे अनेक व्यक्ति हो जो स्वार्थ त्यागकर नि स्वार्थ सेवा के लिए तत्पर हो एव सेवा करते हो। कुछ लोग ऐसे भी हो जो सकीर्णता के दायरे से मुक्त होकर विराट एव व्यापक चेतना से युक्त हो तथा सर्वहित की बात सोचते हो एव करते हो। नितान्त स्वार्थपरता स्वस्थ सामाजिकता एव सस्कृति की विरोधी है। वर्तमान चुनावी सस्कृति जन-सेवा के छल से निपट लोलुपता को छिपाए रहती है। यह स्वस्थ लोक-जीवन का लक्षण नही है।[2]

४. सांस्कृतिक स्थायित्व (Stability of Culture)

भारतीय संस्कृति की निरन्तरता का रहस्य क्या है ? इसका रहस्य सुख-सुविधा के अम्बार मे नही है। इसका रहस्य है—सुख-सुविधा एवं शाति के समन्वय मे। आध्यात्म के जागरण मे।

प्रगतिशील सस्कृति प्रतिभाओ को प्रोत्साहित करती है। वह उद्यम, श्रम, उत्साह आदि गुणो को बढ़ावा देती है। आलस्य, दरिद्रता आदि अच्छी सस्कृति के लक्षण नही होते। सस्कृति के साथ सभ्यता का विस्तार होता है। सभ्यता का अर्थ है—सुख-सुविधाओ का विकास।[3]

१ एक बूद . एक सागर, पृष्ठ १४२२

२. सस्कृति विज्ञान की रूपरेखा

३. सस्कृति विज्ञान की रूपरेखा

समाज की विकसित सस्कृति मे मात्र सुख का ही स्थान नही है। वहा शाति का भी स्थान होता है केवल सुखवादी सस्कृति और केवल शाति की सस्कृति दोनो अधिक टिकाऊ एव स्थायी नही हो सकती तथा नष्ट हो जाती है। अशान्त मन सुख-भोग नही सकता। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है। स्वस्थ भावनाशीलता के बिना शाति की अनुभूति नही हो सकती। भावना-शून्यता या अतिभावुकता दोनो से ही हृदय का सतुलन बिगड जाता है भावनात्मक सतुलन के लिए आत्मानुशासन जरूरी है। डॉ राधाकृष्णन के अनुसार—"मानव जाति को अगर कोई चीज गरिमा प्रदान कर सकती है, तो वह है उसका आध्यात्मिक प्रयास। कोई भी सस्कृति तब तक चिर स्थायी नही हो सकती जब तक वह इस आध्यात्मिक प्रयास का समर्थन नही करती।"[११]

अणुव्रत अनुशास्ता श्री तुलसी के अनुसार कोई भी सस्कृति अपनी शुद्ध आचार परम्परा के आधार पर ही उज्जीवित रहती है। मेरे विचार मे सस्कृति एक ही है और वह है आध्यात्मिक सस्कृति। मजबूत सस्कृति की छाया मे पलनेवाली सभ्यता ही टिकाऊ बनती है।[१२]

स्वामी विवेकानन्द ने उद्घोष किया—"भारत राष्ट्र मर नही सकता, वह अमर है और उस समय तक अमर रहेगा जब तक कि अनेक लोग आध्यात्मिकता को नही छोड देंगे।"[१३]

५. अध्यात्म और योग (Sprituality and yoga)

भारतीय सस्कृति की प्रधान विशेषता है—इस प्रकार के नियम एव जीवनक्रम का निर्माण जिससे शारीरिक, मानसिक व आत्मिक शक्ति का विकास होता है। सर्वांगिण विकास होता है। इसी का परिणाम है—समग्र योग एव ध्यान साधना की पद्धतियाँ। "शारीरिक, मानसिक व आत्मिक विकास की ऐसी व्यवस्था अन्यत्र कही नही पायी जाती। इस प्रकार प्राचीन भारत ने शारीरिक शक्ति के विकास की ऐसी योजना बनाई थी जिससे मानसिक उत्थान और आत्म-विकास मे भी स्वत काफी सहायता मिल सकती है। शारीरिक विकास की ऐसी व्यवस्था ससार के अन्य किसी देश की सस्कृति मे नही पाई जाती। यह भारतीय सस्कृति की पहली विशेषता है।[१४]

११ हमारी सस्कृति, डा राधाकृष्णन
१२ एक बूद एक सागर, पृ. १४२२
१३ भारतीय सस्कृति का विकास
१४ विश्व धर्म दर्शन, ४००

कार्ल गुस्ताव युग, विश्लेषणात्मक मनोवैज्ञानिक के अनुसार—'योग' आज के विश्व की गभीरतम समस्या के हल के लिए आवश्यक एव उपयोगी है। योग मे विज्ञान तथा धर्म का सयोग है, जो आज की यूरोपियन मूल समस्या के लिए एकमात्र साधन या मार्ग नजर आता है।

"युग ने वर्तमान की भीषणतम समस्या के समाधान के लिए भारतीय योग का उपयोग एव परीक्षण किए जाने की योग्य सलाह दी है, जिससे विज्ञान और धर्म की प्रतिस्पर्धात्मक खीचातानी को समाप्त किया जा सके तथा योग के माध्यम से मानव अपने मानवीय जीवन के अन्दरूनी विकास के लिए जरूरी धर्म का योग्य उपयोग कर सके। इन दोनो के बीच योग्य समायोजन एव स्थायी तालमेल की स्थापना की जा सके। मानव विज्ञान और धर्म के बीच योग से सबध एव समायोजन स्थापना के साथ विज्ञान की हिंसक बुराइयो से दूर रहते हुए तन तथा मन दोनो का समान रूप से योग्य विकास कर सके।"[1]

मूलत. और तत्वत. सस्कृति आध्यात्मिक ही होती है। अर्थात् सस्कृति का मूल तत्त्व आत्मा मे होता है। यह आत्मा कोई रहस्य नही है। यह मनुष्य द्वारा युगो की खोज और सृजनात्मक प्रयासो से प्राप्त उसके अपने सच्चे और समूचे स्वरूप की स्वीकृति मात्र है।"[2] मनुष्य का ससार मात्र विषयो तक सीमित नही है। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, मन, बुद्धि, विवेक से आगे अहकार के पार जो तत्त्व है—वह भारतीय चिन्तन की आत्मा है। आत्म स्वरूप की पहचान ही मनुष्य की परमगति है, उपलब्धि है।

प्रत्येक जन समूह अपनी जीवन शैली उसी आधार पर बनाता है जिस सीमा तक वह आत्मा या अपनेपन की खोज करते हुए पहुचता है। अनेक सस्कृतिया विषय और इन्द्रियो अथवा मन तक ही अपने को पहचान सकी। अनेक सस्कृतिया बुद्धि और अहकार को अपना सार सर्वस्व मानकर रह गई। भारत सभवत. एक ऐसा ही भूभाग रहा जो इन सबके पार अमृतत्व तक जा सका। संस्कृतियो मे अन्तर उनके आध्यामिक ज्ञान और पहचान के कारण हुआ है और होता रहेगा।

६. संस्कृति और अहिंसा (Culture and Non-violence)

हिंसक शक्तिया केन्द्रित न हो, इस चिन्तन से ही सस्कृति का विकास प्रारम्भ होता हैं। अहिंसा, सत्य और अपरिग्रह—इस त्रिवेणी के सगम से उत्पन्न होने वाली संस्कृति ही सर्वश्रेष्ठ हो सकती है।"[3]

१. कार्ल गुस्ताव युग : विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान-२९६
२ सस्कृति विज्ञान की रुपरेखा
३ एक बूद एक सागर, पृ १४२०

समाज का सास्कृतिक स्तर का अनुमान उसकी आवश्यक हिंसा-वृत्ति और अहिंसा के व्यवहार से किया जा सकता है। प्राकृत प्राणी हिंसा और अहिसा का भेद नही समझ सकता किन्तु सस्कृत मानव प्राणी के लिए इनका भेद-बोध एव आचरण उसका सर्वस्व है। मानवता की पहली शर्त ही है कि मनुष्य कहा तक हिंसा की प्रकृति को आत्मवश करके अहिंसा को जीवन विद्या के रूप मे स्वीकार करता है। सस्कृत मनुष्य का मापदण्ड यह मानवता ही हो सकती है। यह मानवता हमे सहजात के रूप मे नही मिलती बल्कि इसे अर्जित किया जाता है। समाज अनेक शिक्षा उपायो से प्राकृत-शिशु को सस्कृत-मानव बनाता है। हिंसा पशु-प्रकृति का विधान है। अहिंसा मानव की सास्कृतिक मूल्य चेतना का मापदण्ड है। पुलिस बल का अधिकाधिक प्रयोग पतनोन्मुख सस्कृति का सूचक है।

बल-प्रयोग का अर्थ है कि लोग मानने योग्य बातो को नही मानते बल्कि उन्हे मनाया जाता है। यह मानने मनाने का अन्तर आत्म तत्र, स्वतत्र, सस्कृत मानव और दूसरी ओर दास, परतत्र, प्राकृत प्राणी का अन्तर है। सस्कृत मानव स्वतत्र होता है, आत्म तत्र होता है। प्राकृत प्राणी दास होता है वह मनाने से ही मानता है।

प्राकृत नियमानुसार बलवान निर्बल को कष्ट देता है। यह मत्स्य-न्याय है। सस्कृत व्यवहार मे निर्बल की रक्षा की जाती है। उसे दया, दान, स्नेह एव सुरक्षा प्रदान की जाती है। यह मानवीय न्याय व्यवस्था है। मानवीय समाज की न्याय व्यवस्था, उदारता, सहभागिता, सहयोगिता, हृदय की आद्रता और सवेदनशीलता आदि सास्कृतिक मूल्यो का व्यवहार है। किस सीमा तक मानव प्राकृत पशु से भिन्न मानवता का व्यवहार करता है, उसी सीमा तक उसकी सास्कृतिक मूल्य चेतना का विकास माना जा सकता है। उदाहरणत: किसी समाज मे भिखारी का होना आर्थिक सकट का सूचक हो सकता है, परन्तु उसे अपमानित कर भगा देना, सास्कृतिक पतन का प्रमाण है।

७. संस्कृति का प्रशिक्षण एवं शिक्षा (Training and Education of culture)

"बालको के सस्कारित हुए बिना सस्कृति की सुरक्षा मात्र सपना है। सस्कार यदि ऊचे होगे तो सस्कृति अपने आप उन्नत, विकसित और उदित होती चली जाएगी।"[1]

किसी भी सस्कृति के विकास और गतिशीलता का पैमाना यह है कि

१. एक बूद : एक सागर

वह अपने बालक-बालिकाओ और स्त्रियो का कितना ध्यान रखती है।

आज स्पष्ट हो गया है कि जो जीवन के मानव मूल्य हैं, जो सस्कृति के सार है, उन्हे बचपन मे ही सीखे एव सीखाए जा सकते है। एक जागरूक और सस्कृत मानव युग-बोध एव जीवन-बोध से जगमगाता है। इसके विना मूल्य के महत्त्व को अनुभव नही किया जा सकता। रूप-बोध, सौन्दर्य-बोध, स्नेह, सौहार्द, सर्वत्र समदर्शिता, सर्वधर्म-सम्मान, समन्वय, सहनशीलता, हृदय के स्वस्थ भाव, सजग बौद्धिकता, रुचिया, औचित्य-बोध, मानव के श्रेष्ठतम रूपो का बोध, स्वतत्रता, समानता का सतुलन, अधिकार-बोध और कर्त्तव्य-बोध की जागरुकता, सामजस्य आदि सस्कृति के प्रमुख तत्त्व है। हमारी वर्त्तमान शिक्षा इन मूल्यो को छात्रो को नही देती।[1]

आज का मानव वैज्ञानिक एव मनोवैज्ञानिक कारणो से परिवार की ओर लौटने लगा है। परिवार के टूटने से भयकर परिणामो को वह समझने लगा है। शिक्षा जगत मे भी जागृति आवश्यक है। आज शिक्षा प्राकृतशिशु को सस्कृत मानव वनाने के अपने प्रमुख दायित्व से विमुख नही हो सकती। शिक्षा में मूल्य सहज नही आते, वह भी सिखाए जाते है, मूल्य सहज नही, अर्जित होते है। अतएव शिक्षा का स्वरूप स्वस्थ एव दृढ़ होना अत्यावश्यक है। शिक्षा मात्र शोभा नही, लोकजीवन की आवश्यकता है और जीवन शक्ति का स्रोत है। अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी ने बलपूर्वक कहा है—"शिक्षा के द्वारा केवल पुस्तकीय ज्ञान ही उपलब्ध नही होता, मन भी प्रशिक्षित होता है। शिक्षा समाज को सस्कारित करने का अभिकरण है। शिक्षा हो और जीवन मे सस्कार का परिष्कार न आए तो मानना चाहिए कि कही कुछ कमी है। सूरज की रोशनी से सूरजमुखी फूल न खिले तो किससे खिलेगे ? शिक्षा सस्कार-निर्माण का सर्वाधिक प्रशस्त माध्यम है। यह मनुष्य के जीवन को प्रकृति से आगे सस्कृति के साथ जोडती है। इसमे भी विकृति का दर्शन हो तो समाज को शिक्षा से क्या मिलेगा ?

शिक्षा विकास का अपरिहार्य अग है। अध-विश्वासो, सामाजिक रूढ़ियो, अनुचित मान्यताओ और जीवनगत विकृतियो मे परिष्कार लाने का माध्यम भी शिक्षा है। एक ओर शिक्षा जीने की कला सिखाती है तो दूसरी ओर पारपरिकता मे दक्षता लाती है। शिक्षित लोग अपने उद्देश्यो के प्रति जागरूक बनते हैं तो युगीन चुनौतियो को झेलने के लिए भी कटिबद्ध रहते हैं, किन्तु यह सब तभी सभव है, जब जीवन मूल्यो और सास्कृतिक मूल्यो की शिक्षा प्राप्त हो। वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली मे ऐसा कुछ भी नहीं है। यह बात नही है, किन्तु अपनी भाषा और सस्कृति को

---

१. सस्कृति-विज्ञान की रूपरेखा

गौण करने के कारण शिक्षा के साथ वे बातें भी आ रही है जो नही आनी चाहिए। बच्चो को दोष देना व्यर्थ है, लाइफ स्टैण्डर्ड के नाम पर उन्हे जो रीति-रिवाज सिखाए जा रहे हैं उससे जीवन से भारतीयता का लोप हो रहा है। अभिभावक इस दृष्टि से कुछ सोचते नही। ऐसी स्थिति मे शिक्षा के माध्यम से ही सस्कृति को सुरक्षित रखा जा सकता है।[1]

आज भारतीय लोगो को भारतीय होने का गौरव नही है, होगा भी कैसे? जब तक शिक्षा का भारतीयकरण नही होगा, भारतीयता के प्रति रुझान नह बढ पाएगा। शिक्षा भारत मे होती है फिर भी यहा भारतीय भाषाओ की मुख्यता नही है। भारतीय सस्कृति की मुख्यता नही है।

"जब तक शिक्षा मे भारतीयता का प्रवेश नही होगा, तब तक हम स्वस्थ नागरिक का निर्माण नही कर सकेंगे।"[2]

अहिंसा आदि शाश्वत मूल्यो का विकास एक जटिल प्रश्न है लेकिन अनुतरित नही है—इस रिक्तता की पूर्ति के लिए अणुव्रत अनुशास्ता श्री तुलसी एव आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने जीवन विज्ञान का प्रशिक्षण शिक्षा जगत् से जोडा। जीवन विज्ञान शिक्षा जगत् मे भारतीयता के प्रशिक्षण का वैज्ञानिक एव प्रायोगिक प्रयत्न है। अपेक्षा है ऐसे अनेक प्रयोग अनेक दिशाओ से हो और इसमे हम सबकी भागीदारी हो तभी हमारी शिक्षा मे क्रातिकारी परिवर्तन सभव हो सकेगा। शिक्षा सही मायने मे भारतीय धरती से जुड सकेगी। मनुष्य को मनुष्य बना सकेगी।

जीवन विज्ञान की वैज्ञानिकता : जीवन में उपयोगिता

ससार मे अनेक प्रकार के पदार्थ है। उनमे से कुछ उपयोगी होते हैं कुछ अनुपयोगी। जो वस्तुए अनुपयोगी होती है, उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है। वे धीरे-धीरे काल के गर्त मे चली जाती हैं। लुप्त हो जाती हैं। जो पदार्थ उपयोगी होते हैं उनका विकास होता रहता है। माग बढती जाती है।

शिक्षा जगत् मे "जीवन विज्ञान" एक उपयोगी विद्या-शाखा सिद्ध हो रही है। यद्यपि इसका अध्ययन-अध्यापन बहुत पुराना नही है। जब से जीवन विज्ञान का उद्भव हुआ है तभी से इसकी माग बढती जा रही है। शिक्षा जगत् के अतिरिक्त भी अनेक व्यक्तियो ने जीवन विज्ञान की प्रयोगात्मक प्रक्रिया प्रेक्षाध्यान को जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे आजमाया है। उन्हे अप्रत्याशित सफलता मिली है। इनके वस्तुनिष्ठ परीक्षण किए है। व्यक्तिनिष्ठ अनुभव और अभिमत भी एकत्रित किए गए हैं।

१ प्रेक्षाध्यान, पत्रिका, दिसम्बर १९९४
२ एक बूद : एक सागर

इन सब अनुभवो ने इसकी असीम उपयोगिता एवं संभावनाओ को उजागर किया है।

इसके जन्म का बीज तब पड़ा जब सन् १९६२ मे अणुव्रत अनुशास्ता गणाधिपति श्री तुलसी ने आचार्य महाप्रज्ञ को ध्यान अन्वेषण के लिए प्रेरणा दी। आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने प्रेरणा प्राप्त कर अन्वेषण व अनुसंधान के लिए अपने आपको नियोजित किया। तेरह वर्ष के दीर्घकालीन अनुसंधान व अभ्यास से प्राचीन आगमो पर आधारित व आधुनिक विज्ञान सम्मत "प्रेक्षाध्यान पद्धति" को १९७५ में 'सर्वजन हिताय' जनता के सामने रखा। जनता ने इसे बहुत सराहा। सबसे पहले इसकी उपयोगिता शिक्षा जगत् मे उभर कर आई। उसके बाद अनेक सभावनाओ के द्वार खुल गये। अब यह पद्धति प्रशासन, चिकित्सा, स्वास्थ्य, उद्योग एवं व्यवसाय, सेना, पुलिस, अपराधी-सुधार आदि जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे उपयोगी सिद्ध हो रही है। इन क्षेत्रो में ऐसे व्यक्तियो की तीव्र मांग आ रही है जो इन क्षेत्रो में जाकर इसका प्रशिक्षण एव अभ्यास करा सकें। इस माग को देखते हुए हजारो-हजारो दक्ष प्रशिक्षको की अपेक्षा है। जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे अपनी क्षमता व दक्षता से समस्याओं के समाधान मे नई पहल और दृष्टि दे सके। यह अपेक्षा जीवन विज्ञान पढ़ने वालो के लिए असीम संभावनाओ को अभिव्यक्त करती हैं।

८. व्यक्तित्व-विकास में जीवन विज्ञान

जीवन मे सफलता का रहस्य है—शक्ति। जब व्यक्ति स्वयं अपनी शक्ति का उपयोग करना तो दूर, वह उससे परिचित भी नही हो पाता है, ऐसी स्थिति मे सफलता एव संतोष ख्याली-पुलाव मात्र रह जाते हैं। जीवन विज्ञान व्यक्ति को अपनी शक्ति एवं गुणो से परिचित कराता है। उसके विकास मे योगदान देता है एवं उपयोग करना सिखाता है। उसके व्यवहार को परिमार्जित एवं परिष्कृत करता है।

प्रेक्षाध्यान के द्वारा अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन व्यवहार-गत परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। उनका मूल्याकन करने के लिए मनोवैज्ञानिक डॉ० कुलदीप कुमार (एन.सी.इ.आर.टी.) ने दस-दिवसीय शिविर का वस्तु-निष्ठ अध्ययन किया। यह शिविर तुलसी अध्यात्म नीडम् द्वारा नई दिल्ली मे दिनांक २१ जून से ३० जून से १९८१ तक आयोजित किया गया। इसने अध्यापक, राज्य कर्मचारी, व्यवसायीगण एवं गृहिणियो—इन विशिष्ट वर्गो के अतिरिक्त, सामान्य जनता ने भाग लिया।

ध्यानाभ्यासो के फलस्वरूप व्यवहार-गत परिवर्तन क्या-क्या हुए, यह जानने के लिए १६ सूत्री व्यक्तित्व मापदण्ड का प्रयोग किया गया। प्रत्येक

व्यक्ति मे हुए इन परिवर्तनो के आधार पर इस अन्तर के आकडो की जाच से पता लगता है कि स्वनिष्ठ, बहिर्मुख, विनम्र, अप्रमत्त, अलमस्त तथा अनुशासन विहीन तथा अनुशासित विषयक व्यवहारो मे स्पष्ट अन्तर आया। सपूर्ण ध्यानाभ्यासियो मे से ६५ से ७३ प्रतिशत व्यक्तियो के व्यवहारो मे महत्त्वपूर्ण अभिवृद्धि दिखाई दी।[1]

ध्यानाभ्यास का दीर्घकालीन प्रभाव मालूम किया गया। जो व्यक्ति पहले से ही ध्यानाभ्यासी थे, उनकी तुलना नये व्यक्तियो के साथ की गई। पुराने ध्यानाभ्यासी नये के अनुपात मे १० प्रतिशत अधिक भावुकता की दृष्टि से स्थिर, नियमो के पालक, कल्पनाशील, आत्मविश्वासी एव तनाव मुक्त पाये गये।

यद्यपि उपर्युक्त निष्कर्ष छोटे उदाहरणो पर आधारित है, तथापि उनके द्वारा कुछ व्यवहार-गत आयामो पर ध्यानाभ्यासो के वास्तविक प्रभाव का ठोस प्रमाण मिलता है। फलितार्थो का निष्कर्ष यह है कि ध्यानाभ्यास-रत प्रेरित, सहकारी, अनुकूलनीय, स्व-पर्याप्त, तनावमुक्त शात और सतुष्ट होते है।

सृजनात्मकता पर ध्यानाभ्यासो का प्रभाव जानने के लिए एक गवेषणात्मक अध्ययन किया गया। इसके प्राप्ताक सृजनात्मकता के चारो उपादानो मे वृद्धि का सकेत देते है—धारा प्रवाहित, लचीलापन, मौलिकता, विवर्धन। गवेषणा से यह भी पता लगता है कि दस दिवसीय कार्यक्रमो मे ध्यान के अभ्यासो से धारा प्रवाहित और विवर्धन के प्राप्ताको मे वृद्धि हुई तथा जो परिवर्तन देखा गया, वह आकडो की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण पाया गया।

९. शिक्षा में जीवन विज्ञान

छात्र एव जीवन विज्ञान

मूल्यो के विकास एव व्यवहार-परिष्कार मे जीवन विज्ञान की महत्त्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए शिक्षा जगत् मे इसके प्रयोग एव परीक्षण प्रारम्भ हुए। छात्रो मे आशातीत परिवर्तन परिलक्षित होने लगे। इसकी माग बढी। अनेक राज्यो मे भी इसके प्रयोग प्रारम्भ हुए। शिक्षा जगत् मे इसकी उपयोगिता को देखकर जीवन विज्ञान मे प्रशिक्षित अध्यापको की माग बढी।

कुछ विद्यार्थियो के व्यक्तिगत अनुभव, उनके शारीरिक, बौद्धिक और भावनात्मक विकास मे इस विषय की उपयोगिता दर्शाते हैं।

"वर्ष १९९१ मे हमारे प्रबन्ध निदेशक की अगाध निष्ठा के कारण शिक्षा जगत् मे नवीनतम प्रणाली का शुभारम्भ हुआ। इस नवीनतम प्रणाली

---

१ प्रेक्षाध्यान पत्रिका, अगस्त १९८१

के पाठ्यक्रम मे जीवन विज्ञान का पाठ्यक्रम भी स्वीकृत कर किया गया। जीवन विज्ञान हम छात्र-छात्राओ के शारीरिक, मानसिक, वौद्धिक, भावनात्मक एव आध्यात्मिक व्यक्तित्व की आधारशिला है। हम सभी छात्र जीवन विज्ञान के आधार पर अपने जीवन को सवारने मे सलग्न हैं। मेरा चिड-चिडापन और गुस्सा कुछ हद तक दूर हो गया है। अव पढाई मे भी पहले से अधिक मन लगने लग गया है।"[1]

राजीव रजन, कक्षा ६
वी आई वि. ९ डी.

अध्यापको में जीवन विज्ञान

अध्यापको की वढती माग को देखते हुए जीवन विज्ञान मे उनको प्रशिक्षित करने की वात सामने आई। प्रशिक्षण के लिए अनेक शिविरो का आयोजन किया गया। विगत वीस वर्षों मे हजारो शिक्षको को अपने व्यक्तिगत जीवन मे वहुत लाभ हुआ उन्होने अपने अनुभव मे व्यक्त किया कि—

"ऐसा असाम्प्रदायिक व मानवतावादी दृष्टिकोण और वातावरण यही देख पाया। निश्चय ही इस शिविर ने मेरे जीवन की दिशा वदल दी है।"

—गिरधारीलाल,
रा. उ मा. वि, जसवन्तगढ

"जीवन विज्ञान" विषय मे अध्ययनरत छात्रो के लिए अध्यापन क्षेत्र वहुत वड़ी सभावना है। यह उनके जीवन-जीविका दोनो समस्या के समाधान मे सहायक सिद्ध हो सकता है।

शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय में जीवन विज्ञान

जीवन विज्ञान मूल्यपरक शिक्षा हेतु व्यवहारिक शिक्षा क्रम है। इस शिक्षा क्रम के लिए प्रशिक्षित शिक्षको की आवश्यकता होगी। इसको ध्यान मे रखते हुए प्रायोगिक तौर पर "गांधी विद्या मदिर", सरदारशहर (राज०) के शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय के ११५ छात्राध्यापक-छात्राध्यापिकाओ मे प्रवेश प्रशिक्षण किया गया। यह १४-४-९३ से २३-४-९३ तक एक सप्त-दिवसीय जीवन विज्ञान प्रवेश प्रशिक्षण के रूप मे चला।

जीवन विज्ञान प्रशिक्षण रिपोर्ट वी टी टी. कॉलेज के प्रोफेसर डॉ० डी. एल. शर्मा ने तैयार की। उन्होने १७ न्यादर्श (parameters) के आधार पर इस शिविर के परीणामो के वैज्ञानिक तरीके से विश्लेषण एव निष्कर्ष प्रस्तुत किये।

१. प्रेक्षाध्यान पत्रिका, जुलाई, १९९१, अनुभव के स्वर
२ जीवन विज्ञान—मूल्यपरक शिक्षा का अभिनव प्रयोग—प्रष्ठ ५३

शरीर पर प्रभाव

(क) शारीरिक भार पर प्रभाव—शारीरिक भार पर प्रभाव की दृष्टि से निष्कर्ष यह निकला कि शिविर के क्रिया-कलापो का प्रभाव शारीरिक भार घटने की ओर इगित करता है। क्योकि ९६ मे से ५५ अर्थात् ५७ २९% शिविर प्रशिक्षणार्थियो के शरीर-भार मे कमी हुई, यह सकारात्मक प्रभाव के रूप मे अकित किया गया।

(ख) नाड़ी-गति पर प्रभाव—नाडी-गति को सतुलित करने मे शिविर के क्रिया–कलाप सफल रहे।

(ग) श्वास-गति पर प्रभाव—छात्र-छात्राओ की श्वास गति अधिक थी। शिविर मे भाग लेने से उनकी श्वास गति घटी है।

(घ) भूख की क्रिया पर प्रभाव—भूख की क्रिया पर भी शिविर के क्रिया-कलापो का अनुकूल प्रभाव पडा। ६७ ८०% छात्रो-छात्राओ की भूख की स्थिति मे सुधार हुआ। ज्ञानात्मक प्रभाव पडा। ८७ ५% छात्र-छात्राओ के ज्ञान के परिणाम मे वृद्धि हुई।

(ङ) उत्सर्जन क्रिया पर प्रभाव—उपर्युक्त तीन शारीरिक प्रभावो की अपेक्षा उत्सर्जन क्रिया पर अधिक प्रभाव पडा। ७२ ९१% छात्र-छात्राओ की उत्सर्जन क्रिया मे सुधार हुआ।

मानसिक एवं भावात्मक प्रभाव

(क) ७६ ४% छात्र-छात्राओ की आवेग-सवेगो पर नियत्रण की क्षमता बढी है।

(ख) ९० ६२% छात्र–छात्राओ की चित्त की एकाग्रता की स्थिति का विकास हुआ।

(ग) ८२.२९% छात्र-छात्राओ की कार्य करने की रुचि बढी है।

(घ) ७५% छात्र-छात्राओ की स्मरण शक्ति के विकास के लक्षण शिविर के स्मरण शक्ति पर प्रभाव को दर्शाते हैं।

(ङ) शिविर के परिणाम स्वरूप छात्र-छात्राओ का दृष्टिकोण सकारात्मक हुआ है। अधिसख्या अर्थात् ८४ ३७% का निषेधात्मक सोच कम हुआ है।

(च) शिविर के परिणाम स्वरूप छात्र-छात्राओ की भावनाए विधायी हुई हैं। इनकी निषेधात्मकता कम हुई है। ६६ ६६% छात्राओ की भावनाओ का परिष्कार हुआ है।[1]

---

१ जीवन विज्ञान-प्रशिक्षण प्रभाव एव प्रक्रियाए, डॉ डी, एस शर्मा प्र जीवन विज्ञान अकादमी, जैन विश्व भारती, लाडनू

१०. प्रशासन में जीवन विज्ञान

पुलिस विभाग में जीवन विज्ञान

४ मई से १८ मई १९८१ तक पन्द्रह दिवसीय प्रेक्षाध्यान पुलिस प्रशिक्षण शिविर जयपुर, पुलिस अकादमी मे आयोजित किया गया। इस शिविर मे १११ चुने हुए पुलिस जवानो ने भाग लिया। इस अवसर पर तत्कालीन राजस्थान पुलिस अकादमी के विशिष्ट पुलिस महानिरीक्षक श्री डी पी गुप्ता ने स्वागत भाषण करते हुए कहा कि "हमारे प्रधानमत्रीजी ने इस बात पर बल दिया है कि पुलिस मे ऐसे तत्त्व शामिल किए जाए जिससे कि ये अधिक सवेदनशील, सेवा परायण और जन-तंत्रीय पद्धतियो के प्रति जागरूक बन सके। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए हमने इस विशेष प्रशिक्षक प्रशिक्षण शिविर का प्रायोगिक स्तर पर आयोजन किया है। जिसमे मनोवैज्ञानिक तथा शरीर शास्त्रीय सिद्धांतो के साथ-साथ ध्यान और योग के सिद्धातो का आधार लिया जाएगा।

शिविर समापन समारोह के अवसर पर सवाई मानसिंह अस्पताल के उपाचार्य एव फिजीशियन डॉ० खूटेटा तथा मनोचिकित्सक डॉ० शिव गौतम, राजस्थान विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान शास्त्री श्री वी सी जैन तथा पुलिस अकादमी के फिजीशियन डॉ० श्रीवास्तव ने विभिन्न क्षेत्रो मे किए गए प्रयोग एव परिक्षण की प्रारभिक रिपोर्ट के आधार पर बताया कि प्रेक्षाध्यान से शरीर एव मन के स्वास्थ्य एव व्यवहार मे आशातीत परिवर्तन दिखाई देने लगे हैं।

प्रशिक्षणार्थी पुलिस कर्मी श्री सग्रामसिंह वर्मा, श्री हरलाल एस आई., श्री सग्रामसिंह हेड-कासटेबल तथा श्री रमेशचन्द्र कासटेबल ने शिविर के अनुभव बताते हुए कहा कि इस प्रयोग से उनकी एकाग्रता बढी है, नया उत्साह, कर्तव्य के प्रति जागरूकता एव आत्मविश्वास बढा है।

राजस्थान के तात्कालीन पुलिस महानिरीक्षक श्री जी पी सिघवी ने अपने सक्षिप्त वक्तव्य मे कहा कि प्रेक्षाध्यान पद्धति सचमुच बहुत बडी उपलब्धि है तथा इसके लिए एक स्वतत्र अकादमी की स्थापना की सभावनाए बढी हैं।

यदि हम व्यक्तित्व-विकास चाहते है तो अभ्यास के माध्यम से उन चैतन्य केन्द्रो को बदले बिना यह सभव नही है, जहा से व्यक्ति का आचरण, व्यवहार, वृत्तिया एव आदतें नियन्त्रित होती हैं। अत जीवन विज्ञान की जीवन के प्रति प्रत्येक क्षेत्र मे उपयोगिता है। पुलिस के मध्य किया गया यह प्रेक्षाध्यान प्रशिक्षण शिविर इस तथ्य को ध्वनित कर रहा है।

प्रेक्षाध्यान पत्रिका, जुलाई १९८१

प्रशासनिक अधिकारियो को जीवन विज्ञान प्रशिक्षण[1]

नैतिकता प्रशासनिक सेवाओ की रीढ है। उसके अभाव मे प्रशासन की जो स्थिति है उसके परिणाम भोगने को सभी विवश हैं। "व्यवस्था का ढाचा बाहर से बहुत सुन्दर दिखाई देता है, किन्तु जो व्यवस्था का सचालक है वह कुशल, तटस्थ और अपने आवेगो और सवेगो पर सयम रखने वाला हो तभी वास्तविक सुन्दरता दे सकता है, पर प्रश्न यह है कि प्रशासनिक अधिकारियो मे तटस्थ और सयमित व्यक्तित्व निर्माण के लिए कौन सा प्रशिक्षण दिया जा रहा है ?" इसके समाधान मे राजस्थान राज्य से अधिकारियो के आधारभूत पाठ्यक्रम के तात्कालिक निदेशक श्री पुखराज सालेचा ने यह विचार व्यक्त किया कि प्रत्येक अधिकारी को सवेदनशील, समाज के प्रति समर्पित एव तनाव से मुक्त रह कर सही समय पर सही निर्णय लेने वाला कुशल और योग्य अधिकारी होना चाहिए। इसके लिए इस वर्ष प्रशिक्षण के प्रारभ मे ही प्रात प्रेक्षाध्यान के अभ्यास की व्यवस्था की गई।

इस शिविर मे २५-४-९१ से ९-५-९१ तक जीवन विज्ञान और प्रेक्षाध्यान प्रशिक्षण जयपुर मे दिया गया। इसमे विभिन्न प्रशासकीय सेवाओ के प्रशिक्षक जो प्रेक्षाध्यान जीवन-विज्ञान प्रशिक्षण मे शामिल हुए उनकी सख्या इस प्रकार है—राजस्थान प्रशासनिक सेवा-१७, पुलिस सेवा-१३, लेखा सेवा-१२, सहकारिता सेवा-१४, उद्योग सेवा-६, पर्यटन सेवा-१, वाणिज्य कर सेवा-१।

प्रशिक्षण के पश्चात् जो विचार प्रशिक्षणार्थियो ने व्यक्तिश प्रकट किये उनके कुछ दृष्टात इस प्रकार हैं—

डॉ० रामदेव सिंह (पुलिस सेवा) ने लिखा है कि प्रेक्षाध्यान से पूर्व मेरी मानसिक स्थिरता, निर्णय प्रक्रिया, निष्पक्षता एवं शारीरिक क्रियाओ पर नियत्रण कम था। मन चचल था, स्थिर रहना असभव था। प्रेक्षाध्यान से इन सभी पर प्रभाव पडा है।

सुश्री कुमारी ऋतु माथुर (राजस्थान लेखा विभाग) ने लिखा है कि प्रेक्षाध्यान के पश्चात् शाति और आनन्द का अनुभव होता है।

श्री महावीरप्रसाद (राज० प्रशासनिक सेवा) ने अपने विचार प्रकट किये "प्रेंक्षाध्यान से मुझे अभूतपूर्व मानसिक शाति मिली है तथा मनोविकारो मे भी कमी आई है।"

श्री रामबल मीणा (राज० पर्यटन सेवा) लिखते हैं कि प्रेक्षाध्यान से मानसिक स्तर पर उनकी एकाग्रता बढी है।

पाठ्यक्रम निदेशक श्री पुखराज सालेचा ने प्रेक्षाध्यान कार्यक्रम की

---

१. प्रेक्षाध्यान, पत्रिका, अगस्त १९९१, विशेष रपट

एक रिपोर्ट मे अपनी भावना प्रकट की है—"मेरा यह मानना है कि प्रेक्षाध्यान से इन अधिकारियो मे निरपेक्ष भाव से उनके निजी और राजकीय कार्यो को देखने की प्रवृत्ति विकसित हुई है। जिसमे अधिकारी अपना व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और राजकीय जीवन अत्यन्त शात, सौम्य, कर्तव्य-निष्ठा, लगन और कुशलता से सम्पन्न कर पायेगे। इसके परिणामस्वरूप वे राष्ट्र, राज्य और समाज के विकास मे अमूल्य रचनात्मक योगदान प्रदान कर सकेंगे।

११. चिकित्सा में जीवन विज्ञान

प्रेक्षाध्यान स्वय की पहचान की प्रक्रिया है। इसके मूल उद्देश्य हैं—व्यक्ति को समाधिस्थ करना और स्वस्थ बनाना। समाधि की तीन बाधाए हैं—व्याधि, आधि (मानसिक रोग) एवं उपाधि (भावनात्मक रोग)। इन तीनो बाधाओ से मुक्ति समग्र स्वास्थ्य को प्रदान करती है। प्रेक्षाध्यान के द्वारा इन बीमारियो का उपचार भी हो जाता है।

शिविर में वैज्ञानिक परीक्षण[1]

दिनाक १२ से २१ अगस्त १९८४ तक जोधपुर मे दस दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन किया गया। शिविर काल मे होने वाले शारीरिक एव मानसिक परिवर्तन का वैज्ञानिक परीक्षण का लक्ष्य बना। पांच चिकित्सको का एक दल इस कार्य के लिए प्रस्तुत हुआ। जिसमे डॉ० पी.एल. बाफना, डॉ० के.सी. मदानी, डॉ० नरेश भण्डारी, डॉ० आनन्द भीनावत, डा० राजेन्द्र खीवेसरा सम्मिलित थे।

प्रथम दिन ही समस्त शिविरार्थियो—जिसमे ५८ पुरुष एव ४८ महिलाए थी, का शारीरिक परीक्षण किया गया। उनकी शारीरिक, मानसिक समस्याओ को सुना गया। इसका संक्षिप्त ब्यौरा उनके परीक्षण पत्र मे लिख दिये गये। अन्तिम दिन पुन. परीक्षण किये। समस्त टेस्ट रिपीट करवाये गये। रिपोर्ट के निष्कर्ष शारीरिक एवं मानसिक स्थिति मे महत्त्वपूर्ण परिवतन की ओर सकेत करते हैं।

१. अधिकांश लोगो ने मानसिक तनाव एवं उत्तेजना मे कमी होने की अनुभूति की, गुस्से की वृत्ति पर भी सयम रहा।

३. अधिकांश लोगो को पूर्ण अथवा आंशिक रूप से कब्ज निवारण हुआ।

२. अधिकांश वजन वाले लोगो के वजन मे, इन दस दिनो के अन्त तक, २ से ३ किलोग्राम की कमी भी नोट की गई।

---

१. प्रेक्षाध्यान, पत्रिका

४ प्रारम्भ मे अधिकाश शिविरार्थियो के हृदय की गति बढी हुई प्राप्त हुई थी। यह ९० से १२० के बीच थी, पर इन दस दिनो के बाद यह गति ७० से ९० पर आ गई, जो कि स्पष्ट रूप से उनके मानसिक स्थायित्व को अभिव्यक्त कर रही थी।

५ नजला-जुकाम एव अस्थमा के प्रकोप मे भी न्यूनता पाई गई।

६ डायाबिटीज के ३ बीमारो मे से दो की ब्लड-शुगर क्रमश· १९० व १९६ से १२० एव १३० आ गई। जो कि हाई से नोरमल लेवल होने का निश्चित प्रमाण है। तीसरे को महत्त्वपूर्ण फायदा नही हो सका।

७. ब्लड-प्रेशर के बीमारो के परीक्षण से यह तथ्य सामने आया कि अधिकाश लोगो के उच्च रक्तचाप मे सुधार हुआ।

प्रेक्षा चिकित्सा परियोजना[1]

इस चिकित्सा पद्धति के द्वारा होने वाले शारीरिक लाभ की वैज्ञानिक ढग से जाच हेतु एक परियोजना का प्रेक्षाध्यान जीवन विज्ञान केन्द्र, जयपुर मे क्रियान्वयन किया गया। इस परियोजना के चिकित्सीय पक्ष का सचालन एस एम एस मेडिकल कॉलेज जयपुर के तीन प्रमुख चिकित्सक डॉ० डी एस पोखरना, डॉ० शिव गौतम एव डॉ० वीरेन्द्र सिह की देखरेख मे किया गया।

इस परियोजना मे उदर रोग, मानसिक रोग एव श्वास रोग पर वैज्ञानिक अध्ययन किया गया। दो ग्रुप बनाये गये। श्वास रोग के अतिरिक्त दूसरे दो अध्ययनो मे एक ग्रुप को प्रेक्षाध्यान करवाया गया एव दूसरे ग्रुप को दवा दी गई।

ध्यान के ग्रुप वाले २७ मरीजो मे मे ५६ ५% रोगो को विशेष तथा २६% प्रतिशत रोगियो को साधारण लाभ मिला। इसके विपरीत दवाइयों वाले १७ रोगियो के ग्रुप मे १६ प्रतिशत को विशेष एव ३५ ३% को साधारण लाभ हुआ। प्रेक्षाध्यान वाले रोगियो को कोई साइड एफेक्ट नही हुए जबकि दवाइयो वाले ३० प्रतिशत मरीजो मे दवाइयो के कई हानिकारक असर हुए, मानसिक रोगी वैसे ही रहे। प्रेक्षा ध्यान के प्रयोग से मानसिक विक्षेपो मे कमी आई। तनाव कम हुआ, मानसिक शाति का अहसास हुआ। अनिद्रा की स्थिति दूर हो गई।

मानसिक रोगो पर प्रेक्षा ध्यान की प्रभावशीलता के आकलन हेतु २५ ऐसे रोगियो पर इसका अध्ययन किया जा सका जो मानसिक तनाव, चिंता, विक्षिप्तता एवं अवसाद से ग्रस्त थे। २५ मे से १८ रोगियो ने प्रेक्षा

१ प्रेक्षाध्यान, पत्रिका, मार्च १९९२

ध्यान के प्रति सकारात्मक मनोवृत्ति दर्शाई। ५ रोगी अनिश्चित थे तथा २ का मत था कि इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं था। लगभग ७५ फीसदी रोगियो को दुश्चिता, अवसाद एवं मानसिक तनावो से उल्लेखनीय राहत मिली।

श्वास रोगियो पर प्रेक्षा ध्यान का प्रभाव जानने हेतु डबल ब्लाइंड पद्धति के अनुसार अध्ययन दो ग्रुपो मे किया गया। एक असली ध्यान का ग्रुप और दूसरा नकली ध्यान का। कुल २० रोगियो मे से १० को असली प्रेक्षा ध्यान से लाभ हुआ। और शेष को नकली प्रेक्षा ध्यान से। दिमागी चिंता से सभी को राहत मिली।

अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान (AIIMS), नई दिल्ली के साथ प्रेक्षाध्यान चिकित्सा परीक्षण

अक्तूबर १९९२ मे श्वास रोग पर प्रेक्षा ध्यान के परीक्षण का सप्त-दिवसीय शिविर का आयोजन किया गया।[1] इसमे दमा ग्रस्त (Bronchial asthama) ९ रोगियो ने भाग लिया। सात ने पूरा किया। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान दिल्ली के डॉ० विमल छाजेड़ ने वैज्ञानिक परीक्षण किये। शिविर समापन तक ६ रोगियो की दवाई पूरी तरह छूट गई। ९६ प्रतिशत दवाई लेने मे कमी आई। ५५ प्रतिशत छाती का विस्तार बढा। अस्थमा के लक्षण विलीन हो गये। सभी रोगी बीमारी की पहली कोटि मे आ गये।

इन प्रयोगो से यह परिणाम निकलता है कि प्रेक्षाध्यान अनेक व्याधियो की चिकित्सा मे अच्छी और सस्ती चिकित्सा सिद्ध हो सकती है।

चिकित्सको का व्यक्तिगत अनुभव

रोगो की चिकित्सा मे जीवन विज्ञान की बहुत सभावनाए सामने खड़ी हैं। चिकित्सको के व्यक्तिगत जीवन एव व्यावसायिक जीवन में भी प्रेक्षा ध्यान बहुत सहायक सिद्ध हुआ है।

राजनांदगाव मे दिनांक १४ से २३ अक्तूबर १९९२ तक २१ चिकित्सको का दस दिवसीय शिविर का आयोजन किया गया।[2] अनेक डॉ० विभिन्न शिविर मे आते रहे हैं। उनके अनुभव जीवन विज्ञान की उपयोगिता को उजागर करते हैं।

"मैंने १० दिन के प्रेक्षा ध्यान से ऐसा अनुभव किया है कि इससे मानसिक शाति, एकाग्रता मे उल्लेखनीय वृद्धि हुई। दिन भर के उत्साह, स्फूर्ति, काम की क्षमता मे वृद्धि हुई। विचार व वृत्तिया परिष्कृत होने लगी।

१. प्रेक्षा ध्यान पत्रिका सितम्बर-अक्तूबर १९९४
२. " " दिसम्बर १९९२

इससे स्वाभाविक ही आत्म-विश्वास मे वृद्धि हुई।"

डॉ० नरेन्द्र गांधी
एम.बी.बी.एस. डी सी.एच.
जन-प्रेक्टिशनर एव शिशु स्वास्थ्य विशेषज्ञ

"प्रेक्षाध्यान की साधना की उपलब्धिया—शारीरिक एव मानसिक दोनो ही रूपो मे मिली। ध्यान के पूर्व आसन एव यौगिक क्रियाओ से शरीर के लचीलेपन की शुरूआत हुई है। प्रत्यक्ष लाभ मेरे कमर दर्द मे हुआ है। स्फूर्ति बढी है। पाच घटे की नीद के बाद भी सुबह का आलस्य नही है। दूसरा महत्त्वपूर्ण अनुभव है मेरे ब्लड-प्रेशर का। पहले दिन भर की चर्चा के बाद जब कभी भी सिरदर्द या भारीपन लगता था तब नापने पर मेरा ब्लड-प्रेशर १४०/९०-९४ तक आता था—सामान्य की (upper limit) मे। पिछले दो दिनो से मेरा ब्यड-प्रेशर दिन भर के क्रिया-कलापो के बाद (कल जबकि दिनभर बिजली बद रही, गैस बत्ती मे लगभग मुझे १० घण्टे काम करना पडा) मेरा ब्लड-प्रेशर १२०/८० था।

शरीर से अधिक प्रभाव मन पर हुआ है। पिछले कुछ महीनो से अपने कार्य मे एकरसता आने लगी थी। पिछले दिनो मे इस एकरसता का तारतम्य टूटा है। अपने क्रिया-कलापो मे, व्यवसाय मे एकाग्रता बढ़ी है। चिडचिडापन कम हुआ है। स्वभाव मे हल्की-सी मृदुता का आभास मुझे स्वय लगने लगा है। अपनी भावनाओ पर नियत्रण—मैं श्वास प्रेक्षा के द्वारा कर सकूगा। इस दिशा मे परिवर्तन का क्रम मैंने महसूस किया है। मन का सतुलन बढने लगा है। विपरीत परिस्थितियो मे होने वाली उत्तेजना कम हुई है।"

—डॉ० उत्तम कोठारी
एम डी. (चाइल्ड हेल्थ) एफ.आई.सी पी. (एस डब्ल्यू)

चिकित्सा व्यवसाय में जीवन विज्ञान

प्रेक्षा ध्यान का चिकित्सा मे प्रभावकता को देखते हुए कुछ साहसी चिकित्सको ने व्यावसायिक चिकित्सा पद्धति के रूप मे इसका सफल प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया है। डॉ० विमल छाजेड ने (AIIMS) की प्रतिष्ठित व्याख्याता पोस्ट को छोडकर "प्रेक्षा ध्यान से चिकित्सा" को अपना व्यावसायिक जीवन-क्षेत्र बना लिया है।

प्रेक्षाध्यान का चिकित्सा मे प्रयोग के लिए बम्बई मे "अर्हम् क्लीनिक" का उद्घाटन किया गया। इस क्लीनिक मे उच्च रक्त चाप, हृदय रोग सहित सभी प्रकार के रोगो का इलाज, यौगिक क्रिया, ध्यान, कायोत्सर्ग, अनुप्रेक्षा, प्राण चिकित्सा, लेश्या ध्यान, एक्युप्रेशर की विधि से किया जाता

है। आवश्यकतानुसार होमियोपैथिक एवं आयुर्वेदिक औषधियो का प्रयोग भी किया जाता है। इस चिकित्सा केन्द्र मे डॉ० अश्विनी मेहता, डॉ० शांति-लाल वोहरा, श्री चादमल वोहरा (रिटायर्ड जज) का सहयोग प्राप्त हो रहा है।[1]

१२. समाजिक जीवन में जीवन विज्ञान

समाज मे अमन-चैन रहे, शांति रहे, निश्चिन्तता रहे, सुरक्षा रहे, सभी चाहते हैं पर हो कैसे ? यह प्रश्न है।

समाज शास्त्री, राजनेता एवं प्रशासको ने व्यवस्था पक्ष पर ध्यान दिया। दूसरी और अध्यात्म पुरूषो ने व्यक्ति के आन्तरिक पक्ष पर ध्यान दिया। व्यक्ति मे मूल्यो का विकास होता है। आत्मानुशासन का विकास होता है। तव प्रशासन के लिए शासन व अनुशासन को बनाये रखना आसान हो जाता है। केवल दण्ड का भय आनन्द को छीन लेता है, आराजकता व प्रतिक्रिया को जन्म देता है। अहिंसा, नि स्वार्थ भावना, कर्त्तव्य-परायणता, दायित्व-बोध एवं प्रामाणिकता जैसे मूल्यो के विकास से ही अत्मानुशासन सभव है। अत. प्रत्येक व्यक्ति मे प्रत्येक वर्ग मे, प्रत्येक समुदाय मे, प्रत्येक व्यावसायिक क्षेत्र मे गिरते हुए मूल्यो को थामना होगा। मूल्यो का विकास करना होगा। तभी समाज मे अमन-चैन के वातावरण का निर्माण हो सकता है। अणुव्रत एवं प्रेक्षाध्यान समाज मे इन मूल्यो को लाने मे अहम् भूमिका निभा रहे हैं।

प्रेक्षाध्यान, समाज मे शिविरो के माध्यम से व्यक्ति-व्यक्ति मे इन मूल्यो की स्थापना मे गतिशील है। इसके शिविर एक ओर सामान्य लोगो मे लगे हैं तो दूसरी ओर विशिष्ट वर्ग/समुदाय के लोगो के कल्याण के लिए भी लगे हैं। प्रज्ञाचक्षु एवं विकलाग समुदाय मे शिविर लगे, जेलो मे वद अपराधी समुदाय में भी शिविर लगे, व्यसन-ग्रस्त व्यक्तियो के वर्ग मे शिविर लगे। शिविरार्थियो के व्यक्तिगत अनुभव उनके जीवन मे मूल्यो के विकास को दर्शाते हैं। समय-समय पर अनेक राजनीतिज्ञो ने भी इसकी उपयोगिता को उजागर किया है।

विकलांग समुदाय में जीवन-विज्ञान

आखें बंद करते ही व्यक्ति के सामने से जगत् अदृश्य हो जाता है। बड़ा अजीव लगता है। अंधकार अपने आप मे सबको समेट लेता है। यह तो स्वल्प-काल की घटना है किन्तु जिन लोगों को जीवन भर आंखो के विना जीना होता है। उनकी क्या स्थिति होती है। उनकी कठिनाइयो का अहसास

१. प्रेक्षाध्यान, पत्रिका, मार्च-१९९५

सामान्य व्यक्ति नही कर सकता। वे भी सामान्य मनुष्य की तरह उदासी, कुठा, हीन भावना, काम भावना, व्यसन और गुस्से से पीडित पाये जाते हैं। वहा कुछ पढे-लिखे अहकार से भी भीगे होते है।

राजस्थान नेत्रहीन सघ, जयपुर एव तुलसी अध्यात्म नीडम के सयुक्त तत्त्वावधान मे दिनाक १२ अप्रैल से १८ अप्रैल, १९८१ को प्रेक्षाध्यान शिविर लगा। ३५ नेत्रहीन एव विकलागो के जीवन-निर्माण, प्रज्ञाचक्षु के जागरण, आत्म-विश्वास के सवर्धन की दिशा मे जीवन-विज्ञान और प्रेक्षाध्यान ने एक नया आयाम उद्घाटित किया। उनके व्यक्तिनिष्ठ अनुभव इसकी ओर इगित करते हैं।

मैं काम भावना से तनावग्रस्त रहता था इससे परेशानी थी। इस पर काबू पाया है, सुख-दु ख की इससे अब कोई अनुभूति नही होती। ध्यान की गहराइयो मे तो नही पहुच पाया किन्तु आसन मुझे उपयुक्त लगे। सास लेने की प्रक्रिया एव पाचन के ज्ञान से बहुत व्यावहारिक जानकारी मिली। ऐसे शिविर समय-समय पर लगते रहने चाहिए। मैं अभ्यास नित्य करूगा।

—श्री जितेन्द्र भार्गव

शिविर अच्छा लगा। बीडी-सिगरेट पीना छोड दिया। पुन इस प्रकार के शिविर मे भाग लेना चाहता हू। स्वास्थ्य लाभ हुआ। धनुरासन विशेष अच्छा लगा।

—श्री रतनलाल कोठारी

मैं सिगरेट पीता था वह छूट गई। श्वास लेने का अनुभव हुआ। चित्त को जहा चाहे वहा ले जा सकता हू। पहले पेट दर्द होता था वह लम्बा श्वास लेने से ठीक हुआ। सवेरे की चाय छूट गई। श्वास का अभ्यास करूगा। खाने के समय का मत्र सीखा हू। गुस्सा आता था। पहले दिल मे जो बाते आती थी वह नही आती। अब जीवन सुधारूगा।

—श्री रामगोपाल

उदास एव चिन्तित रहता था। बहुत दु खी रहता था। कोई कुछ कहे तो गुस्सा बहुत आता था। दीर्घ श्वास से ठीक हुआ। पेट भी ठीक हुआ। आलस कम हुआ। आसन व प्रेक्षा ध्यान नित्य करूगा।

—श्री श्याम सुन्दर

केन्द्रीय कारागृह में जीवन विज्ञान[1]

कारागृह मे बद कैदी भी मनुष्य है। सामाजिक मूल्यो के अतिक्रमण एव अपराध के दोषी पहचान लिये जाने पर वहा पहुच जाते हैं। अमानवीय,

१ "प्रेक्षाध्यान"—अध्यात्म योग मासिक पत्रिका, मार्च १९९५

विकृत व्यवहार की चिकित्सा क्या हो सकती है? केन्द्रीय कारागृह मे प्रेक्षा-ध्यान जीवन विज्ञान के प्रयोग करवाये गए ।

इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ करैक्शन्स एण्ड जुवेनाइल मैंनेजमेन्ट के तत्वावधान मे दिनांक १९ दिसम्बर से ४ जनवरी तक सतरह दिवसीय प्रेक्षा-ध्यान शिविर जयपुर के "सेन्ट्रल जेल" मे आयोजित किया गया। प्रारम्भ मे शिविर दस दिनो का था। परन्तु कैदियो की भारी मांग को देखते हुए इसे एक सप्ताह और बढ़ाया गया। शिविर मे एक सौ एक आजीवन कैदी शिविरार्थी थे।

आसन-प्राणायाम, ध्यान, कायोत्सर्ग आदि को कैदी बडे मनोयोग-पूर्वक करते थे। कायोत्सर्ग के साथ अनुप्रेक्षा ने कैदियो की मानसिकता मे अभूतपूर्व परिवर्तन ला दिया। अनेक व्यक्तियो को शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एव व्यावहारिक लाभ हुआ। अनेको ने धूम्रपान का भी परित्याग किया। शान्ति की अनुभूति, बुरे विचारो से मुक्ति, मैत्री भाव मे वृद्धि, हीन भावना मे कमी, आत्मविश्वास में वृद्धि, क्रोध मे कमी, तनावों से मुक्ति, अच्छा जीवन जीने का सकल्प, भाईचारे की भावना, अपराध भावना मे कमी इत्यादि लाभो की प्राप्ति का पता उनके लिखित व्यक्तिगत अनुभवों से लगता है। निश्चित ही यह जीवन विज्ञान की व्यापक उपयोगिता की ओर संकेत करते हैं तथा वैज्ञानिक अनुसंधान एव परीक्षण की पृष्ठभूमि तैयार कर रहे हैं।।

व्यक्तिगत अनुभव

० मेरे मन को शाति मिली है। पहले की तरह गलत विचार अब नही आते हैं। मेरे दुश्मन के साथ भी मैं मित्रता का व्यवहार रखूगा। सबके साथ मीठी वाणी बोलने की भावना हो गई है।

—चेतराम

० महाप्राण ध्वनि से सिर के आन्तरिक विकार जैसे—सिर मे दर्द होना, रात मे स्वप्न आना समाप्त हो गए हैं। प्रेक्षाध्यान के प्रयोगो से मन एकाग्र हुआ है। कमर दर्द, पैरो के जोडो मे दर्द, कन्धो के दर्द, पेट के विकारो से छुटकारा मिला है।

—महेश

० कभी-कभी किसी के प्रति जो हीन भावनाए आती थी, वे अब नही हैं। आत्म-विश्वास मे वृद्धि हुई है। नीद भी अच्छी आने लगी है।

—यादवेन्द्र

० मेरी रीढ़ की हड्डी का दर्द ठीक हुआ है। अब मुझे पहले की तरह

क्रोध नही आता। मैंने सकल्प लिया है कि मै किसी भी गलत रास्ते पर नही चलूगा।

—रमेश

० चित्त शुद्धि से मेरे मन को बहुत शाति मिलती है। मैं जीवन मे कभी गलत कार्य नही करूगा। मैं प्रतिज्ञा करता हू कि कभी किसी प्रकार का नशा नही करूगा।

—खिलाड़ी

० मैं धारा ३०२ के अन्तर्गत केन्द्रीय कारागृह जयपुर मे सजा भुगत रहा हू। शिविर मे मैंने बहुत कुछ अनुभव किया। महाप्राण ध्वनि से शाति मिलती है। शारीरिक व मानसिक तनावो से मुक्त हुआ हू। अब मन मे बूरे विचार नही आते हैं। ध्यान करने से पहले की तरह गुस्सा नही आता है। मैं आगे भी ध्यान करता रहूगा।

—अरविंद

० इस शिविर से प्राप्त लाभो का हम उपयोग करेंगे। यहा से बाहर निकलने पर हम भाईचारे की भावना रखेंगे। प्रेक्षाध्यान से हमे बहुत शाति मिली है।

—मोहन

० पहले मेरे दिल मे गदे विचार आते थे। जब से प्रेक्षाध्यान शिविर जेल मे लगा है—गदे विचार आने बद हो गए हैं। अब मन इधर-उधर नही भागता है। पहले जो अपराध करने की भावना थी, वह अब नही रही। दिल मे भाईचारा व मित्रता की भावना पैदा हो गई है अब मैं कभी अपराध नही करूगा, भगवान मुझे माफ करे।

—राम अवतार (आजीवन कारावास)

व्यसन मुक्ति हेतु जीवन-विज्ञान[1]—

व्यसन व्यक्ति के आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक, मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। एक बार आदत पड जाने पर उनसे मुक्त होना आसान नही होता। प्रेक्षाध्यान व्यसन-मुक्ति की दिशा मे बढ रहे व्यक्तियो के लिए बहुत सहायक साबित हुआ है।

३० १०. ८७ से ४ ११ ८७ तक अहमदाबाद मे व्यसन मुक्ति

---

1 "Economics Review"—Ahm dabad, 7 12 1987 "De-addiction Camp"
"The times of India, Ahmedabab" Dt 5 12. 87 "Preksha Dhyan Sibir"

प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन किया गया। इसमे अनेक शिविरार्थी लाभान्वित हुए। यह परिणाम भविष्य मे व्यापक अनुसन्धान व प्रयोग को प्रोत्साहित करते हैं। परिणाम निम्न प्रकार से है—

० धूम्रपान की कई वर्षों की आदत को छोड़ा।

—श्री चंपकमल बामड़ होटलवाले

० कम्पोज की साठ गोलियो का प्रयोग करनेवाली श्री गीता बेन को इसके प्रयोग के बिना नीद आना प्रारम्भ हुआ।

० सुश्री गीता सोलह वर्ष की छात्रा ने तम्बाकू सूघने की आदत से छुटकारा पाया।

० श्री शोभाराम दर्जी को बीस साल पुरानी मद्यपान की आदत छूटी।

० श्री दिनेश गाधी व्यापारी आशिक समय के लिए ही आए किन्तु चरस प्रयोग की आदत मे आंशिक सुधार हुआ।

जीवन विज्ञान राजनेताओं की दृष्टि में—

"भारत की सस्कृति विश्व मे सर्वश्रेष्ठ रही है। कुछ विकृतियां इसमे पाश्चात्य अनुकरण से आ रही हैं। ऐसे मे सस्कृति की सुरक्षा जीवन विज्ञान जैसे कार्यक्रम से ही हो सकती है। यह विश्व का अद्वितीय एवं श्रेष्ठ कार्यक्रम है। जीवन मूल्यो की पहचान और रक्षा का यह कार्यक्रम ही भारत की उस क्षति की सुरक्षा कर सकता है।"

—साहिब सिह वर्मा
तत्कालीन शिक्षा मंत्री, दिल्ली

"वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे मुझे आचार्य तुलसी द्वारा प्रतिपादित जीवन विज्ञान का विचार अधिक प्रभावी और सार्थक प्रतीत हो रहा है, क्योकि जीवन विज्ञान की अवधारणा मूल्यपरक शिक्षा के सैद्धान्तिक आधार का प्रायोगिक स्वरूप है।"

—हरि कुमार औचित्य,
तत्कालीन शिक्षा मंत्री, राजस्थान सरकार, जयपुर

प्रेक्षा—एक असाम्प्रदायिक ध्यान पद्धति

"मैंने सरदारशहर मे आचार्य तुलसी के शिष्यो के साथ जैन-दर्शन और ध्यान का अध्ययन करते हुए लगभग १० दिन बिताए हैं ये दिन अध्यात्म की दृष्टि से बडे लाभदायक रहे हैं। सन्तजन मुझे अपने सिद्धान्तों और आचरणों को समझाने मे अपने समय और शक्ति के साथ अत्यधिक उदार रहे हैं। उन्होने अपने लिए किसी प्रतिफल की आकाक्षा नहीं की है। वे साम्प्रदायिक

पूर्वाग्रहो से प्रेरित नही हुए थे, बल्कि उन्होने यह स्वीकार किया कि मै जैन नही हू और न उन्होने मुझ पर धर्म-परिवर्तन के लिए ही दबाव डाला। उनकी कृपा एक साथी मानव के प्रति उनकी सहानुभूति की अभिव्यजना थी, यह उनको विशुद्ध अध्यात्मिक एव नि स्वार्थ अनुकम्पा थी।"

अब्दु-अल्लाह मुस्ताफा
फ्लोरिडा (अमरीका)

१३. उद्योग में जीवन विज्ञान

औद्योगिक सस्था मे प्रबन्धक की विशिष्ट भूमिका होती है। सम्पूर्ण सचालन का दायित्व, सतुलित व्यक्तित्व-विकास, निर्णय कौशल आदि गुण प्रबन्धक की विशिष्टता होती है। प्रबन्धको के निर्णय की क्षमता का विकास, तनाव-मुक्ति या विसर्जन, आन्तरिक क्षमताओ से परिचय, चिन्ता-निवारण, आत्म-विश्वास, उच्च लक्ष्यो की प्राप्ति आदि मे जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान सहायक सिद्ध हुआ है। उनके अनुभवो से उपरोक्त तथ्य सामने आए हैं। ये तथ्य व्यापक उपयोग तथा अनुसधान की सभावनाओ को उजागर करते हैं।

आज हम तनाव के युग मे जी रहे हैं। यह तनाव कार्य की अधिकता, भोग-प्रधान जीवन शैली और तीव्र शहरी जीवन का परिणाम है। आज के इस व्यस्त जीवन मे तनाव एव चिन्ता जीवन के अग बन गए हैं। यद्यपि कार्य-निष्पादन के लिए कुछ तनाव आवश्यक है। तनाव सहिष्णुता की सीमा से अधिक होने पर कार्य मे बाधक बन जाता है। अत अपनी सक्षमता बढाने एव स्वस्थ जीवन के लिए कार्य-दबाव का प्रबन्धन व तनाव-विसर्जन अत्यन्त आवश्यक है। तनाव के दुष्परिणामो से बचने के लिए प्रेक्षाध्यान एक कारगर व सक्षम उपाय प्रमाणित हुआ है।

उद्योग मे जीवन-विज्ञान और प्रेक्षाध्यान के समय-समय पर कार्यक्रम आयोजित होते हैं। उनके व्यक्तिगत अनुभवो को एकत्र किया जाता है। एक कार्यक्रम की रिपोर्ट इस प्रकार है—

"हरडिल्ला केमिकल्स लिमिटेड" बोम्बे २७ अगस्त ९२ को एक दिवसीय कार्यक्रम—'Stress management" के नाम से श्री अरुण भाई झवेरी द्वारा आयोजित किया गया यह कार्यक्रम प्रातः ९.०० से साय ५.०० तक चला। कम्पनी के २४ उच्च अधिकारियो ने भाग लिया। जिनके कुछ अनुभव इस प्रकार है।

Programme on stress managment at Herbillia Chemicals limited on 27-8-1992.

Twenty-for senior executives participated at Herdillia Club/conference Hall. All of them were Senior Managers

and highly educated. They were generally very much satisfied and demanded for further programmes.

Some of the experiences written by the Participants :

"The progarmme was very good as it explained the stress management and relaxation in most scientific and logical way."

P. N. Palit: B. SC Plant Manager

"The Programme of stress management opened up a new horizon in management education."

N. V. Solanki. B. E (Mechanical) DMS. DY. Chief engineer (Planing)

"The programme was very useful. It was very well conducted."

S. S. PADTE: B. Tech. Chem. Engg. Mamager Process Engg.

"Simple and easy to follow and practice Interesting "

R. S. NILESHWAR, B. TECH. (Hons) Chem. Engg. General Manager Works.

"It was good programme and changed one than the routine programme"

V. R. MIRANI, B. SC. (Member of American Institute of Chem. Engg.) Production Manager

"I carry good impressive about the programme The awareness methods and relaxation techniques are useful to us for improving our effectiveness "

U. B. LAL, BSC (elect, Engg Dy Chief Engineer) (Electrical)

"Useful and relevent theme" ably demonstrated"

P B KALANTRI, B Tech M Chem Engg Manager Process Engineer.

१४. सारांश (Summary)

१ भारतीय संस्कृति की निरन्तरता का आधार इस सस्कृति मे निहित शाश्वत मूल्य है—अध्यात्म, अहिंसा, सहिष्णुता, सामजस्य आदि ।

२ यह काल सस्कृति के सक्रमण का काल है। वर्तमान सास्कृतिक सकट का कारण विभिन्न अन्तर्विरोधी मूल्यो मे सामजस्य का अभाव है। सास्कृतिक सकट का उपचार, नैतिक चेतना, आध्यात्मिक चेतना, आत्मानुशासन की चेतना, दायित्व एव कर्त्तव्य की चेतना, सहयोग की

चेतना और सहानुभूति की चेतना को जगाने मे है।

३ सस्कृति का स्वस्थ स्वरूप श्रेष्ठ जनो के त्याग एव बलिदान से बनता है।

४ सस्कृति के स्थायित्व का आधार है—उसका आध्यात्मिक प्रयास। अध्यात्म और योग भारतीय सस्कृति की प्रधान विशेषताए हैं। इसमे विज्ञान और धर्म का सयोग है जो आज के विश्व की गभीरतम समस्याओ के समाधान मे सक्षम है।

५ सास्कृतिक स्तर का अकन अहिंसा की चेतना के विकास से होता है। प्राकृत प्राणी हिंसा-अहिंसा का भेद नही कर सकता। पर सस्कृत मनुष्य के लिए भेद-बोध एव अहिंसा का आचरण ही उसका मनुष्यत्व है।

६ सस्कृति के सार तत्त्वो को बचपन मे ही सिखाना आवश्यक है। इनका सैद्धातिक एव प्रायोगिक अभ्यास के प्रशिक्षण का एक उपक्रम है—जीवन विज्ञान।

७ जीवन विज्ञान की उपयोगिता जीवन के अनेक क्षेत्रो मे उभरकर सामने आई है। सर्वांगीण व्यक्तित्व निर्माण, शिक्षा मे मूल्यो का विकास, प्रशासन मे कर्तव्य-बोध एव कर्तव्य परायणता का विकास, चिकित्सा मे समग्र स्वास्थ्य, स्वस्थ समाज के निर्माण मे अपराधियो के व्यवहार-परिष्कार, एव व्यसन मुक्ति तथा उद्योग मे तनाव मुक्त रहकर आतरिक शक्तियो के विकास मे जीवन विज्ञान-प्रेक्षाध्यान ने व्यापक उपयोगिता को प्रकट किया है।

१.१५ सहायक सामग्री (Reference)

१. संस्कृति विज्ञान की रूपरेखा—लेखक : डॉ हरद्वारीलाल शर्मा, प्रथम सस्करण, १९९२। प्रका मानसी प्रकाशन, ३२, कैलाशपुरी, मेरठ।

२. हमारी संस्कृति—लेखक डॉ राधाकृष्णन्, प्रथम सस्करण, १९८९। प्र. हिन्द पॉकेट बुक्स, जी टी रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२।

३. भारतीय संस्कृति का विकास—लेखक एम एम चाद, प्रथम सस्करण १९९२। प्रका प्रिन्टवेल, रूपाबुक्स प्रा. लिमिटेट, जयपुर।

१.१६ अभ्यास के लिए प्रश्न (Questions)

१ भारतीय सस्कृति की निरन्तरता का हेतु क्या है ?

२ सास्कृतिक सकट क्यो उत्पन्न होता है ?

३ सास्कृतिक सकट का उपचार क्या है ?

४. सस्कृति को स्वस्थ स्वरूप किस प्रकार प्रदान किया जा सकता है ?

५. संस्कृति के स्थायित्व का आधार क्या है ?

६. अध्यात्म और योग साधना से सस्कृति का उत्थान कैसे हो सकता है ? समझाइये ।
७ सस्कृति के विकास का अकन अहिंसा से होता है । कैसे ?
८ सास्कृतिक विकास मे शिक्षा की क्या भूमिका अपेक्षित है ? प्रकाश डालें ।
९. जीवन विज्ञान की उपयोगिता का विश्लेषण करें ।
१० व्यक्तित्व-विकास मे जीवन विज्ञान के महत्त्व को समझाइये ।
११. मानसिक एव शारीरिक स्वास्थ्य के लिए जीवन विज्ञान का अध्ययन क्यो आवश्यक है ? इसकी विस्तार मे समीक्षा कीजिये ।
१२ जीवन विज्ञान के विषय मे आप क्या जानते हैं ? विस्तार में समझाइये ।

अणुव्रत जहा चरित्र-निर्माण के द्वारा वास्तविक अर्थ मे राष्ट्र-निर्माण का कार्य हैं, वहा वह मानव-समाज के सार्वभौम उत्थान और सस्कार का महायज्ञ है । भारत का तो यही नारा रहा कि सबको, समस्त विश्व को, शुद्ध सस्कार देकर सस्कृत अथवा आर्यकोटि मे ले आया जाए । अणुव्रत देश, जाति, वर्ण और पथ निरपेक्ष शुद्ध सत्य-धर्म हैं । मैं इसकी सफलता चाहता हू ।

—मौलिचन्द शर्मा

राष्ट्र का निर्माण करने के लिए नैतिक और आध्यात्मिक पृष्ठभूमि की सदैव आवश्यकता रहती है । और 'अणुव्रत आन्दोलन' एक प्रकार से देश के नैतिक उत्थान का आन्दोलन है । जो आन्दोलन वर्तमान युग की चुनौती का सामना नही कर सकता वह चल नही सकता, यह आन्दोलन वर्तमान युग की चुनौती का उत्तर देता है । वह केवल भौतिक विचारो का परित्याग करने और नैतिक एव आध्यात्मिक उत्थान के लिए काम करने का आह्वान करता है ।

—जय सुखलाल हाथी

२.१.४ अध्यापक प्रशिक्षक प्रशिक्षण शिविर

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी के सम्मुख मुनिश्री किशनलाल जी ने अध्यापक प्रशिक्षक प्रशिक्षण शिविर की योजना प्रस्तुत की। आचार्य श्री ने मुस्कराकर कहा—"तुम कल्पना तो लाये हो, उसकी क्रियान्विति कैसे होगी ? सरकारी तन्त्र के अधीन कार्यरत अध्यापक प्रशिक्षण क्यो और कैसे लेगा ? उनके विभाग एव अध्यापको को कैसे आकृष्ट किया जा सकेगा ?"

सरदारशहर चातुर्मास प्रवास (संवत् २०३३) मे अध्यापको से सम्पर्क किया गया। अध्यात्म योग एव नैतिक शिक्षा की योजना पर विस्तार से चर्चा हुई। अध्यापको के प्राथमिक प्रयोग एव परिणाम से लगा कि यह कार्य राज्य स्तर पर चलाकर फिर राष्ट्रीय स्तर पर चलाया जाये तो अच्छा परिणाम आ सकता है।

राजस्थान के विभिन्न जिला शिक्षा अधिकारी, नागौर क्षेत्र के अनेक प्रधानाध्यापक एव अध्यापको की एक सगोष्ठी जैन विश्व भारती मे आयोजित हुई। जिसमे अध्यात्म-योग-नैतिक शिक्षा पर विचार-विमर्श हुआ। शिक्षा अधिकारियो एव शिक्षको ने इस योजना की भूरि-भूरि प्रशसा की। तत्कालीन शिक्षा उपनिदेशक श्री गुडलिया जी ने तुलसी अध्यात्म नीडम् मे एक प्रायोगिक शिविर की अनुमति दी। जिला शिक्षा अधिकारी, नागौर श्री सीताराम दाधीच ने आचार्य प्रवर से निवेदन किया कि इसका प्रथम प्रयोग नागौर क्षेत्र के शिक्षको पर होना चाहिए। अध्यापक शिविर का प्रयोग सफल ही नही, अपितु एक नवीन आशा के साथ सम्पन्न हुआ।

२.१.५ जीवन-विज्ञान : एक सार्थक शब्द (Jeevan Vigyan : Appropriate Name)

इस प्रकार अनेक शिविर आयोजित हुए। सैकडो शिक्षको ने प्रशिक्षण लिया। विद्यालयो मे कार्य प्रारम्भ हुआ। बच्चो के साथ-साथ अनेक शिक्षको के जीवन मे भी परिवर्तन घटित हुए। कार्यक्रम आगे बढा। इस प्रशिक्षण एव प्रायोगिक प्रक्रिया के नाम पर चिंतन चला। नाम क्या हो ? इस प्रशिक्षण को शिक्षा जगत् मे किस नाम से प्रस्तुत किया जाये ? इन जीवन मूल्यो को शिक्षा मे कैसे लाया जाये ? निष्कर्ष के रूप मे जिसमे अणुव्रत के रूप मे नैतिक जीवन का आदर्श हो एव जीवन मे क्रियान्विति के लिए प्रेक्षाध्यान के प्रयोग हो।

नाम की चर्चा मे अनेक नाम सामने आये—योग शिक्षा, नैतिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा, मूल्यपरक शिक्षा आदि। अनेक दृष्टियो से विचार हुआ—

योग शिक्षा—अनेक शिक्षा आयोगो का अभिमत रहा कि योग शिक्षा

को शिक्षा के साथ जोडना चाहिए। इसकी अपनी सीमाए हैं। आज योग का अर्थ केवल आसन-प्राणायाम तक ही सीमित कर दिया गया है अतः इससे समग्र विकास की परिकल्पना नही की जा सकती। समस्या यह है कि समग्र विकास कैसे हो ?

नैतिक शिक्षा—"नैतिक" शब्द अपने आप मे स्पष्ट नही है। अनेक भ्रातियां उत्पन्न होती हैं। इसकी प्रक्रिया उपदेशात्मक है। उपदेश का प्रभाव व्यापक एव स्थायी नही रहता। स्थायित्व के लिए प्रयोग एव अभ्यास आवश्यक है।

स्वास्थ्य शिक्षा—इसका भी क्षेत्र सीमित है। यह भी शारीरिक स्वास्थ्य तक ही रह जाता है। इससे समाज के विकास की कल्पना नही की जा सकती है।

मूल्यपरक शिक्षा—नई शिक्षा प्रणाली ने मूल्यपरक शिक्षा का स्वर मुखर किया है। यह नैतिक शिक्षा का नवीनीकरण है। केन्द्रीय सरकार इस पर कार्य कर रही है। किन्तु अभी तक इसका कोई स्वरूप निर्धारित नही हो पाया है।

जीवन विज्ञान—आचार्यश्री महाप्रज्ञ नये शब्द की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए कहते है—"जीवन विकास के लिए नए शब्द की आवश्यकता हुई जो धर्म की मूल भावनाओ को स्पर्श करने वाला हो। जीवन मे धर्म का विकास, नैतिकता का विकास, अध्यात्म का विकास करने वाला हो। ये शब्द आज विवाद के विषय बन गए हैं। इसलिए नया शब्द ढूढना चाहिए जो आज के मानस को स्पर्श कर सके। पर कोई प्रतिक्रिया पैदा न करे। इन दृष्टियो से सोचने पर एक नया नाम जचा और वह है—जीवन विज्ञान। इसकी प्रक्रिया का किसी धर्म विशेष से सम्बन्ध नही है। इसका सबध है जीवन से। यह नाम समग्र मानव जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। व्यापक है, असाम्प्रदायिक है। यह नैतिक शिक्षा, योग शिक्षा सबको समाहित करता है।

जीवन विज्ञान का नामकरण (Naming of Jeevan Vigyan)

शिक्षण सस्थाओ की शरदकालीन छुट्टियो के दिन थे। दिनाक २५-१२-७८ से ३१-१२-७८ तक "अध्यात्म-योग-नैतिक शिक्षा प्राध्यापक प्रशिक्षण शिविर" तुलसी अध्यात्म नीडम्, लाडनू मे आयोजित किया गया। इस शिविर मे आचार्य महाप्रज्ञ का सान्निध्य प्राप्त हुआ। नाम के बारे मे व्यापक चर्चा चली। चिंतन-मथन हुआ, आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने इस "अध्यात्म योग नैतिक शिक्षा" के उपक्रम को "जीवन विज्ञान" की सज्ञा दी। यह सम्पूर्ण उपक्रम "जीवन विज्ञान" अर्थात् जीवन जीने की कला के विज्ञान के नाम से,आगे बढ़ा।

शिविर समापन समारोह मे दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रवाचक डॉ. दयानन्द भार्गव, बागड विश्वविद्यालय (डीडवाना) के प्राध्यापक डॉ. आनन्द मगल वाजपेयी, श्री बी. पी. सिंह, श्री माथुर, श्री शेखावत जी ने सस्मरण प्रस्तुत किये। वे बडे प्रेरणादायी थे। सभी ने स्वीकार किया कि ऐसे शिविर व्यक्तिगत उपलब्धि के साथ शिक्षा जगत की जटिलतम समस्याओ का सहज समाधान उपलब्ध कराते हैं। समापन समारोह मे बोलते हुए, आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने कहा—"शिक्षण सस्थाओ मे अन्य विषयो के साथ सम्यक जीवन जीने की कला के विज्ञान का प्रशिक्षण अवश्य होना चाहिये। उसके बिना जो रिक्तता शिक्षा जगत् मे अनुभव की जा रही है उससे सारा राष्ट्र उद्वेलित है। इसके समाधान के लिये शिक्षण सस्थाओ मे अन्य विषयो की तरह जीवन विज्ञान' का शिक्षण प्रशिक्षण आधुनिकतम विज्ञान और मनोविज्ञान के उपलब्ध तथ्यो के आधार पर होने से ही यह पूर्णता आ सकती है।"[1]

२.२० जीवन विज्ञान का स्वरूप (Nature and Meaning of Jeevan vigyan)

मनुष्य को सही अर्थ मे मनुष्य बनाना शिक्षा का प्रमुख कार्य है। शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम है। यह दर्शन और चिन्तन को क्रियान्विति तक ले जाती है। सपूर्ण विकास का आधार बनती है। पिछले दशको मे नैतिक शिक्षा की तीव्र अनुभूति की गई। अनेक राज्य-सरकारो ने इसे आवश्यक माना। शिक्षा आयोग ने भी इसके विकास के लिये अनेक सुझाव दिये।

आज शिक्षा जगत मे विकास तथा जीविकोपार्जन के लिये अनेक विद्या शाखाओ का बोलबाला है। पर जीवन मूल्यो की स्थापना, आध्यात्मिक विकास, भावनात्मक विकास, आन्तरिक रूपान्तरण हेतु विद्या शाखा का नितान्त अभाव है। इसका दुष्परिणाम है—शिक्षा जगत मे अनैतिकता, भ्रष्टाचार, उच्छृखलता, उद्दडता, तोड-फोड, चरित्रहीनता, मादक द्रव्यो का सेवन इत्यादि। क्या आज की शिक्षा मनुष्य को सही अर्थो मे मनुष्य बना रही है ? इस प्रश्न के समाधान के लिये अपेक्षा है कि ऐसी विद्याशाखा विकसित हो जो शिक्षा को जीवनोन्मुखी बना सके। व्यक्ति के भावनात्मक पक्ष व आध्यात्मिक पक्ष को उजागर कर सके। इसका एक मुख्य कारण यह है कि आध्यात्मिक विकास और भावनात्मक विकास ही नैतिकता और चरित्र का मूल आधार है।

इस रिक्तता की पूर्ति के लिये अणुव्रत अनुशास्ता श्री तुलसी एव आचार्य महाप्रज्ञ ने शिक्षा जगत को एक अभिनव अवदान दिया। शिक्षा

१. 'प्रेक्षाध्यान' पत्रिका दिसम्बर १९९८

जगत मे एक नई विद्याशाखा का बीजारोपण किया। वह विद्याशाखा 'जीवन विज्ञान के नाम से अकुरित व पल्लवित हो रही है।

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार—"युग की सबसे बडी बीमारी है—कोरा वैज्ञानिक होना, आध्यात्मिक न होना। व्यक्ति की इसी मनोवृति ने बहुत सारी बीमारियो को जन्म दिया है। जीवन विज्ञान का मुख्य सूत्र है—आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण। न कोरा वैज्ञानिक न कोरा आध्यात्मिक। यह वर्तमान युग की सबसे बडी अपेक्षा है। युगीन समस्याओं का सबसे बडा समाधान है, इसके लिये आवश्यक है जीवन शैली को समझना और जीवन शैली को बदलना। इसके लिये आवश्यक है सुव्यवस्थित वैज्ञानिक उपक्रम। एक नई विद्या शाखा का विकास।

२.२.१ जीवन विज्ञान : नई विद्याशाखा (Jeevan Vigyan : A New Discipline)।

सन् १९८१ मे राजस्थान शिक्षा सचिवालय द्वारा अणुव्रत अनुशास्ता श्री तुलसी एव आचार्य महाप्रज्ञ के सान्निध्य मे एक शिक्षा गोष्ठी का आयोजन किया गया। शिक्षा मत्री श्री चन्दनमल बैद, शिक्षा सचिव, उपसचिव, प्रौढ़शिक्षा अधिकारी, स्कूलो-कालेजो के शिक्षक, प्राध्यापक अनेक शिक्षा शास्त्री तथा सार्वजनिक क्षेत्र के लोगो ने उसमे भाग लिया। नैतिक शिक्षा संबधी गहन-विचार विमर्श हुआ। श्री चन्दमल बैद ने कहा—"हमने यह निर्णय लिया है कि हमारी शिक्षा प्रणाली मे कुछ नये प्रयोग किये जायें। हम चाहते हैं कि परस्पर विचार विमर्श कर निर्णायक रूप मे ऐसा हल खोजा जाये जो शिक्षा के सम्बन्ध मे हमारे प्रयोगो का मार्गदर्शन कर सके।" आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि "मैं नही समझता कि केवल पुस्तकीय ज्ञान छात्रो के नैतिक विकास मे कोई विशेष सहयोग कर सकेगा। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा मे जीवन विज्ञान को एक विद्याशाखा के रूप मे स्वीकार किया जाये। मै मानता हू कि यदि जीवन विज्ञान को साइन्स की तरह सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक स्तर पर चेतना के जागरण के लिये उपयोग किया जाए तो एक क्राति घटित हो सकती है। उससे सतुलित व्यक्ति निकलेगे।"

२.३.२ जीवन विज्ञान : समन्वित पद्धति (Jeevan Vigyan : Complete System)

जीवन विज्ञान एक सतुलित एव परिपूर्ण विद्या शाखा है। संतुलित इसलिये है कि इसमे शारीरिक व बौद्धिक विकास के साथ-साथ मानसिक व भावनात्मक विकास का सतुलन स्थापित किया गया है। परिपूर्ण इसलिए

कि भावात्मक परिवर्तन के केन्द्र कहा-कहा हैं । भावात्मक परिवर्तन के प्रयोग आध्यात्मिक प्रयोग हैं । केवल शरीर के रहस्यो को खोज कर कुछेक ध्यान के ऐसे प्रयोग कराए जाते हैं जिनसे एकाग्रता बढती है, भावात्मक समस्याए समाहित होती हैं ।

शरीर के दस तन्त्र हैं—

१ अस्थि तत्र (Skeletal Systam)
२ मासपेशीय तन्त्र (Mascular System)
३ त्वचा तन्त्र
४ पाचन तन्त्र (Digestive System)
५. रक्त परिसचरण तन्त्र (Circulatory System)
६ श्वसन तत्र (Raspiratory System)
७ उत्सर्जन तन्त्र (Excretory System)
८ तत्रिका तन्त्र (Nervous System)
९ अन्त स्रावी ग्रथितन्त्र (Endocrine System)
१० प्रजनन तन्त्र (Reproductive System)

ये एक साथ सगठित होकर मानव शरीर की रचना करते हैं । इन तत्रो को प्रशिक्षित किया जा सकता है । इसका सम्वन्ध केवल शारीरिक क्रिया से नही है, मानवीय व्यवहार से भी गहरा सम्बन्ध है । हिंसा, साम्प्रदायिकता, उत्तेजना, शाति और कलह, सौहार्द और वैमनस्य—इन सवके लियें केवल मन और भाव ही उतरदायी नही हैं शरीर भी उतरदायी है ।

शारीरिक प्रशिक्षण के साधन हैं—
आसन, यौगिक क्रियाऐ
कायोत्सर्ग
शरीर प्रेक्षा
अनुप्रेक्षा-सुझाव और सकल्प का प्रयोग

२.४.२. श्वास (Breath)

जीवन का दूसरा घट्क तत्त्व है, श्वास । श्वास को भी बहुत कम समझा गया । मस्तिष्क के दो पटल है, दाया पटल और बायाँ पटल । दाया श्वास बाये पटल को सक्रिय करता है । नाडीतन्त्र को सतुलित करने के प्रयोग भी प्रेक्षाध्यान मे कराये जाते हैं । श्वास के अनेक प्रयोग भावात्मक परिवर्तन मे महत्त्वपूर्ण हेतु वनते हैं ।

२.४.३. प्राण

जीवन का तीसरा घटक तत्त्व है, प्राण । प्राण सचार की प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है । रक्त सचार की प्रक्रिया आयुर्विज्ञान मे ज्ञात है । प्राण

सूक्ष्म तत्त्व है। उसका यन्त्र के द्वारा ग्रहण नही होता इसलिये वह अज्ञात है। स्वास्थ्य का अर्थ है—प्राण का सतुलन। प्राण असतुलित होता है, मनुष्य रुग्ण हो जाता है। बहुत लोग ऐसे हैं, जो मेडिकल इंस्टीट्यूटस मे परीक्षण करवा चुके हैं। परीक्षा का निष्कर्ष है कि वह बीमार नही है। वह व्यक्ति आकर कहता है—"डॉक्टर कहता है तुम बीमार नही हो—और मैं बहुत कष्ट भोग रहा हू।" हमारा उत्तर होता है—तुम्हारे शरीर मे वह बीमारी नही है जिसे यत्र पकड सके। तुम्हारा रोग असतुलन का रोग है। वह प्राण सतुलन का प्रयोग करता है और स्वस्थ हो जाता है। प्राण योग का तत्त्व है। आयुर्विज्ञान (Medical science) मे वह अभी सम्मत नही है। प्राण विज्ञान आयुर्विज्ञान के साथ जुडे ऐसी अपेक्षा है।

प्राण हमारी जीवनी शक्ति का मुख्य स्रोत है। शरीर प्राण से सचालित है। श्वास प्राण से सचालित है। मन और वाणी भी मनोबल और वचनबल से सचालित है। प्राण का सतुलन पूरे जीवन को व्यवस्थित करता है। उसके असतुलित होने पर शारीरिक स्वास्थ्य गडबडा जाता है, पूरी जीवन प्रणाली अस्त-व्यस्त हो जाती है। प्रेक्षा ध्यान पद्धति मे प्राण को सतुलित रखने के साधन हैं—

१. शरीर प्रेक्षा
२. तैजस केन्द्र प्रेक्षा
३. विशुद्धि केन्द्र प्रेक्षा
४. समवृत्ति श्वास प्रेक्षा

२.४.४. मन (Mind)

जीवन का चौथा घटक तत्त्व है—मन। मानसिक स्वास्थ्य शारीरिक स्वास्थ्य से अधिक मूल्यवान है। मन की अधिक चचलता अधिक समस्याए उत्पन्न करती है। मन की एकाग्रता अनेक समस्याओ का समाधान है। प्रेक्षा-ध्यान के अभ्यास मे मन की एकाग्रता के लिये अनेक प्रयोग कराये जाते हैं। स्मृति, कल्पना और चिंतन—तीनो मन के कार्य हैं। तीनो ही जीवन के लिये आवश्यक हैं। ये अनावश्यकता के बिन्दु पर पहुच जाते हैं तब मानसिक तनाव बढ़ता है। एकाग्रता की साधना होने पर आवश्यकता शेष रहती है। उनका अनावश्यक प्रयोग समाप्त हो जाता है।

मन की दो अवस्थायें हैं—चचलता और एकाग्रता। चचल मन असफलता के लिये उत्तरदायी है और एकाग्र मन सफलता का महाद्वार है। एकाग्रता के साधन हैं—

१. दीर्घ श्वास प्रेक्षा—लयबद्ध दीर्घ श्वास
२. विधियुक्त श्वास संयम (कुभक)

३. प्राण केन्द्र प्रेक्षा
४. दर्शन केन्द्र प्रेक्षा
५. अनिमेष प्रेक्षा
६. विचार प्रेक्षा
७. अनुप्रेक्षा

२.४.५ चित्त (Psyche)

जीवन का पाचवा घटक है, चित्त। आत्मा एक ज्ञान सूर्य है। उसके ज्ञान-प्रकाश की हजारो रश्मिया जीवन को आलोकित करती हैं। ज्ञान-प्रकाश की एक रश्मि है, चित्त। चित्त हमारी चेतना से प्रभावित होता है। और वह हमारे स्थूल शरीर को प्रभावित करता है। वह मस्तिष्क अथवा नाडी तन्त्र के माध्यम से जीवन की प्रत्येक क्रिया—शरीर, वाणी, मन को सचालित करता है, नियत्रित करता है। प्रेक्षाध्यान का उद्देश्य है चित्त की विशुद्धि। चैतन्य के आवरण का विलय होता रहे और उसमे मूर्च्छा की मलिनता का प्रवेश न हो। चित्त की शुद्धि होने पर ही मनुष्य मादक वस्तुओ के सेवन, अपराध और अनावश्यक हिंसा से बच सकता है। चित्त की निर्मलता के साधन हैं—

१ चैतन्य केंद्र प्रेक्षा
२, राग-द्वेष मुक्त क्षण का अनुभव
३ सामायिक-शुद्ध चैतन्य का अनुभव
४ निर्विचार प्रेक्षा
५ ज्ञाता-द्रष्टा भाव का प्रयोग
६ भाव-क्रिया

२.४.६ भाव : लेश्या : आभामण्डल (संवेग)

जीवन का छठा घटक तत्त्व है—भाव (सवेग)। मन जड तत्त्व है। वह स्वय सचालित नही है। उसका प्रेरक तत्त्व है—भाव (सवेग)। मन का सबध सूक्ष्म शरीर से है। स्थूल शरीर के भीतर एक सूक्ष्म शरीर है—उसका नाम है तैजस शरीर। वह तेजोमय अथवा विद्युतमय शरीर (Electrical Body) है। उस शरीर के केन्द्र मे भाव का निर्माण होता है। भाव जीवन का प्रेरक एव निर्णायक तत्त्व है। वह स्थूल शरीर मे चित्त को प्रभावित करता है। चित्त मस्तिष्क के माध्यम से जीवन की सारी प्रक्रियाओ को प्रभावित व सचालित करता है।

चित्त की शुद्धि और अशुद्धि का मानदण्ड है भाव की शुद्धि और अशुद्धि। विशुद्ध भाव, पवित्र लेश्या-आभामण्डल। अशुद्ध भाव, मलिन लेश्या

आभामण्डल। विधायक भाव से सफलता और सहज सतोष प्राप्त होता है।

आयुर्विज्ञान मे भाव-विशुद्धि या भाव-चिकित्सा का उल्लेखनीय प्रवेश नही है। प्रेक्षा ध्यान का मूल सूत्र भावात्मक परिवर्तन है, अर्थात् निषेधात्मक भाव समाप्त हो, विधायक भाव की सप्राप्ति हो।

मानसिक स्वास्थ्य का मूल आधार भावात्मक स्वास्थ्य है। प्रेक्षा ध्यान का आधार-भूत सूत्र है—व्याधि (शारीरिक रोग), आधि (मानसिक-रोग), उपाधि (भावात्मक रोग) से मुक्ति। व्यक्ति समाधि का जीवन जीना चाहता है। समाधि के यह तीन विघ्न हैं—व्याधि, आधि और उपाधि। भावात्मक रोग मानसिक रोग का हेतु है और मानसिक रोग अनेक रोगो का हेतु है। प्रेक्षा ध्यान की पद्धति मे सर्वप्रथम भावात्मक स्वास्थ्य पर ध्यान दिया जाता है। भाव स्वस्थ है तो मन स्वस्थ होगा ही और शरीर भी साथ मे।

भावात्मक स्वास्थ्य या भाव विशुद्धि के प्रयोग हैं—

१ लेश्याध्यान

२ मैत्री की अनुप्रेक्षा

३. करुणा की अनुप्रेक्षा

४. सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा

२ ४.७ कर्म (Karma)

जीवन का सातवा घटक तत्त्व है—कर्म। जीवन मे जो कुछ होता है, वह आकस्मिक, अहेतुक या परिस्थितिजनक ही नही होता। कुछ घटनायें परिस्थिति से प्रभावित हो सकती है, किन्तु अधिकांश घटनाओ के पीछे कोई हेतु होता है और वह है, कर्म। कुछ रोग भी कर्मज होते हैं। आयुर्वेद मे कर्मज रोग भी सम्मत हैं। आयुर्वेद का दर्शन आत्मा से जुडा हुआ नही है इसलिए उसमे कर्म का सिद्धात भी मान्य नही है। आश्चर्य है कि शरीर की एक-एक कोशिका और जैविक रसायन की खोज करने वाले शरीर शास्त्री आत्मा की खोज मे आगे नही बढे। आत्मा की खोज का पहला रूप है कर्म की खोज। क्या कर्म को अस्वीकार करने का अर्थ चिकित्सा के एक आयाम को अस्वीकार करना नही है ?

कर्म मानवीय पुरुषार्थ की प्रतिक्रिया है। वर्तमान का पुरुषार्थ पुरुषार्थ कहलाता है और अतीत का पुरुषार्थ-कर्म। मनुष्य जीवन को प्रभावित करने वाले तत्त्वो मे कर्म एक प्रमुख तत्त्व है। इस अदृश्य शक्ति को अस्वीकार नही किया जा सकता और इसे सर्वोपरि भी नही माना जा सकता। इसमे परि-वर्तन किया जा सकता है। कर्म को परिवर्तित करने के सूत्र हैं—

१. निर्विचार अथवा निर्विकल्प ध्यान

२. अपाय विचय

३ विपाक विचय
४ लेश्याध्यान
५ चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा
६. जप

जीवन के अनगिनत रहस्यो को समझने और जीवन मे परिवर्तन लाने के लिये इन सात पक्षो पर प्रेक्षाध्यान के प्रभाव का वैज्ञानिक उपकरणो एव मनोवैज्ञानिक परीक्षणो से अध्ययन करना ही जीवन विज्ञान का उद्देश्य, लक्ष्य और दृष्टिकोण है। जीवन को समग्रता से समझने के लिये उक्त सात बिंदुओ पर ध्यान देना और उनके परिष्कार की चेष्टा करना मानवीय मूल्यो के विकास का प्रथम सोपान है।

२ ५.० जीवन विज्ञान : बहुआयामी शिक्षा प्रणाली (Jeevan Vigyan Multidimensional education System)

जीवन बहुआयामी है। वह अनेक तत्त्वो से प्रभावित होता है। सतुलित जीवन जीने के लिये उन सब तत्त्वो को समझना आवश्यक है, जो जीवन को मुख्यतया प्रभावित करते हैं। मानवीय चेतना शरीर, मन और भाव इन तीनो से सर्वाधिक प्रभावित होती है। ये तीनो उसके आतरिक पक्ष हैं।

२.५ १ जीवन विज्ञान और शरीर शास्त्र (Jeevan vigyan and Physiology)

शरीर के तीन स्तर हैं—सूक्ष्मतर, सूक्ष्म और स्थूल। सूक्ष्मतर शरीर के प्रभाव का अध्ययन करने के लिये कर्म शास्त्र का अध्ययन अनिवार्य है। हमारा व्यक्तित्व एक सीमा तक सूक्ष्मतर शरीर से प्रभावित व नियन्त्रित होता है। जीवन की व्याख्या केवल परिस्थितिवाद के आधार पर की जाये तो मनुष्य का स्वतत्र आस्तित्व नही रहता। वह परिस्थिति की कठपुतली बन जाता है। हम परिस्थिति को अस्वीकार नही करते, उसका भी घटनाचक्र के परिवर्तन मे योग है, किंतु वह सब कुछ नही है। वह स्थूल है, हमारे प्रत्यक्ष हैं, इसलिये हम उसे जल्दी पकड लेते हैं। कर्म शरीर बहुत सूक्ष्म है। वह प्रत्यक्ष नही है इसलिये हमारी पकड मे नही आता। जीवन की समग्र व्याख्याओ के लिये कर्मवाद और परिस्थितिवाद—दोनो का तुलनात्मक अध्ययन बहुत आवश्यक है।

कर्मशरीर के स्पदन स्थूल जगत तक पहुचने के लिये पहले सूक्ष्मशरीर का सहयोग प्राप्त करते हैं। सूक्ष्म शरीर तैजस-विद्युत शरीर है। कर्म के स्पदन उस तक पहुचकर विद्युतीय आवेश से आविष्ट हो जाते हैं। वे लेश्या

अथवा भावधारा मे रूपातरित हो जाते है। वहा से वे स्थूल शरीर मे उतर जाते है। स्थूल शरीर और लेश्या का सगम विंदु मुख्य रूप से मस्तिष्क है। मस्तिष्क मे वे भाव चित्त के साथ सपर्क स्थापित करते हैं। वहा से हमारे कर्म-तत्र, मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्तियो, का सचालन होता है। यह आध्यात्मिक शरीर की सक्षिप्त रूपरेखा है।

२.५.२ जीवन विज्ञान और योग शास्त्र (Jeevan Vigyan & yoga)

योग का अपना शरीर-शास्त्र है। उसमे पाच प्राण और उनके स्थान बहुत ही व्यवस्थित रूप से निरुपित हैं। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिये उनका ज्ञान अपेक्षित है। प्राण हमारी जीवन शक्ति है। उसके बिना एक अगुली भी नही हिलाई जा सकती। चक्षु का उन्मेष भी नही हो सकता, श्वास भी नही लिया जा सकता।

२.५.३ जीवन विज्ञान और आयुर्विज्ञान (Jeevan Vigyan and Medical Science)

आयुर्विज्ञान का शरीर-शास्त्र बहुत विस्तृत है। श्वसन-तत्र, नाडी-तत्र और पाचन-तत्र इन सबका मनुष्य के व्यवहार पर प्रभाव पडता है। व्यवहार परिवर्तन जीवन विज्ञान का केन्द्रिय तत्त्व है, इसलिये शरीर विज्ञान और शरीर क्रिया विज्ञान दोनो का अध्ययन आवश्यक है—

१ शरीर क्रिया विज्ञान की परिभाषा, प्रकृति, सक्षिप्त इतिहास, समस्याएं एव अध्ययन की विधिया।

२ मानव शरीर की व्यवस्था एव सरचना।

३ मानव शरीर के नियत्रक तत्त्व।

४. मानव शरीर के महत्त्वपूर्ण तत्र।

५ सवेग एव प्रेरणा।

६. पोषण विज्ञान।

७. शारीरिक तात्रिकीय अनियमिततायें एव व्याधिया।

८ स्वास्थ्य के कुछ सामान्य नियम व प्रतिकूल स्वास्थ्य कारण।

९ यौगिक क्रियाए।

१०. स्वास्थ्य और आयुर्वेदिक अवधारणा।

जीवन विज्ञान की सीमा मे केवल शरीर नही है, उसकी सीमा मे मन, चित्त, भाव आदि अनेक तत्त्वो का भी समावेश है।

२.५.४ जीवन विज्ञान और मनोविज्ञान (Jeevan Vigyan and Psycholoy)

मनोविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र मानसिक प्रक्रियाए अथवा व्यवहार है। जीवन व्यवहार मे मन का बहुत बडा स्थान है। मन और मानसिक व्यवहारो को समझे बिना जीवन व्यवहारो को सतुलित नही किया जा सकता, इसलिये जीवन विज्ञान के साथ मनोविज्ञान का अध्ययन आवश्यक है।

१. गहन-मनोविज्ञान स्वरुप एव कार्य क्षेत्र।

२ गहन-मनोविज्ञान के तत्त्व, फ्रायड एव युग की अवधारणा, युग की व्याख्या के अनुसार जातीय अथवा सामूहिक अवचेतना।

३ चेतना के स्तर —

चेतन, अचेतन, अचेतन, स्वप्न, दिवा स्वप्न, मतिभ्रम आदि के सदर्भ मे अचेतन पदार्थ का विविध रूप मे प्रकटीकरण।

४ अचेतन पदार्थ के अध्ययन की विधिया—मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मक-स्वप्न आदि की व्याख्या।

प्रयोजनात्मक जाच, रोसा टेस्ट, टी ए टी, अथवा सी ए टी, नई जीव वैज्ञानिक जाच।

५ सुधार के उपाय—सुधार के चार स्तर—युग के अनुसार—अपराध स्वीकृति, विश्लेषण, शिक्षा और रूपातरण।

प्रेक्षाध्यान एव आधुनिक मनोचिकित्सा तुलनात्मक अध्ययन।

व्यक्तित्व मनोविज्ञान—

१ व्यक्तित्व—प्रकार, अर्थ और परिभाषा।
२ व्यक्तित्व—समझने का साधन।
३ व्यक्तित्व के निर्धारक तत्त्व।
४ व्यक्तित्व के सिद्धात।
५ व्यक्तित्व की विविधताए।
६ व्यक्तित्व की जाच।
७ व्यक्तित्व और शोध की विधिया।

२.५.५. जीवन विज्ञान और समाज शास्त्र (Jeevan Vigyan & Sociology)

समाज शास्त्र का अध्ययन क्षेत्र है - समाज। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। यह सामान्य अवधारणा है। यह अवधारणा सर्वांगीण नही है। मनुष्य

वैयक्तिक और सामाजिक दोनो है। वैयक्तिकता की दृष्टि से ओझल करना उसकी स्वतन्त्रता पर प्रहार करना है और उसकी समूह मे रहने की प्रवृत्ति को नकारना उसकी उपयोगिता को कुठित करना है। इसलिये जीवन विज्ञान मे मनुष्य के वैयक्तिक और सामाजिक—दोनो स्वरूपो का अध्ययन किया जाता है।

समाज-शास्त्र के निम्न निर्दिष्ट विषय जीवन विज्ञान के अध्ययन मे वहुत महत्त्वपूर्ण है—

१. समाज विकास का इतिहास, सामाजिक समूह, सामाजिक व्यवहार, समूहो के प्रकार और उनकी विशेषतायें, सामाजिक समस्याऐ और सगठन। व्यक्ति और समाज मे सम्बन्ध।

२ संस्कृति की अवधारणा, सस्कृति को प्रभावित करने वाले तत्त्व, सस्कृति और स्वस्थ समाज के विकास का रूप, सामाजिक आदर्श और मूल्य, स्वस्थ समाज के निर्माण मे मूल्यो का योगदान।

३. सामाजीकरण—अर्थ, परिभाषा और उद्देश्य, सामाजीकरण के स्तर।

४, सामाजिक विधियां—समाज व्यवस्था और नियत्रण।
सामाजिक प्रतिजायें—सामजस्य, प्रतिस्पर्धा, तादात्म्य-भाव, समानता, सेवा, व्यवस्था, सवध और स्थायित्व।
सामाजिक-नियत्रण—मार्गदर्शक, पुरस्कार, दण्ड आदि।

५. सामाजिक गतिशीलता और परिवर्तन।
सामाजिक गतिशीलता की अवधारणा, सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा।
सामाजिक परिवर्तन के तत्त्व—शारीरिक तकनीकी, सास्कृतिक, मनोवैज्ञानिक आदि सामाजिक क्रांति के सिद्धान्त।

६ नैतिक एव मानसिक मूल्य—ईमानदारी, दया, मानव एकता, सह-अस्तित्व, आत्म-सयम।
एकाग्रता, इच्छाशक्ति, मानसिक संतुलन, मन शक्ति, धैर्य।

७ भावात्मक मूल्य—आत्म-निरीक्षण, आत्म-विश्लेपण, मृदुता, नम्रता, सहिष्णुता, वैराग्य आदि।

८. अनुप्रेक्षा-भाव चिकित्सा पद्धति वाछित मूल्यो की प्राप्ति के लिये अभ्यास।

२.५.६. जीवन विज्ञान और कर्म सिद्धांत (Jeevan Vigyan & Karma theory)

जीवन में होने वाले परिवर्तनो की व्याख्या अनेक कोणो से की गई

है। शरीर-शास्त्र, जीव-शास्त्र और मनोविज्ञान—इनके द्वारा होने वाली व्याख्या शरीर सरचना, शरीर मे उत्पन्न होने वाले रसायन, सामाजिक परि-स्थितियो और मानसिक परिवर्तनो के आधार पर की गई है। कर्म-सिद्धात मे होने वाले परिवर्तनो की व्याख्या पूर्व सचित सस्कारो के आधार पर करना है। मनुष्य का वर्तमान आचरण पूर्व-सस्कारो से प्रभावित होता है। और भावी सस्कार का हेतु भी वनता है। इस कोण से देखने से कर्म सिद्धात नीति-शास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण घटक बन जाता है। नीति शास्त्र का सबध सकल्प की प्रक्रिया से है। उसके द्वारा मानव-व्यवहार की खोज की जाती है। सकल्प के शुभ और अशुभ का निर्णय होता है। उनके प्रकाश मे व्यक्ति अपने आपको समझता है, तथा अपने सकल्प और आचरण की सम्यक् मीमासा कर सकता है।

१ कर्म का स्वरूप एव अवधारणा।
जैन धर्म के अनुसार कर्म की अवधारणा, परिभाषा, आध्यात्मिक आधार, कार्य विधि, वर्गीकरण-जातिया, उप जातिया आदि। वैदिक एव बौद्ध परम्परा के कर्मवाद से जैन दर्शन के कर्मवाद की तुलना।

२ कर्म की स्थितिया और विधि —
बध, उद्वर्तन, अपवर्तन, सत्ता, उदय, उदीरणा, सक्रमण, उपशम, निधत्ति, निकाचना।
शुभ कार्य से कर्म-निर्जरा।

३ जीवन-विज्ञान एव मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य मे कर्म सिद्धात, कर्म की भौतिक एव रासायनिक विधि, कर्म और आनुवाशिक सिद्धात, कर्म की मनोवैज्ञानिक व्याख्या, कर्म का सामाजिक, आर्थिक स्वरूप।

४ पाच समवाय—
काल, स्वभाव, कर्म, पुरुषार्थ व नियति।

५. कर्म के ज्ञान की उपादेयता—
कार्य-कारण-सम्बन्ध।
जन्म, मृत्यु, पुनर्जन्म, कर्म और ध्यान।

२.५.७ अध्यात्म और विज्ञान (Sprituality and science)

समाज विज्ञान और विज्ञान की विकासवादी अवधारणा ने मनुष्य को परिस्थिति का दास बना दिया हैं। इस मानसिक दास-वृत्ति के कारण वह दूसरो का अधिक देखता है। अपने आपको नही देखता है—अथवा बहुत कम। उसके सामने हीनता की ग्रन्थि और उच्चता की ग्रन्थि के अवसर अधिक आ गये है। इस हीनता और उच्चता की ग्रन्थियो से बचकर सतुलित

व्यक्ति का विकास किया जा सकता है। उसके लिये अध्यात्म का प्रशिक्षण आवश्यक है। अध्यात्म और विज्ञान के संदर्भ मे इन विषयो का अध्ययन अपेक्षित है

१ विज्ञान का अर्थ, विज्ञान एव प्रविधि मे अन्तर, सत्य की खोज, उद्देश्य और प्रयोग।
२ भारतीय विज्ञान के अनुसधान वैदिक, जैन एव बौद्ध दृष्टिकोण।
३ भौतिक विज्ञान की नवीनतम धाराये—
क्वाण्टम सिद्धात
सापेक्षवाद का सिद्धात
अनिश्चितवाद के सिद्धात
लघु-आणविक कण, भौतिकी सीमाये।
४ आध्यात्मिकता की विभिन्न धाराये—विज्ञान और अध्यात्म का परीक्षण, भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान, वैज्ञानिक-आध्यात्मिक व्यक्तित्व का निर्माण।
५. भारतीय मनोविज्ञान स्वरूप एव कार्य क्षेत्र।
६ वेद, उपनिषद्, जैन और बौद्ध मत मे मनोविज्ञान और योग। साख्य, न्याय, मीमासा, वेदात के दृष्टिकोण मे मनोविज्ञान का स्वरूप।
७ भारतीय मनोविज्ञान की दृष्टि मे वर्तमान मनोविज्ञान।
८ परामनोविज्ञान—अर्थ एव कार्यक्षेत्र।
९ शरीर का अति सामान्य नियत्रण, सम्मोहन और सुझाव, आभामडल आदि अतीन्द्रिय ज्ञान और ज्ञानार्जन, पूर्व ज्ञान, मनःविज्ञान।

२.५.८ पर्यावरण विज्ञान और जीवन विज्ञान (Environmental Science & Jeevan Vigyan)

पर्यावरण विज्ञान का प्रमुख सूत्र है—लिमिटेशन (Limitation) पदार्थ कम, उपभोक्ता अधिक। सुविधावादी दृष्टिकोण ने सीमा के सिद्धात की अपेक्षा की है, फलत पर्यावरण प्रदूषित हुआ है। वस्तुत पर्यावरण का सिद्धात अध्यात्म की ही शाखा है। प्राणी मात्र और पदार्थ मात्र के प्रति सयत दृष्टिकोण का निर्माण जीवन विज्ञान की शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अग है।

जीवन विज्ञान का अध्ययन जीवन के अनेक पक्षो को सतुलित करने का अध्ययन है। यह नैतिक शिक्षा अथवा मूल्यपरक शिक्षा का स्वस्थ विकल्प है। इसमे सैद्धातिक शिक्षा के साथ प्रेक्षाध्यान की प्रायोगिक पद्धति जुडी हुई है। इसलिये व्यक्तित्व के रूपातरण की दिशा मे इसकी भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है।

२.६.०. सारांश

१ मूल्य चेतना के विकास की दृष्टि से 'जीवन विज्ञान" का आरम्भ अणुव्रत आदोलन के साथ हो जाता है । 'पर प्रायोगिक अभ्यास एव प्रशिक्षण की अपेक्षा से इसका श्री गणेश- और नामकरण दिसम्बर, १९७८ से होता है ।

२. नैतिक शिक्षा, योग शिक्षा, मूल्यपरक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा, चरित्र शिक्षा, अध्यात्म शिक्षा आदि अनेक नामो पर विचार के परिप्रेक्ष्य मे इसके प्रणेता आचार्य महाप्रज्ञ ने इसका नाम "जीवन विज्ञान" प्रस्थापित किया ।

३ जीवन विज्ञान एक नयी विद्याशाखा है । इसे शिक्षा के क्षेत्र मे अणु-व्रत और प्रेक्षाध्यान के साथ विकसित किया गया है । यह जीवन के नियमो की खोज का विज्ञान है । इसमे जीवन के प्रमुख अगो का अध्ययन एव उन पर प्रयोग किये जाते है ।

४ जीवन विज्ञान का दृष्टिकोण यह है कि जीवन के नियमो की खोज करके उसका उपयोग जीवन के परिष्कार की दिशा मे करना । उसे सफलता की दिशा मे ले जाना ।

५ जीवन विज्ञान का लक्ष्य है—आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व के निर्माण के द्वारा स्वस्थ समाज की सरचना करना ।

६ जीवन के मुख्य सात अग है—१ शरीर २ श्वास ३ प्राण ४ मन ५ चित्त ६ भाव ७ कर्म । इन सातो पर परिष्कार की चेष्टा जीवन मूल्यो के विकास का प्रथम सोपान है ।

७ जीवन-विज्ञान अन्तर्विषयानुबन्धी (Inter-dıcıplınary) नई विद्या-शाखा है । इसमे अर्वाचीन एव प्राचीन, अध्यात्म और विज्ञान दोनो का समन्वय किया गया है । अत इस विद्या-शाखा मे अनेक विद्या-शाखाओ का समावेश है । जैसे —शरीर विज्ञान, शरीर क्रिया विज्ञान, मनोविज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, समाज विज्ञान इत्यादि । इसमे प्राचीन शास्त्रो का समावेश भी है—दर्शन, धर्म, कर्मशास्त्र, योग और अध्यात्म इत्यादि ।

२.७. सहायक सामग्री

१ महाप्रज्ञ जीवन-दर्शन, मुनि धनजय कुमार
प्रकाशक आदर्श साहित्य सघ, चुरू (राज०)

२ जीवन विज्ञान मूल्यपरक शिक्षा का एक अभिनव प्रयोग, स० मुनि धर्मेश, प्र० जैन विश्व भारती, लाडनू ।

३ अपना दर्पण . अपना बिम्ब, आचार्य महाप्रज्ञ,
प्र० जैन विश्व भारती, लाडनू

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. जीवन विज्ञान की प्रकृति का वर्णन कीजिये। जीवन विज्ञान के उद्भव एव विकास के विपय मे आप क्या जानते है ?

२ जीवन विज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के सदर्भ मे जीवन विज्ञान के नामकरण की चर्चा कीजिये।

३ जीवन विज्ञान का विभिन्न दृष्टिकोणो से विश्लेषण कीजिये। इसके प्रमुख लक्ष्य एव उद्देश्यो का वर्णन कीजिये।

४ जीवन विज्ञान और जीवन के अगो की समीक्षा कीजिये।

५ "जीवन विज्ञान एक बहुआयामी शिक्षा प्रणाली है।" इस पर एक निबन्ध लिखिये।

६. जीवन विज्ञान अन्य अध्ययन क्षेत्रो से किस प्रकार जुडा हुआ है ? चर्चा कीजिये।

७. जीवन विज्ञान और कर्म सिद्धात के सम्बन्धो पर प्रकाश डालिए।

८ जीवन विज्ञान के प्रशिक्षण शिविरो का सक्षेप मे वर्णन कीजिये। किस प्रकार के परिणाम प्राप्त हुए उनकी समीक्षा कीजिये।

९. जीवन विज्ञान के प्रशिक्षणार्थियो की राय मे जीवन विज्ञान प्रशिक्षण से क्या-क्या लाभ हो सकते है। इसकी विवेचना कीजिये।

द्वितीय खण्ड

जीवन विज्ञान की प्रविधि

(Methodology of Jeevan Vigyan)

अध्याय ३
अणुव्रत (Anuvrat)

रूपरेखा

१. अणुव्रत आंदोलन : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

तात्कालीन सामाजिक और राजनैतिक स्थिति : आदोलन का सूत्रपात; पहला अधिवेशन, सघ से आदोलन, विकास यात्रा के चार चरण, महत्त्व एव प्रासगिकता;
प्रवर्तक . आचार्य तुलसी; महान अनुष्ठान : महान प्रयत्न, सहयोगी सस्थान

२. व्रत का स्वरूप

व्रत का महत्त्व, व्रत भग का निषेध; व्रत : उपयोगिता,
व्रत और भगवान महावीर, श्रावक की आचार-सहिता

३. अणुव्रत आदोलन : दार्शनिक पृष्ठभूमि

व्यक्ति और समाज, स्वार्थ-सयम और अध्यात्म,
समाज-परिवर्तन की अक्षमता, आध्यात्मिकता क्यो ?
अध्यात्म का व्यावहारिक रूप, सयम का अर्थ

४. अणुव्रत आन्दोलन : वर्तमान स्वरूप

अर्थ एव परिभाषा; प्रकृति एव स्वरूप, निदेशक तत्त्व,
लक्ष्य एव आचार-सहिता; स्वस्थ समाज रचना,
अणुव्रत का कार्य-क्षेत्र, समीक्षा एव सीमाए

५. सारांश

६. सहायक सामग्री

७. प्रश्न

३. अणुव्रत (Anuvrat)

३.१.० अणुव्रत आन्दोलन : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background)

वह समाज उन्नत एव समृद्ध समाज है जिसमे नीति और मूल्यो का वर्चस्व है। उन्नति का मापदण्ड बडे-बडे भवन, मीलें, कारखाने या लम्बी-चौडी सडके नही होती, उसका मानक है नीति और सस्कृति से भरा हुआ लोक-जीवन। अणुव्रत आन्दोलन का लक्ष्य है—व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के जीवन मे पनपनेवाली बुराइयो को दूर कर एक नीतिमान और चरित्रनिष्ठ पीढी का निर्माण करना। जिस समाज या देश मे सकल्पहीनता या अकर्मण्य व्यक्तियों की सख्या बढने लगती है, उसकी प्रगति के आगे प्रश्न चिह्न लग जाता है।

३.१.१ तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक स्थिति

आज से लगभग पाच दशक पूर्व तक भारतवर्ष राजनैतिक दासता के घेरे मे बदी था। देश के अधिसख्य लोगो ने उस दासता को अपने ऊपर ओढ लिया था। कुछ चिन्तनशील युवको मे अन्तर्द्वन्द्व जगा। उन्होने देश को दासता की गिरफ्त से मुक्त कराने का सकल्प लिया। अहिंसक शक्ति का आलम्बन लेकर मैदान मे उतर आये। आखिर जीत हुई। शताब्दियो की परतन्त्रता के बाद हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हुआ। काग्रेस और मुस्लिम लीग ने सयुक्त रूप से शासन सभाला। हिन्दू-मुस्लिम दगे हुए। इन दगो मे लाखो आदमी मौत के घाट उतरे। जातीयता का नग्न रूप सामने आया। स्त्रियो और बच्चो के साथ निर्दय व्यवहार किये गए। ऐसी स्थिति उत्पन्न की गई कि आखिर हिन्दुस्तान विभक्त हो गया। पाकिस्तान बना। मुसलमान उधर गए, हिन्दू इधर आये। दोनो राष्ट्र शरणार्थियो से आक्रान्त हो गये। उनके पुनर्वास की समस्या जटिल हो गई।

हिन्दुस्तान का सविधान बना और वह २६ जनवरी १९५० को लागू हो गया। हिन्दुस्तान लोकतत्र प्रणाली से शासित हो गया। सविधान ने सब वयस्को को मत देने का अधिकार दिया। चुनाव हुए। विभिन्न राजनीतिक दलो ने भाग लिया। केन्द्र और लगभग सभी प्रान्तो मे काग्रेस ने शासन सभाला।

काग्रेस सरकार ने समाजवादी समाज-व्यवस्था का लक्ष्य निश्चित

किया। व्यापार और सम्पत्ति पर विभिन्न कर लगाए, देशी राज्यो का विलीनीकरण हुआ और जमीनदारी का अन्त हुआ। अस्पृश्यता को अपराध माना गया। खाद्यान्न की कमी थी। उस पर नियन्त्रण किया गया। विकास की योजनाए बनी और उसके लिए बहुमुखी प्रयत्न होने लगे। ये स्थितिया शैशव अवस्था मे थी। नया निर्वाचन, नया शासन, नया अनुभव और नई व्यवस्था थी। महात्मा गाधी ससार मे नही रहे। दूसरे प्रमुख नेता अपने-अपने राजनैतिक दलो मे फस गये। स्वतन्त्रता के सघर्ष मे जो एकता थी, वह टूट गई। आजादी के आकर्षण ने जिन मौलिक समस्याओ पर आवरण डाल रखा था, वे क्रमश उभरती गई।

जातिवाद, अस्पृश्यता, साम्प्रदायिकता, अमीरी-गरीबी, महगाई और भिखमगी—ये हिन्दुस्तान की मौलिक समस्याए हैं। अनुशासनहीनता, पद की लालसा, महत्त्वाकाक्षा, प्रान्तीयता और भाषाई विवाद—ये स्वतन्त्रता के बाद उपजी हुई समस्याए है। और इन जैसी और-और समस्याओ से जनता का चरित्र विकृत और मानस उत्पीडित हो रहा था।

शिक्षा बढ रही थी, बुद्धि का विकास हो रहा था। प्राचीन मान्यताए शिथिल हो रही थी। नये सिद्धात जन्म ले रहे थे। धर्मनेता बुद्धिवादियो को अतीत की कहानी बनाने की सोच रहे थे।

युवको मे निराशा और आक्रोश का भाव पनपने लगा था। उनका मानना था कि आज के युग मे कोई भी प्रामाणिकता का जीवन नही जी सकता। धर्म के सारे उपदेश अपने स्थान पर सही है, पर आज जीवन मे उनका कोई स्थान नही रह गया है। आज एक भी ऐसा आदमी मिलना मुश्किल है जो धर्म को सही अर्थ मे अपने जीवन मे जी सके। धार्मिक आस्थाएं डगमगा रही थी।

कुल मिलाकर जो स्थिति बनी, उसमे ध्वस अधिक था, निर्माण कम, उत्तेजना अधिक थी, चेतना कम। इससे संतुष्ट कोई नही था। सामाजिक, धार्मिक और राष्ट्रीय—तीनो क्षेत्रो मे असतोष व्याप्त था। चरित्र-पतन और अनुशासनहीनता से सभी का धैर्य विचलित हो रहा था। इन परिस्थितियो मे आचार्य तुलसी ने अणुव्रत आन्दोलन" को प्रस्तुत किया। यद्यपि इसमे कोई नया तत्त्व नही था। वे ही पुराने व्रत और वे ही पुरानी मान्यताए। किन्तु परिस्थितियो का सही अकन था। उसे वर्तमान रोग के निदान और समाधान के रूप मे प्रस्तुत किया गया, इसलिए जनता ने उसे आश्वासन माना।

स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय जनमानस अहिंसा की शक्ति से परिचित हो गया था। महात्मा गाधी के ग्यारह व्रतो से भी असख्य लोग परिचित हो गये थे। व्रत और नैतिकता भारतीय मानस के लिए कोई नई बात नही थी

फिर भी धर्म और नैतिकता के विभाजन के कारण व्रत का अवमूल्यन हो रहा था। हिन्दुस्तान मे इन शताब्दियो मे नैतिक विकास की गति मद थी और स्वतन्त्र भारत मे उसके मदतर होने की सभावना थी। इस सभावना को ध्यान मे रखकर चरित्र-विकास या नैतिक-विकास की एक आचार-सहिता प्रस्तुत की गई। उसमे श्रावक की व्रत-सहिता का सहारा लिया और उसे वर्तमान समस्याओ के सदर्भ मे नया रूप दिया गया। इसका राष्ट्रीय स्तर पर स्वागत हुआ और समर्थन भी मिला। अणुव्रत आन्दोलन के माध्यम से पूरे देश मे नैतिक विकास की गूज हुई और सब ने इसको एक राष्ट्रीय चरित्र-विकास के आन्दोलन के रूप मे स्वीकार किया।

३.१.२ अणुव्रत आन्दोलन का सूत्रपात एवं विकास (Origin and Development of Anuvrat Movement)

आचार्यश्री तुलसी ने प्रथम स्वतत्रता दिवस (१५ अगस्त १९४७) पर 'असली आजादी अपनाओ' का शखनाद किया। असली आजादी का अर्थ है—नैतिक विकास। इसका प्रायोगिक रूप है—अणुव्रत आन्दोलन। १९४९, मार्च मे आपने अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन किया। सरदारशहर का विशाल प्रवचन समवसरण। हजारो-हजारो स्त्री-पुरुषो की उपस्थिति। प्रात काल की पावन बेला। आशा और निराशा के बीच तैरती हुई तरगो के बीच आपने कहा—'अणुव्रत की आचार-सहिता के लिए कम से कम पच्चीस व्यक्ति मुझे मिले, यह मेरी आशसा है। मुझे विश्वास है इससे नैतिकता का नया आयाम खुलेगा।' आह्वान कर जैसे ही विराम लिया वैसे ही अणुव्रती बनने की स्पर्धा शुरू हो गई। प्रथम आह्वान मे इकहत्तर व्यक्ति अणुव्रती बने। अणुव्रत के प्रति आशावादी लोग प्रसन्न हो रहे थे, निराशावादी व्यक्ति इस सख्या को विस्मय के साथ सुन रहे थे। उनकी कल्पना थी कि पाच-दस व्यक्ति भी अणुव्रत के लिए समर्पित नही होगे। अणुव्रतियो की प्रथम सख्या ने उनकी कल्पना को बदल दिया, इसलिए वे आश्चर्य चकित थे।

प्रथम बार अणुव्रती बनने वालो के नाम आपने स्वय अपने हाथ से लिखे। उस समय यह कल्पना नही थी कि अणुव्रत आन्दोलन इतना व्यापक बनेगा। उसका इतना स्वागत होगा, किन्तु इसकी व्यापकता के पीछे सकल्प शक्ति और श्रम का चमत्कार है। सैकडो साधु-साध्वियो ने पाव-पाव चलकर अणुव्रत की भावना को गाव-गाव तक पहुचाया। हजारो कार्यकर्ताओ का श्रम जुडा। कुछ ही वर्षो मे पूरे देश मे अणुव्रत की लहर चल पडी। आचार्य श्री की पदयात्राओ ने उसे और अधिक शक्तिशाली बना दिया।

३.१.३ पहला अधिवेशन

अणुव्रत आन्दोलन एक अभाव की पूर्ति था, इसलिए थोडे समय मे

ही वह बहुत प्रख्यात हो गया। जनता ने एक प्रकाश-रश्मि के रूप मे उसका स्वागत किया। छोटे-छोटे गावो मे सैकडो की सख्या मे लोग एकत्रित होते, आन्दोलन के व्रतो को सुनते, उन्हे अपनाते।

आचार्यश्री तुलसी का सन् १९४९ मे जयपुर मे चतुर्मास-प्रवास था। वहा अणुव्रत को और अधिक प्रसार मिला। उसका पहला वार्षिक अधिवेशन सन् १९५० दिल्ली मे हुआ। आन्दोलन को सार्वजनिक रूप वहीं मिला। पर नये-नये आन्दोलन के प्रति जो आकर्षण था, वह स्वय अपनी आश्यकता एव अपेक्षा का साक्षी था।

उस समय तक अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी का परिचय एक रूढिवादी धर्माचार्य और सम्प्रदाय-नेता के रूप मे था। उनके द्वारा प्रवर्तित आन्दोलन असाम्प्रदायिक हो सकता है, यह कल्पना भी लोग नही कर पा रहे थे। आन्दोलन रचनात्मक नही है, केवल नकारात्मक है। अपने सम्प्रदाय को बढाने के लिए यह एक जाल रचा गया है। इस कोटि की अनेक प्रतिक्रियाए चल रही थी। फिर भी पहले अधिवेशन मे आन्दोलन का जो रूप बना वह कल्पनातीत सुखद था। उसी के आधार पर यह विश्वास बना कि आन्दोलन को स्वय चलना है। जनता को भी इसकी अपेक्षा है।

दिल्ली नगर-निगम के प्रागण मे पहला अधिवेशन हुआ। सैकडो व्यक्तियो ने समवेत-स्वर मे अणुव्रत की प्रतिज्ञाओ को दोहराया। तब लग रहा था कि युग करवट ले रहा है। समाचार पत्रो ने उसे बहुत महत्त्व दिया। विदेशी समाचार-पत्रो ने भी आन्दोलन का काफी स्वागत किया। न्यूयार्क के प्रसिद्ध साप्ताहिक 'टाइम' [१५ मई १९५०] मे 'एटोमिक बॉम' शीर्षक से यह सवाद प्रकाशित हुआ था।

अन्य अनेक स्थानो के कुछ व्यक्तियो की तरह एक पतला, दुबला, ठिगना, चमकती आखो वाला भारतीय ससार की वर्तमान स्थिति के प्रति अत्यन्त चिन्तित है। ३४ वर्ष की आयु का वह आचार्य तुलसी है जो जैन तेरापथ समाज का आचार्य है। यह अहिंसा मे विश्वास करनेवाला धार्मिक समुदाय है। आचार्य तुलसी ने १९४९ मे अणुव्रत आन्दोलन की स्थापना की थी।' • जब समस्त भारत को व्रती बना चुकेंगे तब ससार को भी व्रती बनाने की उनकी योजना है।"

जापान मे भी अणुव्रतो की चर्चा हुई। उन सब स्थानो की प्रतिक्रिया सक्षेप मे यही थी कि आन्दोलन के नियम भारतीय जीवन को दृष्टि मे रख-कर बनाए गए है। बहुत सारे नियम हमारे लिए उपयोगी नही हैं। तब आचार्य श्री ने व्रतो की रूपरेखा मे परिवर्तन करने का निर्णय किया। आन्दोलन की व्यापकता के लिए उसे सर्वदेशीय रूप देना आवश्यक था। इसलिए उसमे

परिवर्तन किया गया।

३.१.४ संघ से आन्दोलन

'अणुव्रत आदोलन' प्रारम्भ मे 'अणुव्रत सघ' के नाम से सामने आया। फिर जैसे-जैसे वह जनता तक पहुचा, जैसे-जैसे अनुभव व्यापक हुआ, वैसे-वैसे उसमे थोडा बहुत परिवर्तन होता रहा। बम्बई के चतुर्मास-प्रवास मे उसकी रूपरेखा मे परिवर्तन हुआ। तब तक आन्दोलन पाच वर्ष की अवधि पार कर चुका था। हजारो व्यक्ति अणुव्रती बन चुके थे। लाखो व्यक्ति उसके समर्थक हो गये थे। करोडो तक उसकी भावना पहुच चुकी थी। सचमुच जनमानस मे एक आदोलन हो रहा था। आचार्यश्री के पास चिन्तन चला कि अब 'अणुव्रती-सघ' का नाम 'अणुव्रत-आन्दोलन' कर दिया जाए। 'सघ' शब्द मे एक सीमा की भावना है। आन्दोलन अधिक मुक्त भावना का वाचक है। यह विचार रुचा और 'सघ' का नाम 'अणुव्रत आन्दोलन' हो गया।

अणुव्रत आन्दोलन के उद्देश्य रखे गये—मानवीय विभेदक तत्त्वो को महत्त्वहीन मानकर मानव मात्र को नैतिकता की ओर आकृष्ट करना, गृहस्थ जीवन के नैतिक स्तर को ऊचा उठाना और विश्व-मैत्री व शाति का प्रचार करना। अणुव्रती होने के लिए योग्यता व अयोग्यता को अप्रासगिक समझा गया था। प्रत्येक मानव को अणुव्रती बनने का अधिकार दिया गया। चाहे वह भारतीय हो या विदेशी, चाहे वह नैतिक हो या अनैतिक, चाहे वह धार्मिक हो अथवा अधार्मिक' चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष और वह किसी भी जाति अथवा वर्ण से सबधित हो। मासाहारी व्यक्ति को भी अणुव्रती बनने का अधिकार दिया गया ताकि वह दूसरे क्षेत्रो मे अपनी नैतिकता का विकास कर सके।

३.१.५ विकास-यात्रा के चार चरण (Four Stages of Development)

अणुव्रत की विकास यात्रा मे एक नया उभार आया जब अणुव्रत की साधना मे प्रेक्षाध्यान की साधना का क्रम जुडा। १९७५ मे प्रेक्षाध्यान का उद्‌भव हुआ। उसकी साधना का क्रम चला। साधना से लोगो मे स्वत आध्यात्मिकता के अकुर फूटने लगे। नैतिकता, अणुव्रत की भावना जीवन मे उतरने लगी। इसी क्रम मे "अणुव्रत-प्रेक्षाध्यान शिविर" आयोजित हुए। इससे अणुव्रती के जीवन मे प्रेक्षाध्यान साधना का महत्त्वपूर्ण तत्त्व जुडा। इसे अणुव्रत विकास यात्रा का द्वितीय चरण कह सकते हैं।

अनेक दशको से आन्दोलन शिक्षा जगत् मे अणुव्रतो के माध्यम नैतिकता के विकास के लिए प्रयत्न कर रहा था। इसके अन्तर्गत "अणुव्रत

परीक्षाओं" का भी आयोजन हो रहा था। इस क्रम मे प्रेक्षाध्यान शिक्षा जगत् से जुडा। अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान दोनो साथ जुडने से इस कार्य मे तीव्रता आई। अणुव्रत सकल्प शक्ति का प्रतीक बना। वही प्रेक्षाध्यान उसकी अभ्यास-प्रक्रिया के रूप मे उभरा। इन दोनो के योग से मूल्यपरक शिक्षा नैतिक शिक्षा, आध्यात्मिक, शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा एव योग शिक्षा का एक नया प्रारूप सामने आया। इसका १९७८ मे "जीवन विज्ञान" नामकरण किया गया। इससे कोमलमति बच्चो मे योग एव ध्यान के प्रयोग से सस्कार निर्माण मे अभूतपूर्व सफलता मिली है। बडे बच्चो मे मानसिक एकाग्रता, कार्यक्षमता एव नैतिक आस्था को बल मिला है। वस्तुत. यह जीवन विज्ञान अणुव्रत विकास यात्रा का तृतीय चरण है।

अणुव्रत की आचार-सहिता का पहला ही नियम अहिंसा के विकास के लिए है। हिंसा, आतक आदि विश्वव्यापी समस्याओ के समाधान के लिए १९८१ मे "अहिंसा सार्वभौम" की कल्पना की गई। उसे साकार रूप देने के लिए मात्र सैद्धातिक पक्ष का प्रस्तुतीकरण अपर्याप्त माना गया। इसे पूर्णता प्रदान करने के लिए "अहिंसा-प्रशिक्षण" की प्रायोगिक प्रविधि तैयार की गई। अणुव्रत की विकास-यात्रा का यह चतुर्थचरण है।

३.१.६ अणुव्रत : महत्त्व, प्रासंगिकता

अणुव्रत ने अपनी प्रासगिकता से विकास यात्रा के अनेक चरण पार किये। सामाजिक समस्या के सदर्भ मे उसमे नए-नए उन्मेप आए। हिन्दुस्तान का विभाजन साम्प्रदायिक अभिनिवेश के कारण हुआ था। साप्रदायिक कट्टरता के कारण सब लोग आक्रान्त थे। राजनीति के पहलवान साप्रदायिकता को उभारकर अपना स्वार्थ साध रहे थे। उस स्थिति मे अणुव्रत ने जनता के सामने इस मत्र को दोहराया :

- धर्म का स्थान पहला है, सप्रदाय का स्थान दूसरा है।
- सप्रदाय अनेक हो सकते हैं, धर्म सबका एक है।
- धर्म और राजनीति दोनो अलग-अलग है। धर्म मे राजनीति का हस्तक्षेप नही होना चाहिए।

इस मत्र ने जनमानस को झकझोरा, धर्म और सम्प्रदाय की वास्तविकता को समझने की प्रेरणा मिली।

धार्मिक व्यक्ति का जीवन अनैतिक नही हो सकता। पर धर्म की धारणा परलोक के साथ जुड़ी हुई थी, इसलिए वर्तमान जीवन मे स्वार्थ साधना और परलोक को सुधारने के लिए धर्म की आराधना चल रही थी।

धार्मिक व्यक्ति अनैतिक व्यवहार कर रहे थे और उपासना द्वारा उसके पाप से मुक्ति पा लेने की कल्पना से मन को आश्वासन दे रहे थे। उस

वातावरण मे अणुव्रत ने यह स्वर मुखर किया

० धर्म केवल परलोक सुधारने के लिए नही है। उससे वर्तमान जीवन सुधरना चाहिए।

० जिसका वर्तमान नही सुधरता, उसका परलोक कभी नही सुधरता।

० धर्म का चरित्र पक्ष मुख्य है, उपासना पक्ष गौण है।

इस विचार धारा ने एक नई स्थिति का निर्माण किया। स्वय को नास्तिक माननेवालो को अपनी आस्तिकता का भान हुआ। जो स्वय को आस्तिक मानकर चल रहे थे उन्हे अपने आचरण मे नास्तिकता का आभास मिला। प्रबुद्ध पत्रकार अक्षयकुमार जैन ने एक विचार गोष्ठी मे कहा—'आचार्य श्री आपने धर्म की जो परिभाषा दी है, उससे मुझे बल मिला है। अब मै अपने मित्रो के बीच अपने आपको धार्मिक कह सकूगा।'

उपासना पद्धति से जुडा धर्म अधिक आकर्षक होता है। अणुव्रत मे कोई उपासना पद्धति नही है, केवल नैतिक आचरण का सदेश है, इसलिए आकर्षण कम है। फिर भी वर्तमान युग के बौद्धिक मानस को इस आन्दोलन ने काफी आकर्षित किया। सम्प्रदाय से भय रखनेवाले व्यक्ति इस निर्विशेषण धर्म से अपने आपको जोडते चले गये। यह अनायास मानव-धर्म का मच बनता चला गया।

राष्ट्रपति डा राजेन्द्रप्रसाद ने कहा—'आचार्यश्री ! अणुव्रत आदोलन हिन्दुस्तान के लिए बहुत उपयोगी है। आप इसकी जानकारी हमारे प्रधान-मत्री प जवाहरलाल नेहरू को दे। वे इसका मूल्याकन करेगे और कार्य को आगे बढाने मे सहयोगी बनेगे।'

आचार्यश्री—'आपकी बात ठीक है। पर पडितजी से हमारा परिचय नही है।'

राष्ट्रपति—'मैं उन्हे पत्र लिखकर यह जानकारी दे दूगा, फिर आपका उनसे मिलना हो जाएगा।'

आचार्यश्री—'ऐसा हो सकता है।'

राष्ट्रपति ने प्रधानमत्री को पत्र लिखा ·

'प्रिय प्रधानमत्री जी ! आचार्यतुलसी जी से आपका मिलना देश के हित मे होगा। वे अभी दिल्ली आए हुए हैं। यदि सभव हो तो इस पर विचार करे।'

प्रधानमत्री ने उत्तर मे लिखा—'प्रिय राष्ट्रपति जी ! मुझे आचार्य तुलसी से मिलकर बडी प्रसन्नता होगी। मैं इन दिनो बहुत व्यस्त हू। इसलिए आचार्यजी यदि प्रधानमत्री निवास पर दर्शन दे तो बहुत कृपा होगी।'

राष्ट्रपति से पत्र का सवाद पाकर आचार्यश्री प्रधानमत्री निवास पधारे। पूर्व व्यवस्थानुसार बरामदे मे एक छोटा पट्ट बिछा हुआ था। उस

पर आचार्यप्रवर विराज गये। उससे सटे हुए आसन पर प नेहरू बैठ गये। वार्तालाप का प्रारंभ करते हुए पडितजी बोले—'कहिए आचार्यजी! आप क्या चाहते हैं?' आचार्यश्री—'मैं कुछ नही चाहता।' बातचीत चलने से पहले ही सपन्न हो गई। एक दो क्षण वातावरण मे मौन रहा। पडितजी आचार्यवर की ओर देखते रहे। जब कोई माग ही नही तो बात आगे कैसे बढे?

वातावरण की नीरवता को तोड़ते हुए आचार्यप्रवर ने कहा—'हम आपके पास कोई मांग लेकर नही आए हैं। हम कुछ देने आए हैं। आज राष्ट्र को नैतिक विकास की जरूरत है। हमने उस दिशा मे कार्य शुरू किया है। आप उसे देखें, मूल्यांकन करें और उसका उपयोग करें।' प्रधानमंत्री ने गभीरता से इस बात को सुना। इस कार्य मे अपना योग देने की बात कही। प्रथम वार्तालाप सम्पन्न हुआ। इस प्रकार प्रधानमत्री जवाहरलाल नेहरू का अणुव्रत के साथ भावनात्मक सबध हुआ। समय-समय पर देश के मूर्धन्य व कर्णधार लोग इस आन्दोलन के सपर्क में आये। उन्होने इसकी उपयोगिका का अंकन किया। राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्र प्रसाद, डॉ राधाकृष्णन् एवं पं जवाहरलाल नेहरू ने भी अणुव्रत की उपयोगिता को जनता के सामने इन शब्दो मे प्रस्तुत किया।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार—

"अणुव्रत आन्दोलन का उद्देश्य नैतिक जागरण और जन-साधारण को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करना है। यह प्रयास अपने आप मे ही इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसका सभी को स्वागत करना चाहिए। आज के युग मे जबकि मानव अपनी भौतिक उन्नति से चकाचौंध होता दिखाई दे रहा है और जीवन मे नैतिक और आध्यात्मिक तत्त्वो की अवहेलना कर रहा है, वहां ऐसे आन्दोलनो के द्वारा ही मानव अपने सतुलन को बनाए रख सकता है और भौतिकवाद के विनाशकारी परिणामो से बचने की आशा कर सकता है।"

डॉ. एस राधाकृष्णन के अनुसार—

"हम ऐसे युग मे रह रहे हैं, जब हमारा जीवात्मा सोया हुआ है, आत्मबल का अकाल है और सुस्ती का राज्य है। हमारे युवक तेजी से भौतिकवाद की ओर झुकते चले जा रहे हैं। इस समय किसी भी ऐसे आन्दोलन का स्वागत हो सकता है जो आत्मबल की ओर ले जाने वाला हो। इस समय हमारे देश मे 'अणुव्रत आन्दोलन' ही एक ऐसा आन्दोलन है, जो इस कार्य को कर रहा है। यह काम ऐसा है कि इसको सब तरह से बढ़ावा मिलना चाहिए।"

प जवाहरलाल नेहरू के अनुसार—

"हमे अपने देश का मकान बनाना है तो उसकी बुनियाद गहरी होनी

चाहिए। बुनियाद यदि रेत की होगी तो पानी आते ही रेत बह जाएगी। मकान भी ढह जाएगा। गहरी बुनियाद चरित्र की होती है। देश मे बडे-बडे काम करने है। उसके लिए मजबूत दिल, दिमाग और अपने को काबू मे रखने की शक्ति चाहिए। ये बाते हमे सीखनी हैं। इन सबकी बुनियाद "चरित्र" है। कितना अच्छा काम अणुव्रत-आन्दोलन मे हो रहा है। मैंने विचारा—इस काम मे जितनी तरक्की हो उतना ही अच्छा है। मैं चाहता हू—अणुव्रत आन्दोलन का जो काम हो रहा है, वह पूरी तरह से सफल हो।"

३.१.७ आन्दोलन के प्रवर्तक— आचार्य तुलसी

नेतृत्व—आध्यात्मिक आन्दोलन के नेतृत्व का पद, अधिकार या सत्ता के अर्थ मे कोई महत्त्व नही रखता। विशुद्धि की दृष्टि से यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि ऐसे आदोलन का नेतृत्व कौन करे ?

अणुव्रत आदोलन के समर्थक सभी लोगो ने चाहा कि अभी आदोलन का नेतृत्व आचार्यश्री ही करें। उनसे जो आलोक मिलेगा वह अन्य स्रोतो से सभव नही। आचार्य श्री ने इस अनुरोध को स्वीकार कर लिया। इससे उलझन भी बढी। तेरापथ और अणुव्रत आन्दोलन—दोनो का नेतृत्व एक व्यक्ति कर सकता है, इस पर सहसा विश्वास नही हुआ। इसीलिए आचार्य श्री ने पहले अधिवेशन के अवसर पर कहा -'वर्तमान मे आन्दोलन का नेतृत्व मैंने सम्हाला है। इसका अर्थ यह नही कि आन्दोलन के सदस्यो को तेरापथ की सदस्यता स्वीकार करनी होगी। किसी भी धर्म मे विश्वास रखने वाला इस आन्दोलन का सदस्य हो सकता है। इसका नेतृत्व मैंने इसलिए सम्हाला है कि इसकी प्रारम्भिक व्यवस्था सुदृढ हो जाए। उपयुक्त समय मे इसके नेतृत्व की अन्य व्यवस्था भी की जा सकती है।'

एक व्यक्ति ने उन्ही दिनो आचार्य श्री से पूछा -'क्या आन्दोलन मे सम्मिलित होने पर मुझे आपको धर्माचार्य मानना होगा ?' आचार्यश्री ने कहा—'कोई आवश्यकता नही। आपको केवल आदोलन के व्रतो का पालन करना होगा।'

इस उदार दृष्टि ने जनता को आकृष्ट किया और थोडे ही वर्षों मे अणुव्रत आन्दोलन सबका हो गया। जैन, वैदिक, सिक्ख, मुस्लिम, ईसाई—सभी लोग अणुव्रती बने। अणुव्रत आन्दोलन सब धर्मों की सामान्य भूमिका बन गया।

प्रवर्तक आचार्य तुलसी

आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी जैन-परम्परा के कुशल नेता है। गौर वर्ण, मझला कद, सहज आकर्षण, प्रसन्न मुद्रा, चमकती आखें और

विशाल ललाट—यह उनका बहिर्दर्शन है। चरित्र-विकास के उन्नयन की महान् आकाक्षा, अनाग्रह और समन्वय दृष्टि का व्यवहार मे उपयोग, भौतिक शक्तियो के विकास पर आध्यात्मिकता के अकुश की सुदृढ आस्था; यह है उनका आन्तरिक व्यक्तित्व।

धन से धर्म नही होता, हृदय-परिवर्तन के विना अहिंसा नही हो सकती, वल-प्रयोग हिंसा है, पारस्परिक सहयोग सामाजिक तत्त्व है आदि-आदि जीवन-स्पर्शी मान्यताओ के वाहक होने के कारण वे क्राति के सूत्रधार है। उनके विशाल व्यक्तित्व और कुशल वक्तव्य ने अपार दिलो को छुआ है। वे आध्यात्मिक दृष्टि से भारत और अभारत को भिन्न नही मानते। वे समूचे विश्व को आध्यात्मिकता से अनुप्राणित और नैतिकता मे प्रतिष्ठित देखना चाहते हैं।

मित्तल जी ने लिखा था—"अणुव्रत चर्या की ओर प्रथम व्यवस्थित इगित महर्षि महावीर ने किया है—ऐसी मेरी जानकारी है। अत इस विचार के प्रवर्तक महर्षि महावीर माने जाने चाहिए, आचार्य तुलसी नही। मेरा दावा है कि स्वय आचार्य तुलसी जैसा महर्षि महावीर का अनुयायी यह मजूर नही कर सकता कि वह अणुव्रत-चर्या का प्रवर्तक या कल्पनाकार है। यदि आप मेरे दावे को कसना चाहे तो उसे आचार्य तुलसी के सामने पेश कीजिये और उनकी प्रतिक्रिया मुझे वताइये।"

अणुव्रत चर्या के प्रवर्तक भगवान महावीर है– यह सच है। पर अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य तुलसी हैं—यह भी उतना ही सच है। भगवान ने अपने अपने समय मे अणुव्रतो के नियमो की रचना की। गृहस्थ-जीवन मे उनका प्रवेश कराया। उस वात को आज ढाई हजार वर्ष हो गये। युग वदल गया। बुराइयो के रूप मे भी वदल गये। व्रत ग्रहण करने की परम्परा शिथिल हो गई।

आचार्य तुलसी ने व्रतो का नये रूप मे वर्गीकरण किया। वर्तमान की अपेक्षाओ को ध्यान मे रखकर उन्हे आन्दोलन का रूप दिया। उन नये वर्गीकरण और आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य तुलसी हैं।

एक बार आचार्यश्री महाप्रज्ञ से एक भाई ने पूछा—"क्या अणुव्रत का आरभ आचार्य तुलसी ने किया है ?"

आचार्य महाप्रज्ञ—"नही।"

भाई ने पूछा—"तो फिर प्रवर्तक कैसे ?"

आचार्य महाप्रज्ञ—"हम आचार्यश्री को अणुव्रत का नही किन्तु 'अणुव्रत आन्दोलन' का प्रवर्तक मानते हैं। दूसरी वात—प्रवर्तक का अर्थ केवल प्रारम्भकर्ता ही नही, सचालक भी है। सचालन का दायित्व अभी आचार्य श्री के हाथो मे है। इसलिए भी यह उपयुक्त है।"

उस भाई को इस अर्थ मे भी सदेह हुआ। "नालन्द विशाल शब्द-सागर" कोष देखा। उसमे प्रवर्तक का अर्थ सचालक मिला और प्रश्नकर्त्ता को समाधान भी मिल गया।

३.१ ८ महान् अनुष्ठान : महान् प्रयत्न

अनुष्ठान अल्प हो और प्रयत्न महान् हो—ये दोनो मार्ग परिणाम-शून्य होते हैं। सफलता का मार्ग यही है कि अल्प अनुष्ठान के लिए अल्प प्रयत्न और महान् अनुष्ठान के लिए प्रयत्न भी महान् हो।

अणुव्रतो का प्रसार एक महान् अनुष्ठान था। महान् इस अर्थ मे कि जन-जन को अणुव्रती बनाना था और इसलिए भी महान् कि जन-जन को असयम से हटाकर सयम मे स्थिर करना था। आचार्यश्री की इच्छा थी कि सब लोग अणुव्रती बने। वे अणुव्रती कहलाये या नही, यह उनकी इच्छा पर निर्भर है। किन्तु अणुव्रतो का सकल्प न हो तो अवश्य करें। कुछ बडे कहलाने वाले लोग अणव्रती बनने से झिझकते थे। उनकी झिझक को देख आचार्यश्री ने कई बार कहा 'बडे कहलाने वाले लोग अपने आपको दूध का धुला मानते है। सचमुच वे ऐसे ही हैं तो अच्छी बात है, किन्तु मै नही समझता कि वे व्रतो की आवश्यकता दूसरो के लिए ही क्यो मानते है ?

आचार्य श्री के इस तर्क ने बहुत प्रेरणा दी कि मनुष्य कहलाने का अधिकारी वही है जो सही अर्थ मे अणुव्रती है। फिर चाहे वह सहज शुद्ध भाव से अणुव्रती बना हो या आन्दोलन से प्रेरणा पाकर बना हो। राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने जब कहा—'यदि आप मुझे कोई पद दे तो मै अणुव्रत के समर्थक का पद लेना चाहता हू।' आचार्य श्री ने इसके उत्तर मे कहा—'मैं आपको अणुव्रती का पद देना चाहता हू।'

जन-जन को अणुव्रती बनाने के लिए आचार्यश्री इन पैतालीस वर्षों मे लगभग ६० हजार किलोमीटर की यात्रा कर चुके है। लाखो व्यक्तियो से आपका साक्षात्कार हुआ है। एक-एक दिन मे चार-चार पाच-पाच बार आपने प्रवचन किये। वार्तालाप और समझाने-बुझाने मे आपने बहुत समय लगाया। छोटे से छोटे व्यक्ति को आपने स्वय समझाया है। बडे-बडे शिक्षितो से भी आपने आन्दोलन की चर्चा की है। छोटे-छोटे गावो मे, जहा रवि और कवि दोनो ही कठिनाई से पहुच पाते है, वहा आप पहुचे है। आपने अनेक कठिनाइया झेलकर बडे नगरो मे प्रवास किया है। आपने विरोध के तूफानो को सहकर भी जनता को प्रकाश देने का यत्न किया है और प्रशसा को पचाकर यथार्थ कहा है। एक बार लखनऊ मे आपने कहा—'अणुव्रत आदोलन के प्रशसक व समर्थक बहुत है। मैं प्रशसा सुनते-सुनते ऊब चुका हू। अब मैं समर्थक नही, अणुव्रती देखना चाहता हू।' इस

सारी तडफ के पीछे एक ही उद्देश्य रहा है—जन-कल्याण, चरित्र-विकास, आत्मोदय। इसी उद्देश्य की लौ जलाकर आप विद्यालयो, कार्यालयो, बाजारो, मोहल्लो आदि विभिन्न स्थानो मे गए और अणुव्रत आन्दोलन से जनता को अवगत कराया।

३ १.६ सहयोगी संस्थान

अणुव्रत को आगे बढाने मे आचार्यश्री का अपना तेजस्वी व्यक्तित्व तो है ही, उसी के साथ-साथ लगभग सात सौ अकिंचन साधु-साध्वियो की एक प्रशिक्षित सेना भी समर्पित भाव से यह कार्य कर रही है। जैनेन्द्रजी बहुत बार कहते थे—"सचमुच बिना किसी अर्थ सयोजना के यह सेना जितना सार्थक तथा प्रभावी कार्य कर रही है, वह अपने आप मे अनुपम है।" काका कालेलकर ठीक ही कहते है—"भिक्षु और श्रमण शान्ति-सेना के सैनिक हैं। प्रचार और प्रसार के लिए उन्होने जीवन को लगाया है। यह उचित ही है। अणुव्रत आन्दोलन नैतिक और विचार क्राति के साथ बौद्धिक अहिंसा पर भी बल देता है। सचमुच सन्यासियो की इन पदयात्राओ ने पूर्व और पश्चिम तथा उत्तर और दक्षिण की दूरी पाटने मे भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है।'

साधु-साध्वियो के अतिरिक्त अणुव्रतियो की अनेक सस्थाए भी इस कार्य को आगे बढ़ाने मे सक्रिय व सहयोगी है। उनमे सबसे प्रमुख स्थान है 'अखिल भारतीय अणुव्रत समिति' का। श्री रविशकर महाराज, डॉ आत्माराम, श्री जैनेन्द्र कुमार, श्री यशपाल जैन, श्री जयसुखलाल हाथी भाई जैसे देश के चोटी के वैज्ञानिक, साहित्यकार, तथा राजनेता इस समिति की अध्यक्षता करते रहे है। इस केन्द्रीय समिति की देश भर मे अनेक शाखाए हैं। उनके अन्तर्गत समय-समय पर पूरे देश मे व्यसन-मुक्ति, मिलावट-विरोधी, रूढि-उन्मूलन तथा भ्रष्टाचार विरोध के लिए अभियान चलाये जाते है। इन अभियानो से अनेक स्थानो पर व्यक्तिगत चरित्र का निर्माण हुआ है। जो कि अणुव्रत की अपनी विशिष्ट उपलब्धि है। हजारो की सख्या मे लोग अणुव्रती बने हैं तथा उन्होने अपने व्यवसाय धन्धो मे प्रामाणिकता का उदाहरण पेश किया है। कई जगह पर शुद्ध खाद्यान्न भडार भी सक्रिय हुए है। साथ ही साथ अनेक स्थानो मे व्यापारियो के ऐसे व्यापारिक सगठन भी उदय मे आते रहे हैं जिन्होने व्यापार के क्षेत्र मे अपनी एक मिशाल कायम की है।

अनेक समितिया स्थानीय तौर पर चिकित्सा-शिविरो, छात्र-शिविरो, छात्र-वृत्तियो आदि के रूप मे जन-सेवा के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं।

'अ भा. अणुव्रत समिति' अणुव्रत परीक्षाओ का एक वृहद् आयोजन भी करती है जिससे हजारो की सख्या मे छात्र-छात्राए नैतिक जीवन का बोध-पाठ लेकर राष्ट्र-निर्माण की दिशा मे अपने ठोस कदम बढाते हैं।

समिति का 'अणुव्रत' के नाम से हिन्दी मे एक पाक्षिक मुख-पत्र भी निकलता है, जो नैतिक विचारो को आगे बढ़ाने में अग्रदूत पत्र का कार्य कर रहा है। तमिलनाडु समिति की ओर से 'अणुव्रतम्' नाम से भी एक मासिक पत्र प्रकाशित हो रहा है। हरियाणा से भी 'अणुव्रत भावना' के नाम से एक पाक्षिक पत्र प्रकाशित हो रहा है।

अणुव्रत साहित्य के प्रकाशन की दृष्टि से समिति के अतिरिक्त आदर्श साहित्य सघ, चूरू, का भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। काफी मौलिक तथा जीवन-प्रेरक साहित्य यहा से प्रकाशित होता रहा है।

समिति के द्वारा प्रतिवर्ष पूरे देश मे एक 'अणुव्रत उद्‌बोधन सप्ताह' का आयोजन भी होता है। इसमे देश-विदेश की ज्वलत समस्याओ पर लोक चेतना को जागृत किया जाता है। इतना ही नही, उन्हे सकल्पबद्ध भी बनाया जाता है। हजारो-हजार लोग इस दृष्टि से हर वर्ष अणुव्रत के साथ जुडते है।

अणुव्रत-पुरस्कार

अणुव्रत की भावना को व्यापकता और सम्मान प्रदान करने के लिए अणुव्रत के एक सहयोगी सस्थान 'जय तुलसी फाउडेशन की ओर से प्रतिवर्ष एक ऐसे व्यक्ति को सम्मानित/पुरस्कृत भी किया जाता है जिसकी चरित्र के क्षेत्र मे विशेष सेवाए रहती है। इस पुरस्कार की अर्थ राशि एक लाख रुपये है। अब तक यह पुरस्कार प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. आत्माराम, प्रसिद्ध साहित्यकार श्री जेनेन्द्र कुमार, प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री डॉ डी एस कोठारी, सर्वोदयी सत श्री शिवाजी भावे, प्रसिद्ध राजनेता शकरदयाल शर्मा एव शिवराज पाटिल जैसे तपे हुए अनेक महानुभावो को प्रदान किया जा चुका है। इस पुरस्कार का निर्णय देश के प्रमुख लोगो की एक तटस्थ समिति करती हैं।

अणुव्रत विश्व भारती

"अणुव्रत विश्व भारती" अणुव्रत के कार्यक्रमो को सचालन करने वाली एक महत्त्वपूर्ण सस्था है। इसका कार्यालय राजसमन्द (राज) झील के पास पहाडी पर स्थित है। इसकी मुख्य प्रवृत्तिया निम्नलिखित है।

१. विश्व शान्ति के उद्देश्य के लिए सस्था का जयपुर मे अन्तर्राष्ट्रीय कार्यालय है। जिसका विश्व की प्राय चार हजार सस्थाओ एव सगठनो से चिंतन, कार्यक्रम एव साहित्य का निरन्तर आदान-प्रदान है। अहिंसा एव विश्व-शाति के उद्देश्य पूर्ति के लिए भारत मे व विभिन्न राष्ट्रो मे पारस्परिक सहयोग से अनेक सम्मेलनो, कार्यशालाओ, चिंतन-गोष्ठियो के महत्त्वपूर्ण आयोजन, प्रकाशन व प्रचार-प्रसार कार्य बडी सफलता के साथ सचालित

होते है तथा विश्व-शान्ति हेतु कार्यरत सस्थाओ के प्रतिनिधियो की यात्राओ का क्रम बना रहता है।

२. नैतिक जागरण के उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'अणुव्रत शिक्षक ससद' के भारत व्यापी कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राय: तीस हजार विद्यालयो के शिक्षको एव छात्रों से आयोजनो, पत्राचार, साहित्य वितरण एव यात्राओ के द्वारा उनसे निरतर सीधा सपर्क स्थापित किया जाता है। 'अणुव्रत छात्र ससद' का भी शुभारम्भ हो चुका है तथा 'अभिभावक ससद' का शुभारम्भ भी निकट भविष्य मे सभावित है। अब तक लगभग लाख शिक्षको एव पच्चीस हजार छात्रो द्वारा सदस्यता ग्रहण की जा चुकी है। लाखो छात्रो को अणुव्रत वर्गीय नियमो की जानकारी दी जा चुकी है।

३. बालोदय, सर्वांगीण बाल विकास के लिए विश्व शान्ति निलयम् का निर्माण प्राय: पूर्ण हो गया है। उसमे देश-विदेश के बालको के आयुक्रम के अनुसार जीवन विज्ञान शिविरो का निरतर सचालन हो, ऐसी योजना है। वर्तमान मे शिक्षा के क्षेत्र मे एक योजना 'बालबोधि' का शुभारम्भ हो गया है। इस योजना के अन्तर्गत पाच वर्ष से सात वर्ष के बालको को बारह वर्ष के लिए गोद लिया जाता है। बारह वर्षो मे इन बालको के सुसस्कारी जीवन निर्माण के साथ शैक्षणिक, औद्योगिक, आर्थिक योग्यता एव आत्मनिर्भता संपन्न जीवन का निर्माण किया जाएगा।

इसके अतिरिक्त अणुव्रत जीवन को मूर्त्त रूप देने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोग प्रारम्भ हो गये हैं।

मेवाड-मारवाड़ के कुछ गांवो को अणुव्रत भावना से भावित करने के कुछ विशिष्ट प्रयोग भी चल रहे हैं। ऐसे अणुव्रत गांवो मे बाल-विकास, महिला-जागृति, रूढ़ि-उन्मूलन आदि कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षा-व्यवस्था, न्याय-व्यवस्था, स्वच्छता-व्यवस्था आदि से लेकर अर्थ व्यवस्था तक को सुधारने के प्रयोग शामिल हैं।

अणुव्रत की गतिविधियो का सचालन करने के लिए दिल्ली मे अणुव्रत भवन मे अणुव्रत न्यास एक महत्त्वपूर्ण अर्थ स्रोत है।

अणुव्रत के अन्तर्गत महिला जागृति का भी अपना एक उज्ज्वल अध्याय है। समाज-सरचना मे महिलाओ का अपना विशिष्ट स्थान है। अणुव्रत ने अशिक्षित और रूढ़िग्रस्त महिला समाज मे जागृति का ऐसा शंखनाद फूका हैं, जिससे अनेक महिलाए इस दिशा मे आगे आ रही हैं। कुछ महिलाओ ने जो प्रतिमान-कीर्तिमान स्थापित किये हैं वे पूरे आन्दोलन के लिए गौरव का विषय है।

३.२ ० व्रत का स्वरूप

३.२.१ व्रत का महत्त्व

भारतीय सस्कृति मे व्रत शब्द बहुत गौरववाची शब्द है। व्रत मनुष्य को सताप से बचाता है। धूप से बचाव करने के लिए छाते का जो उपयोग है अनैतिक प्रवृत्तियो से बचने के लिए व्रत का भी वही उपयोग है। व्रती व्यक्ति का जीवन सहज, सतुलित और शात होता है। यदि व्रतो के साथ सहजता, सतुलन और शान्ति का आविर्भाव नही है तो मानना चाहिए कि वे बाहर से थोपे गये है। मानस की उनके प्रति सहज स्वीकृति नही है। थोपी हुई चीज वह निष्पत्ति नही ला सकती जो सहज स्वीकृति से आती है। थोपना दो प्रकार का होता है—दूसरो के द्वारा और अपने द्वारा। अपने द्वारा थोपी हुई वृत्ति भी आन्तरिक रूपान्तरण नही ला सकती। वैसी स्थिति मे दूसरी सारी आरोपित वृत्ति चाहे वह कितनी ही शुभ क्यो न हो स्थाई परिणाम नही ला सकती।

व्रत का अर्थ—किसी कार्य को करने या न करने का मानसिक निर्णय व्रत कहलाता है। व्यवहार की भाषा मे इसे सकल्प भी कहा जा सकता है किन्तु सकल्प और व्रत मे अन्तर है। सकल्प भी मानसिक निर्णय है पर वह बुरा भी हो सकता है। अच्छा भी हो सकता है। किन्तु व्रत शुभ ही होता है।

व्रत की परिभाषाएं

० व्रत—यावज्जीवन हिंसादि पापो की एक देश (खडश) या सर्वदेश (अखड रूप से) निवृत्ति को व्रत कहते है। वह दो प्रकार का है—(१) श्रावको के अणुव्रत या एक देश व्रत तथा (२) साधुओ के महाव्रत या सर्वदेश व्रत होते हैं।

० व्रत—सामान्य का लक्षण—हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य, परिग्रह से निवृत्त होना व्रत है।

० यह करने योग्य है यह करने योग्य नही है इस प्रकार नियम करना व्रत है।

० सर्वनिवृत्ति के परिणाम को व्रत कहते है। पात्र-दान आदि शुभ कर्मो मे उसी प्रकार सकल्पपूर्वक प्रवृत्ति करना व्रत है।

० निश्चय नय से व्रत का लक्षण—निश्चय नय की अपेक्षा विशुद्ध ज्ञान, दर्शन रूप स्वभाव धारक निज आत्म तत्त्व की भावना से उत्पन्न सुख रूपी अमृत के आस्वाद के बल से सब शुभ व अशुभ राग आदि विकल्पो से रहित होना व्रत है।

० स्वात्मना कृत्वा स्वात्मनिर्वर्तन इति निश्चय व्रत— शील अर्थात् अपनी आत्मा से अपनी आत्मा मे प्रवृत्ति करने का निश्चय व्रत है।

० प्राणियो पर दया करना बहिरग व्रत है। कषायो का त्याग करना अतरग व्रत है। स्वदया है।

३.२.२ व्रत भंग का निषेध

व्रत को प्राणप्रण से निभाना, यह भारतीय सस्कृति की जनता की मन-स्थिति रही है। कहा भी गया है—रघुकुल रीत सदा चली आई, प्राण जाय पर वचन न जाई। यत्र-तत्र सर्वत्र धार्मिक साहित्य मे व्रत भग का निषेध प्राप्त होता है—

१ परमेष्ठी देवता और सर्वसघ की साक्षीकृत आहार आदि के प्रत्याख्यान का त्याग करने से तो अच्छा है मर जाना।

२ प्राणान्त होने की समावना होने पर भी गुरु साक्षी मे लिये गये व्रत को भग नही करना चाहिए क्योकि प्राणो के नाश से तो तत्क्षण ही दु ख होता है किन्तु व्रत भग से भव-भव मे दु ख होता है।

३ प्रतिज्ञा भग करने का महापाप है।

व्रत भ ग शोधनार्थ प्रायश्चित्त ग्रहण—द्रव्य, क्षेत्रादि को देखकर व्रत लेना चाहिए। प्रयत्न पूर्वक उसे पालना चाहिए। फिर भी किसी मद के आवेश से या प्रमाद से व्रत छिन्न हो जाये तो उसी समय प्रायाश्चित लेकर उसे पुन धारण करवा चाहिए।

३.२.३ व्रत : उपयोगिता

भारतीय मानस मे व्रतो के सस्कार बहुत पुराने हैं। ये हृदय की स्वतत्र भावना से लिये जाते हैं। कानून को तोडने मे सकोच नही होता। व्रतो को तोडने मे बहुत बडा पाप माना है। व्रत न लें, यह पाप है, पर लेकर उसे तोड़ डालें, यह महापाप है। यह यहा की सामान्य धारणा है।

लोग कहते हैं, इतने महर्षि हुए, व्रतो का जी भरकर उपदेश दिया पर हुआ क्या ? अनैतिकता बढी है कम नही हुई। सोचने का अपना-अपना दृष्टिकोण है। व्रतो से जो हो सकता है, वह हुआ है। जो व्रतो से नही हो सकता, उनकी आशा व्रतो से क्यो करे।

लोग व्रतो से समाज व्यवस्था चाहते हैं। पर व्रत समाज को व्यवस्था नही दे सकते। व्रत हृदय की पूर्ण स्वतत्रता और पवित्रता के प्रतीक है। व्यवस्था मे दबाव होता है। व्रत आत्मा का धर्म है। व्यवस्था सामूहिक जीवन की उपयोगिता है। व्रत अपरिवर्तित होते हैं। व्यवस्था देश-काल के परिवर्तन के साथ परिवर्तित होती रही है। जो लोग व्यवस्था की दृष्टि से व्रत का मूल्य आकते हैं उनकी धारणा मे व्रत असफल रहे हैं। व्रतो के

आचरणो से समाज की भोग-वृत्ति पर अकुश रहा है। हिंसा को खुलकर खेलने का मौका नही मिला है। अत व्रत समाज की आत्मा के प्रेरक रहे हैं तथा व्यक्ति की स्वतत्रता और पवित्रता को बढाने वाले होते हैं।

व्रती व्यक्ति के व्यवहार मे नैतिकता स्वय फलित होती है। जिस नैतिकता के साथ अध्यात्म का अनुबन्ध नही है, वहा नैतिकता का शुद्ध स्वरूप सुरक्षित नही रह सकता। अध्यात्म विहीन नैतिकता देश, काल और परिस्थिति के अनुरूप परिवर्तित होती है और वह मात्र सामयिक अपेक्षा मात्र बनकर रह जाती है। व्रतो का ग्रहण नैतिकता को आध्यात्मिक पृष्ठभूमि प्रदान करता है।

व्रती व्यक्ति का जीवन-क्रम अधिक व्यवस्थित रह सकता है। यह दो दृष्टियो से मननीय है। व्रतो की उच्चतम भूमिका पर आरोहण करना बडा आदर्श है। हर व्यक्ति का लक्ष्य आदर्श तक पहुचना होता है। किन्तु वह व्यवहार को छोडकर थोथे आदर्श की उडान नही भर सकता। वही आदर्श उपयोगी होता है जो व्यवहार्य हो सके। कुछ व्यक्ति आदर्श पर चल सकते है पर हर व्यक्ति के लिए वैसा करना सभव नही होता है। इसलिए मध्यम मार्ग की बात ध्यान मे रखी गई है। अणुव्रतो को स्वीकार करने वाला व्यक्ति महाव्रतो की ऊचाइयो और अव्रत की खाइयो के बीच ठोस धरातल पर चलता हुआ सतुलित और सयत जीवन जी सकता है।

३.२.४. व्रत और भगवान महावीर

भारतीय दर्शन का आधार स्तम्भ है—आचार पक्ष। पुरुषार्थ चतुष्टय मे मोक्ष चरम बिन्दु है। व्यक्ति श्रेष्ठ आचार दर्शन को अपनाकर ही मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। आचार-दर्शन की दृष्टि से सपूर्ण भारतीय दर्शन मे अत्यधिक समानता है। व्रत की अवधारणा वैदिक, जैन और बौद्ध तीनो परम्परा मे प्राप्त है। जैन दर्शन आचार पक्ष का अनुपम उदाहरण है। भगवान महावीर जैन धर्म के चौबीसवे एव अन्तिम तीर्थंकर हुए हैं।

उन्होने व्रत चर्या का प्रतिपादन कर धर्म को दो भागो मे विभक्त किया—मुनि धर्म और श्रावक धर्म। मुनियो के लिए पाच महाव्रतो की व्यवस्था की और श्रावको के लिए पाच अणुव्रतो, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतो की। महात्मा बुद्ध ने मध्यम प्रतिपदा का विधान भिक्षुओ के लिए किया। भगवान महावीर ने मध्यम मार्ग का प्रतिपादन गृहस्थो के लिए किया। वह है—अणुव्रत। वह हिंसा और अहिंसा के बीच का मार्ग है, यथा-शक्य अहिंसा का मार्ग है।

हिंसा जीवन का पूर्ण असयम है और अहिंसा जीवन का पूर्ण सयम। पूर्ण असयम मे रहना मनुष्य के लिए अहितकर है और पूर्ण सयम की साधना

कठिन है। अणुव्रत इस चिन्तन का निष्कर्ष है कि मनुष्य पूर्ण सयम न कर सके तो न्यूनतम सयम अवश्य करे। वह न्यूनतम सयम ही अणुव्रत है।

अणुव्रत चर्या के निर्माण के समय, ढाई हजार वर्ष पूर्व, वातावरण मे अनैतिकता व्याप्त थी। अमानवीय दृष्टिकोण ने सामाजिक व्यवस्था को खोखला कर दिया था। समाज का अन्तिम वर्ग शुद्र अन्य उच्च वर्गों से दया की भीख माग रहा था। इस समय सामाजिक कुरूढियो की प्रधानता थी। जातिवाद, दास-प्रथा, हिंसक यज्ञ, अनुष्ठान, भेदभाव, असहिष्णुता, हिंसा इत्यादि के कारण व्यक्ति और समाज सन्त्रस्त था।

समाज मे आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यो को प्रतिष्ठापित करने तथा व्यक्ति को आध्यात्मिक ऊचाई प्रदान करने के लिए भगवान महावीर ने व्रत चर्या का प्रतिपादन किया। ये है—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ।

३.२.५ श्रावक की आचार संहिता

धर्म का आधार है—समता और सयम। जो व्यक्ति पूर्ण सयम की साधना कर उत्तरोत्तर विकास कर रहे है उनके पाच महाव्रतो का मार्ग है। जो व्यक्ति ऐसा करने मे असमर्थ है, उनके लिए १२ व्रत रूप सयम धर्म प्रतिपादित है—पाच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षा व्रत। इन बारह व्रतो मे गृहस्थ धर्म की सपूर्ण आचार सहिता का समावेश हो जाता है। मूलभूत तत्त्व इनमे पाच अणुव्रत ही है। गुणव्रत और शिक्षाव्रत अणुव्रतो के पोषक है। उन्हे भी स्वतत्र व्रतो की स्वीकृति मिली हुई है।

अणुव्रतो के नाम व सक्षिप्त विवरण—

१ अहिंसा अणुव्रत २ सत्य अणुव्रत ३. अचौर्य अणुव्रत ४. ब्रह्मचर्य अणुव्रत ५ अपरिग्रह

तीन गुणव्रत—१ दिग्व्रत २. भोगोपभोग परिमाणव्रत ३. अनर्थ-दण्ड विरति व्रत

चार शिक्षा व्रत—(अभ्यास के व्रत) १. सामायिक व्रत २. देशावकाशिक व्रत ३. पौषधोपवास व्रत ४. अतिथि-सविभाग व्रत।

अणुव्रत स्वरूप बोध

१. अहिंसा अणुव्रत—अहिंसा अणुव्रत मे स्थूल हिंसा से बचने का सकल्प होता है। निरपराध चलने-फिरने वाले प्राणियो की सकल्प पूर्वक हिंसा स्थूल हिंसा कहलाती है। अहिंसा अणुव्रत की साधना करने वाला व्यक्ति उक्त वृत्तियो और प्रवृत्तियो से अपने व्रत को सुरक्षित नही रख सकता।

अहिंसा व्रत की सुरक्षा के लिए अणुव्रती व्यक्ति किसी का वध नही

कर सकता। किसी को बन्धन मे नही डाल सकता। किसी का अग-भग नही कर सकना। किसी मनुष्य या पशु पर अति भार नही लाद सकता। किसी की आजीविका का विच्छेदन नही कर सकता और आगजनी जैसे क्रूर कर्म नही कर सकता।

२. **सत्य अणुव्रत**—दूसरा व्रत सत्य अणुव्रत है।

इस व्रत को स्वीकार करने वाला वैवाहिक सबध, पशु-विक्रय, भूमि-विक्रय, धरोहर साक्षी आदि के सबध मे असत्य भाषण का परिहार करता है।

सत्य अणुव्रत की साधना मे सलग्न व्यक्ति किसी पर किसी प्रकार का दोषारोयण नही कर सकता। षड्यन्त्र का आरोप नही लगा सकता। गुप्त रहस्य का प्रकाशन नही कर सकता और कूट लेख जैसे छलना पूर्ण व्यवहार नही कर सकता।

सत्य की साधना से अहिंसा को पोषण मिलता है। अहिंसा सत्य को सबल देती है।

३. **अचौर्य अणुव्रत**—तीसरे अणुव्रत मे ताला तोडने वाले, जेब कतरने, डाका डालने और दूसरो के स्वामित्व का अपहरण जैसी जघन्य प्रवृत्तियो का परिहार होता है। इस व्रत की गहराई मे उतरने के लिये चोरी की वस्तु लेना, राज्य की निषिद्ध वस्तु का आयात-निर्यात करना, असली दिखाकर नकली वस्तुए बेचना, मिलावट करना, तोल-माप मे कमी-वेसी करना तथा रिश्वत देना आदि छलना भरे कार्यो से अपने आपको दूर हटाना अपेक्षित है।

४. **ब्रह्मचर्य अणुव्रत**—चौथा अणुव्रत पवित्रना की दिशा मे गति की प्रेरणा देता है। ब्रह्मचर्य की परिपूर्ण साधना सभव न हो उस स्थिति मे विवाहित पति-पत्नि के अतिरिक्त अनैतिक सबध का परित्याग ब्रह्मचर्य अणुव्रत है। व्रत की निरतिचार परिपालना के लिए भगवान ने पर पुरुष-गमन, वैश्यागमन, अप्राकृतिक मैथुन, तीव्र कामुकता तथा अमेल विवाह जैसी दुष्प्रवृतियो से बचने का मार्ग सुझाया। जो व्यक्ति जिस सीमा तक इन प्रवृत्तियो से बचता है उसकी चेतना उतनी ही ऊर्ध्वारोहण कर सकती है।

५ **अपरिग्रह अणुव्रत**—परिग्रह दो प्रकार का होता है—

१ वस्तु परक और २ मूर्च्छा परक। मूर्च्छा टूट जाए तो वस्तु के होने या न होने मात्र से परिग्रह का सबध नही रहेगा। जब तक मूर्च्छा नही टूटती उसको कम करने के लिए अपने स्वामित्व की सीमा का निर्धारण आवश्यक हैं। अधिक वस्तु सग्रह परिग्रह है। सीमा का निर्धारण बहुत कठिन है। अपरिग्रह अणुव्रत की साधना करने वाले व्यक्ति अपने अधिकार मे प्राप्त भूमि, मकान, पशु, पक्षी, सोना, चादी आदि का सीमाकन कर अपनी

लालसा का सवरण करता है ।

अणुव्रतो की साधना से अमानवीय और अनैतिक वृत्तियो को परिमार्जित कर प्रशस्त जीवन जीया जा सकता है ।

अणुव्रत और शिक्षाव्रतो का परस्पर सबध है । बारह व्रतो की परिकल्पना उन लोगो के लिए की थी जिनके अन्त करण मे धार्मिकता के अकुर निकल रहे थे । धार्मिक व्यक्ति नैतिक मूल्यो के साथ धर्मोपासना को महत्त्व देते है । उपासना से नैतिक बल मिलता है ।

१. **दिग्व्रत**—व्यक्ति अपने कार्य क्षेत्र का निर्धारण करता है। यातायात के साधनो को सीमित करता है । निर्धारित क्षेत्र, सीमाओ के बाहर अपने हस्तक्षेप का सवरण करता है ।

२. **भोगोपभोग परिमाण व्रत**—इसमे व्यक्ति उपभोग-परिभोग परिमाण वृत मे आने वाले पदार्थो का सीमाकरण करता है । निस्सीम इच्छाए व्यक्ति को आनन्दोपलब्धि से विपरीत दिशा मे ले जाती हैं । वस्तु का अभाव होने पर भी अतृप्त आकाक्षा मानसिक व्यथा का निमित्त बनती है । दूसरे गुणव्रत से अपरिग्रह अणुव्रत को पोषण मिलता है और व्यक्ति की भोग्य पदार्थो के प्रति होने वाली लालसा नियन्त्रित होती है ।

३ **अनर्थदण्ड विरति व्रत**--अहिंसा का प्रतीक है । सामाजिक व्यक्ति को प्रयोजन वश हिंसा आदि मे प्रवृत्त होना पडता है किन्तु अपध्यान और प्रमादवश जो अनर्थकारी प्रवृत्तिया होती है उनका निरोध अपेक्षित है ।

ये तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत पाच अणुव्रतो के साथ मिलकर बारह व्रत बन जाते हैं । भगवान महावीर ने श्रावक धर्म की पृष्ठभूमि मे इन्ही व्रतो की चर्चा की है । इनके द्वारा वर्तमान समस्याओ को भी समाहित किया जा सकता है ।

३.३.० अणुव्रत आन्दोलन : दार्शनिक पृष्ठभूमि (A Philosophical Viewpoint)

३.३.१ व्यक्ति और समाज

समाज का आधार परस्परावलम्बन है । एक दूसरे को सहारा देता है और एक दूसरे से सहारा लेता है, यह परस्परावलम्बन है । समाज का आधार एक क्षेत्रीयता नही किन्तु एक सूत्रता है । एक गाव मे हजार आदमी एकत्र हैं किन्तु वे परस्पर सहयोग के धागे मे बधे हुए नही हैं तो वे हजार व्यक्ति हैं, एक समाज नही है । सहयोग के सूत्र मे बधे हुए पाच व्यक्तियो का भी समाज बन जाता है । व्यक्ति की अन्तिम सीमा-रेखा स्वार्थ है और समाज की आदि रेखा परार्थ है । जितना स्वार्थ है, वह अपना है । जितना परार्थ वह सहयोग है । यह सहयोग ही व्यक्ति के व्यक्तित्व को सामाजिक रूप मे

बदल देता है यह स्वार्थ-सयम से ही सभव होता है।

हर व्यक्ति सामाजिक जीवन जीता है। वह अपने व्यक्तित्व को समाज से सम्बद्ध करता है किन्तु विलीन नही करता। समाजवादी दर्शन ने यह दृष्टि दी कि व्यक्ति अपने को पूर्ण रूपेण समाज मे विलीन कर दे पर ऐसा नही हुआ और हो भी नही सकता। जहा व्यक्ति को भौतिक स्पर्धाओ मे से गुजरने की छूट है और भौतिक विकास ही परम लक्ष्य है, वहा व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को समाज मे विलीन नही कर सकता।

यद्यपि समाजवाद या साम्यवाद स्वार्थ-सयम कि प्रक्रिया है, फिर भी उसके पास स्वार्थ-सयम का कोई प्रबल सूत्र नही है। उसे स्वार्थ-सयम का वैधानिक प्रयोग माना जा सकता है किन्तु वह उस (स्वार्थ-सयम) की प्रत्यक्ष प्रेरणा नही है। समाजवादी पद्धति मे बल-प्रयोग से स्वार्थ को सीमित किया गया है, किन्तु उससे स्वार्थ का स्रोत सूखा नही है।

३.३.२ स्वार्थ-संयम और अध्यात्म

साम्यवादी जीवन-पद्धति इसी मनोवृत्ति की प्रतिक्रिया है। साम्यवाद को स्वार्थ-सयम का विधान-प्रेरित प्रयोग माना जा सकता है। उसमे स्वार्थ-सयम की प्रत्यक्ष प्रेरणा नही है। किन्तु वैधानिक ढग से स्वार्थ को सीमित करने से वह (स्वार्थ-सयम) फलित होता है। कानून की जकड मे भी कुछ न कुछ (स्व) का पोषण चलता ही है। कानून की जकड ढीली हो जाए तो वह अधिक मात्रा मे चल सकता है। इसका फलित यही हुआ कि साम्यवादी जीवन-पद्धति मे भी व्यक्ति अपने (स्व) को सुरक्षित रखे हुए है।

लोकतन्त्रीय जीवन-पद्धति मे (स्व) को सरक्षण प्राप्त है। वहा कानून की जकड कठोर नही है इसलिए वहा स्वार्थ-पोषण की सभावनाए मुक्त है।

किसी भी जीवन-पद्धति मे व्यक्ति का (स्व) खडित नही है अह (मैं) के सग्रह का विसर्जन नही है। यह अह का सग्रह ही सब दोषो का उत्पत्ति बीज है। हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह ये सब किसलिए हैं ? अपने लिए और केवल अपने लिए।

जितनी भी पदार्थवादी पद्धतिया है 'स्व' का निरसन करने मे असमर्थ है। उनका आधार भौतिकता है। भौतिकतावादी व्यवस्था (स्व) का शोधन नही करती, नियमन करती है। फलत वह प्रत्यक्ष मे शान्त और परोक्ष मे उद्दीप्त रहता है। इसलिए व्यक्ति छिपे-छिपे अनैतिक आचरण करता है।

आध्यात्मिकता का अर्थ है अन्तर्-जगत् मे प्रवेश। वहा पहुचने पर व्यक्ति सामाजिक होते हुए भी अकेला रहता है। बाह्य-जगत् का वह उपयोग करता है किन्तु उसके प्रति उसका 'स्व' या 'ममत्व' नही होता। यह ममत्व का विसर्जन या स्वार्थ-सयम ही आध्यात्मिकता है। अणुव्रत आन्दोलन की

आधार भित्ति यही है।

३.३.३ समाज-परिवर्तन की अक्षमता

कुछ लोग इस भाषा मे सोचते है कि आध्यात्मिकता से सामाजिक परिवर्तन नही हो सकता। हजारो वर्ष वीत जाने पर भी आध्यात्मिक लोग समाज को नही बदल सके है। समाजवादी पद्धति ने पचास वर्षो मे समाज का ढांचा ही बदल दिया है। उनका सोचना सही है। समाज का ढाचा बदलता है आर्थिक विकास और व्यवस्था से। जहा औद्योगिक क्राति हुई है, वहा समाज का रूप-परिवर्तन हुआ है। फिर वहा समाजवादी पद्धति है या जनतन्त्रीय प्रणाली।

समाज की जो अपेक्षाए है—रोटी, कपडा, मकान, दवा, शिक्षा आदि वे सब अर्थ के अधीन है। अर्थाधीन व्यवस्था की पूर्ति की अपेक्षा आध्यात्मिकता से की जाए, यह मूल मे भूल है। इस प्रकार आध्यात्मिकता से होने वाले सामाजिक लाभ की अपेक्षा अर्थव्यवस्था से की जाए वह भी मूल मे भूल है। हमे हर वस्तु का मूल्याकन उसके वास्तविक अस्तित्व के आधार पर करना चाहिए।

३.३.४ आध्यात्मिकता क्यो ?

आर्थिक विकास और व्यवस्था होने पर भी आज का सम्पन्न मनुष्य उतना ही अर्थ लोलुप है, जितना पहले था। वैज्ञानिक विकास अपने चरम शिखर पर है, फिर भी आज का विज्ञानजीवी मनुष्य उतना ही आक्रामक है, जितना पहले था।

शिक्षा का स्तर बहुत ऊचा होने पर भी आज का शिक्षित मानव उतना ही स्वार्थी है, जितना पहले था।

आर्थिक, वैज्ञानिक और शैक्षणिक विकास ने मनुष्य के व्यवहार को बदला है पर उसी को बदला है, जो उनसे सबधित है। मनुष्य मे ऐसी अनेक मूल प्रवृत्तिया हैं, जिन्हे ये नही बदल सकते। क्रोध, अभिमान, कपट, लोभ, भय, शोक, घृणा, काम-वासना, कलह ये मनुष्य की शाश्वत मूल प्रवृत्तियो से उत्पन्न होने वाले दोष उनसे नही मिटते। मूल प्रवृत्तियो का नियत्रण या शोधन आध्यात्मिकता से ही हो सकता है, इसलिए समाज मे उसका अस्तित्व अनिवार्य है।

आध्यात्मिकता से भले ही समाज का रूप परिवर्तन न हुआ हो, किन्तु उससे सत्य के प्रति आस्था की सृष्टि हुई है।

चरित्र और नैतिकता के प्रति जो आस्था है, वह आध्यात्मिकता का ही प्रतिफलन है। अध्यात्म का अकन सख्या से नही किया जाता। उसका

अकन गुणवत्ता से किया जाता है। आध्यात्मिक व्यक्तियो का जीवन इसका स्वय भू प्रमाण है।

३.३.५ अध्यात्म का व्यावहारिक रूप

जिन विचार धाराओ ने मनुष्यो को भौतिक इकाइयो मे विभक्त किया है, वे सब काल्पनिक और सामायिक हैं। आध्यात्मिकता का प्रतिबिम्ब मानवीय विभक्ति नही किन्तु एकता है। उसके अनुसार भौगोलिक, जातीय, साम्प्रदायिक, भाषायी—ये भेद अस्वाभाविक है, एकता स्वाभाविक है।

आध्यात्मिक व्यवहार की स्वीकृति के मुख्य अग है ·

१. मानवीय एकता मे विश्वास
२, मानवीय स्वतत्रता मे विश्वास
३ विश्व-शान्ति एव विश्व-मैत्री मे विश्वास
४. सह-अस्तित्व में विश्वास
५ सत्य मे विश्वास
६ प्रामाणिकता मे विश्वास
७ निश्छल व्यवहार मे विश्वास
८ पवित्रता मे विश्वास
९ सग्रह की सीमा मे विश्वास

ये विश्वास धर्म के मूलभूत सिद्धातो मे आस्था को प्रकट करते हैं। प्रथम चार विश्वास अहिंसा अणुव्रत के फलित है। पाचवा सत्य, छठा-सातवा अचौर्य, आठवा ब्रह्मचर्य और नवा अपरिग्रह का फलित है।

व्यवहार मे अध्यात्म का प्रतिपालन जीवन की महान् सफलता है। इससे व्यक्ति और समाज दोनो लाभान्वित होते हैं।

ज्ञान मे बहुत विश्वास है और किया जाता है पर उस पर ज्ञान से सफलता का विश्वास नही किया जा सकता, जो साधना शून्य है। अणुव्रत आन्दोलन मात्र ज्ञान का आन्दोलन नही है, वह साधना का भी आदोलन है। इसमे ज्ञान की अपेक्षा नही है, ऐसा नही है। किन्तु इसमे साधना की प्रधानता है। ऐसे अनेक लोग है, जो बुराई को जानते है पर छोड नही पाते। बुराई को बुराई न जानने वाला उसे न छोडे वह अज्ञान है। पर बुराई को बुराई मानने वाला उसे न छोडे, वह कुछ और है। इससे फलित होता है कि बुराई कोरे ज्ञान से नही छूटती। उसे छोडने के लिए कुछ और भी अपेक्षित है। वह है साधना अर्थात् अभ्यास। साधना का तात्पर्य है कि ज्ञान को अभ्यास की आच मे पकाना और उतना पकाना, जिससे जानने और करने के बीच की दूरी मिट जाए। आत्म-चिन्तन ध्यान और मैत्री का अभ्यास यह अणुव्रत की साधना है। इससे गृहीत व्रत सिद्ध होते हैं, सुख और शान्ति के

प्रति काल्पनिक मान्यता वास्तविकता मे बदल जाती है।

३.३.६ संयम का अर्थ

मनुष्य अपूर्ण है। अपूर्ण इस अर्थ मे है कि वह अपेक्षाओ से घिरा हुआ है। उसके शरीर है, इसलिए खाने-पीने की अपेक्षा है। उसके वाणी है इसलिए उसे समाज की अपेक्षा है। उसके मन है, इसलिए मान-सम्मान एव पूजा-प्रतिष्ठा की अपेक्षा है। एक मनुष्य, हजारो अपेक्षाए। वे पूरी होती है बाह्य जगत् से। वह बाह्य जगत् से लेता है और अपने मे भरता है। यह आदान/ग्रहण उसकी व्यक्तिगत सीमा को तोड उसे सामाजिक बना देता है व्यक्ति यदि निरपेक्ष होता, बाहर से कुछ भी लेना अपेक्षित नही होता तो वह व्यक्ति ही होता। किन्तु ऐसा नही है इसीलिए वह व्यक्ति और सामाजिक दोनो रूपो मे अवस्थित है।

समाज की शृखला अपेक्षा है और वही हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य और परिग्रह का उद्गम-हेतु है। पूर्णता की ओर बढने का मार्ग है अपेक्षाओ का सयम। अपेक्षाओ के सयम का अर्थ है हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य और परिग्रह का सयम।

सयम का अर्थ है—उस व्यक्तित्व का विकास, जो बाह्य से निरपेक्ष होकर अपने-आप मे परिपूर्ण, संतुष्ट और परितृप्त है।

सयम का अर्थ है—उस व्यक्तित्व का विनाश. जो बाह्य से अधिक सम्बद्ध होकर अपने आपमे अपूर्ण, असतुष्ट और अतृप्त रहता है।

निरपेक्षता की स्थिति ध्यान की उत्कृष्ट साधना के द्वारा प्राप्त हो सकती है। अति-सापेक्षता की स्थिति ध्यान की साधना से शून्य व्यक्ति मे होती है। तीसरी स्थिति ध्यान की मध्यम साधना से प्राप्त हो सकती है। उसमे अपेक्षाए रहती हैं पर निरकुश नही। उनकी पूर्ति का प्रयत्न किया जाता है, पर येन-केन प्रकारेण नहीं। इस सस्कार धारा मे हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य और परिग्रह की प्रवृत्ति सीमित हो जाती है। यही 'अणुव्रत' है। परिभाषा की शब्दावली मे ध्यान की मध्यम साधना द्वारा अपेक्षाओ का परिसीमन और फलत. हिंसा आदि का परिसीमन ही 'अणुव्रत' है।

३.४.० अणुव्रत आन्दोलन : वर्तमान स्वरूप (Present Status)

अणुव्रत नया तत्त्व नही है पर वर्तमान की समस्याओ के सदर्भ मे नया रूप है। समस्याओ के समाधान मे जिन व्रतों की आवश्यकता है उन्हे 'अणुव्रत' मे सकलित किया गया है। अणुव्रत शब्द जैनागमो से लिया गया है पर यहा इसका प्रयोग छोटे-छोटे 'व्रत' इस सामान्य अर्थ मे किया गया है। व्रत छोटे-बड़े नही होते हैं। वे अपने आप मे पूर्ण होते हैं किन्तु आचरण की क्षमता की भिन्नता के आधार पर उसके दो स्तर हैं—महाव्रत और अणुव्रत।

सीमा रहित, बिना किसी छूट के व्रतो का स्वीकार महाव्रत है। विभिन्न छूटो एव सीमा के साथ स्वीकार किये जाने वाले व्रत अणुव्रत कहलाते हैं।

३.४.१. अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition)

आचार्य तुलसी के अनुसार —"अणुव्रत क्या है ? शाब्दिक दृष्टि से अणुव्रत का अर्थ है 'छोटा' और व्रत का अर्थ है 'नियम'। छोटे-छोटे नियमो की एक आचार-सहिता के रूप मे सकलन। भावात्मक दृष्टि से।

अणुव्रत का अर्थ है—

- चरित्र निर्माण की प्रक्रिया
- सर्व सम्मत मानव जीवन की आचार सहिता
- सम्प्रदाय विहीन धर्म का प्रयोग

अणुव्रत इसमे सम्प्रदाय गौण है और धर्म मुख्य है। उपासना गौण है, चरित्र प्रधान है। केवल अगले जीवन की चिन्ता गौण है, वर्तमान जीवन की पवित्रता मुख्य है। रूढ परम्पराए-कर्मकाण्ड गौण है, प्रायोगिक जीवन प्रधान है। साम्प्रदायिक मतवाद का आग्रह गौण है, सब धर्म सम्प्रदायो के साथ सद्भाव का प्रयत्न मुख्य है। मानव-मानव का अपना धर्म है, 'अणुव्रत' जो असाम्प्रदायिक और निर्विशेषण धर्म का प्रतीक है।"[1]

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार "अणुव्रत चरित्र विकास के लिए किये जाने वाले सकल्प है। स्वरूप की दृष्टि से व्रत एक है। व्रत का काम है आत्मा और उसे अपवित्र बनाने वाली दुनिया के बीच मे दीवार खडी करना पर दीवार कमजोर भी हो सकती है और मजबूत भी। अभ्यास के आरम्भ मे वह उतनी मजबूत नही बनती जितनी की अभ्यास करते-करते युगो बाद बनती है। व्रत के प्रारभिक या अल्प-अभ्यास को अणु कहा गया है। आत्मा और अपवित्रता के बीच लोहावरण सघन नही बना, दीवार मजबूत नही बनी, इसलिए इसका नाम अणुव्रत हो गया।"[2]

किशोरलाल घ मश्रुवाला के अनुसार—"अणुव्रत का अर्थ है—प्रत्येक व्रत का अणु से लेकर सब व्रतो का क्रमश बढता हुआ पालन। उदाहरण के लिए कोई आदमी जो अहिंसा और अपरिग्रह मे विश्वास रखता है, लेकिन उसके अनुसार चलने की ताकत अपने मे नही पाता, इस पद्धति का आश्रय लेकर किसी विशेष हिंसा से दूर रहने या एक हद के बाहर और किसी खास ढग से सग्रह न करने का सकल्प करेगा और धीरे-धीरे अपने लक्ष्य की ओर बढेगा। ऐसे व्रत अणुव्रत कहलाते हैं।"[3]

---

१ अणुव्रत आचार सहिता।

२ अणुव्रत की दार्शनिक पृष्ठभूमि पृष्ठ ३,४।

३. जन-जन की दृष्टि मे : अणुव्रत आन्दोलन, पृष्ठ १६५।

डॉ नथमल टाटिया के अनुसार—"अणुव्रत बहुचर्चित विषय है। यह जीवन-विकास का मध्यम मार्ग है। अणुव्रत अव्यवहार्य को व्यवहार्य बनाता है। मनुष्य अपनी सारी प्रवृत्तियो मे ऐसा मध्यम मार्ग अपनाकर समाज एव राष्ट्र को उन्नत बना सकता है। वह अनावश्यक सघर्षों से मुक्त रह सकता है और सुखी समाज रचना मे प्रवृत्त हो सकता है। अणुव्रत सामूहिक जीवन विकास का एक मगल मार्ग है। वह एक शब्द या कल्पना मात्र नही है। बल्कि भोग और त्याग के सच्चे समन्वय का दिग्दर्शक एव राजपथ है।"[1]

सुरजीतसिंह लाहिडी, तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश, कलकत्ता उच्च न्यायालय के अनुसार—'अणुव्रत आदोलन का उद्देश्य गहस्थो का नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान करना है और इसके लिए वह उन्हे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य की एक निर्धारित सीमा तक प्रतिज्ञाए लेने की प्रेरणा देता है। इसका लक्ष्य है कि मनुष्य अपनी प्रकृति का नैतिक रूपान्तरण करे। इस आन्दोलन के सूत्रधार आचार्यश्री तुलसी स्वय एक महाव्रती हैं इसीलिए वे साधारण व्यक्तियो से अणुव्रत की प्रतिज्ञाए लेने का अनुरोध करते हैं।"[2]

रामसेवक श्रीवास्तव, सह-सपादक के अनुसार—'अणुव्रतो का विधान व्रतो का समीकरण या सयम और असयम, सत्य और असत्य, अहिंसा और हिंसा, अपरिग्रह और परिग्रह का मिश्रण नही अपितु जीवन की मर्यादा का स्वीकरण है।

अणुव्रत आदोलन मूलत चारित्रिक आदोलन है। नैतिकता और सत्याचरण ही इसके मूलमत्र हैं। आत्म-विवेचन और आत्म-परीक्षण इसके साधन हैं। कल्याण ही जीवन का परम सत्य है। जिसकी साधना आचरण है। अणुव्रत आन्दोलन उसी की भूमिका है।"[3]

३.४.२ प्रकृति एवं स्वरूप (Nature)

अणुव्रत आदोलन की प्रकृति प्रारम्भ से ही असाम्प्रदायिक रही है। यह जनता को जैन धर्म या तेरापथ मे दीक्षित करने का उपक्रम नही था। इसका विशुद्ध उद्देश्य था - चरित्र विकास। नामकरण करते समय यह विकल्प उठा कि यह आदोलन जैन-अजैन सभी के लिए है, तब इसका नाम अणुव्रत आदोलन क्यो रखा जाए ? लोग इसे असाम्प्रदायिक कैसे मानेंगे ? और-और नाम सोचे गये, पर उपयुक्त नाम जचा नही। अणुव्रत अनुशास्ता का यह विचार था कि नाम बहुत बडा और काम छोटा, यह नही

१ जन-जन की दृष्टि मे अणुव्रत आन्दोलन पृ २३५
२. वही, पृ. २४५
३. वही, पृ २९५

चाहिए। अणुव्रत शब्द इस भावना का प्रतिनिधित्व करने मे समर्थ है। छोटे-छोटे व्रतो से बडा काम हो सकता है, इस सकल्प की पृष्ठभूमि पर आदोलन को 'अणुव्रत आदोलन' की सज्ञा मिली।

प्रारम्भ मे एक कठिनाई थी। लोग जब आचार्यश्री तुलसी को साम्प्रदायिक मानते थे, तो उनके आदोलन को असाम्प्रदायिक कैसे मान लेते? यह कोई अस्वाभाविक बात नही थी कि लोग उसे साम्प्रदायिक रूप से देखे। प्रारम्भ मे आदोलन सम्प्रदाय की दृष्टि से ही देखा जाता रहा। आदोलन के पहले वर्ष मे आचार्य श्री जयपुर मे चतुर्मास बिता रहे थे। वहा डॉ राजेन्द्र प्रसाद आए। उन दिनो वे भारतीय विधान परिषद् के अध्यक्ष थे। अणुव्रत आदोलन की चर्चा चलने पर उन्होने कहा—'इसका प्रसार तीव्र गति से होना चाहिए।' आचार्यश्री ने कहा--'हम भी चाहते है, पर अभी एक कठिनाई है।'

डॉ राजेन्द्र प्रसाद—'वह क्या?'

आचार्यश्री—'यही कि दूध से जला छाछ को भी फूक कर पीता है। लोग आदोलन को अभी साम्प्रदायिक दृष्टि से देखते हैं।'

डा राजेन्द्र प्रसाद—'यह दृष्टिकोण अपने आप मिट जाएगा, जैसे-जैसे लोग सपर्क मे आएगे।'

आचार्यश्री—'हम यही चाहते है कि लोग इस भावना को समझे और जिस चरित्र बल की आवश्यकता है, उसे सहसा पूर्ण करे।' प्रारम्भ मे प्रत्येक प्रवृत्ति को कठिनाई का सामना करना पडता है? अणुव्रत आदोलन भी उसका अपवाद कैसे हो सकता था। किन्तु जिसका मूल प्रकाशमय होता है, उसका भविष्य आवरणमय नही हो सकता। एक दो वर्ष के सतत प्रयास के बाद आवरण टूट गया, आदोलन जनता का बन गया।

जैन, वैष्णव, सनातनी—ये सब हिन्दू समाज के अग हैं। वे अणुव्रती बने। इससे अणुव्रत का असाम्प्रदायिक अस्तित्व प्रगट होता है। पर इसे आश्चर्य नही कहा जा सकता। आश्चर्य वह है कि मुसलमानो और ईसाइयो को भी अणुव्रत मे अपने-अपने धर्मो की झलक मिली।

दिनाक १७ अगस्त, १९६० को अमेरिका के भारत स्थित सास्कृतिक सचिव श्री डकन इमरिक ने आचार्यश्री से वार्तालाप करते हुए कहा—'मुझे लगता है प्रभु क्राइस्ट ने जो दर्शन दिया है, अणुव्रत आदोलन उसी के समान है। प्रभु क्राइस्ट ने जिस मनोवैज्ञानिक ढग से समाज मे व्याप्त विकृतियो को दूर करने का प्रयास किया, अणुव्रत आदोलन उसी प्रकार छोटे-छोटे व्रतो द्वारा समाज की विकृतियो का परिष्कार कर रहा है।'

फ्रासीसी वाणिज्य महादूत श्री ए० मासामोद अपने उपवाणिज्य

महादूत श्री जे० एम० पेसि सहित आए। उन्होने अणुव्रत आदोलन सबधी अनेक प्रश्न पूछे और समुचित समाधान पाकर ऐसा विश्वास व्यक्त किया कि अणुव्रत आदोलन को विश्व मानवता की रक्षा करने मे सफलता मिलेगी। उन्होने बातचीत के क्रम मे बतलाया कि फ्रासीसी लोगो मे इसके प्रति विशेष अभिरुचि है और इसका प्रचार विदेशो मे होना चाहिए। पश्चिमी देश ऐसे आदोलन को अत्यत आवश्यक समझते हैं। मैं आश्वासन देता हू कि मै अणुव्रत आदोलन के प्रचार-प्रसार मे पूर्ण सहयोग करूगा।

अणुव्रती फादर जे० एस विलियम

आचार्यश्री बम्बई से विदा हो रहे थे। उस समय इडियन नेशनल चर्च के अध्यक्ष फादर जे० एस० विलियम ने कहा—'मैं कुछ दिन पूर्व नॉर्वे मे होनेवाली शाति परिषद् मे भाग लेने जा रहा था। आचार्यश्री की प्रेरणा से मैंने अणुव्रत ग्रहण किए।

दिसम्बर की भयानक सर्दी मे मैं वहा पहुचा। साथियो ने कहा—'मदिरा के बिना इस शीत प्रदेश मे ठिठुर जाओगे।' पर मैं अणुव्रत ले चुका था। मैं मदिरा कैसे पीता ? मेरा सकल्प अडिग रहा। मैं सकुशल लौट आया।

मैने पश्चिम के लोगो से अणुव्रत के बारे मे चर्चा की। ब्रिटेन, नॉर्वे, स्वीडन फ्रास तथा रूस के लोगो को इससे परिचित कराया। उन्होने इसमे वडी रुचि प्रदर्शित की।

मैं राष्ट्र के ईसाई भाईयो से यह अनुरोध करूगा कि हमारे राष्ट्र मे चलनेवाले नैतिक आदोलन मे वे अपना सहयोग करे। यह किसी सम्प्रदाय विशेष का आदोलन नही है। यह तो आत्मशक्ति को जागृत करने का आदोलन है।

ईस्लाम धर्मावलम्वी—

एक मुसलमान भाई आया। अणुव्रत की चर्चा चली। आचार सहिता बताई। आचार्यश्री ने पूछा—"अणुव्रती बनोगे ?' वह बोला—'खुदा की आज्ञा मिली तो अवश्य बनूगा।'

वह अपने घर चला गया। घर छत पर जा खुदा को पुकारा, जोर-जोर से आवाज दी। फिर मन मन गुनगुनाने लगा। थोडी देर बाद वह प्रसन्नता से भर गया। आचार्यश्री के पास आकर बोला—'मुझे खुदा से अनुमति मिल गई है। अब, मै अणुव्रती बनूगा।' उसने आचार्य श्री के पास अणुव्रत का सकल्प स्वीकार कर लिया।

अणुव्रत के उदार दृष्टिकोण ने उसे सार्वभौम बना दिया उदारता की साधना कठिन है। यदि वह सध जाए तो एक महान् वशीकरण मत्र है।

ठाकुर मोहरसिंह के साथ मोण्डीजी मद्रास आए। वे अभी-अभी मक्का की यात्रा कर लौटे थे। आचार्यश्री से अणुव्रत के बारे मे बातचीत कर रहे थे। इतने मे नमाज का समय हो गया। वे स्थान की खोज मे इधर-उधर देखने लगे। आचाश्री ने उनके भाव को समझकर कहा—'क्या कही जाना है ?' मोण्डीजी ने कहा—'नमाज पढने के लिए नीचे एकात मे जाना चाहता हू, फिर आकर बात करूगा।'

आचार्यश्री— क्या यहा एकात नही है ?

मोण्डीजी —'आपके सामने नमाज पढ सकता हू ?'

आचार्यश्री – क्यो नही ? हम भी देखेंगे, आप नमाज कैसे पढते है ?

मोण्डीजी ने पश्चिम की ओर मुह कर वही नमाज पढी । उपासना की पद्धति भिन्न हो सकती है पर अणुव्रत सबके लिए अभिन्न है। इस अभेद की अवधारणा ने अणुव्रत को समन्वय-मच बना दिया।

अणुव्रत सम्प्रदाय न बने

अणुव्रत अनुशास्ता आचाय श्री तुलसी राजाजी (राजगोपालाचारी) के निवास-स्थान पर पधारे। राजाजी ने आचार्यश्री के आगमन पर प्रसन्नता प्रकट की। आचार्यश्री ने कहा—'भारत के वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ एव महान् चिंतक से मिलकर मे भी प्रसन्न हू।' प्रसन्नता की अभिव्यक्ति के पश्चात् वार्तालाप शुरू हुआ ।

अणुव्रत अनुशास्ता—'हमने कल ही 'स्वराज्य मे अणुव्रत के विषय मे आपकी टिप्पणी पढी। वैचारिक मिलन कल हो गया था। आज हम साक्षात् मिल रहे है।'

राजाजी—'मुझे अणुव्रत बहुत पसन्द है।'

आचार्यश्री—'इस विषय मे आपका क्या परामर्श है ?

राजाजी—'अणुव्रत सप्रदाय न बने। बस इतना सा आग्रह है।'

आचार्यश्री—'इस विषय मे मैं बहुत सजग हू।'

राजाजी—'सम्प्रदाय बुआई के बिना उपजने वाली घास है। इस-लिए सजगता अति आवश्यक है।

अणुव्रत आदोलन धीरे-धीरे असाम्प्रदायिक आदोलन के रूप मे जन-मान्य हो गया। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने इसके असाम्प्रदायिक स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा—"अणुव्रत आदोलन असम्प्रदायिक एव सार्वभौम है। यह चाहे जिस नाम से चले, हमे काम से मतलब है और इसका नामकरण चाहे जो भी कर दिया जाये, लाभ वही होगा। इसलिए अपेक्षा यह है कि आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित नैतिक अभ्युत्थान के इस पथ को समझ, परख और सीखकर जीवन मे अनुकरण करें।"[१]

१ जन-जन की दृष्टि मे 'अणुव्रत आदोलन, पृष्ठ-२१

सादिकअली, महाराष्ट्र ने भी इसके सम्प्रदायातीत रूप पर टिप्पणी करते हुए कहा है—"अणुव्रत मानव मात्र के लिए समथन सूत्र है। नैतिक उत्क्राति मे अचार्य तुलसी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। सभी महान् धर्मों का मुख्य ध्येय यही रहा कि खासकर मानव जीवन मे एकता स्थापित हो। मनुष्यो के बीच विभाजन को तोडने का, मानव-मानव को जोडने का कार्य अणुव्रत कर रहा है। इसकी रूपरेखा सम्प्रदायातीत है।"[1]

३.४.३. अणुव्रत : निर्देशक तत्त्व, लक्ष्य एवं आचार संहिता

आन्दोलन के प्रारम्भ मे नियमो की की सख्या तेरह थी जो बढकर छियासी हो गई। सन् १९५८ मे अणुव्रतो की सख्या मे फिर परिवर्तन किया गया। इस अवसर पर व्रतो की भाषा का परिष्कार किया गया। अणु-व्रतियो की श्रेणी बनाई गई—प्रवेशक अणुव्रती, अणुव्रती और विशिष्ट अणुव्रती। प्रवेशक अणुव्रती के लिए ग्यारह नियमो का विधान किया गया। अणुव्रती को अणुव्रतो के साथ उसके शील और चर्या का पालन करना होता है। इस अवसर पर वर्गीय अणुव्रतो का भी विधान किया गया।

सन् १९६५-६६ के समय उक्त आचार सहिताओ की पुनर्विवेचना कर व्रतो की सख्या और सीमित की गई। अक्टूबर सन् १९८३ मे एक बार फिर अणुव्रतो मे सामञ्जस्य स्थापित किया गया। अणुव्रत की भाषा और अधिक परिष्कृत की गई। इसमे अणुव्रत के निर्देशक तत्त्व, ग्यारह अणुव्रत, अणुव्रत-साधना तथा वर्गीय अणुव्रतो मे शिक्षक, श्रमिक, कृषक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार सबधी अणुव्रतो को भी प्रथम बार लिया गया तथा पुराने वर्गीय अणुव्रतो मे भी दूसरें नवीन अणुव्रत सम्मिलित कर लिये गये।

अणुव्रत के निदेशक तत्व

१ दूसरो के अस्तित्व के प्रति सवेदनशीलता।
२. मानवीय एकता।
३ सह-अस्तित्व की भावना।
४ साम्प्रदायिक सद्भाव
५ अहिंसात्मक प्रतिरोध।
६ व्यक्तिगत सग्रह और भोगोपभोग की सीमा।
७ व्यवहार मे प्राथमिकता।
८. साधन-शुद्धि की आस्था।
९ अभय, तटस्थता और सत्य-निष्ठा।

---

१ जन-जन की दृष्टि मे : अणुव्रत आदोलन; पृष्ठ-३०

अणुव्रत : आचार संहिता

१ मै किसी भी निरपराध प्राणी का सकल्पपूर्वक वध नही करूगा ।
 ० आत्म-हत्या नही करूगा ।
 ० भ्रूण-हत्या नही करूगा ।
२ मै आक्रमण नही करूगा ।
 ० आक्रामक नीति का समर्थन नही करूगा ।
 ० विश्व-शाति तथा नि.शस्त्रीकरण के लिए प्रयत्न करूगा ।
३ मै हिंसात्मक एव तोड फोड-मूलक प्रवृतियो मे भाग नही लूगा ।
४ मैं मानवीय एकता मे विश्वास करूगा ।
 ० जाति, रग आदि के आधार पर किसी को ऊच-नीच नही मानूगा ।
 ० अस्पृश्य नही मानूगा ।
५ मैं धार्मिक सहिष्णुता रखूगा ।
 ० साम्प्रदायिक उत्तेजना नही फैलाऊगा ।
६ मै व्यवसाय और व्यवहार मे प्रामाणिक रहुगा ।
 ० अपने लाभ के लिए दूसरो को हानि नही पहुचाऊगा ।
 ० छलनापूर्ण व्यवहार नही करूगा ।
७ मैं ब्रह्मचर्य की साधना और सग्रह की सीमा का निर्धारण करूगा ।
८. मैं चुनाव के सबध मे अनैतिक आचरण नही करूगा ।
९ मैं समाजिक कुरूढियो को प्रश्रय नही दूगा ।
१० मैं व्यसन-मुक्त जीवन जीऊगा ।
 ० मादक तथा नशीले पदार्थ—शराब, गाजा, चरस, हिरोइन, भाग, तम्बाकू आदि का सेवन नही करूगा ।
११ मैं पर्यावरण की समस्या के प्रति जागरूक रहूगा ।
 ० हरे-भरे वृक्ष नही काटूगा ।
 ० पानी का अपव्यय नही करूगा ।

(अणुव्रती के लिए सबधित वर्गीय अणुव्रतो का पालन अनिवार्य है)

वर्गीय अणुव्रत

विद्यार्थी अणुव्रत

 ० मैं परीक्षा मे अवैध उपायो का सहारा नही लूगा ।
 ० मैं हिंसात्मक एव तोडफोड-मूलक प्रवृतियो मे भाग नही लूगा ।
 ० मैं अश्लील शब्दो का प्रयोग नही करूगा, अश्लील साहित्य नही पढूगा तथा अश्लील चलचित्र नही देखूगा ।
 ० मैं मादक तथा नशीले पदार्थों का सेवन नही करूगा ।

- मैं चुनाव के सम्बन्ध मे अनैतिक आचरण नही करूगा।
- मैं दहेज से अनुबधित एव प्रदर्शन से युक्त विवाह नही करूगा और न भाग लूगा।
- मैं बडे वृक्ष नही काटूगा और प्रदूषण नही फैलाऊगा।

शिक्षक अणुव्रत

- मैं विद्यार्थी के बौद्धिक-विकास के साथ चरित्र-विकास मे भी सहयोगी बनूगा।
- मै विद्यार्थी को उत्तीर्ण करने मे अवैध उपायो का सहारा नही लूगा।
- मैं अपने विद्यालय मे दलगत राजनीति को प्रश्रय नही दुगा। न इसके लिए विद्यार्थियो को प्रोत्साहित करूगा।
- मै मादक और नशीले पदार्थों का सेवन नही करूगा।
- मैं अणुव्रत-प्रसार मे अपना योग दूगा।

अधिकारी/कर्मचारी अणुव्रत

1. मैं रिश्वत नही लूगा।
2. मै अपने प्राप्त अधिकारो का अनुचित प्रयोग नही करूगा।
3. मै अपने कर्तव्य-पालन मे जान-बूझकर विलम्ब या अन्याय नही करूगा।
4. मैं मादक और नशीले पदार्थो का सेवना नही करूगा।

श्रमिक अणुव्रत

1. मैं अपने कार्य मे प्रामाणिकता रखूगा।
2. मैं हिंसात्मक उद्रवो एव तोड़-फोड-मूलक प्रवृत्तियो मे भाग नही लूगा।
3. मैं मद्यपान एव धूम्रपान नही करूगा तथा नशीले पदार्थों का सेवन नही करूगा।
4. मैं जुआ नही खेलूगा।

३.४.४ स्वस्थ समाज-संरचना (Healthy Social Structure)

अणुव्रत की आचार सहिता के अन्तर्गत वर्तमान की कुछ बुराइयो के प्रति सकेत किया गया है। पर वास्तव मे अणुव्रत एक जीवन दर्शन है। आचार सहिता उसकी अभिव्यक्ति है। उसके माध्यम से आदमी व्रती बनता है।

अणुव्रत ने समाज को विकृत कराने वाले तत्त्वो, भ्रष्ट आचरणो,

अधविश्वासो व अर्थहीन रूढि-परम्पराओ को निरस्त करने के लिए आवाज उठाई और समाज मे नैतिक चेतना के वातावरण का निर्माण किया। इसी भूमिका के मध्य यह अनुभव हुआ कि केवल सशोधन या सुधार का महत्त्व तो अवश्य है किन्तु व्यवस्थागत कठिनाइयो के बीच सशोधन या सुधार की बात का प्रभाव चिरस्थायी रहना कठिन है। इसी समस्या के निराकरण से स्वस्थ समाज की परिकल्पना सामने आई।

किसी भी समाज के निर्माण मे राजनीति और अर्थ का प्रमुख हाथ रहता है। अणुव्रत भी इनके महत्त्व को स्वीकार करता है, किन्तु इनको सर्वोपरि महत्त्व नही देता। इसका विश्वास है कि व्यवस्थाओ मे राजनीति और अर्थनीति से परिवर्तन अवश्य हुए है, किन्तु उन्हे सर्वोपरि महत्त्व देने से समस्याए और अधिक गहरा जाती है। अणुव्रत समाज व्यवस्था, मानसिक अनुसान को प्रधानता देती है। कोई भी शासन या अर्थतन्त्र तब तक सफल नही हो सकता जब तक उसके साथ मानसिक अनुशासन नही जुडे। मानसिक अनुशासन के विकास मे किसी बाहरी अनुशासन की अपेक्षा नही होती। मानसिक स्वतन्त्रता जितनी पुष्ट होती जाएगी बाहरी सुचारुता उतनी ही बढती जाएगी। इसलिए अणुव्रत जन-जीवन मे व्रतो का विकास करना चाहता है। उससे जो अन्तर्जागरण होगा, उससे व्यवस्था भी अपने आप सुचारु बन जाएगी।

किसी भी व्यवस्था को जन्म लेने मे देश-काल की परिस्थितिया भी महत्त्वपूर्ण भाग अदा करती हैं। अणुव्रत मानव मात्र को सामने रखकर ऐसी व्यवस्था रूपायित करना चाहता है जो व्यक्ति और समाज दोनो मे सतुलन स्थापित कर सके। अणुव्रत के मच से स्वस्थ समाज रचना पर गहराई से विचार कर कुछ सूत्र इस प्रकार निर्धारित किये गए है

१ हिंसा समस्या का समाधान नही, इस आस्था निर्माण।
२ मानवीय एकता मे विश्वास।
३ दूसरो के श्रम का अशोषण।
४. मानवीय सबन्धो का विकास।
५ अर्थ एव सत्ता का विकेन्द्रीकरण।
६. वैचारिक सहिष्णुता।
७ जीवन-व्यवहार मे करुणा का विकास।
८ आहार-शुद्धि और व्यसन मुक्ति।
९ सामाजिक रूढियो का परिष्कार।

हिंसा समाधान नहीं—स्वस्थ समाज रचना मे हिंसा को समस्या का समाधान नही माना जा सकता। वर्तमान राजनीति मे हिंसा को, शस्त्र को ही समाधान माना जाता है, यही समस्या का मूल है। एक ओर जब शस्त्र

पर धार चढती है तो दूसरी ओर उसे और ज्यादा तेज बनाने का प्रयास शुरु हो जाता है। इस स्पर्धा ने ही ससार मे शस्त्रो के भयकर जखीरे खडे किए है, पर उनसे समस्या उलझती ही है। अणुव्रत का पहला व्रत है मै किसी पर आक्रमण नही करूगा तथा आक्रामक नीति समर्थन नही करूगा। जब आदमी आक्रामक नही होगा तो अहिंसा की प्रतिष्ठा अपने आप हो जाएगी। यह अहिंसा मे आस्था होने का पहला चरण है।

सामाजिक आदमी पूर्ण अहिंसक न बन सके तो भी आवश्यक है कि उसकी आस्था अहिंसा मे रहे। कुछ लोग हिंसा से बच नही सकते, इसलिए उसे ही समाधान का उपाय मान लेते हैं, यह हिंसा की प्रतिष्ठा है। अणुव्रती कभी-कभी हिंसा से बच नही सकता फिर भी वह उसे आदर्श नही मानता, यह अहिंसा की प्रतिष्ठा है। इसमे कोई सन्देह नही कि समस्या का अन्तिम समाधान अहिंसा मे ही निहित है। समय पर कभी अशक्य कोटि की हिंसा का आचरण हो भी जाता है तो भी वह स्वस्थ जीवन का विकास नही है। हिंसा हिंसा को जन्म देती है। सारा ससार इस क्रिया-प्रतिक्रिया के जाल मे उलझ रहा है। हिंसा समस्या का समाधान नही है; इस पर आस्था, अहिंसा की एक महत्त्वपूर्ण उद्घोषणा है।

मानवीय एकता—अणुव्रत समाज रचना का दूसरा सूत्र है—मानवीय एकता मे विश्वास। हमे भूगोल और इतिहास की इस सच्चाई को स्वीकार करना चाहिए कि मानव समाज कई भागो मे बटा हुआ है। इसी से राष्ट्रो की सीमाए खडी होती है। भविष्य मे भी इस विभाजन को मिटाया जा सके, यह सम्भव नही है। फिर भी यदि मानवीय एकता मे विश्वास किया जाए तो भावात्मक दूरियो को समाप्त किया जा सकता है। जमीन पर खिची हुई लकीरे कृत्रिम है, जब मन मे दीवार खडी हो जाती है तो उनमे प्राण पड जाते है। इसलिए सकीर्ण राष्ट्रवाद से ऊपर उठकर मानवीय एकता पर विश्वास स्वस्थ समाज-रचना का महत्त्वपूर्ण पहलू बन जाता है।

परस्परोपग्रह—समाज रचना के बारे मे एक मान्यता मात्स्य न्याय की रही है। उसके अनुसार बडी मछली हमेशा छोटी मछली को निगलकर ही अपना अस्तित्व कायम रख सकती है। पर यह तो जगल का न्याय है। आदमी का न्याय तो परस्परोपग्रह (परस्पर उपकार/सरयोग) की भूमिका पर अविष्ठित हो सकता है। एक मनुष्य का हित दूसरे के विरोध मे नही अपितु सहयोग मे ही निहित है। भले ही कुछ लोग अपनी बौद्धिक सामर्थ्य से कुछ गरीब लोनो के श्रम का शोषण कर एक बार बडे बन जाए, पर यह व्यवस्था बहुत लम्बी नही चल सकती। इसमे कुछ गरीब लोग भले ही कुछ दिनो के लिए चुप रह जाए, पर अतत: प्रतिक्रिया घटित होती ही है। इससे

जहा कुछ लोगो को कष्टमय जीवन जीने के लिए बाध्य होना पडता है तो अन्य लोग भी लम्बे समय तक शाति से नही जी सकते। दूसरी ओर यदि आदमी दूसरो के श्रम का शोषण न करे तो न केवल वह स्वय ही शात जीवन जी सकता है। अपितु दूसरे लोगो के लिए भी शात जीवन की पृष्ठभूमि का निर्माण करता है। ऐसे लोग ही मशीन की अपेक्षा मनुष्य को ज्यादा महत्त्व दे सकते है।

आहार-शुद्धि आहार मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता मे है। आहार मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण का प्रमुख घटक है। वह न केवल शरीर का पोषक है अपितु वृत्तियो के निर्माण मे भी उसकी अह भूमिका है। सन्तुलित आहार के अभाव मे जहा एक ओर लाखो-करोडो लोग भूखे मरते है, वहा लाखो-करोडो लोग अधिक खा-खाकर मरते हैं। तामसिक आहार से समस्याए और अधिक जटिल बनती जा रही है।

व्यसन-मुक्ति : नशे से आदमी का स्वास्थ्य बिगडता है। चेतना भी सुप्त-लुप्त हो जाती है। अपराधो की एक अजस्र परम्परा प्रारम्भ हो जाती है। आज नशे से पूरी मानवता लहूलुहान हो गई है। इसकी तीव्रता ने दुनिया की अर्थव्यवस्था को डावाडोल बना दिया है। काले धन की और तस्करी की समस्या भी पूरे यौवन पर है। ऐसी अवस्था मे अणुव्रत-प्रेरित समाज-व्यवस्था मे आहार-शुद्धि तथा व्यसन-मुक्ति की बात अनिवार्य रूप से जुड जाती है।

अल्पारंभ-अल्प परिग्रह : लोकतन्त्र आज की मान्य शासन पद्धति बन गई है। चुनाव इसका मुख्य आधार है। पर जब सत्ताशीर्ष पर कुछ लोग जमने की कोशिश करते हैं तो चुनाव मे गदगी का प्रवेश होता है। जिस दिन सत्ता और पूजी पर लोक का स्वत्व होगा उसी दिन सच्चा लोकतन्त्र प्रतिष्ठित होगा। यही अहमिन्द्रता तथा सच्चा समाजवाद होगा। निश्चय ही इस दृष्टि से नये अर्थतन्त्र को विकसित करना होगा। अल्पारम्भ और अल्प-परिग्रह उस तत्र के दो महत्वपूर्ण आधार बनेंगे। यह सारा हृदय-परिवर्तन से ही सभव है। केवल कानून या दड के बल पर लोकतत्र को सस्थापित नही किया जा सकता। उसके लिए जन-जन की चेतना को जगाना पडेगा। लोक-चेतना जागृत होगी, तभी लोकतन्त्र विकसित हो सकेगा।

सापेक्ष-दृष्टि : व्यक्ति है तो व्यक्तित्व भी रहेगा। व्यक्तित्व की सबसे पहली अभिव्यक्ति है— विचार। विचार ही सम्प्रदाय तथा वाद के भेद के रूप मे प्रकट होता है। यह सम्भव नही है कि सभी लोग एक ही तरीके से सोचे-विचारे। यह स्वाभाविक भी नही है। क्योकि सत्य इतना विविधमुखी होता है कि उसे एक रूप मे पहचाना ही नही जा सकता। ऐसी स्थिति मे आवश्यक यही है कि उसकी अनेकमुखता को पहचाना जाए तथा उस पर

सापेक्ष दृष्टि से विचार किया जाए। विचार का आग्रह जहा आदमी को असत्य के द्वार पर पहुचाता है, वहा सापेक्षता उसे सत्य से साक्षात्कार कराती है। सापेक्षता के इस दर्शन से ही व्यक्ति मे वैचारिक सहिष्णुता का उदय हो सकता है। हमे इस बात का अधिकार है कि अपने विचार को सत्य माने पर यह अधिकार नही हो सकता कि दूसरे के विचार को असत्य मानकर उसका तिरस्कार करे। सहिष्णुता का यह भाव ही असली धर्म है। यह सार्वभौम स्वीकृति ही सम्प्रदायो एव वादो मे सौहार्द स्थापित कर सकती है, अनेकता मे एकता की अनुभूति करा सकती है।

परम्परा और प्रबोध : मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। जहा समाज होता है वहा परम्परा भी आवश्यक होती है। हर परम्परा का अपना एक उपयोगी उत्स होता है। पर धीरे-धीरे ज्यो-ज्यो देश-काल की स्थितिया-परिस्थितिया बदलती है, बहुत सारी परपराए अपनी उपयोगिता को खो देती है। वे न केवल स्वय ही रुढ, बोझिल एव बेमानी बन जाती हैं अपितु उनसे सारी समाज व्यवस्था बीमार बन जाती है। इसीलिए अणुव्रत हर समय रूढियो के परिष्कार के लिए आवाज उठाता रहा है, परम्पराओ से इनकार नही किया जा सकता, पर निरर्थक रूढियो को ढोते रहना भी स्वस्थ समाज और राष्ट्र का लक्षण नही हो सकता। इस दृष्टि से अध-रूढियो के परिष्कार की सभावना निरतर बनी रहती है।

इस तरह अणुव्रत जिस समाज-व्यवस्था को रूपाकार देना चाहता है वही उसकी आचार-सहिता मे अभिव्यक्त हुई है।

३.४.५. अणुव्रत का कार्य-क्षेत्र (Scope of Anuvrat)

अणुव्रत आन्दोलन स्वस्थ समाज की सरचना का आन्दोलन है। इसका कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण समाज है। स्वस्थ समाज के निर्माण एव व्यक्ति मे नैतिक चेतना के जागरण के लिए न्यूनतम आचार-सहिता के रूप मे इसे प्रस्तुत किया गया। समाज मे अनेक वर्ग हैं, अनेक व्यवमाय हैं। उनमे व्याप्त अनैतिकता व बुराइयो को दूर करने के लिए वर्गीय अणुव्रतो का विशेप रूप से सृजन किया गया। यह आदोलन व्यक्ति-व्यक्ति के सुधार द्वारा स्वस्थ समाज की रचना करना चाहता है।

समाज मे व्याप्त बुराइयो के प्रतिकार हेतु जन जागरण इसका मुख्य उद्देश्य है। तदर्थ वातावरण का निर्माण, व्यक्ति-व्यक्ति को अणुव्रत की आचार सहिता से परिचय, स्वेच्छा से बुराइयो को छोडने के लिए प्रेरणा एव सकल्पबद्ध करना अणुव्रत की कार्यशैली है। इसके द्वारा मुख्य रूप से निम्न-लिखित क्षेत्रो मे कार्य किया जाता है।

१. शिक्षा क्षेत्र : (Education and Anuvrat) शिक्षा का बहुत

व्यापक क्षेत्र है। यह समस्त प्रगति का आधार है। पर इस क्षेत्र मे भी अनेक बुराइया तेजी से बढ रही है। छात्रो मे उच्छृंखलता, उद्दण्डता, तोड-फोड, नशा, परीक्षा मे अवैध उपायो का प्रयोग तेजी से बढता जा रहा है। शिक्षको मे भी दलगत राजनीति व मात्र बौद्धिक आस्था ने अपना विशेष स्थान बना लिया है। अभिभावको की व्यस्तता व उदासीनता भी बच्चो के चारित्रिक व नैतिक ह्रास को बढा रही है।

अणुव्रत आदोलन द्वारा विद्यार्थी, शिक्षक और अभिभावक तीनो के नैतिक उत्थान के लिए त्रिकोणात्मक अभियान चलाया जाता है। विद्यार्थियो के लिए विद्यार्थी अणुव्रत हैं। उनमे अणुव्रत परीक्षाए भी आयोजित होती हैं। इसमे प्रतिवर्ष हजारो विद्यार्थी भाग लेते हैं। वे अणुव्रत की भावना, चिन्तन व दर्शन से परिचित होते हैं। शिक्षको के नैतिक जागरण के लिए "शिक्षक अणुव्रतो" का प्रावधान है। अब तक लाखो शिक्षक अणुव्रती बने हैं। इस कार्य को और अधिक गति देने हेतु 'अणुव्रत-शिक्षक-ससंद' एव 'अणुव्रत-छात्र-ससद' का गठन किया गया है।

२ आर्थिक क्षेत्र : (Commercial enterprises & Anuvrat) समाज के आर्थिक ढाचे मे शोषण, मिलावट, कम माप-तौल, जमाखोरी आदि अनेक बुराइया हैं। इसे समाप्त करने की दृष्टि से इस आदोलन द्वारा अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये जाते हैं। समय-समय पर मिलावट विरोधी अभियान चलाये जाते है। व्यापारियो की सभाओ का आयोजन किया जाता है। उसमे नैतिक चेतना को जगाया जाता है। उन्हे 'व्यापारी-अणुव्रत' से परिचय करवाया जाता है। उनमे से अनेक व्यक्ति स्वेच्छा से 'व्यापारी अणुव्रतो' को स्वीकार करते है एव स्वस्थ समाज की भूमिका मे योगदान देते है।

३ राजनैतिक क्षेत्र : (Politics and Anuvrat) राजनीति सम्पूर्ण देश की व्यवस्था का सचालन करती है उसके कर्णधारो मे बढती हुई अनैतिकता, भ्रष्टाचार, हिंसा, आतक, प्रलोभन आज सम्पूर्ण राष्ट्र मे चिता का विषय है। अणुव्रत आदोलन के अन्तर्गत राजनीति मे नैतिक चेतना के और राष्ट्रीय-चेतना जागरण के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये जाते है। राज्य कर्मचारियो मे नैतिक भावनाओ का सप्रेषण कर उन्हे जागरूक बनाया जाता है। चुनाव लोकतत्र की जन्म-कुण्डली है। इसमे जैसे-जैसे ग्रह-नक्षत्र घरो मे बैठ जाते है, उनका फलादेश पूरे राष्ट्र को पाच वर्ष तक प्राप्त होता रहता है। अणुव्रत ने समस्त राजनैतिक पार्टियो से सम्पर्क स्थापित कर एक सर्वमान्य चुनाव आचार-सहिता का निर्माण किया है। चुनाव के समय प्रत्याशी अणुव्रत और मतदाता अणुव्रत से जनता को परिचित कराया जाता है। लोकतत्र के सच्चे स्वरूप के प्रति जागरूक किया जाता है।

मानवीय एकता (Unity and Anuvrat) : दुनिया अनेक विविधताओ से भरी हुई है। भाषा, जाति, सम्प्रदाय, रग एव लिंग की विविधता के बीच अणुव्रत मानवीय एकता की आवाज को मजबूत करता है। विभेद हमारी उपयोगिता है। इस उपयोगिता को वास्तविकता मानना समस्या पैदा करता है। इन सभी भेदो से ऊपर उठकर अणुव्रती कार्यकर्त्ता एक मच से एक साथ हिल-मिलकर नैतिक अभियान को आगे बढाते हैं। मानवीय एकता की भावना को पुष्ट करते हैं।

५. **धार्मिक क्षेत्र** (Religion and Anuvrat) अणुव्रत आदोलन एक असाम्प्रदायिक आदोलन है। इसके द्वारा सर्वधर्म सद्‌भाव की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया जाता है। समय-समय पर सभी धर्म के लोग एक मच पर उपस्थित होते हैं। विचारो का आदान-प्रदान करते हैं। सर्वधर्म सद्‌भाव का वातावरण बनाते है। अणुव्रत आदोलन ने सर्वधर्म सद्‌भाव की दृष्टि से एक पच-सूत्री योजना भी प्रस्तुत की। वह इस प्रकार है—

१. मडनात्मक नीति बरती जाए। अपनी मान्यता का प्रतिपादन किया जाए। दूसरो पर मौखिक या लिखित आक्षेप न किया जाए।
२. दूसरो के विचारो के प्रति सहिष्णुता रखी जाए।
३. दूसरे सम्प्रदाय व अनुयायियो के प्रति घृणा और तिरस्कार की भावना का प्रचार न किया जाये।
४ कोई सम्प्रदाय-परिवर्तन करे तो उसके साथ सामाजिक वहिष्कार आदि अवाछनीय व्यवहार न किया जाये।
५. धर्म के मौलिक तत्त्वो– अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को जीवन-व्यापी बनाने के सामूहिक प्रयत्न किये जाए।

६. **विश्व-शान्ति** (World Peace & Anuvrat) आज विश्व शान्ति का प्रश्न पहले से अधिक महत्त्वपूर्ण बन गया है। अणुव्रत आदोलन विश्व मे अहिंसा द्वारा शान्ति स्थापित करने का एक रचनात्मक उपक्रम है। न्यूनतम मानवीय मूल्यो के प्रति वैयक्तिक सकल्प का विकास कर विश्व को हिंसा से मुक्ति दिलाने का यह अनूठा प्रयोग है। प्रत्येक व्यक्ति यदि स्वेच्छा से आक्रमण करने का परित्याग कर दे, अहिंसा-अणुव्रत को ग्रहण कर ले तो यह आतकवाद अपने आप समाप्त हो जाता है। इस हेतु समय-समय पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो का आयोजन किया जाता है। ऐसे ही "विश्व शान्ति और अहिंसक उपक्रम" विषय पर तीन अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम आयोजित किये गये। जिसकी अनुगूज यू० एन० ओ० तक हुई है। अहिंसक कार्यकर्ताओ के लिए "अहिंसा-प्रशिक्षण" का कार्यक्रम भी चलता है, जिससे वे आगे जाकर इस दिशा मे विशेष कार्य कर सकें।

७ पर्यावरण चेतना (Environmental Consciousness and Anuvrat) असीम उपभोक्तावाद तथा सुख-सुविधावादी दृष्टिकोण ने पर्यावरण के असतुलन को बढाया है। पदार्थ सीमित है, उपभोक्ता अधिक है और इच्छा असीम है। अत इसके स्वस्थ सतुलन के लिए अणुव्रत-आदोलन ने इच्छा-सयम पर बल दिया है। जन-जन मे पर्यावरण चेतना को जगाने के लिए अणुव्रत आदोलन ने अणुव्रतो का निर्माण किया है। उसके अन्तर्गत व्यक्ति सकल्पबद्ध होता है कि मैं पर्यावरण की समस्या के प्रति जागरूक रहूगा। हरे-भरे वृक्ष को नही काटूगा। पानी का अपव्यय नही करूगा।

८ समाज (Society and Anuvrat) समाज मे क्षेत्र व समय की आवश्यकतानुसार नियम व रीति-रिवाज बनते है। कालान्तर मे उनकी उपयोगिता कम हो जाती है। वे रूढि बन जाते है। ऐसी रूढिया समाज के विकास मे बाधक होती हैं। समाज के ढाचे मे अस्पृश्यता, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, दहेज-प्रथा, मृत्यु-भोज, शोक-प्रथा, पर्दा-प्रथा, व्यसन, निरक्षरता जैसे अनेक अभिशाप है, जो समाज को रुग्ण बना रहे हैं। अणुव्रत इसके निवारणार्थ समय समय पर अस्पृश्यता-निवारण, रूढि-मुक्ति, व्यसन-मुक्ति, दहेज-विरोधी अभियान, साक्षरता एव महिला-जागृति जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमो का सचालन करता है। इसके अतिरिक्त "अणुव्रत-परिवार" एव "अणुव्रत ग्राम" की योजना को भी साकार रूप दे रहा है।

९ महिला जागृति (Women Awareness and Anuvrat) : अणुव्रत आदोलन के अतर्गत महिला जागृति का भी अपना एक अमूल्य पृष्ठ है। महिला जागृति के लिए महिला-अणुव्रतो का विधान किया गया जिनके माध्यम से वे बुराइयो से ऊपर उठकर स्वस्थ समाज निर्माण मे सहयोगी बनती है। इस आदोलन के माध्यम से वे सगठित होकर अनेक सामाजिक कार्य मे भाग लेती है। ऐसी महिलाए 'महिला मण्डल' के रूप मे सगठित होकर रक्त दान, विकलाग सहयोग, गरीब-बच्चो को गोद लेने जैसे समाज-सुधार के महत्त्वपूर्ण कार्य अपने हाथ मे लेती है।

३.४.६. अणुव्रत आंदोलन : समीक्षा एवं सीमाएं

जहा समुदाय है, वहा मति-भेद है। जहा मति-भेद है, वहा आलोचना है। इस सामुदायिक जीवन मे ऐसा कोई व्यक्ति या तत्त्व नही है, जो आलोच्य न हो और जो आलोच्य ही हो। अणुव्रत आदोलन ने आलोचना के अनेक स्तर देखे है, प्रवर्तक ने और अधिक। आचार्यश्री ने आदोलन के बारे मे स्वय जनमत जानना चाहा। इसलिए अनेक विचारको को आलोचना के लिए प्रेरित किया गया। ध्वसात्मक आलोचना, जो कोरा मानसिक बेग

होता है, से आंदोलन को कोई लाभ नही हुआ। तथ्यात्मक आलोचना ने अवश्य ही समय-समय पर दिशा-संकेत दिये हैं।

प्रतिक्रियाएं : अणुव्रत का कार्य आगे बढा। जन-साधारण ने उसे उपादेय माना। आचार्यश्री की शक्ति प्रसार में अधिक लगी। एक नया ऊहा-पोह खड़ा हुआ। उनके अनुयायीजन ही कहने लगे - 'आचार्यश्री जनता को जैन बनने पर बल नही देते। तेरापंथ के प्रचार की गति शिथिल कर दी है। उनका अधिकांश समय जनता के लिए बीतता है, अपने सम्प्रदाय के लिए बहुत थोड़ा करते हैं।'

दूसरी ओर कुछ अजैन लोग यह कहने लगे कि आचार्यश्री अणुव्रत के माध्यम से सबको जैन बनाना चाहते हैं। एक ओर ये प्रतिक्रियाएं हुईं तो दूसरी ओर कुछ लोगो के सुझाव आये कि यह आदोलन बहुत आवश्यक है। इसका प्रचार सतत और तीव्र गति से होना चाहिए। राजगोपालाचारी ने पहले अधिवेशन पर लिखा था—'मेरी राय मे यह जनता के नैतिक एवं सांस्कृतिक उद्धार की दिशा में पहला कदम है।'

सिन्ध के वयोवृद्ध आर्य नेता ताराचन्द आर० डी० माजरा ने लिखा था—'आपके विचार उत्कृष्ट हैं और आपका प्रयत्न उत्तम है। पर मैं अपना विनम्र सुझाव प्रस्तुत करना चाहूंगा। वह यह कि हमारे सभी उद्देश्य इसलिए अपूर्ण रह जाते हैं कि उनके लिए काफी विस्तृत एव तीव्र प्रचार नही किया जाता।

मैं नम्रता पूर्वक निवेदन करूंगा कि यदि आप अपने ध्येय में सफल होना चाहे तो आप भारत और प किस्तान की सभी भाषाओ में लाखो की संख्या मे पुस्तिकाए व पर्चे प्रकाशित करें और उन देशो के स्कूलो में मुफ्त बंटवाएं।'

दूसरी ओर कुछ लोग इस प्रचार मे लगे हैं कि आचार्यश्री कोरे प्रचारक हो गए हैं। प्रशंसा की भूख जाग गई है। वे अणुव्रत आदोलन के बहाने अपना सिक्का जमाना चाहते हैं।

इस प्रकार अनेक आलोचनाओ व प्रतिक्रियाओ के तटो के बीच आंदोलन प्रवाहित हुआ। उनसे कही-कहीं आंदोलन का कलेवर सकीर्ण भले ही हुआ हो, पर उनसे आदोलन आगे बढ़ा है।

समीक्षाएं : अणुव्रत आंदोलन युगीन समस्या का समाधान बना इसलिए उसने युग चेतना को प्रभावित किया। युग के प्रबुद्ध चिन्तक उस पर समीक्षा करने लगे। किशोरलाल मश्रुवाला की तथ्यात्मक समीक्षा से चिन्तन का अवसर मिला। उन्होंने 'हरिजन' मे लिखा—"इस सघ (अणुव्रती संघ) मे सबका प्रवेश हो सकता है, जाति, धर्म, रंग, स्त्री,

पुरुष आदि का कोई विचार नही किया जाता। इस सघ ने अपने सदस्यो के लिए सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि नाम देकर कुछ विभाग बनाये हैं और उनमे हर एक के अणुव्रत बताये हैं। कुछ नियम तो इतने प्रत्यक्ष है कि हर एक को मानना चाहिए कुछ ऐसे भी है, जिन्हे और ज्यादा कसना चाहिए। लेकिन, सच तो यह है कि युद्ध के बाद मानव का इतना पतन हो गया है कि वह समाज के प्रति अपने मामूली कर्तव्य भी नही निभा रहा है। इसीलिए यदि यहा उनको एक-एक करके गिनती की गई है, तो अच्छा ही है।

यद्यपि यह सघ सब धर्मों के लिए खुला है और अहिंसा के सिवाय बाकी सब व्रतो के नियम-उपनियम साम्प्रदायिकता से मुक्त सामाजिक कर्तव्यो पर निगाह रखकर बनाये गये है, लेकिन अहिंसा के नियमो पर पथ के दृष्टिकोण की पूरी छाप है। उदाहरण के लिए शुद्ध शाकाहार, वह चाहे कितना ही वाछनीय हो, भारत सहित मानव समाज की आज की हालत और रचना को देखते हुए मास-मछली, अण्डा आदि से पूरा परहेज करने और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले उद्योगो से भी बचे रहने के व्रत जैनो और वैष्णवो की एक छोटी सी सख्या ही ले सकती है। यही बात रेशम के उद्योग के लिए भी लागू है। (यह देखकर थोडा कुतूहल होता है कि मोती और मोतियो के व्यापार का उल्लेख नही किया गया है। यद्यपि उनमे भी उतनी ही हत्या होती है, जितनी की रेशम मे, हालाकि जैनो मे यह व्यापार काफी फैला हुआ है।

लेकिन ये छोटी-मोटी खामिया छोडकर इतना तो कहना ही चाहिए कि सिद्धान्त और नियम के प्रति लापरवाह आज के रवैये के खिलाफ लोगो का विवेक जगाने की कोशिश प्रशसनीय है।"

मासाहार के निषेध मे जैनो ने पहल की है, यह सही है। किन्तु आज यह विषय धार्मिक ही नही रहा है। शरीर शास्त्र की दृष्टि से भी यह माना जाने लगा है कि मास मनुष्य का खाद्य नही है। शाकाहार का समर्थन आज सभी देशो से हो रहा है, इसलिए इसे साम्प्रदायिक दृष्टिकोण नही कहा जा सकता।

आचार्यश्री ने यह सोचा कि अणुव्रती को मास नही खाना चाहिए, पर मास खाने वाले अणुव्रती बन ही नही सकते यह भी क्यो? जो व्यक्ति नैतिक व्रतो की साधना करना चाहे उनके लिए कोई मार्ग होना चाहिए। प्रवेशक अणुव्रती के व्रतो मे मासाहार-निषेध का व्रत नही रखा गया। इसे लेकर आचार्यश्री के परिपार्श्व मे भी चर्चा हुई कि आचार्यश्री ने मासाहार का व्रत उठा दिया। मासाहार-निषेध का व्रत होना चाहिए, यह भी सही दृष्टिकोण है और मासाहार करने वाले अणुव्रत आदोलन के सदस्य न बन

सकें यह भी चिन्तनीय है। आचार्यश्री ने इन दोनो मे सामजस्य स्थापित किया। न मासाहार-निषेध के व्रत को उठाया और न मांसाहार करनेवालो को व्रत-साधना से वचित ही रखा।

सत्य का अणुव्रत : आचार्य बिनोवा भावे ने सत्य के अणुव्रत की आलोचना की। उनका अभिमत था कि अहिंसा का अणुव्रत हो सकता है, पर सत्य अखड है, वह महाव्रत ही होगा। उसे विभक्त नही किया जा सकता। आचार्य तुलसी ने इस पर चिन्तन किया। किन्तु उक्त तर्क हृदय को न छू सका। सत्य अहिंसा से भिन्न नही है। जहा हिंसा है, वहा सत्य नही है। स्वरूपत. अहिंसा भी अखड है और सत्य भी अखड है। आचरण की शक्यता के आधार पर ये खड किये गये हैं। ऊचाई अविभक्त होती है, किन्तु मनुष्य एक ही डग मे ऊपर चढ नही सकता। इसलिए सोपान विभक्त होते हैं। वे जीवन के क्रमिक विकास और अभ्यास के लिए हैं।

नकारात्मक दृष्टिकोण : अनेक विचारको ने आदोलन के नकारात्मक स्वरूप की आलोचना की। उनका कहना था कि विधेय के विना कोरा निषेध व्यक्ति मे निरुत्साह पैदा करता है। आदोलन का रूप रचनात्मक होना चाहिए।

आचार्यश्री ने इसे इस रूप मे मान्य किया कि आदोलन अपने ध्येय की दिशा मे रचनात्मक है। चरित्र-निर्माण के जो प्रयत्न हैं, अभ्याम हैं, वे निषेध नही हैं। उनमे निपेध कोरा दुष्प्रवृत्ति का है, जो आंदोलन का वाह्य रूप है। उसके आतरिक रूप मे आत्मानुभूति की तीव्रता है, जो विधेय ही विधेय है।

यूनेस्को के प्रेस प्रतिनिधि श्री एलविरा ने १ दिसम्बर १९५६ को आचार्यश्री से भेंट की।

आचार्यश्री—'क्या आपने अणुव्रत आदोलन के नियम देखे हैं ?'

एलविरा—'हा, मैंने उनको देखा है। वे मुझे अधिकतर निषेधात्मक प्रतीत हुए, ऐसा क्यो ?'

आचार्यश्री—'इयत्ता के लिए निषेध आवश्यक है, 'यह करो, वह करो'— इमकी कोई सीमा नही है।'

एलविरा—'बाइवल मे भी अधिकाश नियम नकारात्मक हैं पर उसमे यह भी कहा गया है कि अपने पडोसी से प्रेम करो।'

आचार्यश्री—'ऐसा उल्लेख तो इसमे भी है कि आपस मे मैत्री रखो, पर यह नियम नही हो सकता, यह तो उपदेश हो सकता है।'

एलविरा—'भारत के लोग अहिंसा मे विश्वास व श्रद्धा रखते है और अपने जीवन को उस आदर्श तक ले जाना चाहते हैं, क्योंकि आप जैसे

प्रेरक यहा विद्यमान है। क्या इसका प्रचार पाश्चात्य देशो मे भी हो सकता है?'

आचार्यश्री—'क्यो नही, पर इसके लिए आप लोगो का नैतिक सहयोग अपेक्षित है।'

एलविरा—'मैं तो आपकी सेवा मे प्रस्तुत हू।'

शक्यता का प्रश्न : कुछ आलोचको ने कहा—'इसमे घूस न देने व आयकर देने मे प्रामाणिकता रखने का कोई व्रत नही है।' यह अवश्य ही अखरने की बात है। किन्तु किया क्या जाए? आखिर शक्यता व सामाजिक मनोवृत्ति का प्रश्न है।

घूस लेने का त्याग करना अपना सयम है, पर देने का सबध केवल अपने से नही है। इतनी मानसिक दृढता सब लोगो मे नही होती कि अनेक कठिनाइयो को सहकर भी घूस न दे। इस शक्यता की भावना को विचारको ने बहुत ही व्यावहारिक और चल सकने वाला मार्ग बताया। श्री श्रीप्रकाशजी ने लिखा था—'मानवीय प्रकृति की सीमा की दृष्टि से यह सर्वोत्तम है।'

जड़ की बात कही-कही ऐसा उच्छ्वास मिला कि अणुव्रत आदोलन जड की बात नही करता, वह केवल ऊपर को छूता है। आर्थिक समस्या का समाधान हुए बिना नैतिकता का विकास हो ही नही सकता। आचार्यश्री ने इसे एकान्तिक असत्य नही कहा, किन्तु वे इससे सहमत नही हुए कि जिनके सामने आर्थिक कठिनाई नही है, वे नैतिक ही है। नैतिकता को लोगो ने बहुत छोटी सीमा मे बाध रखा है। आक्रमण का मनोभाव क्या अनैतिकता नही है? साम्राज्यवादी मनोवृत्ति क्या अनैतिकता नही? अनाक्रमण, शान्ति और अपने अधिकार मे सतुष्ट रहने की भावना का वातावरण पैदा करना आदोलन की मुख्य प्रवृत्ति है। क्या यह जड की बात नही है?

क्या सब नैतिक हो जाएंगे? कुछ चिन्तनशील व्यक्तियो ने कहा—'भगवान महावीर हुए, भगवान बुद्ध हुए, महात्मा गाधी हुए, वे भी समूचे विश्व को नैतिक नही बना सके तो क्या अब आचार्यश्री उसे नैतिक बना देंगे?'

आचार्यश्री ने कहा—'मै कब कहता हू कि समूचे ससार को नैतिक बना दूगा। हमारा प्रयत्न इसी दिशा मे होना चाहिए कि समूचा ससार नैतिक बने, नैतिकता की लौ जलती रहे। प्रयत्न करने पर भी न बने तो वह हमारे पुरुषार्थ का दोष नही होगा।

समकक्ष आंदोलन : अणुव्रत आदोलन ने नैतिक जागरण हेतु विराट् प्रयत्न किया। उस समय इसके समकक्ष अनेक आदोलन चलते थे। उनके

अपने-अपने उद्देश्य थे। फिर भी उनके कुछ उद्देश्यो मे समानता थी। वे सब नैतिक चेतना के जागरण के लिए कार्यरत थे। एक आदोलन था—"नैतिक पुनरुत्थान" (Moral rearmament) इसको चलाने वाले डॉ० बुकमेन थे। वे इसे विदेशो मे चलाते थे। श्री देवदास गाधी इसके भारतीय प्रचारक थे। जब उन्हे अणुव्रत आदोलन की जानकारी हुई तो बोले - अणुव्रत भारत का 'मोरल रिआरमामेन्ट' है। इसी प्रकार का एक आदोलन "व्यवहार-शुद्धि" के नाम से चलता था। इसके सचालक श्री केदारनाथजी थे। वे अब नही रहे। इसलिए वह आदोलन भी अस्तित्व मे नहीं रहा। इसी प्रकार विनोबा भावे का "सर्वोदय आदोलन" भी इस कोटि का आदोलन रहा। इसने कुछ समय तक कार्य किया फिर ग्रामोद्योग आदि मे सिमट गया।

इसी क्रम मे भारत सरकार के तत्कालीन योजना मत्री श्री गुलजारीलाल नदा ने नैतिक जागरण को प्रोत्साहन देने के लिए सदाचार समितियो का एक जाल पूरे देश मे बिछाया था पर दुर्भाग्य की बात है वह प्रयास बहुत नही जी सका।

इन आदोलनो का एक उद्देश्य था समाज मे नैतिक धरातल को उन्नत बनाना। अणुव्रत के कार्यकर्ता एव इन आदोलनो के कार्यकर्ता परस्पर मे मिलते रहे है। अणुव्रत अनुशास्ता दिल्ली और वर्धा मे आचार्य विनोबा भावे से मिले। सर्वोदय और अणुव्रत के सम्बन्ध मे परस्पर काफी चर्चाए हुई। विचारो का आदान-प्रदान हुआ। इन सबसे सम्पर्क एव सवाद से आचार्यश्री का अपना एक अभिमत बना। उन्होने कहा भी है—"ऐसा प्रतीत होता है कि विशुद्ध नैतिक दृष्टिकोण से चलनेवाला आदोलन अणुव्रत ही है"।[1]

"अणुव्रत के दो काम हैं – सिद्धान्त रूप मे नैतिक मूल्यो की स्थापना और जीवन व्यवहार में उनका प्रयोग। अणुव्रत अनुशास्ता कहते हैं—"यह बात मैं नि सकोच रूप से कह सकता हू कि अणुव्रत सैद्धातिक स्तर पर जितना लोकप्रिय हुआ है, आचरण की दिशा में यह इतना आगे नही बढ़ सका। ऐसा होना स्वभाविक भी है। क्योकि किसी भी सिद्धान्त को सहमति देना बुद्धि का काम है और उसे प्रयोग मे लाना जीवन के बदलाव से सम्बन्धित है। किसी भी बात का समर्थन करना कठिन नही होता, कठिन होता है उसका आचरण। अणुव्रत का यह सौभाग्य है कि वह एक दृष्टि से सर्व सम्मत आदोलन के रूप मे प्रसिद्ध है। राष्ट्र के हर वर्ग के व्यक्ति ऐसे आन्दोलनो की अपेक्षा अनुभव करते हैं। चिन्तनीय बिन्दु यही है कि वह जन सम्मत होने पर भी जीवन-सम्मत क्यो नही हुआ ?

---

१. "अनैतिकता की धूप . अणुव्रत की छतरी"—आचार्य तुलसी, पृष्ठ १५१।

"मै जब कभी इस पक्ष को सामने रखकर सोचता हू, इन प्रश्न के सन्दर्भ मे कोई समाधान खोजता हू, तब मुझे प्रतीति होती है कि सचमुच ही अणुव्रत के आचरण मे कठिनाई है। यह कठिनाई दो प्रकार की है। पहली कठिनाई का सबध व्यक्ति के साथ है और दूसरी कठिनाई बाह्य परिस्थितियो पर निर्भर करती है। वैयक्तिक दुर्बलताओ और परिस्थितिजन्य विवशताओ के आधार पर कोई निष्कर्ष निकाला जाए तो निम्नाकित बाते उभरकर सामने आती हैं—

१ नैतिक आस्था का अभाव
२ प्रतिरोधात्मक शक्ति के विकास की कमी
३ मानसिक दुर्बलता
४ बढती हुई महत्त्वाकाक्षा
५. अन्तहीन स्पर्धा
६ कृत्रिम प्रतिष्ठा की भूख
७ नैतिक वातावरण का अभाव
८ समाज के अर्थहीन मानदण्ड
९ बुराई के प्रति अगुलि-निर्देश करने के साहस की कमी
१० अभाव और अतिभाव
११ कानूनी जटिलताए

और भी कुछ कारण हो सकते है जो व्यक्ति की नैतिकता को डावाडोल करने मे निमित्त बनते हैं, पर मेरे अभिमत मे सबसे बडा कारण है—नैतिक आस्था का अभाव। सामान्यत हर व्यक्ति प्रवाहपाती होता है। होगा भी क्यो नही ? युग ही जब अनुस्रोतगामिता का है तब प्रतिस्रोत मे चलने का साहस कौन करेगा ? किन्तु यह निश्चित है कि प्रतिस्रोत मे चलने की क्षमता अर्जित किये बिना अणुव्रत की जीवन व्यवहार मे क्रियान्विति बहुत कठिन है। कठिन है, इसका अर्थ यह नही है कि अणुव्रत के समर्थको और प्रशसको मे ऐसे व्यक्तियो का अभाव ही है। अनेक व्यक्ति ऐसे हैं जो अणुव्रत की कसौटी पर खरे उतरे हैं। वे व्यक्ति किसी एक ही वर्ग मे नही है। सब वर्गो मे ऐसे आदर्श व्यक्ति मिल जाते हैं। व्यापारी वर्ग मे ऐसे अणुव्रती हैं, जिसके आदर्शो की समाज मे एक छाप है और दूसरे लोग उनके आचरण का साक्ष्य भरते है। राज्य कर्मचारियो मे ऐसे अणुव्रती मिल जाएगे, जिनकी प्रामाणिकता की दृष्टि से अच्छी प्रतिष्ठा है। ऐसे न्यायाधीश है, अधिवक्ता हैं, अध्यापक है, विद्यार्थी है, श्रमिक हैं और भी लोग हैं। उनकी स्थिति का अध्ययन करने से मेरा यह विश्वास पुष्ट होता है कि अणुव्रत को व्यवहार्य बनाया जा सकता है। ऐसा कोई कारण नही है, जिससे व्यक्ति अपने सकल्प को न निभा सके। पर यह भी निश्चित है, ऐसे व्यक्ति बहुत कम सख्या मे हैं। अध्यात्म की दृष्टि से संख्या कोई महत्त्वपूर्ण चीज नही है, पर यह तो मानना होगा सख्या बल भी एक बल है।"[1]

१ अनैतिकता की धूप . अणुव्रत की छतरी, आचार्य तुलसी पृष्ठ-१६६

संख्या या गुण आदोलन के सामने दो प्रश्न थे—(१) उसके सदस्य अधिक हो या (२) श्रेष्ठता अधिक हो ? आचार्यश्री ने दूसरा विकल्प ही चुना। उन्होंने पहले अधिवेशन के अवसर पर कहा—'मुझे बडी सख्या का मोह नही है और छोटी सख्या की कोई चिन्ता नही है। अणुव्रती चाहे थोडे बनें या अधिक, किन्तु जो बने वे आदर्श बने।' उस समय आदोलन की इस भावना को जैनेन्द्रकुमारजी ने इन शब्दो मे व्यक्त किया—'अभी अणुव्रतियो की सख्या छह सौ से कुछ ही अधिक है। यह देश तो बहुत बड़ा है। उस सागर मे यह सख्या बूद के बराबर समझी जा सकती है। पर सख्या पर ध्यान उतना नही है, यह अच्छा ही है। निष्ठा गुण की हो तो सख्या अपने आप ही कही से कही पहुच जाती है। मैने देखा है कि 'अणुव्रती-सघ' के पीछे सख्या का लोभ उतना नही है, जितना गुण पर आग्रह है। इस तरह की सख्या की अल्पता प्रभूत परिणाम ला सकती है।'

जमनालालजी बजाज ने भी उस समय यही लिखा—'सघ को सदस्यो की अपेक्षा गुण पर ध्यान अधिक रखना चाहिए।'

अणुव्रत का अवदान चरित्र को प्रतिष्ठित करने मे अणुव्रत ने अहम् भूमिका निभाई है। यह लोक-जीवन मे व्याप्त मानवीय दुर्बलताओ को परिष्कृत कर स्वस्थ जीवन जीने की दिशा देता है। कुछ लोग पूछते हैं कि विगत वर्षो मे अणुव्रत ने क्या किया ? अणुव्रत को जो काम करना था उसने वही काम किया। उसने देश मे एक नई विचार धारा का प्रवाह बहाया, उपासना मे उलझे हुए मनुष्य से चरित्र की पहचान करवाई और एक सार्व-भौम धर्म या मानव धर्म को उजागर किया।

अणुव्रत ने जाति, प्रान्त, भाषा, धर्म, रग और लिंग आदि भेद मे सिमटे हुए धर्म को विस्तार के लिए व्यापक धरातल दिया। उसने धर्म के नाम पर चलनेवाली स्वार्थसिद्धि पर प्रहार किया और परमार्थ तत्त्व को खोजने का दृष्टिकोण दिया। अणुव्रत ने धर्म की प्रासगिकता को त्रैकालिक प्रमाणित करते हुए उसे असाम्प्रदायिक या चरित्रप्रधान धर्म के रूप मे विक-सित होने का अवसर दिया। इसने सत्यष्ठिा, प्रामाणिकता, असाम्प्रदायिकता आदि सार्वभौम तत्त्वो की धारा बहायी, युग चेतना को झकझोरा, हजारो-हजारो व्यक्तियो को उस धारा मे बहने के लिए आमत्रित किया। इसी का परिणाम है कि देश के, धर्मनेता, राजनेता, प्रबुद्ध पत्रकार, समाजसेवी, बुद्धिजीवी, वैज्ञानिक, डॉक्टर, वकील, न्यायाधीश आदि देश के अनेक मूर्धन्य व्यक्ति अणुव्रत के सम्पर्क मे आये। समर्थक बने। अनेक अणुव्रती भी बने। समीक्षक बने। उन्होने इस आदोलन के कार्यक्रमो की उपयोगिता, महत्त्व, प्रासगिकता एव आवश्यकता को समय-समय उजागर किया है .—

१ 'अणुव्रत आन्दोलन' राष्ट्र के उत्थान के लिए एक सामूहिक आन्दोलन है, ऐसे आन्दोलन धर्म की पृष्ठभूमि को विकासशील बना सकते हैं। सर्व धर्म इस आन्दोलन को बल दे सकते है। इसके प्रवर्तक ने विशाल दृष्टि से इसको रखा है, जिससे समस्त धर्मावलम्बी सहयोग कर सके। यह आन्दोलन मूलभूत सिद्धान्तो को लिये हुए है। इसके प्रणेता की भावना इसको किसी पर थोपने की नही है। परन्तु जो कार्य करे उस पर दृढ रहे। साधारण लोग भावना मे बह जाते है परन्तु 'अणुव्रत आन्दोलन' के प्रवर्तक —(आचार्यश्री तुलसी) अपने कार्य के लक्ष्य को पूरा करने मे उस व्यक्ति की सचाई चाहते है। मेरी राय मे यह आन्दोलन जनता के नैतिक एव सास्कृतिक उद्धार की दिशा मे पहला कदम है।'

—राजगोपालाचार्य

२ आज दुनिया को नैतिक उत्थान की जितनी आवश्यकता है, उतनी पहले कभी नही थी। कोई राष्ट्र तब तक प्रगति नही कर सकता अथवा अपने को बलवान नही कर सकता, जब तक उसके लोग उच्च आदर्शों का अनुकरण नही करते और सद्‌गुणी नही होते। जीवन के प्रति भौतिक दृष्टि-कोण ने लोगो को स्वार्थी बना दिया है और भ्रष्टाचार और भ्रष्ट व्यवहारो जैसे कि रिश्वतखोरी और मिलावट ने भारतीय जीवन को तबाह कर दिया है, आज हम मानव भविष्य के चौराहे पर खडे है, ऐसी स्थिति मे जबकि हमारे पास युगो पुरानी परम्पराओ और सास्कृतिक मूल्यो की विरासत मे मिली हुई निधि विद्यमान है तब समस्त अधकार को दूर करने के लिए केवल एक मशाल की आवश्यकता है। वह मशाल है—'अणुव्रत आन्दोलन'।

—वी. वी. गिरि

३ 'अणुव्रत आन्दोलन' चरित्र-निर्माण का आन्दोलन है। यह सर्वथा राजनीति से दूर है तथा रखना है। उसका किसी दल या व्यक्ति-विशेष से सबध नही होना चाहिए। स्थिति तो यह होनी चाहिए कि हर राजनैतिक दल अपनी पार्टी के विधान मे अणुव्रत को स्थान दे। राजनैतिक शुद्धि के लिए सभी राजनैतिक पार्टियो के कार्यकर्त्ता अणुव्रती बने। जब तक राष्ट्र के नेता अणुव्रती नही बनेगे तब तक वे सही अर्थ मे देश के नेता नही बन सकेगे।

—हिदायतुल्ला

४ स्वतत्रता प्राप्ति के बाद उत्पादन और सम्पदा-उपार्जन की दिशा मे देश ने प्रगति की है। किन्तु आज देश को कई विषमताओ का सामना करना पड रहा है। इसका कारण है—अनैतिक आचरण और दुर्व्यसन। इन्ही से उत्पन्न होने वाली आर्थिक व सामाजिक विषमताओ ने देश को प्रगति के मार्ग पर बढ़ने से रोका है। 'अणुव्रत आन्दोलन' इस विषमता को मिटाने

का देश मे एकमात्र साधन है।

—बलराम जाखड़

५ अणुव्रत का आन्दोलन चरित्र-निर्माण का आन्दोलन है और आज ससार को इसकी सबसे बडी आवश्यकता है। अभी तक इन व्रतो का स्थान व्यक्तिगत मूल्यो के रूप मे ही था, पर आचार्य तुलसी और उनके कर्मठ अनुयायियो के अथक परिश्रम का फल है कि उन्हे अब सामाजिक मूल्य मिल रहा है। ज्यो-ज्यो इन व्रतो का सामाजिक मूल्य बनता जायेगा त्यो-त्यो मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता जायेगा। मैं इस आन्दोलन का स्वागत करता हू।

—गोविंद वल्लभ पत

६. अणुव्रत व्यक्ति सुधार से समाज और राष्ट्र-सुधार का अभियान लेकर चल रहा है। भारतीय दर्शन मे व्यक्ति और समाज दोनो समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। समाज सुधार की ठोस पृष्ठभूमि व्यक्ति-सुधार ही है। गाधीजी ने साध्य और साधन दोनो पर समान रूप से बल दिया है। आचार्यश्री भी सभी सासदो को साध्य और साधन दोनो की शुद्धि पर ध्यान देने के लिए मार्ग-दर्शन करे।

—वियोगीहरि

७. आज देश को कानून से नही बल्कि हृदय-परिवर्तन करके ही सुधारा जा सकता है। 'अणुव्रत-आन्दोलन' हृदय-परिवर्तन का आन्दोलन है। आचार्य तुलसी इस आन्दोलन को लेकर व्यक्ति-व्यक्ति तक पहुचे हैं। इसमे व्यक्ति-निर्माण की बहुत बडी शक्ति अन्तर्निहित है। यदि इस शक्ति का समुचित उपयोग कर सके तो एक आदर्श-राष्ट्र की परिकल्पना साकार हो सकेगी।

—रामजेठ मलानी

८. 'अणुव्रत आन्दोलन' अहिंसात्मक प्रतिकार का अमोघ साधन है। आज देश का वातावरण भयभीत है। इससे उबरने के लिए अणुव्रत का सहारा ही सहायक बन सकेगा। अणु की शक्ति महान है। अणुव्रत की शक्ति भी व्यक्ति को महान बनाती है।

—हेमवती नन्दन बहुगुणा

९. मैं 'अणुव्रत आन्दोलन' को सर्वाधिक महत्व देता हू। चूकि उसका उद्देश्य है जाति, समाज, वर्ग और सम्प्रदाय भेद से रहित मानव-मात्र का नैतिक विकास करना। आज ससार मे जैन, बौद्ध, ईसाई, मुस्लिम, वैष्णव आदि अनेको धर्म-सम्प्रदाय हैं। अणुव्रत इन सबका समन्वित रूप है, नवीनता है। समस्त धर्मों के मूलभूत तत्त्व एक हैं। यह तो हमने भुला दिया था।

अणुव्रत ने सर्वधर्म समन्वय का लक्ष्य विश्व के सम्मुख उपस्थित किया है।

--पी एन. दातार

३.५. सारांश

१ भारत की आजादी के पश्चात् राजनैतिक एव सामाजिक स्थितिया विषम हो रही थी। नैतिक विकास की गति मद थी और मदतर होने की सभावना थी। इस सभावना को ध्यान मे रखकर नैतिक विकास की एक आचार सहिता प्रस्तुत की गई। उसका नाम 'अणुव्रत आदोलन' रखा गया।

२ आचार्यश्री तुलसी ने २ मार्च १९४९ को सरदारशहर मे 'अणुव्रत आदोलन' का प्रारभ किया। इसका प्रथम अधिवेशन दिल्ली मे हुआ।

३ प्रारम्भ मे 'अणुव्रत आदोलन' "अणुव्रत सघ" के नाम से सामने आया। इसकी विकास यात्रा मे प्रेक्षा ध्यान, जीवन विज्ञान और अहिंसा-प्रशिक्षण जैसे महत्त्वपूर्ण अनेक आयाम जुडे।

४. आदोलन ने धर्म के वास्तविक व सार्वभौम रूप को जनता के सामने रखा। देश के मूर्धन्य लोगो ने इसको महत्त्व दिया।

५ आदोलन का नेतृत्व आचार्यश्री तुलसी ने सभाला। कुछ ही वर्षों मे सभी धर्मो के लोग अणुव्रती वनने लगे। यह सभी धर्मों की सामान्य भूमिका वन गया। यह एक महान अनुष्ठान था अत 'अणुव्रत आदोलन' के प्रवर्तक ने महान प्रयत्न किया। अणुव्रत अनुशास्ता के अपने साधु-समाज के साथ-साथ अनेक सस्थान भी इस प्रयत्न मे सहभागी वने। 'अखिल भारतीय अणुव्रत समिति' एव उसकी देश व्यापी शाखाए तथा 'अणुव्रत विश्व भारती' इसके मुख्य सहयोगी सस्थान हैं।

६ भारतीय सस्कृति मे व्रत शब्द वहुत गौरववाची शब्द है। व्रती मनुष्य का जीवन सहज, सरल एव शात होता है। व्रत को प्राणप्रण से निभाना, यह भारतीय सस्कृति की जनता की मन स्थिति रही है। कानून को तोडने मे सकोच नही होता। पर व्रत को तोडने मे बहुत बडा पाप माना है। इस आदोलन की पृष्ठभूमि मे यही 'व्रत का सिद्धान्त, कार्य कर रहा है।

७ व्रत हृदय की पूर्ण स्वतन्त्रता और पवित्रता के प्रतीक हैं। व्रतो के आचरण से समाज की भोग-वृत्ति पर बहुत अकुश रहा है। इससे व्यक्ति के व्यवहार मे नैतिकता स्वय फलित होती है।

८. व्रत की अवधारणा वैदिक, जैन और बौद्ध तीनो परम्परा मे प्राप्त है। भगवान महावीर ने व्रतो का प्रतिपादन किया। मुनियो के लिए पाच महाव्रतो की व्यवस्था की और श्रावको के लिए पाच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और सात शिक्षा व्रतो की।

९. समाज का आधार परस्पर अवलम्बन (सहयोग) है। यह सहयोग ही व्यक्ति के व्यक्तित्व को सामाजिक रूप मे बदल देता है। स्वार्थ-सयम से ही सहयोग की भावना मूर्त रूप लेती है। 'अणुव्रत आदोलन' की आधार-भित्ति है—स्वार्थ-सयम।

१० अणुव्रत नया तत्त्व नही है। पर 'आदोलन' वर्तमान की समस्याओ के समाधान मे नवीन प्रस्तुति है। वर्तमान मे 'अणुव्रत आदोलन' भावात्मक दृष्टि से चरित्र निर्माण की प्रक्रिया है। मानव जीवन की आचार-सहिता है। सम्प्रदाय विहीन धर्म का प्रयोग है। इस आदोलन का स्वरूप एव प्रकृति असाम्प्रदायिक है।

११. 'अणुव्रत आदोलन' के वर्तमान स्वरूप मे उसके निदेशक तत्त्व, लक्ष्य और साधन, साचार-सहिता, अणुव्रत-साधना एव वर्गीय अणुव्रतो का समावेश है।

१२. यह आदोलन व्यक्ति-व्यक्ति-सुधार के माध्यम से स्वस्थ समाज सरचना का मौलिक उपक्रम प्रस्तुत करता है। इसका कार्य-क्षेत्र सम्पूर्ण समाज है। शिक्षा जगत्, आर्थिक क्षेत्र, राजनैतिक क्षेत्र, मानवीय एकता, धार्मिक क्षेत्र, विश्व-शान्ति, पर्यावरण चेतना, महिला-जागृति आदि अनेक महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो मे यह आदोलन क्रियाशील है।

१३ जनता-जनार्दन प्रत्येक कार्य की प्रतिक्रिया व्यक्त करती है। इस आदोलन के प्रति भी अनेक अनुकूल एव प्रतिकूल प्रतिक्रियाए आती रही। अनेक सृजनात्मक आलोचनाए भी हुई। स्वय अणुव्रत अनुशास्ता ने इसकी समीक्षा की एव इसकी सीमाओ को स्वीकार किया।

१४ प्रारम्भ मे आदोलन के समकक्ष अनेक आदोलन चलते थे। उनमे से प्राय. लुप्त हो गये। पर यह आदोलन अनेक उतार-चढ़ाव के बावजूद भी आज सक्रिय है। अपना कार्य कर रहा है।

१५ इसने चरित्र को प्रतिष्ठित करने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसने सत्य-निष्ठा, प्रामाणिकता, असाम्प्रदायिकता आदि सार्वभौम तत्त्वो की धारा बहाई। देश में नई विचार धारा का प्रवाह बहाया।

३.६. सहायक सामग्री

१. आचार्य तुलसी; अणुव्रत : गति-प्रगति, आदर्श साहित्य सघ, चुरू (राज.)
२. ,, ,, ; अणुव्रत के आलोक में, ,, ,,
३. ,, ,, , अनैतिकता की धूप : नैतिकता की छतरी, आदर्श साहित्य सघ, चुरू (राज.)
४. ,, ,, ; अणुव्रत : आचार सहिता, अखिल भारतीय अणुव्रत समिति, नई दिल्ली-२

५ आचार्य महाप्रज्ञ, धर्मचक्र प्रवर्तन, जैन विश्व भारती, लाडनू
६ ,, ,, , अणुव्रत की दार्शनिक पृष्ठभूमि, आदर्श साहित्य सघ, चूरू (राज.)
७ ,, ,, ; जीव-अजीव, जैन विश्व भारती, लाडनू
८ ,, ,, , नैतिक पाठमाला-२
९ मुनि सुखलाल, अणुव्रत की दिशाए, आदर्श साहित्य सघ, चूरू (राज.)
१० ,, ,, , अणुव्रत की गहराई मे, ,, ,, (राज)
११ ,, ,, ; जरूरत है ऐसे लोगो की, ,, ,, (राज.)
१२ मुनि मोहजीत कुमार, जन-जन की दृष्टि मे : अणुव्रत, आदर्श साहित्य सघ, चूरू (राज)
१३ श्री दलवीर सिंह ढढ्ढा, अणुव्रत आदोलन का समाज दर्शन, (शोध प्रबन्ध)

अभ्यासार्थ प्रश्न

१ सामाजिक, राजनैतिक एव धार्मिक परिस्थितियो ने 'अणुव्रत आदोलन' के उद्भव को किस प्रकार प्रेरित किया ?
२ अणुव्रत आदोलन के उद्भव एव उसके सवाहक तत्त्वो पर प्रकाश डालें ?
३ भारतीय सस्कृति मे व्रत के स्वरूप एव उसके महत्त्व को स्पष्ट करे।
४. अणुव्रत की अवधारणा को जैन आगमो के सदर्भ मे प्रकाशित करें।
५ अणुव्रत के वर्तमान स्वरूप का विवेचन करे ?
६ अणुव्रत आदोलन के दर्शन को स्पष्ट करे ?
७ अणुव्रत आदोलन के अर्थ, प्रकृति एव स्वरूप की विवेचना करें।
८. अणुव्रत, स्वस्थ समाज सरचना का आदोलन है। कैसे ?
९ अणुव्रत का कार्य-क्षेत्र क्या है ?
१०. अणुव्रत के कार्यक्रमो की समीक्षा करते हुए उसकी सीमाओ को रेखाकित करें।
११ अणुव्रत आदोलन के प्रवर्तक के व्यक्तित्व एव कर्तृत्व पर चर्चा करते हुए स्वस्थ समाज रचना मे उनके योगदान को स्पष्ट करें।

अध्याय ४

४. प्रेक्षाध्यान (Preksha Meditation)

रूपरेखा

१. प्रेक्षाध्यान के मूल स्रोत (Main Sources of Preksha Meditain)

महावीर की साधना, स्वरूप परिवर्तन, प्रेक्षाध्यान का अभ्युदय, अर्वाचीन स्रोत, शरीर प्रेक्षा का आधार, चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का आधार, लेश्या ध्यान का आधार, अप्रमाद केन्द्र, अनुप्रेक्षा, लचीलापन, विज्ञान का उपयोग, मंत्रदाता।

२. प्रेक्षाध्यान : आध्यात्मिक आधार (Preksha Meditation : Spiritual Basis)

हमारा द्वन्द्वात्मक अस्तित्व, अध्यवसाय तंत्र, क्रिया-तंत्र।

३. प्रेक्षाध्यान : स्वरूप (Preksha Meditation : Nature)

अर्थ-व्यंजना, ध्येय एवं प्रयोजन, उपसंपदा, उपसंपदा की चर्या, आसन, प्राणायाम, मुद्रा, अर्हम् ध्वनि, महाप्राण ध्वनि, ध्वनि प्रकम्पनो के मानसिक प्रभाव, एकाग्रता और अप्रमाद, कायोत्सर्ग अन्तर्यात्रा, श्वास प्रेक्षा, शरीर प्रेक्षा, चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा, लेश्या ध्यान, भावना और अनुप्रेक्षा, विचार प्रेक्षा।

४. प्रेक्षाध्यान : निष्पत्ति (Preksha Meditation : Results)

अंतःकरण का परिवर्तन, मानसिक संतुलन, आध्यात्मिकता।

५. सारांश (Summary)

६. सहायक सामग्री (Reference)

७. अभ्यासार्थ प्रश्न

४. प्रेक्षाध्यान (Preksha Meditation)

४.१.० प्रेक्षाध्यान के मूलस्रोत (Preksha Meditation : Main sources)

शब्द शाश्वत नही होता, अर्थ शाश्वत होता है। शब्द बदलते रहते हैं, भाषा बदलती रहती है, किन्तु तात्पर्य कभी नही बदलता। जो है वह रहता है। उसके लिये समय-समय पर नये शब्दो का सृजन होता है और भाषा मे परिवर्तन होता रहता है।

प्रेक्षा शब्द—प्रश्न है—प्रेक्षा शब्द कितना पुराना है ? यह भगवान महावीर जितना पुराना तो है ही। उससे भी आगे यह शब्द रहा है या नही —यह नही कहा जा सकता। किन्तु इसका अर्थ बहुत पुराना है। अर्थ की दृष्टि से विचार करें तो भगवान ऋषभ तक पहुच जाते है। भगवान ऋषभ हुये हैं जिन्होने आत्मवाद का प्रवर्तन किया, योग-साधना का मार्ग बताया। हठयोग विद्या मे आदिनाथ को नमस्कार किया गया है, जिन्होने योग का प्रवर्तन किया।

"आदिनाथ नमोस्तु तस्मै, येनोपदिष्टा हठयोगविद्या"

आदिनाथ ऋषभ है। कुछ लोग कहते है—शिव है। शिव है तो आदिनाथ हैं और आदिनाथ हैं तो शिव है। आज मान लिया गया—आदिनाथ, ऋषभ और शिव ये कोई दो व्यक्ति नही हैं। आदिनाथ ऋषभ योग के प्रवर्तक हैं। हिरण्यगर्भ हैं आदिनाथ जिन्होने योग का प्रवर्तन किया, ध्यान मार्ग का प्रवर्तन किया।

हिरण्यगर्भो योगस्य वेत्ता नान्य पुरातन ।

प्रेक्षा के मूल स्रोत हैं आदिनाथ ऋषभ। एक घटना है—भरत ने स्नान किया। स्नान कर शयनकक्ष मे बैठे। वह आदर्श भवन था। पूरा शीशे का बना हुआ भवन था। आसन पर बैठ गये। सामने दर्पण था उसमे वे अपने आपको देख रहे हैं, अपनी प्रेक्षा कर रहे है। प्रेक्षा करते-करते, अपने आप को देखते-देखते वे सम्राट् से केवली (केवलज्ञानी या परमज्ञानी) बन गये। यह ध्यान की परम्परा का आदि स्रोत है।

भगवान पार्श्व की ध्यान साधना विशिष्ट थी। पार्श्व की ध्यान साधना का प्रभाव बहुत व्यापक बना। पार्श्व की साधना से नाथ सम्प्रदाय प्रभावित हैं, बौद्ध धर्म और जैन धर्म प्रभावित हैं। पार्श्व का इतना व्यापक

तालिका १—प्रेक्षाध्यान : सिद्धान्त और मूल स्रोत

विन्दु	तथ्य	प्रमाण
प्रयोजन	१ सत्य की खोज के लिए २ आध्यात्मिक चेतना के विकास के लिए ३ जीवन मे सतुलन वनाये रखने के लिए ५ सवर-निर्जरा ६ स्वभाव-परिवर्तन ७ स्वास्थ्य [व्याधि, आधि, उपाधि से मुक्ति] ८ मानसिक शाति ९ अतीन्द्रिय ज्ञान हेतु	आयारो ३।८५,२।११८ दसवेआलिय ९।३।११ द चू २।१२, उत्तर ६।२
आध्यात्मिक स्वरूप	१ लक्ष्य प्राप्ति हेतु अप्रमाद की साधना पद्धति है। २ आध्यात्मिक विवेचन-द्वन्द्वात्मक-अस्तित्व के आधार पर। ३ इस प्रयोग पद्धति मे मुख्य आठ प्रयोग है—१ कायोत्सर्ग २ अन्तर्यात्रा ३ श्वास प्रेक्षा ४ शरीर प्रेक्षा ५ चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा ६ लेश्या ध्यान ७ अनुप्रेक्षा ८ भावना। चार सहायक प्रयोग—१ आसन २ प्राणायाम ३ ध्वनि ४ मुद्रा। तीन विशिष्ट प्रयोग—वर्तमान क्षण की प्रेक्षा विचार प्रेक्षा, अनिमेष प्रेक्षा।	आयारो १।३७, २।११,३।७५, ४।३२, ५।२०,२१,२३, ६।१०६, ९।२।४,९।४।१४ सूयगडो १।२।२१, १।१२।१८, १।१५।५ ठाण ६।६८, दसवे १०।१३, द चू २।७ उ भ्र १०।१,३६,३८,३४।६१
वैज्ञानिक स्वरूप	१ प्रयोग पद्धति का वैज्ञानिक विवेचन-स्नायु एव अन्तःस्रावी ग्रन्थि तन्त्र के माध्यम से। २ मनोवैज्ञानिक विवेचन—अवचेतन मन के स्तर पर।	
प्रक्रिया	१ राग-द्वेष रहित देखने की एकाग्रता प्रेक्षा। २ सोचने की एकाग्रता—अनुप्रेक्षा। ३ आन्तरिक प्रक्रियाओ की प्रेक्षा।	आयारो ५।१२०, २।३७
परिणाम	१ भावात्मक १ कषायो की क्रमिक क्षीणता २ अन्तःकरण व आदतो मे बदलाव ३ दृष्टि-परिवर्तन। २ मानसिक १ एकाग्रता २ मानसिक संतुलन ३ धैर्य ४ स्मरण शक्ति ५ चिन्तन शक्ति ६ कल्पना शक्ति ७ निर्णायक शक्ति का विकास। ३ शारीरिक १ रसायनिक परिवर्तन २. रोग प्रतिरोधी क्षमता का विकास। ४ व्यावहारिक १ कार्यक्षमता मे वृद्धि २ मधुर व्यवहार ३. अनासक्त व्यवहार ४. सृजनधर्मिता का विकास।	आयारो २।१७३, ३।२८,३३, ८३, ३।८४,८७, ५।७४.

प्रभाव है कि उनकी ध्यान साधना से कई सम्प्रदाय प्रभावित हुये। डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नाथ सम्प्रदाय की शोध मे इन तथ्यो का बहुत विस्तार से वर्णन किया है।

४.१.१. महावीर की साधना

पार्श्व के पश्चात् महावीर ने ध्यान की उत्कृष्ट साधना की। सोलह-सोलह दिन और रात वे ध्यान की मुद्रा मे, कायोत्सर्ग की मुद्रा मे खडे रहे। वे कभी उर्ध्वलोक को देखते तो कभी अधोलोक को देखते और कभी मध्य-लोक को देखते। जब उर्ध्वलोक के तत्त्वो को जानना होता तो उर्ध्वलोक की प्रेक्षा करते। जब मध्यलोक के तत्त्वो को जानना होता तो मध्यलोक की प्रेक्षा करते और जब नीचे के तत्त्वो को जानना होता तब नीचे के लोक की प्रेक्षा करते। उनकी प्रेक्षा अनवरत चलती रहती। महावीर के निर्वाण के पश्चात् ध्यान की साधना चलती रही और लम्बे समय तक यह क्रम चला। बीच मे प्रश्न भी खडे हुये। बौद्धो ने प्रश्न किया—जैनो मे ध्यान साधना कमजोर है। मुनि पुष्यमित्र का प्रसग इस बारे मे स्पष्ट है। बौद्ध भिक्षु उनके पास आये। आचार्य ने कहा—तुम यहा हमारे पास रहो और देखो कि दुर्बलिका पुष्यमित्र कैसे ध्यान करते हैं ? ध्यान की प्रकृष्ट साधना उस समय चल रही थी।

४.१.२. स्वरूप परिवर्तन

भगवान महावीर के निर्वाण के हजार वर्ष बाद ऐसा लगता है कि एक मोड आया और जैन धर्म मे ध्यान-साधना कुछ कमजोर पडी। वीर निर्वाण के पन्द्रह सौ वर्षों के बाद ध्यान का स्वरूप बदल गया। जो मूल ध्यान साधना की पद्धति थी, जैन धर्म की प्राचीन पद्धति थी वह छूट गई और हठयोग से प्रभावित पद्धति चल पडी। आचार्य हरिभद्र, हेमचन्द्र, शुभचन्द्र, पूज्यपाद आदि-आदि ने ध्यान की साधना को फिर आगे बढाया किन्तु उसका स्वरूप बदल गया। इन पाच सौ वर्षों मे ध्यान की साधना अत्यन्त क्षीण हो गई है। जैसे बहते-बहते नदी का प्रवाह क्षीण हो जाता है। वैसे ही जैन धर्म मे ध्यान की सरिता का प्रवाह क्षीण हो गया। स्थिति यह बन गई जैन लोग यह भी भूल गये कि हमारे यहा ध्यान की भी कोई पद्धति है।

दिल्ली की घटना है। आचार्य श्री महाप्रज्ञ आदि 'अणुव्रत भवन' से प्रेक्षाध्यान शिविर के लिए 'अध्यात्म साधना केन्द्र' आ रहे थे। रास्ते मे एक भाई मिला। वह रिटायर्ड इन्कमटैक्स कमिश्नर था। वन्दना की, पूछा—आप कहा जा रहे है ? उनको बताया—'अध्यात्म साधना केन्द्र' जा रहे हैं। ध्यान का शिविर है। तत्काल उसने कहा—'क्या जैनो मे भी कोई

प्रेक्षा-विकास-वृत्त (Historical Development of Preksha)

जैन साधको की ध्यान पद्धति क्या है ?—यह प्रश्न दूसरे ने नही पूछा, स्वय हमने ही अपने आप से पूछा। सन् १९६० मे यह प्रश्न मन मे उठा और उत्तर की खोज शुरू हुई। उत्तर दो दिशाओ मे पाना था—एक आचार्यश्री से, दूसरा आगम से। आचार्यश्री तुलसी ने पथप्रदर्शन किया कि आगम से इनका विशद उत्तर प्राप्त किया जाये।

आगम साहित्य मे ध्यान विषयक कोई स्वतत्र आगम उपलब्ध नही है। नन्दी सूत्र की उत्कालिक आगमो की सूचि मे 'ध्यान-विभक्ति' नामक आगम का उल्लेख है किन्तु वह आज उपलब्ध नही है। इस स्थिति मे उपलब्ध आगम साहित्य मे आये हुये ध्यान-विषयक प्रकरणो का अध्ययन शुरू किया और साथ साथ उनके व्याख्या ग्रथो तथा ध्यान विषयक उत्तरवर्ती साहित्य का भी अवगाहन किया। इस अध्ययन से जो प्राप्त हुआ, उसके आधार पर ध्यान की रूपरेखा उत्तराध्ययन के टिप्पणो मे प्रस्तुत की गई। सन् १९६१ मे आचार्यश्री ने 'मनोऽनुशासनम्' की रचना की। मैंने पहले उसका अनुवाद किया और १९६४ मे उस पर विशद व्याख्या लिखी। उसमे जैन साधना पद्धति के कुछ रहस्य उद्घाटित हुये। १९७१ मे आचार्यश्री के सान्निध्य मे साधु-साध्वियो की विशाल परिषद् मे जैन योग के विषय मे पाच भाषण हुये। उनमे दृष्टिकोण की और कुछ स्पष्टता हुई वे 'चेतना का ऊर्ध्वारोहण' पुस्तक मे प्रकाशित हैं। भगवान महावीर की पचीसवी निर्वाण शताब्दी के वर्ष मे 'महावीर की साधना का रहस्य' पुस्तक प्रकाशित हुई। ये सारे प्रयत्न उसी प्रश्न का उत्तर पाने की दिशा मे चल रहे थे।

कई शताब्दियो से विच्छिन्न ध्यान परपरा की खोज के लिये यह सभी प्रयत्न पर्याप्त सिद्ध नही हुये। जैसे-जैसे कुछ तथ्य समझ मे आते गये वैसे वैसे प्रयत्नो को तीव्र करने की आवश्यकता अनुभव होती गई। चूरू, हिसार, राजगढ और दिल्ली मे (सन् १९७१-१९७४) दस-दस दिवसीय साधना सत्र आयोजित किये गये। इन शिविरो ने साधना का पुष्ट वातावरण निर्मित किया। अनेक साधु-साध्विया तथा गृहस्थ ध्यान साधना मे रुचि लेने लगे।

सन् १९७५ के जयपुर चातुर्मास मे परम्परागत जैन ध्यान का अभ्यास-क्रम निश्चित करने का सकल्प हुआ। हमने ध्यान की इस अभ्यास विधि का नामकरण 'प्रेक्षाध्यान' किया। यह 'प्रेक्षाध्यान पद्धति' के विकास का सक्षिप्त इतिहास है।

—आचार्य महाप्रज्ञ

ध्यान की विधि है ? यह सुनकर बडा आश्चर्य हुआ । इतना पढ़ा-लिखा आदमी, इन्कमटैक्स का आफिसर और वह भी जैन, यह पूछता है कि क्या जैनो मे भी कोई ध्यान की विधि है ?' इन शताब्दियो मे वातावरण ही कुछ ऐसा बन गया था कि ऊपर की बाते, क्रियाकाड अधिक प्रभावी बन गये और ध्यान छूट गया ।

४.१,३. प्रेक्षाध्यान का अभ्युदय (Origin of Preksha Meditation)

आगम सपादन का कार्य चल रहा था । आचार्य महाप्रज्ञ उत्तराध्ययन का सपादन कर रहे थे । उत्तराध्ययन के तीसरे अध्याय मे ध्यान का एक लम्बा प्रकरण जोडा गया । उस सदर्भ मे अनेक जैन ग्रन्थो का पारायण आपने किया । कई ग्रन्थ देखे । श्वेताम्बर और दिगम्बर—दोनो सम्प्रदायो के ध्यान सबन्धित ग्रन्थो का पारायण किया और उनका उसमे यथावकाश सन्निवेश भी किया । उदयपुर का पचायती नोहरा । सन् १९६२, रात्रि प्रतिक्रमण के पश्चात आचार्यश्री महाप्रज्ञ गुरुदेवश्री तुलसी की सन्निधि मे बैठे थे । प्रसगवश आपसे निवेदन किया—'ध्यान पर जैनो मे तो बहुत कुछ लिखा गया है ।' तत्काल गुरुदेव ने कहा—'हा ! लेकिन अब, यह परम्परा छूट गई । अब क्यों न इस पर अनुसधान किया जाये ? यह मत्र था, प्रेक्षाध्यान के अभ्युदय का । प्रेक्षाध्यान के मत्रदाता बने आचार्य तुलसी । वही से बीज की बुवाई हो गई, बीज बोया गया, अकुरित हुआ और बडी तेजी से बढने लगा । वह प्रेक्षाध्यान का सार्थक बीज था । भीतर ही भीतर पकता गया और एक दिन ऊपर आ गया । न कोई नाम था न विज्ञापन और न कुछ विशेष प्रचार । शिविर होने लगे । सन् १९७५ मे जयपुर मे चिंतन किया—जब हमारी ध्यान की पद्धति का प्रारम्भ हो गया है, शिविर भी लग रहे हैं, तो क्यो न इसका नामकरण कर दिया जाये । यह चिन्तन क्रियान्वित हुआ ग्रीन हाउस के शीशमहल मे ।

ध्यान के लिए आगम मे दो शब्द मिलते हैं—विपश्यना और प्रेक्षा । ये पुराने शब्द हैं । विपश्यना बौद्ध ध्यान पद्धति है । आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने 'प्रेक्षा' शब्द का चुनाव किया ।

४.१.४. अर्वाचीन स्रोत

भगवान ऋषभ के ज्येष्ठ पुत्र भरत ने प्रेक्षा-प्रयोग किया था और वहा से गुजरता हुआ वह अर्थ सन् १९७५ मे प्रेक्षा मे समाहित हो गया । अर्थ पुराना, शब्द नया । यह प्रेक्षा के प्राचीन से वर्तमान स्रोत तक की मीमासा है । अर्वाचीन स्रोत अनेक हैं । उन स्रोतो की चर्चा के अनेक सन्दर्भ हैं ।

श्वासप्रेक्षा और कायोत्सर्ग—ये दो प्रेक्षा ध्यान के आधारभूत तत्त्व हैं। इनका स्रोत आवश्यक निर्युक्ति और कायोत्सर्ग शतक से मिला। वहा कहा गया—श्वास को सूक्ष्म करे, कायोत्सर्ग करें। श्वास को सूक्ष्म करना, श्वास को मद करना एक ही बात है। श्वसन को सूक्ष्म बना लें, और उसकी गति को मद कर दें, कायोत्सर्ग मे रहे। कायोत्सर्ग और दीर्घश्वास प्रेक्षा का यह महत्त्वपूर्ण स्रोत है।

४.१.५. शरीर प्रेक्षा का आधार

शरीर प्रेक्षा का सूत्र आचारांग सूत्र से मिला। आचाराग का सूत्र है—'जे इमस्स विग्गहस्स अय खणेत्तिमन्नेसि।' विग्रह, शरीर का जो वर्तमान क्षण है, उसका अन्वेषण करें।' शरीर के वर्तमान क्षण का अन्वेषण करना -इस समय शरीर मे क्या परिणमन, परिवर्तन हो रहा है ? कौन सा जैविक-रासायनिक परिवर्तन हो रहा है ? यह शरीरप्रेक्षा है और इसका बोध आचारांग सूत्र मे स्पष्ट मिलता है।

श्वास प्रेक्षा और शरीर प्रेक्षा—यह बौद्ध साधना पद्धति मे आनापानसती और कायविपश्यना के नाम से प्रचलित है। आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने उनका भी अध्ययन किया, प्रयोग भी किये पर प्रेक्षा ध्यान मे इनके जो प्रयोग हैं, वे विपश्यना से बहुत भिन्न है।

४.१.६. चैतन्य-केन्द्र प्रेक्षा का आधार

एक प्रयोग है चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा। प्रेक्षाध्यान मे तेरह चैतन्य-केन्द्र (साइकिक सेन्टर) स्वीकृत है। हठयोग मे छ: चक्र माने गये हैं। कही-कही नौ चक्र माने गए हैं। आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं—प्रेक्षा ध्यान मे कुछ नये केन्द्र खोजे गये। इनके बारे मे कुछ नही कहा जा सकता है। बस आ गया किन्तु इनका स्रोत फिर खोजा गया। आखिर यह कहा मिलेगे ? हठयोग और तन्त्रशास्त्र मे भी नौ ही हैं। हमने तेरह निर्धारित किये है। क्या ये निराधार हैं ? इनका आधार कहा मिलेगा ? जब इस पर ध्यान दिया, खोजा तो पाया—नदीसूत्र मे सैकडो चैतन्य केन्द्रो की चर्चा है। नदीसूत्र ज्ञान मीमासा का आगम है। एक ज्ञान है अवधि ज्ञान। यह अतीन्द्रिय चेतना को जागृत करने वाला पहला है। इसके अनेक प्रकार बताये गये हैं

- पुरओ—आगे का अवधिज्ञान।
- पिट्ठओ—पीछे का अवधिज्ञान।
- पासओ—दोनो पार्श्व का अवधिज्ञान।
- मज्झओ— ऊपर का अवधिज्ञान।

चूर्णिकार ने बहुत स्पष्ट किया है। जैसे एक दीप का प्रकाश उस

पर ढक्कन देने से अवरुद्ध हो जाता है । उसे जालीदार बना देने पर प्रकाश की रश्मिया उसमे से बाहर निकलने लगेगी । हमारी चेतना पर भी एक आवरण पडा हुआ है, ज्ञानावरण कर्म का । साधना के द्वारा आवरण को जालीदार बना ले तो फिर उसमे से अतीन्द्रिय ज्ञान की रश्मिया बाहर निकलेगी । एक सकेत मिला —चैतन्य केन्द्र तेरह ही नही, तेरह सौ भी हो सकते हैं, तेरह हजार भी हो सकते हैं । हमारा यह शरीर चैतन्य केन्द्रो से भरा हुआ है । जहा से भी भेदो प्रकाश निकलना शुरु हो जायेगा । आज स्नायुतन्त्र के विशेषज्ञ बतलाते हैं आख से हमने देखना शुरू किया, इसका तात्पर्य है - इस स्थान पर हमने क्रिस्टेलाइजेशन कर दिया । अगर क्रिस्टेलाइजेशन अगुली पर कर दिया तो अगुली से देखने लग जायेंगे । एक लब्धि है—सभिन्नस्रोतोलब्धि । उसका अर्थ ही यही है—शरीर के हर किसी भाग से देख सकते हैं । सुन सकते हैं, चख सकते हैं । सब इन्द्रियो का काम किसी एक अगुली से कर सकते है । पैर के अगुठे से कर सकते है । यदि उसका क्रिस्टेलाइजेशन हो जाये । चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का अर्थ है - शरीर के किसी भी भाग को हम सक्रिय कर सकते है । इलेक्ट्रोमैगनेटिक फील्ड बना सकते हैं ।

दिगम्बर साहित्य मे बहुत विस्तार से "करण" के नाम से इसकी चर्चा की गई है । हठयोग मे इसका आकार चक्र-जैसा या कमल-जैसा बतलाया गया है । किन्तु "धवला" मे स्वस्तिक, कलशचक्र, शख, पद्म आदि अनेक प्रकार के आकार-प्रकार बतलाये गए है । नाभि से उपर के भाग के केन्द्रो के आकार प्रशस्त (अच्छे) बतलाये गये है और नाभि से नीचे के जो चैतन्य केन्द्र है उनके आकार अप्रशस्त है । पशुओ के नीचे के केन्द्र जागृत रहते है । और मनुष्य यदि साधना करे तो उपर के केन्द्रो को जागृत कर सकता है । विशिष्ट शक्तियो को प्राप्त कर सकता है ।

४.१.७. लेश्याध्यान का आधार

आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार—लेश्याध्यान का प्रयोग आकस्मिक ढग से हुआ । न कभी सोचा था न कभी चिंतन किया था । शिविर मे गए, ध्यान का प्रयोग करना था । एक मिनट पहले सोचा—क्या कराये और दूसरे ही मिनट लेश्याध्यान का प्रयोग चालू हो गया । लेश्या हमारे भावो का प्रतिनिधित्व करने वाली, व्याख्या करने वाली एक महत्त्वपूर्ण पद्धति है । जयाचार्य ने रगो के ध्यान का अच्छा वर्णन किया है । इस विषय मे उनके दो ग्रन्थ हैं—छोटा ध्यान और बड़ा ध्यान । दो छोटे ग्रन्थो मे रगो का ध्यान करने की बहुत अच्छी पद्धति मिली ।

४.१.८. अप्रमाद केन्द्र

आधार विकसित होते गए । कान पर प्रयोग कराये । इसका नाम

रखा अप्रमाद केन्द्र। यदि पूछे यह नाम क्यो रखा गया ? इसका बोध उस समय नही था। किन्तु यह नाम निर्धारित हो गया। इसका प्रयोग करने से नशे की आदत बदलती है। गगाशहर चातुर्मास के दौरान रूस की एक पत्रिका 'सोवियतभूमि' हाथ आई। उसमे पढा—'सोवियत वैज्ञानिको ने नशा छुडाने के लिए सत्तर आदमियो के कान पर बिजली के प्रकपन का प्रयोग किया। उनमे बीस-पचीस आदमियो की आदत बिलकुल कम हो गई। हमे लगा हम जो प्रयोग करवा रहे हैं वह निराधार नही। उसका एक वैज्ञानिक आधार भी है।'[1]

४ १.९. अनुप्रेक्षा

एक प्रयोग है अनुप्रेक्षा का। बारह अनुप्रेक्षा या सोलह अनुप्रेक्षा—ये बहुत प्राचीन काल से प्रचलित हैं। कुन्दकुन्द ने बारह अनुप्रेक्षा पर लिखा है, स्वामी कार्तिकेय ने इस पर लिखा। विनयविजयजी ने लिखा, अनेक आचार्यो ने लिखा। किन्तु पूज्य गुरुदेव की अनुकपा और अनुग्रह से हमे यह सौभाग्य मिला कि अनुप्रेक्षा की पद्धति को हमने विकसित किया। शब्द तो प्राचीन थे। कायोत्सर्ग शब्द भी ग्रन्थो मे बार-बार मिलता है। किन्तु इनकी पद्धति को विकसित करने का श्रेय हमे है। अनुप्रेक्षा की प्रद्धति विकसित हुई और पचीस-तीस अनुप्रेक्षा के प्रयोग सामने हैं। स्वभाव परिवर्तन करने के लिए अनुप्रेक्षा का प्रयोग सबसे शक्तिशाली प्रयोग है। पुरानी आदत को मिटाने और नये सस्कार निर्माण हेतु अनुप्रेक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है।[2]

४.१.१०. लचीलापन

पहले कायोत्सर्ग का एक प्रयोग करवाते थे। किन्तु जैसे-जैसे गहराई मे उतरते गए, स्रोत मिलते गए। आज कायोत्सर्ग की पाच विधिया हमने विकसित कर ली। इन सब विधियो की खोज मे हमे हठयोग, तन्त्र, शैव, साधना पद्धति, विज्ञान भैरव आदि-आदि ग्रन्थो का यत्किञ्चित् मात्रा मे स्रोत और सहयोग मिला है। हमने उनका भी उपयोग किया है। हम रूढ परम्परावादी नही बने। कुछ लोग ऐसे हैं जो कहते हैं—'जो पुराना है उससे हम एक अक्षर भी इधर-उधर नही होगे।' यह उनका अभिमत है। किन्तु हमे जो गुरु मिले हैं वे लचीले हैं, उनमे रूढ़ता नही है। यही भूमि का मध्य है, ऐसी आग्रहयुक्त भूमि हमारी नही है।

हमे तर्कपूर्ण पद्धति मिली, ऐसे लचीलेपन की प्रेरणा मिली कि हमें सबका प्रयोग करना चाहिये। हमने केवल प्राचीन साहित्य का ही प्रयोग नही किया, विज्ञान का भी इसमे भरपूर प्रयोग किया है। हमारी यह धारणा

---

१ नया मानव नया विश्व, आचार्य महाप्रज्ञ, पृष्ठ १६०।
२. नया मानव . नया विश्व, आचार्य महाप्रज्ञ, पृष्ठ १६०।

है—बहुत सारे तत्त्व ऐसे हैं जो प्राचीन हैं, किन्तु उनकी व्याख्या वर्तमान विज्ञान से जितनी अच्छी हो सकती है, किसी प्राचीन ग्रन्थ से उतनी अच्छी नही हो सकती।

४.१.११. विज्ञान का उपयोग

आज शरीर शास्त्र और क्रियाशास्त्र भी बहुत विकसित हो गए है। साइकोलोजी का भी बहुत अधिक विकास हुआ है। कोई भी ध्यानपद्धति हो, यदि उसमे वर्तमान की वैज्ञानिक पद्धतियो का समावेश नही है तो वह शायद अन्धेरी कोठरी मे पत्थर फेकने वाली बात होगी। उसका पूरा उपयोग करना चाहिए। हमने प्रेक्षाध्यान पद्धति मे वर्तमान शरीर विज्ञान, शरीर क्रिया विज्ञान और मनोविज्ञान का भरपूर उपयोग किया है। उसकी व्याख्या को नया आयाम और नया रूप दिया है। इसलिए एक चिकित्सक प्रेक्षाध्यान को वहुत जल्दी पकड लेता है। शरीर को जाने बिना ध्यान ठीक से नही हो सकता। वर्तमान चिकित्सक प्राण प्रवाह को नही जानते। उसे जान जाये तो चिकित्सा विज्ञान बहुत आगे बढ जाये। शरीर में प्राण प्रवाह एक ठण्डा चलता है एक गरम चलता है। कब किसका प्रयोग करना चाहिए इसके बारे मे जानना आवश्यक है।

प्रेक्षाध्यान मे इस प्रकार प्राचीन स्रोतो और नवीन वैज्ञानिक खोजो का सम्यक् समन्वय किया गया है। प्रेक्षाध्यान की पद्धति इसलिए लचीली पद्धति है आज भी उसमे नया जोडने के लिये अवकाश है। पुराने का सकलन और नये का समन्वय दोनो के लिये द्वार खुले हैं। पूज्य गुरुदेव ने आरम्भ से ही सूत्र दिया—'न प्राचीनता का मोह हो और न नये से एलर्जी।' दोनो ही चाहिए। इसलिए हम न पुरातन पथी रहे और न ही नवीनपथी। जो बाते पुरानी अच्छी हैं, उनका उपयोग करे और जो नई बाते आज प्रकाश मे आ रही हैं, उनका उपयोग करे। हमारा अनेकातवादी दृष्टिकोण प्रेक्षा-ध्यान का मूल आधार बना है।

४.१.१२. मन्त्रदाता

प्रेक्षाध्यान के आधार-सूत्रो का यह सक्षिप्त विश्लेषण है। जिसका प्राचीन स्रोत है, ऋषभ और भरत। वर्तमान युग मे मन्त्रदाता है – पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी। शक्ति तो हर व्यक्ति मे होती है, किन्तु उस शक्ति को जागृत करने वाला चाहिए। मन्त्र का महत्व है किन्तु उससे भी ज्यादा महत्त्व है मन्त्रदाता का। हमारा यह सौभाग्य है कि गुरु के रूप मे हमे आचार्य तुलसी मिले, जिनका ध्यान की इस पद्धति को विकसित करने का आदेश मिला, प्रेरणा और मार्गदर्शन मिला, एक ऐसी पद्धति विकसित हो गई जिसमे नया मानव और नये विश्व की संरचना का सामर्थ्य सन्निहित है।

४.२.०. प्रेक्षाध्यान : आध्यात्मिक आधार

४.२.१. हमारा द्वन्द्वात्मक अस्तित्व

हमारा अस्तित्व दो तत्त्वों का संयोग है। एक है–चेतन, जीव। दूसरा है अचेतन, शरीर। कुछ लोग केवल शरीर को ही मानते हैं, वे चेतन या जीव की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार नही करते। वे अनात्मवादी हैं। आत्मवादी दर्शन आत्मा और शरीर को भिन्न मानता है, दो मानता है और चेतन के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार करता है।

आत्मवादी दृष्टि-बिन्दु को समझने के लिए हमे स्थूल शरीर से आगे बढ़ना होगा। जहा शरीरवादी दृष्टि बिन्दु स्थूल शरीर, इन्द्रिय और मन तक रुक जाता है, वहां आत्मवादी दृष्टि-बिन्दु उससे आगे बढ़कर सूक्ष्म शरीर, अति सूक्ष्म शरीर, चित्त, अध्यवसाय, कषाय और अन्त मे चेतना तत्त्व तक पहुंच जाता है।

४.२.२. अध्यवसाय तन्त्र

आत्मवादी दर्शन के अनुसार केन्द्र मे एक चेतन, जीव है–द्रव्य आत्मा या मूल आत्मा। उस केन्द्र की परिधि मे अति सूक्ष्म कर्म शरीर द्वारा निर्मित कषाय का वलय है। यद्यपि चेतन तत्त्व शासक के स्थान पर है फिर भी कषाय तन्त्र इतना शक्तिशाली है कि उसकी इच्छा के बिना शासक कुछ नही कर पाता। चैतन्य की प्रवृत्ति स्पंदन के रूप मे होती है। इन्हे बाहर निकलने के लिये कषाय विलय को पार करना पड़ता है। पार करने पर उनका एक स्वतत्र तन्त्र बन जाता है। वह है अध्यवसाय तन्त्र। वह तन्त्र दूसरे सूक्ष्म शरीर-तैजस शरीर के साथ-साथ सक्रिय होकर आगे बढ़ता है। वह बन जाता है—लेश्या तन्त्र।

कषाय-तन्त्र कितना भी शक्तिशाली हो, फिर भी आत्मा मे वह शक्ति है जिसका प्रयोग कर वह कषाय का विलय कर सकता है। इस स्थिति मे यद्यपि कषाय का तन्त्र समाप्त नही होता, फिर भी उसकी सक्रियता कम हो जाएगी और प्रभाव क्षीण हो जायेगा। परिणाम स्वरूप जो अध्यवसाय बाहर आयेंगे। वे मगलमय और कल्याणकारी होंगे।

"मन" मनुष्य या अन्य विकासशील प्राणियो मे होता है, सब जीवो में नही होता। किन्तु 'अध्यवसाय' सब प्राणियो मे होता है। हमने मस्तिष्क और मन को बहुत बड़ा स्थान दे दिया है। किन्तु हमारे ज्ञान का सबसे बड़ा स्रोत है—'अध्यवसाय'। चेतना के स्पंदन आगे बढ़कर स्थूल शरीर मे उतरते हैं। वहां सबसे पहले मस्तिष्क के माध्यम से चित्त का निर्माण करते हैं।

व्यक्तित्व का स्वरूप : द्वन्द्वात्मक अस्तित्व
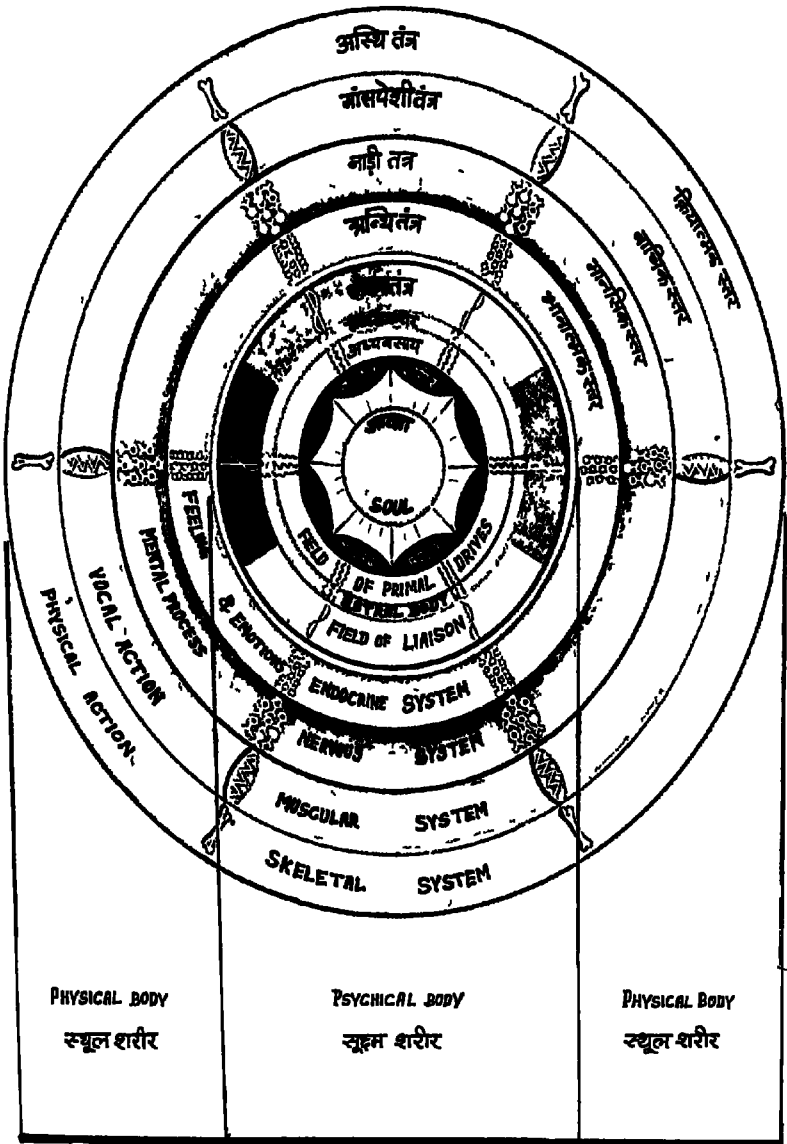
४.२.३. क्रियातन्त्र (योग अर्थात् प्रवृत्ति तंत्र)

अध्यवसाय के अनेक स्पदन अनेक दिशाओ मे आगे बढते है। उनकी एक धारा है—लेश्या या भाव की धारा। अध्यवसाय की यह धारा जो रग से प्रभावित होती है, रग के स्पदनो के साथ जुडकर भावो का निर्माण करती हैं। वह है हमारा भाव तन्त्र। जितने भी अच्छे या बुरे भाव हैं, वे सारे इसके द्वारा ही निर्मित होते हैं।

भावतन्त्र या लेश्या तत्र हमारे सचित कर्म या सस्कारो का झरना है। कर्म के इस प्रवाह का बाहर आने का माध्यम है—हमारा अन्त स्रावी ग्रन्थितन्त्र (Endocrine System)। जब लेश्या से भावित अध्यवसाय आगे बढते है, तब यह प्रभावित करते हैं हमारे अन्त स्रावी ग्रन्थितन्त्र को। इन ग्रन्थियो का स्राव ही हमारे कर्मो के अनुभाग यानी विपाक का परिणमन है। इस प्रकार पूर्व सचिन कर्म का अनुभाग रसायन बनकर ग्रन्थितन्त्र के माध्यम से हार्मोन के रूप मे प्रकट होता है। ये हार्मोन रक्त सचार तन्त्र के द्वारा नाडीतन्त्र और मस्तिष्क के सहयोग से हमारे अन्तर्भाव, चिन्तन, वाणी, आचार और व्यवहार को सचालित और नियन्त्रित करते हैं। इस तरह ग्रन्थि-तन्त्र सूक्ष्म शरीर और स्थूल के शरीर के बीच 'ट्रासफार्मर' परिवर्तक का काम करता है। अध्यवसाय की अपेक्षा से यह स्थूल हैं और शरीर के बीच की कडी है जो हमारी चेतना के अति सूक्ष्म और अमूर्त आदेशो को भौतिक स्तर पर परिवर्तित कर देती है और मन एव स्थूल शरीर तक पहुचाती है।

मन, शरीर और वाणी—ये तीनो क्रिया-तन्त्र (योगतन्त्र) के अग है, क्रियान्विति के साधन हैं। ज्ञान के साधन नहीं। ज्ञान तन्त्र चित्त तन्त्र तक और भाव तन्त्र लेश्या तन्त्र तक समाप्त हो जाता है। इन दोनो के निर्देशो की क्रियान्विति के लिए क्रिया तन्त्र सक्रिय होता है, जिसके तीन कर्मचारी है। मन, वाणी और शरीर। मन का कार्य है—स्मृति, कल्पना और चिंतन करना। मन का काम ज्ञान करना नही है। मन का काम है-चित्त तन्त्र और लेश्या तन्त्र से मिलने वाले निर्देशो का पालन करना।

इस प्रकार चैतन्य का स्पदन कषाय के वलय को पार कर अध्य-वसाय के रूप मे बाहर आते है और वे लेश्या तन्त्र के साथ मिलकर भाव धारा बन जाते हैं।

दूसरा वलय है—योग तन्त्र का। उनका काम है—प्रवृत्ति करना। कषाय तन्त्र और योग तन्त्र के बीच की कडी है—ग्रन्थि तन्त्र और नाडी तन्त्र।

इस प्रकार हमारे मौलिक मनोवेगों, पाशवी आवेगो एव कामुकता

पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिये जो हमारे विवेक और प्रज्ञा को जगाता है और हमे उन पर प्रभुत्व करने की क्षमता प्रदान करता है, वह हमारी सूक्ष्म चैतन्य शील आत्मा है।

४.३.१ प्रेक्षा—अर्थ व्यञ्जना (Meaning of Preksha)

'प्रेक्षा' शब्द ईक्ष धातु से बना है। इसका अर्थ है—देखना। प्र+ईक्षा=प्रेक्षा। इसका अर्थ है गहराई मे उतरकर देखना। विपश्यना का भी यही अर्थ है। जैन साहित्य में प्रेक्षा और विपश्यना—ये दोनो शब्द प्रयुक्त हैं। प्रेक्षाध्यान और विपश्यना-ध्यान ये दोनो शब्द इस ध्यान पद्धति के लिए प्रयुक्त किये जा सकते थे, किन्तु 'विपश्यना-ध्यान' इस नाम से बौद्धो की ध्यान पद्धति प्रचलित है, इसलिए 'प्रेक्षाध्यान' इस नाम का चुनाव किया गया। दशवैकालिक सूत्र मे कहा गया है—संपिक्खए अप्पगमप्पएणं—आत्मा के द्वारा आत्मा की सप्रेक्षा करो। मन के द्वारा सूक्ष्म मन को देखो, स्थूल चेतना के द्वारा सूक्ष्म चेतना को देखो। 'देखना' ध्यान का मूल तत्त्व है, इसलिए इस ध्यान पद्धति का नाम प्रेक्षाध्यान रखा गया है।

जानना और देखना चेतना का लक्षण है। आवृत चेतना मे जानने और देखने की क्षमता क्षीण हो जाती है। उस क्षमता को जागृत करने का सूत्र है—जानो और देखो। भगवान् महावीर ने साधना के जो सूत्र दिये हैं उनमे जानो और देखो ही मुख्य हैं। चिन्तन, विचार या पर्यालोचन करो—यह वहुत गौण और प्रारम्भिक है। यह साधना के क्षेत्र में बहुत आगे नही ले जाता।

'आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो'—यह अध्यात्म चेतना के जागरण का महत्त्वपूर्ण सूत्र है। इस सूत्र का अभ्यास हम श्वास से प्रारम्भ करते हैं। श्वास शरीर का ही एक अंग है। हम श्वास से जीते हैं, इसलिए सर्वप्रथम श्वास को देखें। हम शरीर से जीते हैं, आत्मा शरीर मे है, इसलिए शरीर को देखे। शरीर के भीतर होने वाले स्पंदनो, कंपनो, हलचलो या घटनाओ को देखें। इन्हे देखते-देखते मन पटु हो जाता है। सूक्ष्म हो जाता है, फिर अनेक स्पन्दन देखने लग जाता है। वृत्तियां या संस्कार जब उभरते हैं तब उनके स्पंदन स्पष्ट होने लग जाते हैं। पूरा का पूरा दोष-चक्र प्रत्यक्ष होने लग जाता है।

इस तथ्य को प्रकट करते हुए आयारो (आचाराग सूत्र) मे बताया गया है, "जो क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रियता और अप्रियता आदि दोषो को अपने भीतर देख लेता है, वह जन्म, मृत्यु और दु:ख के समग्र चक्रव्यूह को तोड़ देता है।"[1]

---

१. आयारो ३।८३।

"महान् साधक अकर्म (ध्यानस्थ) होकर मन, वचन और शरीर की क्रिया का निरोध कर जानता-देखता है।"[1]

"द्रष्टा के लिए कोई निर्देश की अपेक्षा नही है, उसके कोई उपाधि नही होती।"[2]

जब हम देखते हैं तब सोचते नही है और जब सोचते हैं तब देखते नही है। विचारो का जो सिलसिला चलता है, उसे रोकने का सबसे पहला और अन्तिम साधन है—देखना। कल्पना के चक्रव्यूह को तोडने का सशक्त उपाय है - देखना। आप स्थिर होकर अनिमेष चक्षु से किसी वस्तु को देखे, विचार समाप्त हो जाएगे। विकल्प-शून्य हो जाएगे। आप स्थिर होकर अपने भीतर देखे—अपने विचारो को देखें या शरीर के प्रकपनो को देखे तो आप पाएगे विचार स्थगित हैं और विकल्प शून्य है। भीतर की गहराइयो को देखते-देखते सूक्ष्म शरीर को देखने लगेंगे। जो भीतरी सत्य को देख लेता है, उसमे बाहरी सत्य को देखने की क्षमता अपने आप आ जाती है।

देखना वह है, जहा केवल चैतन्य सक्रिय होता है। जहा प्रियता और अप्रियता का भाव आ जाये, राग-द्वेष उभर जाये, वहा देखना गौण हो जाता है। यही बात जानने पर लागू होती है।

हम पहले देखते हैं, फिर जानते है। इसे इस भाषा मे स्पष्ट किया जा सकता है कि हम जैसे-जैसे देखते जाते हैं, वैसे-वैसे जानते चले जाते हैं।

जो पश्यक है—द्रष्टा है, उसका दृश्य के प्रति दृष्टिकोण ही बदल जाता है। मध्यस्थता या तटस्थता प्रेक्षा का ही दूसरा रूप है। जो देखता है वह सम रहता है। वह प्रिय के प्रति राग-रजित नही होता है और अप्रिय के प्रति द्वेषपूर्ण नही होता है। वह प्रिय और अप्रिय दोनो की उपेक्षा करता है—दोनो को निकटता से देखता है इसलिए वह उनके प्रति सम, मध्यस्थ या तटस्थ रह सकता है। उपेक्षा या मध्यस्थता को प्रेक्षा से पृथक् नही किया जा सकता।

आखे दृश्य को देखती है, पर उसे न निर्मित करती है और न उसका फलभोग करती है। वे अकारक और अवेदक हैं। इसी प्रकार चैतन्य भी अकारक और अवेदक है। ज्ञानी जब केवल जानता या देखता है तब वह न कर्मबन्ध करता है और न विपाक मे आये हुये कर्म का वेदन करता है। जिसे केवल जानने या देखने का अभ्यास उपलब्ध हो जाता है, वह व्याधि या अन्य आगन्तुक कष्टो को देख लेता है। इस वेदना की प्रेक्षा से कष्ट की अनुभूति ही कम नही होती, किन्तु कर्म के बन्ध, सत्ता, उदय और निर्जरा को देखने की क्षमता भी विकसित होती है।

१. आयारो २।३७, ५।१२०।
२. वही, ३।८७।

४.३.२ ध्येय एवं प्रयोजन

किसी भी कार्य मे प्रवृत्त होने से पहले मनुष्य अपने ध्येय का निर्धारण करता है। प्रेक्षाध्यान की साधना का पहला ध्येय है—चित्त को निर्मल बनाना। चित्त कषायो (क्रोध आदि आत्मा के परिणामो) से मलिन रहता है। कषायो से मलिन चित्त मे आत्मज्ञान की धारा नही बह सकती, हमारे भीतर ज्ञान होते हुए भी प्रकट नही होता, क्योकि बीच मे मलिन चित्त का पर्दा आ जाता है चित्त की निर्मलता होते ही आत्म-ज्ञान प्रकट होता है। उसका अवरोध समाप्त हो जाता है।

जब चित्त की निर्मलता होती है तब शाति का अनुभव स्वत होने लगता है। मन का सन्तुलन, मन की समता और आनन्द का अनुभव होने लगता है। साधना की निष्पत्ति है—आनन्द की अनुभूति।

हमारा ध्येय है—चित्त की निर्मलता। हमारा ध्येय आनद की प्राप्ति नही है। आनन्द प्राप्त होगा, किन्तु वह ध्येय नही है। आनद हमारा आलम्बन बनेगा। हमे आनन्द भी मिलेगा, शाति भी मिलेगी, किन्तु हमे इनको पार कर आगे जाना है। हमे पहुचना है चित्त की निर्मलता तक। चित्त की निर्मलता हमारी ध्येय प्रतिमा है। यह हमारे सामने रहे।

प्रयोजन

सत्य की खोज—मन मे यह प्रश्न सहज ही उभर सकता है कि ध्यान क्यो ? प्रवृत्ति को छोडकर निवृत्ति क्यो ? स्वाभाविक है। हम यदि प्रवृत्ति और निवृत्ति को ठीक ढग से समझ ले तो प्रश्न समाहित हो सकता है।

प्रवृत्ति जीवन की नैया को खेने के लिए है, जीवन की यात्रा को चलाने के लिए और निवृत्ति है जीवन की सच्चाई और परम सत्य को पाने के लिए। जो लोग केवल प्रवृत्ति करते है वे जीवन की यात्रा को चला सकते हैं किंतु जीवन की सचाई को प्राप्त नही कर सकते।

चैतन्य की स्वतन्त्र सत्ता का अनुभव

विज्ञान का लक्ष्य भी सत्य को पाना है पर वैज्ञानिक खोजो के विषय केवल पदार्थ है, परमाणु है, चेतना की स्वतन्त्र सत्ता उसका विषय नही है। विज्ञान की खोज उपकरणो, यत्रो और अन्य भौतिक साधनो के माध्यम से ही हो रही है। इसलिए वह पदार्थ तक ही पहुच पायेगी। आत्मा तक उसकी पहुच नही हो सकती। चेतन सत्ता भी उसका विषय नही बनता। इसलिए वैज्ञानिक जगत् ने चेतन की स्वतन्त्र सत्ता को अब तक स्वीकार नही किया है। उस अस्वीकार के कारण आज ध्यान की उपयोगिता इतनी ही लगती है कि उससे तनाव कम होता है, शारीरिक स्वास्थ्य बना रहता है आदि-आदि। बस ध्यान की उपयोगिता समाप्त। पर ध्यान का उद्देश्य केवल शरीर को

पुष्ट और स्वस्थ करने का नही है, यद्यपि ध्यान का एक उद्देश्य शारीरिक स्वास्थ्य भी है, पर सबसे मूल्यवान् उद्देश्य है—अपने अस्तित्व का बोध। चैतन्य की स्वतत्र सत्ता का अनुभव।

ध्यान के साधक के लिए यह इष्ट है कि वह "स्वय" आत्मा को खोजे। वह केवल शास्त्रो पर या मान्यताओ पर निर्भर न रहे, किन्तु स्वयं खोजे। ध्यान के द्वारा ही हम अनुभव की सच्चाई तक पहुच सकते हैं। ध्यान के अतिरिक्त ऐसा कोई माध्यम नही है जो हमे शाब्दिक सचाई से हटाकर अनुभव की सचाई तक पहुचा दे।

व्यवहार के धरातल पर प्रेक्षाध्यान का प्रयोजन है—व्यक्तित्व का समग्र विकास। विकास के कुछ पहलू यहा प्रस्तुत हैं—

- बौद्धिक और भावात्मक विकास का सतुलन।
- आध्यात्मिक और वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण।
- भावात्मक परिवर्तन—अपने सवेगो पर नियन्त्रण करने की क्षमता का विकास।
- रासायनिक परिवर्तन—अन्त स्रावी-ग्रन्थियो के स्रावो मे परिवर्तन, पीडा के क्षणो मे एडोर्फिन जैसे शामक रसायनो का उत्पादन।
- नाडी-सस्थान पर नियन्त्रण करने का क्षमता का विकास।
- नशे की आदत को बदलने का विकास।
- कार्य कौशल मे वृद्धि।
- मन कायिक (Psychosomatic) रोगो से मुक्ति।
- मानसिक और भावात्मक तनाव का विसर्जन।
- आपराधी और आक्रामक मनोवृत्ति से मुक्ति।
- अनुशासन का विकास।
- सहिष्णुता का विकास।
- एकाग्रता मे वृद्धि।
- सामजस्य करने की क्षमता का विकास।
- मैत्री का विकास।
- सकल्प शक्ति का विकास।
- आत्म-विश्वास का जागरण।
- अन्तर्दृष्टि का विकास।
- मानवीय सम्बन्धो को उदार और उदात्त बनाने की क्षमता का विकास।

४.३.३ उपसम्पदा

लेनी पडती है यहा, उपसपदा उदार।
सहज समर्पित भाव से, बना हृदय निर्भार॥

मार्ग और सम्यक्त्ववर, सयममय आचार ।
यह उत्तम उपसपदा, शुभ भविष्य सस्कार ।।
पदन्यास अध्यात्म मे, करता हूं अनिवार्य ।
प्रथम मार्ग उपसपदा, देते गुरुवर आर्य ।।
अन्तर जागरण-जगत, मे मेरा सचार ।
यह द्वितीय उपसपदा, करू सहज स्वीकार ।।
भीतर मे रमता रहू, जागरूकता साथ ।
वह तृतीय उपसपदा, आगम मे आख्यात ।।

साधना प्रारम्भ करने से पूर्व सभी साधक सुखासन मे बैठकर बद्धाजलि होकर प्रेक्षाध्यान की उपसम्पदा स्वीकार करते हैं। शरीर को शिथिल और मन को तनाव-मुक्त कर निम्न सूत्रो का उच्चारण करते हैं—

"अब्भुट्ठिओमि आराहणाए।"
मैं प्रेक्षाध्यान की आराधना मे उपस्थित होता हू।
"मग्गं उवसंपज्जामि।"
मै अध्यात्म-साधना का मार्ग स्वीकार करता हू।
"सम्मत्तं उवसंपज्जामि"
मैं अन्तर्दर्शन की उपसपदा स्वीकार करता हू।
"संजमं उवसंपज्जामि"
मैं आध्यात्मिक अनुभव की उपसम्पदा स्वीकार करता हू।
यह प्रेक्षाध्यान की उपसपदा है।

४.३.४ उपसम्पदा की चर्या

इस चर्या के ५ सूत्र हैं :—१. भावक्रिया, २. प्रतिक्रिया-विरति, ३ मैत्री, ४ मितभाषण और ५ मिताहार।

मितभोजन मितभाषिता, मैत्री का आधार।
प्रतिक्रिया से शून्य हो, क्रिया स्वय निर्भार।।
सदा साधना मे रहे, भावक्रिया उदार।
पाचो ही ये सूत्र है, सच्चे पहरेदार।।

१. भावक्रिया (वर्तमान क्षण की प्रेक्षा)

भावक्रिया के तीन अर्थ है—

१. वर्तमान मे जीना।
२. जानते हुए करना।
३. सतत् अप्रमत्त रहना।

जो वर्तमान क्षण का अनुभव करता है, वह सहज ही राग-द्वेष से बच

जाता है। राग-द्वेष-शून्य वर्तमान क्षण को देखने वाला नए कर्म-सस्कार के बन्ध का निरोध करता है।

वर्तमान को जानना और वर्तमान मे जीना ही भावक्रिया है। यान्त्रिक जीवन जीना, काल्पनिक जीवन जीना और कल्पना-लोक मे उडान भरना द्रव्यक्रिया है।[1]

हमारा अधिकाश समय अतीत की उधेडबुन मे या भविष्य की कल्पना मे बीतना है। अतीत भी वास्तविक नही है और भविष्य भी वास्तविक नही है। वास्तविक है वर्तमान। वर्तमान जिसके हाथ से छूट जाता है, वह उसे पकड ही नही पाता। वास्तविकता यह है कि जो कुछ घटित होता है, वह होता है वर्तमान मे, किन्तु आदमी उसके प्रति जागरूक नही रहता। भावक्रिया का पहला अर्थ है—वर्तमान मे रहना।

भावक्रिया का दूसरा अर्थ है—जानते हुए करना। हम जो भी करते हैं, वह पूरे मन से नही करते। मन के टुकडे कर देते हैं। काम करते है, पर मन कही भटकता रहता है। वह काम के साथ जुडा नही रहता। काम होता है अमनस्कता (absent-mindedness) से। वह सफल नही होता।

कार्य के प्रति सर्वात्मना समर्पित हुए बिना उसका परिणाम अच्छा नही आता। इसमे शक्ति अधिक क्षीण होती है, अनावश्यक व्यय होना है और काम पूरा नही होता। अत हम जिस समय जो काम करे, उस समय हमारा शरीर और मन—दोनो साथ-साथ चले।

भावक्रिया का तीसरा अर्थ है—सतत अप्रमत्त रहना। साधक को ध्येय के प्रति सतत् अप्रमत्त और जागरूक रहना चाहिए। ध्यान का पहला ध्येय है—चित्त की निर्मलता। चित्त को हमे निर्मल बनाना है। ध्यान का दूसरा ध्येय है—सुप्त शक्तियो को जागृत् करना। हमारी ध्यान-साधना के ये दो ध्येय है। इनके प्रति सतत जागरूक रहना भावक्रिया है।

द्रव्यक्रिया चित्त का विक्षेप है और साधना का विघ्न है। भावक्रिया स्वय साधना और स्वय ध्यान है। हम चलते हैं और चलते समय हमारी चेतना जागृत रहती है। "हम चल रहे हैं"—इसकी स्मृति रहती है—यह गति भावक्रिया है।

साधक का ध्यान चलने मे ही केन्द्रित रहे, चेतना गति को पूरा साथ दे—यह गमनयोग है।

२ प्रतिक्रिया-निवृत्ति

उपसपदा का दूसरा अर्थ है—क्रिया करना, प्रतिक्रिया न करना।

---

१ जिसमे केवल शरीर की क्रिया हो, वह द्रव्यक्रिया है। जिसमे शरीर और चित्त दोनो की सयुक्त क्रिया हो, वह भावक्रिया है।

आदमी प्रतिक्रिया का जीवन जीता है। वह बाह्य वातावरण और परिस्थिति से प्रभावित होकर कार्य करता है। वह आवेग या उत्तेजना के वशीभूत होकर कार्य करता है। यह प्रतिक्रिया है, क्रिया नही। अध्यात्म-साधना का अर्थ है—प्रतिक्रिया से बचना। साधक क्रिया करे, प्रतिक्रिया नही। अन्यथा गाली के प्रति गाली, ईंट का जवाब पत्थर से, "शठे शाठ्यं समाचरेत्" "Tit for Tat"—ये सब बातें चलती हैं, इन्हे रोका नही जा सकता। इन्हे केवल वही व्यक्ति रोक सकता है, जिसने इस सचाई को समझ लिया है कि स्वतंत्र अस्तित्व का धनी आदमी प्रतिक्रिया का जीवन न जीए। वह क्रिया का जीवन जीए।

३. मैत्री

उपसपदा का तीसरा सूत्र है—मैत्री। साधक का पूरा व्यवहार मैत्री से ओतप्रोत हो। उसमे मैत्री की भावना का पूर्ण विकास हो। यह तभी सभव है जब व्यक्ति प्रतिक्रिया से सर्वथा मुक्त हो जाता है तब मैत्री स्वय फलित होती है।

४. मिताहार

उपसपदा का चौथा सूत्र है—मिताहार। परिमित भोजन का साधना मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। भोजन का प्रभाव केवल स्वास्थ्य पर ही नही होता, ध्यान और चेतना पर भी उसका प्रभाव होता है। आदमी अनावश्यक बहुत खाता है। अनावश्यक भोजन, विकृति पैदा करता है। खाया हुआ पच नही पाता, क्योकि उसको पचाने वाला रस पूरी मात्रा मे नही मिलता। भोजन उतना ही पचता है, जितना उसे पाचन-रस प्राप्त होता है। शेष व्यर्थ हो जाता है। उससे सडाध पैदा होती है। मल आतो मे जम जाता है, इससे सारा नाडी-मण्डल दूषित हो जाता है। इससे मन और विचार भी दूषित होते हैं। चेतना पर आवरण आता चला जाता है। साधक को भोजन का पूरा ज्ञान होना चाहिए और कौन-सा भोजन क्या परिणाम लाता है, उसका भी ज्ञान होना चाहिए।

५ मौन

उपसपदा का पाचवा सूत्र है—मितभाषण या मौन। बोलना इसलिए जरूरी होता है कि हम जन-सपर्क मे है। बोले बिना रहा नही जाता, किन्तु कम बोलना साधना है। इसका अर्थ यह नही कि जीवनभर मौन रहे। अनावश्यक न बोलें। बोलना पडे तो धीमे बोले। यह मध्यम मार्ग अच्छा है। इससे व्यवहार भी नही टूटता और शक्ति का अनावश्यक व्यय भी नही होता। कम बोलना साधना का महत्त्वपूर्ण अग है। इससे शक्ति सचित होती है।

प्रेक्षा के प्रयोग

प्रेक्षाध्यान के चार सहायक अग है—आसन, प्राणायाम, मुद्रा एव ध्वनि।

४.३.५ आसन

प्रेक्षाध्यान की साधना के लिए प्रतिदिन आसन करना आवश्यक है, क्योकि जब तक शरीर को नही साधा जाता और आसन विशेष मे कम से कम एक घण्टे तक स्थिर होकर बैठने का अभ्यास नही होता तब तक ध्यान की गहराई मे नही उतरा जा सकता। जैसे ही ध्यान की गहराई मे जाने की कोशिश की जाएगी शरीर साथ छोड देगा, आसन बदलना अनिवार्य हो जाएगा। आसन सिद्ध करना ध्यान की गहराई मे जाने से पहले अनिवार्य है, इसीलिए प्रेक्षाध्यान पद्धति मे आसन को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। आसनो का लगातार अभ्यास शरीर को जरा, व्याधि और इन्द्रिय-क्षीणता से बचाए रखता है। शरीर स्वस्थ रहने पर साधना सुगम हो जाती है।

४.३.६ प्राणायाम

प्राणायाम का प्रेक्षाध्यान मे बहुत महत्त्व है, क्योकि श्वास पर नियन्त्रण किए बिना वृत्तियो का और भावो का परिष्कार नही हो सकता। हमारी जितनी वृत्तिया है, चाहे वे निषेधात्मक हो या विधेयात्मक, सबके साथ श्वास का सबध है। पूरा और लम्बा श्वास विधेयात्मक भावो के लिए उपयुक्त है। नाडी-तन्त्र का परिष्कार भी श्वास पर ही निर्भर है। हीन भावना (Inferiority Complex) और उच्च भावना (Superiority Complex) से ग्रसित होना निषेधात्मक भाव है। वैज्ञानिक दृष्टि से सिम्पैथेटिक और पेरा-सिम्पैथेटिक तथा योग की दृष्टि से इडा और पिगला का सतुलन ही प्राणा-याम के माध्यम से किया जाता है।

४.३.७ मुद्रा

प्रेक्षाध्यान भाव-परिवर्तन की एक प्रक्रिया है। जैसे हमारे भाव होते हैं वैसी हमारे शरीर की मुद्राए बनती है। अगर हम आलस्य मे हैं तो शरीर की वैसी ही मुद्रा बनेगी। अगर शोक मे है तो वैसी मुद्रा बनेगी। इस तरह प्रसन्नता, जल्दबाजी, धैर्य, जिज्ञासा, अहकार, क्रोध, लोभ, आसक्ति, घृणा आदि जितने भी भाव हैं, उतनी ही उनकी मुद्राए स्पष्टतया शरीर पर दृष्टिगोचर होने लगती हैं। प्रेक्षाध्यान का एक उद्देश्य है—निषेधात्मक भावो का निरसन और विधेयात्मक भावो का विकास। अगर हम विधेयात्मक भावो की मुद्राए ध्यान-काल मे अथवा जीवन मे निरन्तर काम मे ले तो भीतर मे हमारे भाव भी उसी अनुपात मे बदलते नजर आएगे, इसलिए प्रेक्षाध्यान

साधना मे जिस प्रकार आसनो का महत्त्व है उसी प्रकार मुद्राओ का भी है।

४.३.८ अर्हम् और महाप्राण-ध्वनि

'अर्हम्' जैन जगत् का एक चर्चित एव शक्तिशाली मन्त्र है। शरीर मे मूल शक्ति का स्रोत है—प्राणशक्ति, ऊर्जा। अर्हम् की ध्वनि से प्राणशक्ति सक्रिय होती है, हमारे भीतर विद्यमान किन्तु सुषुप्त शक्तिया जागृत होती हैं, शक्ति-सम्पन्नता एव अर्हता का बोध होता है।

ध्वनिशास्त्र के अनुसार हमारे शरीर मे उच्चारण के ८ स्थान है—उर, कण्ठ, सिर, जिह्वामूल, दात, नासिका, ओष्ठ और तालु। 'अर्हम्' के ही उच्चारण से निर्मित बाह्य ध्वनि तरगो से व्यक्ति प्रभावित होता है। उससे निश्चय पर पहुचने मे सहयोग मिलता है।

'अर्हम्' के उच्चारण स्थान—'अ' का उच्चारण कण्ठ से होगा। 'र्' का मूर्धा से होगा, 'ह्' का उच्चारण कठ से होगा, 'म्' का होठ से होगा। 'र्' के उच्चारण के समय होठ खुले रहेगे या इसके बाद जैसे ही 'म्' का उच्चारण करेगे, होठ बन्द हो जायेंगे।

शरीर-शास्त्रीय दृष्टिकोण—प्रेक्षाध्यान के सन्दर्भ मे—'अ' का उच्चारण स्थान कठ है। यह "थाइरॉइड ग्रथि" का स्थान है। यह चयापचय का उत्तरदायी है। यहा के स्राव मन व शरीर को प्रभावित करते हैं।

'र्ह' का प्रभाव होगा मस्तिष्क के अगले हिस्से यानी शाति-केन्द्र पर जो "हाइपोथैलेमस" का स्थान है। यह भावना का स्थान, सूक्ष्म व स्थूल शरीर का केन्द्र-बिन्दु, मध्यवर्ती स्थान है। ये सभी इससे प्रभावित होते है।

होठ से उच्चारित होने वाला 'म' उदान नामक प्राण का केन्द्र है। उदान सिद्धिया देने वाली प्राणशक्ति है।

'अर्हम्' साधको का इष्ट है। यह 'अर्हत्' का बीजमत्र है। अपनी क्षमताओ को प्रकट करने की अर्हता जाग जाए—वह अर्हत् होता है।

आनन्दकेन्द्र "थायमस" ग्रन्थि का प्रभाव क्षेत्र है। यह सूचक है कि हमारे अन्तर् मे पदार्थातीत आनन्द का स्रोत बह रहा है, हम आनन्द केन्द्र पर 'अर्हम्' का ध्यान कर स्थायी आनन्द का अनुभव कर सकते है।

'अर्हम्'—१ हमारे अस्तित्व की स्मृति है। २ हमारे इष्ट की स्मृति है। ३ सहज आनन्द को जागृत करने वाला है। ४ मानसिक तनाव को दूर करने वाला है। ५ मन कायिक रोगो से बचाता है। ६ विकल्पो को शान्त करने वाला है। ७ दाए-बाए पार्श्व मे विद्यमान चैतन्य-केन्द्र जागृत हो जाते है।

'अ' कुडलिनी (तैजस शक्ति) का स्वरूप है।

'र' अग्निबीज है, इससे बुरे सस्कार नष्ट होते हैं।

'ह्' आकाशबीज है, चिदाकाश का अनुभव बढता है।
'म्' एक झकार है, इससे ज्ञान-तन्तु सक्रिय बनते है।

'अर्हं' के सभी वर्ण बहुत शक्तिशाली हैं। आनन्दकेन्द्र मे सूर्य जैसे तेजस्वी 'अर्हं' के निरन्तर ध्यानाभ्यास से अर्हं की अनुभूति विकसित होगी। पूरा व्यक्तित्व चैतन्यमय, आनन्दमय और शक्तिमय बन जाएगा। तैजस्-केन्द्र मे सुनहरे रग के कमल के मध्य अर्हं की कल्पना करे। फिर ९ बार शरीर के चारो ओर इसके कवच-निर्माण का अनुभव करे। यह कवच बाहरी दुष्प्रभावो से बचाने मे बहुत सक्षम है।

'अर्हं' की खोज हजारो-हजारो प्रयोक्ताओ के द्वारा ध्यान मे अनुभूत की गई स्थिति है। 'ओम्' की तरह 'अर्हं' भी परम सत्ता का प्रतीक है। जैन योगियो ने अर्हं को परमेष्ठी की पाच स्थितियो का प्रतीक माना है। 'अर्हं' मे पूरे नवकार मत्र के विशाल व्यक्तित्व को स्थापित किया गया है, इसलिए 'अर्हं' बीज-मत्र कहलाता है।

'अर्हं' की सरचना मे जिन पाच विन्दुओ के सकेत छिपे हुए है, उसमे एक दूसरी दृष्टि भी है। मत्रो की रचना वर्णो से होती है। वर्णमाला का आदि अक्षर अ' है और अन्तिम अक्षर 'ह' है। 'अर्हं' मे 'अ' और 'ह' को सयुक्त कर वर्णमाला को सक्षिप्त किया गया है। 'ह' पर स्थित रेफ, अग्नि और शक्ति का सकेत है। 'अर्हं' मे 'म्' (बिन्दु) अन्तर् ध्वनि को अभिव्यक्त करने का प्रतीक है। बिन्दु और नाद से सूक्ष्म और सूक्ष्मतम तरगें तरगित होती हैं। 'अर्हं' के महत्त्व को योगशास्त्र मे रहस्यमय निरूपित किया है। 'अर्हं' मे 'अकार' अमृतमय और सुखमय है। स्फुटायमान 'हकार' रत्नत्रय सकलित करने वाला है। 'मकार' मोह-सहित कर्म-समूह को नाश करने वाला है।

'अर्हं' के उच्चारण से चक्रो पर विशिष्ट क्रियाए होती है। प्लुत-ध्वनि विशेष प्रकार का वातावरण निर्मित करती है, जिसमे व्यक्ति विचार-शून्य, शरीर-शून्य एव मन-शून्य स्थिति को प्राप्त कर चेतना मे उपस्थित हो जाता है।

'अर्हं' की ध्वनि मे 'अ' की ध्वनि मे विशुद्धिकेन्द्र प्रकपित होता है। क्योकि 'अ' का उच्चारण-स्थल कठ है। 'र्' का उच्चारण-स्थल मूर्धा है। जिससे दर्शन, ज्योति एव ज्ञानकेन्द्र प्रभावित होते हैं। उन पर विशिष्ट क्रियाए होती हैं। 'ह' का उच्चारण-स्थल पुन कठ है। यह विशुद्धि-केन्द्र को शक्ति-सपन्न करता है। 'म्' (बिन्दु) की ध्वनि से ओष्ठ स्थान एव मस्तिष्क प्रकपित होते हैं। नाद से ज्ञानकेन्द्र सक्रिय होता है जिससे शक्ति के अभिव्यक्त होने की क्षमता उत्पन्न होती है।

महाप्राण ध्वनि

महाप्राण ध्वनि साधना-मार्ग मे खोजी गई एक विलक्षण ध्वनि है, जिसके बार-बार गुजार से शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्तर पर लाभदायक परिणाम अनुभव किए जा सकते हैं।

महाप्राण ध्वनि की ध्वनि-तरगे पूरे मस्तिष्क मे फैल जाती हैं और मस्तिष्क को सक्रिय बनाती हैं। विचारो की चचलता शात होती है। ध्यान का वातावरण निर्मित होता है। मन की एकाग्रता बढती है। दीर्घकाल तक अभ्यास करने से प्राण-शक्ति और स्मरण-शक्ति का विकास होता है।

ध्वनि-तरंगों के शरीर-शास्त्रीय प्रभाव

जब इनका उच्चारण किया जाता है तब ध्वनि-तरगे समूचे पसली-पञ्जर मे गूजती हुई फुफ्फुस के वायु-प्रकोष्ठ पर पहुचती है। इन प्रकपनो से फुफ्फुसीय कोशिकाए सक्रिय एव सप्राण होकर ऑक्सीजन-कार्बन-डाइ-आक्साइड के विनियम को पूरी क्षमता के साथ सम्पादित करती हैं। इस ध्वनि का अन्तिम गुजन मस्तिष्क मे होता हुआ कपालीय तन्त्रिकाओ को झकृत करता है तथा उनका कायाकल्प करता है।

एक इटालियन वैज्ञानिक डॉ० लेसर लसारियो ने "ध्वनि-जनित तरगो के मानव शरीर पर होने वाले प्रभावो" का २५ वर्ष तक वैज्ञानिक अध्ययन करने के बाद यह प्रमाणित किया है कि—

१ उच्छ्वसन के साथ शब्द-स्वरो के उच्चारण द्वारा उत्पन्न प्रकपनो से भीतरी अवयवो की मालिश (massage) हो जाती है।

२ भीतर के ऊतको और तत्रिका-कोशिकाओ की गहराई तक प्रकपन पहुचते हैं।

३. अवयवो और ऊतको मे रक्त-सचार निर्बाध बनता है और उन्हे प्रचुर मात्रा मे रक्त की आपूर्ति होने से प्राण-शक्ति दीप्त होती है।

ध्वनि-प्रकंपनो के मानसिक प्रभाव

ध्वनि-तरगो से भावात्मक प्रभाव शारीरिक प्रभावो की तुलना मे और अधिक महत्त्व रखते हैं। यह तो एक सर्वविदित तथ्य है कि सगीत-लहरियो का मनुष्य एव अन्य प्राणियो के भावो पर अत्यन्त गहरा प्रभाव पडता है। उपयुक्त सगीत के माध्यम से इच्छित परिवर्तन भावधाराओ मे लाया जा सकता है। अब प्रयोगो के द्वारा यह सिद्ध कर लिया गया है कि ध्वनि द्वारा किए जाने वाले आतरिक प्रकपन-मर्दन के प्रभाव से न केवल मासपेशियो का शिथिलीकरण किया जा सकता है, अपितु ग्लानि, विषाद और हीन-भावना

जैसी मनोदशाओ को भी दूर किया जा सकता है।

जब हम मौन होते है तब भी बहुत बार हम मानसिक वाक्य रचना द्वारा अपने स्वर-यत्र को बहुत व्यस्त रखते है तथा इस प्रकार अपनी स्नायविक ऊर्जा का अधिक मात्रा मे अपव्यय करते रहते हैं। अर्हं-ध्वनि के उच्चारण के समय हमारी मानसिक वाक्य-रचना की क्रिया समाप्त हो जाती है और इस प्रकार उस अपेक्षा से व्यर्थ ऊर्जा-व्यय से हम अपने आपको बचा लेते है।

अर्हं-ध्वनि की तरगो के द्वारा हम शामक विद्युत्-चुम्बकीय तरगो को उत्पन्न करते हैं, जो लगातार उसी आवृत्ति वाले अनुवादी स्पन्दनो को शरीर मे उत्पन्न करती रहती है। नवीनतम शरीर-शास्त्रीय अनुसधानो से ज्ञात हुआ है कि इन स्पदनो का हमारी अन्त स्रावी ग्रन्थियो पर गहरा प्रभाव पडता है, जिनके द्वारा हमारी भावधारा, चिंतन एव आचरण को प्रभावित किया जा सकता है।

ध्वनि-प्रकपनो के प्रभाव से हमारी अनैच्छिक तत्रिका-सस्थान की दो धाराओ अनुकम्पी एव परानुकम्पी तत्रिकाओ—के बीच अधिक अच्छा सतुलन स्थापित होता है।

एकाग्रता और अप्रमाद

प्रेक्षा से अप्रमाद (जागरूक भाव) आता है। जैसे-जैसे अप्रमाद बढता है, वैसे-वैसे प्रेक्षा की सघनता बढती है। हमारी सफलता एकाग्रता पर निर्भर है। अप्रमाद या जागरूक भाव बहुत महत्त्वपूर्ण है। शुद्ध उपयोग—केवल जानना और देखना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, किन्तु इनका महत्त्व तभी सिद्ध हो सकता है, जब ये लम्बे समय तक निरन्तर चलें। पचास मिनट तक एक आलम्बन पर चित्त की प्रगाढ स्थिरता का अभ्यास होना चाहिए। यह सफलता का बहुत बडा रहस्य है।

ध्यान का स्वरूप है—अप्रमाद, चैतन्य का जागरण या सतत् जागरूकता। जो जागृत होता है वही अप्रमत होता है। जो अप्रमत होता है वही एकाग्र होता है। एकाग्रचित्त वाला व्यक्ति ही ध्यान कर सकता है। जो अपने अस्तित्व के प्रति प्रमत्त होता है—अपने चैतन्य के प्रति जागृत नही होता वह सब ओर से भय का अनुभव करता है। जो अपने अस्तित्व के प्रति अप्रमत्त होता है—अपने चैतन्य के प्रति जागृत होता है वह कही भी भय का अनुभव नही करता, सर्वथा अभय होता है।

अप्रमत्त व्यक्ति को कार्य के बाद उसकी स्मृति नही सताती। बातचीत के काल मे बातचीत करता है। उसके बाद बातचीत का एक शब्द भी याद

नही आता। यह सबसे बड़ी साधना है। आदमी जितना काम करता है उससे अधिक वह स्मृति में उलझा रहता है। भोजन करते समय भी अनेक बातें याद आती हैं। जिस समय जो काम किया जाता है, उस समय उसी में रहने वाला साधक होता है। शरीर, मन और वाणी का योग या सामञ्जस्य विरल व्यक्तियो में ही मिलता है। जहा शरीर और मन का सामंजस्य स्थापित नही हो पाता वहां विक्षेप, चचलता और तनाव होते हैं।

साधना का अर्थ हैं - कर्म, मन और शरीर की एक दिशा। इसे एकाग्रता या ध्यान कुछ भी कह दीजिए। एकाग्रता मे विचारो को रोकना नही होता, अपितु अप्रयत्न का प्रयत्न होता है। प्रयत्न से मन और अधिक चचल होता है। एकाग्रता तब होती है जब मन निर्मल होता है। बिना एका-ग्रता के निर्मलता नही होती और बिना निर्मलता के एकाग्रता नही होती। तब प्रश्न आता है, क्या करना चाहिए? अपने आपको देखना चाहिए। अपना दर्शन करो और अपने आपको समझो। अधिकांश लोग अपने आपको नहीं पहचानते।

धनवान और गरीब, वृद्ध और युवक पुरुष और स्त्री—सबका एक ही प्रश्न आता है कि मन की अशान्ति कैसे मिटे? मन अशान्त नहीं है, वह ज्ञान का माध्यम है। अज्ञानवश हम अशान्ति का उसमे आरोप कर देते हैं। फूल में गंध है। हवा से वह बहुत दूर तक फैल जाती है। क्या गंध चचल है? नही, हवा के संयोग से गंध का फैलाव हो जाता है। वैसे ही मन राग के रथ पर चढकर फैलता है। यदि मन मे राग या आसक्ति नही है, तो मन चचल नही होता।

'क्षण भर भी प्रमाद मत करो।' यह उपदेश-गाथा है। पर अभ्यास की कुशलता के बिना कैसे सभव है कि व्यक्ति क्षण भर भी अप्रमत्त रह पाता। वह अप्रमाद की साधना क्या है? अप्रमाद के आलंबन क्या हैं, जिनके सहारे कोई भी व्यक्ति अप्रमत्त रह सकता है?

प्रेक्षाध्यान के मुख्य अंग

प्रेक्षाध्यान अप्रमाद की साधना है, जिसके मुख्य अंग आठ हैं—

१. कायोत्सर्ग	५. चैतन्य-केन्द्र प्रेक्षा
२. अन्तर्यात्रा	६. लेश्या-ध्यान (रंग-ध्यान)
३. श्वास-प्रेक्षा	७. भावना
४. शरीर-प्रेक्षा	८. अनुप्रेक्षा

प्रेक्षाध्यान के विशिष्ट अग—वर्तमान क्षण की प्रेक्षा, विचार-प्रेक्षा एव अनिमेष-प्रेक्षा।

४.३.९ कायोत्सर्ग

शरीर की चचलता, वाणी का प्रयोग और मन की क्रिया—इन सब को एक शब्द मे योग कहा जाता है। ध्यान का अर्थ है—योग का निरोध। प्रवृत्तिया तीन है और तीनो का निरोध करना है। फलत ध्यान के भी तीन प्रकार हो जाते है—कायिक ध्यान, वाचिक ध्यान और मानसिक ध्यान। यह कायिक ध्यान ही कायोत्सर्ग है। इसे काय-गुप्ति, काय-सवर, काय-विवेक, काय-व्युत्सर्ग और काय-प्रतिसलीनता भी कहा जाता है।

कायोत्सर्ग का अर्थ है—शरीर का व्युत्सर्ग और चैतन्य की जागृति। प्रयोग मे इसका अर्थ है—शरीर की बाह्य स्थूल प्रवृत्तियो का निरोध, सभी ऐच्छिक (ककालीय) मासपेशियो की शिथिलता एव चयापचय जैसी सूक्ष्म आतरिक क्रियाओ का मदीकरण। इस शारीरिक स्थिति मे मानसिक तनाव का विसर्जन होता है।

कायोत्सर्ग—शरीर की स्थिरता और शिथिलता मानसिक एकाग्रता की पहली शर्त है। चित्त की स्थिरता के लिए शरीर की स्थिरता अनिवार्य है, इसलिए प्रेक्षाध्यान का पहला चरण कायोत्सर्ग है, जो सभी प्रकार से किए जाने वाले प्रेक्षाध्यानो के प्रारम्भ मे ही किया जाता है।

पूरे शरीर का कायोत्सर्ग करने के बाद स्वरयन्त्र का कायोत्सर्ग करना आवश्यक है। हमारी विचारधारा का उद्गम स्वरयत्र की चचलता से होता है। जितनी स्वरयत्र की चचलता, उतनी ही चित्त की चचलता। स्वरयत्र का सपूर्ण शिथिलीकरण करने से अन्तर्मौन की साधना होती है। मन की चचलता भी अपने आप समाप्त हो जाती है।

ध्यान के पहले चरण के अतिरिक्त कायोत्सर्ग का अभ्यास स्वतत्र रूप से भी दीर्घकाल तक किया जा सकता है। यदि कोई कायोत्सर्ग के प्रयोग की विधि को सीख कर प्रतिदिन इसका नियमित अभ्यास करता रहे तो वह किसी भी स्थिति मे तनाव-मुक्त, शात और अविचलित रह सकता है।

पूरा शिथिलीकरण सध जाने पर चेतना और शरीर की पृथक्-पृथक् अनुभूति की जाती है, जिससे अनुभूति के स्तर पर "भेद-विज्ञान" का अभ्यास होता है। शारीरिक और मानसिक तनाव से मुक्ति पाने के लिए कायोत्सर्ग का अभ्यास बहुत उपयोगी है। दो घण्टे तक सोने से शरीर एव मासपेशियो को जो विश्राम नही मिलता, उतना विश्राम आधे घटे तक विधिवत् कायोत्सर्ग करने से मिल जाता है, बल्कि उससे अधिक विश्राम मिल जाता है। यह तनाव-जनित अनेक प्रकार की मन कायिक बीमारियो का निर्दोष एव सक्षम उपाय है।

४.३.१० अन्तर्यात्रा

अन्तर्यात्रा हो यदा, चचल चित्त प्रशात।
अन्तर्मुखता से सदा, बनता नर निर्भ्रान्त॥

भीतर हो जब चेतना, भासित सहज स्वभाव।
रहे निरन्तरता अगर, छूट जाता परभाव॥

प्रेक्षाध्यान का दूसरा चरण है – अन्तर्यात्रा। ध्यान की साधना मे नाडी-तन्त्र की प्राण-शक्ति (nervous energy) को विकसित करना आवश्यक है। हमारे केन्द्रीय नाडी-तन्त्र का मुख्य स्थान है—सुषुम्ना (spinal cord)। सुषुम्ना के नीचे का छोर—शक्ति-केन्द्र ऊर्जा या प्राणशक्ति का मुख्य केन्द्र है। अन्तर्यात्रा मे चित्त को शक्ति-केन्द्र से सुषुम्ना के मार्ग से ज्ञान-केन्द्र तक ले जाना होता है। चेतना की इस अन्तर्यात्रा से ऊर्जा का प्रवाह या प्राण की गति ऊर्ध्वगामी होती है। इस यात्रा की अनेक आवृत्तियो से नाडी-तन्त्र की प्राण-शक्ति विकसित होती है जो ध्यानाभ्यास के लिये आवश्यक है।

हमारे चैतन्य का, ज्ञान का केन्द्र है—नाड़ी-सस्थान। यह समूचे शरीर मे व्याप्त है, किन्तु पृष्ठरज्जु के निचले सिरे से मस्तिष्क तक का स्थान चैतन्य का मूल केन्द्र है। आत्मा की अभिव्यक्ति का यही स्थान है। यही चित्त का स्थान है। यही मन का और इन्द्रियो का स्थान है। सवेदन, प्रतिसवेदन और ज्ञान– सारे यही से प्रसारित होते है। शक्ति का भी यही स्थान है। ज्ञानवाही और क्रियावाही ततुओ का यही केन्द्र स्थान है। केवल मनुष्य ही ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी कर सकता है। केवल दिशा का ही परिवर्तन हुआ कि जो शक्ति नीचे की ओर जाती थी वह ऊपर की ओर जाने लगती है। इतनी-सा ही अन्तर पडता है। मस्तिष्क की ऊर्जा का नीचे जाना भौतिक जगत् मे प्रवेश करना है। कामकेन्द्र की ऊर्जा का ऊपर जाना अध्यात्म जगत् मे प्रवेश करना है। ऊर्जा के नीचे जाने से भौतिक सुख की अनुभूति होती है। ऊर्जा के ऊपर जाने से अध्यात्म-सुख की अनुभूति होती है। यह केवल दिशा-परिवर्तन का परिणाम है।

पृष्ठरज्जु मे बह रही, सदा सुषुम्ना शान्त।
ज्ञानकेन्द्र ऊपर सुखद, नीचे शक्ति नितान्त॥

शक्तिकेन्द्र के पास है, कुडलिनी का स्थान।
तेजोलेश्या लब्धि या, तैजस-तन अभिधान॥

सुप्त और जागृत उभय, कुंडलिनी के रूप।
योगरसिक नर समझते, इसका सही स्वरूप।

कुडलिनी की साधना, बन जाती अभिशाप ।
उचित मार्ग-दर्शन बिना, मिलता है सन्ताप ॥

इसको जो नर साधता, लगती दीर्घ समाधि ।
वृद्धि रुके नख केश की, विगलित आधि-व्याधि ॥

द्विविध लब्धि तेजोमयी, विपुल और संक्षिप्त ।
सुप्त शक्ति सक्षिप्त है, विपुल तेज से दीप्त ॥

४.३.११ श्वास-प्रेक्षा

श्वास शरीर मे चलने वाली चयापचय की क्रियाओ का अभिन्न अग है ।

श्वास और प्राण, श्वास और मन—अटूट कडी के रूप मे काम करते है । मन को हम सीधा नही पकड सकते । प्राण की धारा को भी सीधा नही पकडा जा सकता, किन्तु मन को पकडने के लिए प्राण को पकडे और प्राण को पकडने के लिए श्वास को पकडे । श्वास-परिवर्तन के द्वारा हम मानसिक विकास कर सकते है । चित्त को एकाग्र करने का एक सरल और सूक्ष्म उपाय है – श्वास प्रेक्षा ।

मन की शाति-स्थिति या एकाग्रता के लिए श्वास का शात होना बहुत जरूरी है । शात श्वास के दो रूप मिलते हैं—१. सूक्ष्म श्वास-प्रश्वास, २ मन्द या दीर्घ श्वास-प्रश्वास

कायोत्सर्ग मे श्वास-प्रश्वास का निरोध नही किया जाता, किन्तु उसे सूक्ष्म कर दिया जाता है । प्राणवायु को मद-मद लेना चाहिए और मद-मद छोडना चाहिए । इसे ही दीर्घ-श्वास या मद श्वास-प्रश्वास कहा जाता है ।

श्वास-विजय या श्वास-नियत्रण के बिना ध्यान नही हो सकता—यह एक सचाई है ।

हम श्वास लेते समय 'श्वास ले रहे हैं'—इसी का अनुभव करें, यही स्मृति रहे, मन किसी अन्य प्रवृत्ति मे न जाए, वह श्वासमय हो जाए, उसके लिए समर्पित हो जाए । श्वास की भाव-क्रिया ही श्वास प्रेक्षा है । यह नथुनो के भीतर की जा सकती है, श्वास के पूरे गमनागमन पर भी की जा सकती है । श्वास के विभिन्न आयामो और विभिन्न रूपो को देखा जा सकता है ।

श्वास प्रेक्षा के अनेक प्रयोग हैं—दीर्घश्वास प्रेक्षा, समवृत्तिश्वास प्रेक्षा आदि ।

दीर्घश्वास प्रेक्षा—प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करने वाला सबसे पहले

श्वास की गति को नियन्त्रित करता है। वह श्वास को लम्बा और लयबद्ध बना देता है। सामान्यतः आदमी एक मिनट में १५-१७ श्वास लेता है, दीर्घश्वास प्रेक्षा के अभ्यास से यह संख्या घटाई जाती है। साधारण अभ्यास के बाद यह संख्या एक मिनट में १० से कम तक की जा सकती है और विशेष अभ्यास के बाद उसे और अधिक कम किया जा सकता है। श्वास को मन्द या दीर्घ करने के लिए तनुपट (diaphragm) की मांसपेशियों का समुचित उपयोग किया जाता है। श्वास छोड़ते समय पेट की मांसपेशियां सिकुड़ती हैं और लेते समय वे फूलती है।

श्वास को मंद, दीर्घ या सूक्ष्म करने से मन शांत होता है। इसके साथ-साथ आवेश शांत होते हैं कषाय शांत होते हैं, उत्तेजनाएं व वासनाएं शांत होती हैं। श्वास जब छोटा होता है तब वासनाएं उभरती हैं, उत्तेजनाएं आती हैं, कषाय जागृत होते हैं। इन सबसे श्वास प्रभावित होता है। इन सब दोषों का वाहन है—श्वास। जब कभी मालूम पड़े कि उत्तेजना आने वाली है तब तत्काल श्वास को लम्बा कर दें, दीर्घश्वास लेने लग जाएं, आने वाली उत्तेजना लौट जाएगी। इसका कारण है कि श्वास का वाहन उसे उपलब्ध नहीं हो पाता है। बिना आलम्बन के कोई उत्तेजना या वासना प्रकट हो नहीं सकती। ध्यान की साधना करने वाला साधक मन की सूक्ष्मता को पकड़ने में अभ्यस्त हो जाता है। वह जान लेता है कि मस्तिष्क के अमुक केन्द्र में कोई वृत्ति उभर रही है। वह तत्काल दीर्घश्वास का प्रयोग प्रारम्भ कर देता है। उभरने वाली वृत्ति तत्काल शांत हो जाती है। साधक उन वृत्तियों की उत्तेजनाओं का शिकार नहीं होता।

श्वास वर्तमान की वास्तविकता है। उसे देखने का अर्थ है—समभाव में जीना, वीतरागता के क्षण में जीना, राग-द्वेष-मुक्त क्षण में जीना। जो व्यक्ति श्वास को देखता है, उसका तनाव अपने आप विसर्जित हो जाता है। दीर्घश्वास प्रेक्षा का प्रयोग चित्त को वर्तमान में चल रही क्रिया पर ही एकाग्र (concentrate) होने के लिए प्रशिक्षित करने की सरल विधि है। इससे व्यक्ति की कार्य-क्षमता बढ़ती है।

समवृत्ति श्वास प्रेक्षा

जैसे दीर्घ श्वास प्रेक्षा प्रेक्षाध्यान का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, वैसे ही सम-वृत्ति श्वास प्रेक्षा भी उसका महत्त्वपूर्ण सूत्र है। बाएं नथुने से श्वास लेकर दाएं से निकालना और दाएं से लेकर बाएं से निकालना—यह है समवृत्ति-श्वास। इसे देखना, इसकी प्रेक्षा करना, इसके साथ चित्त का योग करना महत्त्वपूर्ण बात है। प्रारम्भ में अंगुली द्वारा और बाद में संकल्प-शक्ति द्वारा श्वास की दिशा में परिवर्तन किया जाता है। समवृत्ति-श्वास-प्रेक्षा के माध्यम

से चेतना के विशिष्ट केन्द्रो को जागृत किया जा सकता है। इसका सतत् अभ्यास अनेक उपलब्धियो मे सहायक हो सकता है।

दीर्घश्वास की साधना, चिरकालिक अभ्यास।
साधक को पल-पल रहे, अपना ही आभास॥

जागृत साक्षीभाव मे, श्वास स्वय है मद।
गति-आगति को देखना, प्रेक्षा का निस्यन्द॥

चलते, सोते, बैठते, करते काम प्रकाम।
प्रेक्षा केवल श्वास की, याद रहे हर याम॥

मानस की एकाग्रता, तन विकार से दूर।
क्षीण अह को चेतना, क्रोध लोभ भी चूर॥

एक मिनट मे सहज है, सोलह-सतरह श्वास।
प्रेक्षा से गति-मन्दता, बिना किए अभ्यास॥

प्रारम्भिक अभ्यास मे, पाच-सात उच्छ्वास।
दीर्घ-साधना से स्वय, सभव सतत् विकास॥

एक मिनट मे एक ही, जिस क्षण आए श्वास।
मनस्तोष मिलता प्रचुर, जग जाता विश्वास॥

पूरक-रेचक-प्रक्रिया, कुम्भक प्राणायाम।
श्वास-सयमन का नियम, निर्विवाद अभिराम॥

कैसे कर सकते कहो, वे नर प्रेक्षा-ध्यान?
श्वास-क्रिया-अनभिज्ञ जो, होकर भी मतिमान्॥

सगीतात्मक श्वास हो, जब गहरा लयबद्ध।
विकसित अन्तश्चेतना, स्वय-स्वय से बद्ध॥

स्थूल साधना योग से, होता सूक्ष्म-प्रवेश।
प्रेक्षा सतत् शरीर की, मिटे सभी सक्लेश॥

बाहर भीतर एकरस, रहता है जो धीर।
उसे नही लगता कभी, ठडा गरम समीर॥

बाह्यरमण से ही मनुज, बनता जो निष्णात।
तो आलोडन के बिना, मिल जाता दधिजात॥

४.३.१२. शरीर-प्रेक्षा

साधना की दृष्टि से शरीर का बहुत महत्त्व है। यह आत्मा का केन्द्र है। इसी के माध्यम से चैतन्य अभिव्यक्त होता है। चैतन्य पर आए हुए

आवरण को दूर करने के लिए इसे सशक्त माध्यम बनाया जा सकता है। शरीर को समग्र दृष्टि से देखने की यह साधना-पद्धति बहुत महत्त्वपूर्ण है—

"साधक चक्षु को सयत कर शरीर की प्रेक्षा करे। उसकी प्रेक्षा करने वाला उसके तीन भागो—ऊर्ध्व, मध्य और अध· को जान लेता है।"

"जो साधक वर्तमान क्षण मे शरीर मे घटित होने वाली सुख-दु ख की वेदना को (द्रष्टा भाव से) देखता है, वर्तमान क्षण का अन्वेषण करता है, वह प्रमत्त हो जाता है।"

शरीर के प्रत्येक अवयव पर क्रमश चित्त को एकाग्र कर वहा होने वाले प्राणधारा के प्रकम्पनो को तटस्थ भाव से देखने का अभ्यास शरीर-प्रेक्षा है।

शरीर-प्रेक्षा की यह प्रक्रिया अन्तर्मुख होने की प्रक्रिया है। सामान्यतः बाहर की ओर प्रवाहित होने वाली चैतन्य की धारा को अन्तर् की ओर प्रवाहित करने का प्रथम साधन स्थूल शरीर है। शरीर-प्रेक्षा मे पहले शरीर के बाहरी भाग को देखते हैं। शरीर के भीतर मन को ले जाकर भीतरी भाग को देखते हैं। शरीर के स्थूल और सूक्ष्म स्पन्दनो को देखते है। शरीर के भीतर जो कुछ है, उसे देखने का प्रयत्न करते हैं। हमारी कोष-स्तरीय चेतना जो हर कोष के पास है, उसे हम प्रेक्षा के द्वारा जागृत करते हैं। चेतना के जो कोष सोए हुए है, कुण्ठित हैं, उन्हे जागृत करते है। शरीर का प्रत्येक कण चित्त के निर्देश को स्वीकार करने के लिए तत्पर है कि वह जाग जाए और मन के साथ उसका सम्बन्ध-सूत्र जुड जाए, किन्तु जब जागने का प्रयत्न नही होता तब वे मूर्च्छा मे रह जाते हैं और ऐसी स्थिति मे चित्त का निर्देश उन तक पहुच नही पाता। वे निष्क्रिय ही बने रह जाते हैं। स्थूल शरीर के भीतर तैजस् और कार्मण—ये दो सूक्ष्म शरीर है। उनके भीतर आत्मा है। स्थूल शरीर की क्रियाओ और सवेदनो को देखने का अभ्यास करने वाला क्रमश. तैजस् और कार्मण शरीर को देखने लग जाता है। शरीर प्रेक्षा का दृढ़ अभ्यास और मन के सुशिक्षित होने पर शरीर मे प्रवाहित होने वाली चैतन्य की धारा का साक्षात्कार होने लग जाता है। जैसे-जैसे साधक स्थूल से सूक्ष्म दर्शन की ओर आगे बढता है वैसे-वैसे उसका अप्रमाद बढता जाता है।

स्थूल शरीर के वर्तमान क्षण को देखने वाला जागरूक हो जाता है। कोई क्षण सुखरूप होता है और कोई क्षण दु खरूप। क्षण को देखने वाला सुखात्मक क्षण के प्रति राग नही करता और दुःखात्मक क्षण के प्रति द्वेष नही करता। वह केवल देखता और जानता है।

देखने का प्रयोग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उसका महत्त्व तभी अनुभूत

होता है जब मन की स्थिरता, समता, दृढता और स्पष्टता से दृश्य को देखा जाए। शरीर के प्रकपनो को देखना, उसके भीतर प्रवेश कर भीतरी प्रकम्पनो को देखना चित को बाहर से भीतर ले जाने की प्रक्रिया है।

शरीर मे आत्मा और चेतना व्याप्त है, इसीलिए शरीर में सवेदन होता है। उस सवेदन से मनुष्य अपने स्वरूप को देखता है, अपने अस्तित्व को जगाता है और अपने स्वभाव का अनुभव करता है। शरीर मे होने वाले सवेदन को देखना चैतन्य को देखना है, उसके माध्यम से आत्मा को देखना है।

शरीर मे चैतन्य व्याप्त है, प्राण-धारा प्रवाहित है, ज्ञान-ततु (sensoy nerves) और कर्म-ततु (motor nerves) फैले हुए हैं—यही शरीर-प्रेक्षा का मूल आधार है। शरीर-प्रेक्षा के द्वारा शरीर मे व्याप्त चैतन्य को जागृत किया जा सकता है, प्राण-प्रवाह को सतुलित किया जा सकता है, ज्ञान-ततुओ एव कर्म-ततुओ की क्षमता बढाई जा सकती है। परिणाम-स्वरूप जहा चेतना पर आया हुआ आवरण दूर होता है, वहा साथ ही प्राण-शक्ति, ज्ञान-ततु एव कर्म-ततु के पर्याप्त उपयोग तथा मासपेशियो व रक्त-सचार (blood circulation) की क्षमता मे सतुलन के माध्यम से अभीष्ट मानसिक एव शारीरिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। शारीरिक बीमारियो को नष्ट कर स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है और रोग-प्रतिरोधक शक्ति का विकास किया जा सकता है।

दोहन करना शक्ति का, साधन मात्र शरीर।
बिना नाव कब पा सके, नाविक भी पर-तीर ?

प्रेक्षा करो शरीर की है सीधी-सी बात।
मन को भीतर मोड लो, करो न फिर निर्यात॥

हर अवयव पर जो जमे, विधिवत् पूरा ध्यान।
सवेदन होता रहे, आए क्यो व्यवधान ?

अन्तर् शोधन के बिना, साध्य सिद्धि है दूर।
नही बहिर्मुख-चेतना, हो सकती रसपूर॥

बाहर जो अभिराम है, भीतर कैसा रूप।
राग-द्वेष-उपरत बनो, देखो आत्म-स्वरूप॥

कायिक प्रेक्षा-ध्यान है, सहज सरस सदुपाय।
केन्द्र-जागरण मार्ग मे, इसकी अनुपम दाय॥

प्रेक्षा का उद्देश्य है, समता का अभ्यास।
पल-पल नियमितता सधे, आए नया प्रकाश॥

४.३.१३ चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा

प्रेक्षा ध्यान की साधना का ध्येय है—चित्त की निर्मलता। चित्त को निर्मल बनाने के लिए—हमारी वृत्तियो, भावो या आदतो को विशुद्ध करने के लिए—पहले यह समझना जरूरी है कि अशुद्धि कहा जन्म लेती है और कहा प्रकट होती है। यदि हम उस तन्त्र को ठीक समझ लेते है तो उसे शुद्ध करने की बात मे बड़ी सुविधा हो जाती है। हम योगशास्त्र की दृष्टि से और वर्तमान के शरीर-शास्त्र की दृष्टि—इन दोनो दृष्टियो से इस पर विचार करे।

वर्तमान विज्ञान की दृष्टि के अनुसार हमारे—शरीर मे दो प्रकार की ग्रन्थिया हैं—वाहिनी-युक्त एव वाहिनी-रहित (ductless)। ये वाहिनी-रहित ग्रन्थिया अन्त.स्रावी होती हैं। इन्हे 'एण्डोक्राइन ग्लैण्ड्स' कहा जाता है। पीनियल, पिच्यूटरी, थाइरॉइड, पेराथाइरॉयड, थाइमस, एड्रीनल और गोनाड्स—ये सभी अन्त स्रावी ग्रथिया हैं। इसके स्राव हार्मोन कहलाते है। हमारी शारीरिक, मानसिक और भावात्मक प्रवृत्तियो का सचालन इन ग्रन्थियो के द्वारा उत्पन्न स्रावो (हार्मोनो) के माध्यम से होता है। हमारी सभी चैतन्य क्रियाओ का सचालन इस ग्रन्थि-तत्र के द्वारा होता है। अत' उन ग्रन्थियो को चैतन्य-केन्द्र की सज्ञा दी गई है।

मनुष्य की जितनी आदते बनती है, उनका मूल उद्गम-स्थल है—ग्रन्थि-तन्त्र। हमारे शरीर के दो नियामक तन्त्र हैं—एक है नाडीतत्र (nervous system) और दूसरा है ग्रन्थि-तन्त्र। नाडी-तत्र मे हमारी सारी वृत्तिया अभिव्यक्त होती हैं, अनुभव मे आती हैं और फिर व्यवहार मे उतरती हैं। व्यवहार, अनुभव या अभिव्यक्तीकरण—ये सब नाडी-तन्त्र के काम हैं किन्तु आदतो का जन्म, आदतो की उत्पत्ति ग्रन्थि-तत्र मे होती है। जो हमारी अन्त स्रावी ग्रन्थिया हैं, उनमे आदते जन्म लेती है। वे आदतें मस्तिष्क के पास पहुचती हैं, अभिव्यक्त होती हैं और व्यवहार मे उतरती हैं, इसलिए विज्ञान मे एक शब्द का प्रयोग हुआ है—न्यूरो-एण्डोक्राइन सिस्टम। इसका अर्थ है ग्रन्थि-तत्र और नाडी-तन्त्र का सयुक्त कार्य-तन्त्र। यह सयुक्त-तन्त्र 'अर्धचेतन मन' का एक भाग है। यह मस्तिष्क को भी प्रभावित करता है अर्थात् मस्तिष्क से भी अधिक मूल्यवान् है। यदि इसे सही साधनो के द्वारा सतुलित करते हैं, तो सभी अनिष्ट भावनाओ से मुक्ति मिलती है।

अन्त.स्रावी ग्रंथियो मे नीचे की ग्रन्थिया—अधिवृक्क ग्रन्थिया (एड्रीनल) और जनन-ग्रन्थिया (गोनाड्स)—ये वृत्तिया उत्पन्न होने का स्थान है। काम-वासना का स्थान है—जनन-ग्रन्थिया (गोनाड्स) और भय, आवेग तथा बुरे भाव उत्पन्न होने का स्थान हैं—एड्रीनल-ग्रन्थिया। योगशास्त्र की भाषा मे इन्हे मणिपूर चक्र (तैजस्-केन्द्र) और स्वाधिष्ठान चक्र (स्वास्थ्य-

केन्द्र) कहा जाता है। क्रूरता, वैर, मूर्च्छा आदि स्वास्थ्य-केन्द्र मे उत्पन्न होते हैं, वहा तृष्णा, ईर्ष्या, घृणा, भय, कषाय और विषाद तैजस्-केन्द्र मे जन्म लेते है।

जब हमारा मन—हमारे विचार— नाभि के नीचे के भाग मे शक्ति-केन्द्र तक दौडते रहते हैं तब बुरी वृत्तिया उभरती हैं। बाद मे आदत बन जाती है।

क्रोध, कलह, ईर्ष्या, भय, द्वेष आदि के कारण ये ग्रन्थिया विकृत बनती हैं। इन आवेगो से सबसे ज्यादा प्रभावित होती है - एड्रीनल ग्रन्थि। जब ये अनिष्ट भावनाए जागती हैं तब एड्रीनल ग्रन्थि को अतिरिक्त काम करना पडता है। और-और ग्रन्थिया भी अतिश्रम से थक कर शिथिल हो जाती है। ग्रन्थियो की शक्ति क्षीण हो जाती है। परिणाम-स्वरूप शारीरिक और मानसिक सतुलन बिगड जाता है, इसलिए यह आवश्यक है कि हम इन आवेगो और भावनाओ पर नियन्त्रण करें। आवेगो को समझदारी से समेटे तथा ग्रन्थियो पर अधिक भार न आने दें। इसका उपाय है—चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा।

श्वास-प्रेक्षा, शरीर-प्रेक्षा और चैतन्य-केन्द्रो की प्रेक्षा—ये सब ग्रथियो को सक्रिय और सतुलित करने के साधन है। हम चैतन्य केन्द्रो (ग्रन्थियो) पर ध्यान करें, वे सक्रिय होगे।

ज्यो-ज्यो हमारा ध्यान हृदय (आनन्द केन्द्र) के ऊपर के चैतन्य केन्द्रो पर अधिक केन्द्रित होगा त्यो-त्यो वे अधिक सक्रिय होते जाएगे। उनकी सक्रियता से भय समाप्त होगा, आवेग समाप्त होगे और अनिष्ट भावनाए समाप्त हो जाएगी। एक नया आयाम खुलेगा। नया आनन्द, नई स्फूर्ति तथा नया उल्लास प्राप्त होगा। चैतन्य-केन्द्रो की प्रेक्षा महत्त्वपूर्ण ही नही, वास्तव मे अध्यात्म-विकास का सर्वोत्तम साधन है।

केन्द्र चेतना के सभी, हैं तन मे अविकार।
वैज्ञानिक की ग्रन्थिया, चक्रयोग के द्वार॥

ये प्रसुप्त जब तक रहे प्रज्ञा होती सुप्त।
नश्वर तन मे समझ लो, ये है निधिया गुप्त॥

उनकी जागृति हेतु है, यह सारा अभियान।
ऊर्ध्वारोहण के लिए, साधक करे प्रयाण॥

ज्ञानकेन्द्र मस्तिष्क मे, सहस्रार अभिधान।
ज्ञानमयी जो चेतना, उसकी है पहचान॥

शान्ति-केन्द्र सुख-उत्स है, उसका तालु स्थान।
शान्ति-गवेषक नर करे, समुचित अनुसधान॥

ज्योति-केन्द्र पर ध्यान से आत्मिक अभ्युत्थान।
ज्योतित कण-कण को करे, यह सुंदर अनुपान ॥
दर्शन-केन्द्र प्रसिद्ध है, हितकर आज्ञाचक्र।
भृकुटि-मय प्रेक्षा सफल, जो मन रहे अवक्र ॥
चाक्षुष केन्द्र कनीनिका, शान्ति-सेतु अविवाद।
सधे सहज एकाग्रता, तन-मन मे आह्लाद ॥
छठा केन्द्र है कान मे, अप्रमाद अभिधान।
जागरूकता-वृद्धि मे, है इसका अवधान ॥
प्राण-केन्द्र नासाग्र पर, लगता जिसका ध्यान।
उसके प्राणो मे सदा, भर जाती मुसकान ॥
ब्रह्म-केन्द्र जिह्वाग्र पर, जमे ध्यान अविराम।
सहज शात हो वासना, आत्मरमण परिणाम ॥
केन्द्र विशुद्धि विशुद्ध है, कण्ठकूप अवधार।
शुभ जालधर-बध से, सहज सुधा-सचार ॥
केन्द्र परम आनन्द का, देता सुख एकान्त।
हृदय-चक्र हृच्चेतना से सबद्ध नितान्त ॥
तमहर तैजस्-केन्द्र यह, है मणिपूर ललाम।
नाभिकमल आस्थान से, खुलते नव आयाम ॥
स्वास्थ्य-केन्द्र जो चक्र है, मूलाधार महान्।
इसको जागृत कर बढें, करें सत्य सगान ॥

४.३.१४ लेश्या-ध्यान

'लेश्या' जैन दर्शन का पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ है—विशिष्ट रगवाले पुद्गल द्रव्य (Matter) के ससर्ग से उत्पन्न होने वाला जीव का परिणाम या चेतना का स्तर। कषाय की तरगें और कषाय की शुद्धि होने पर आने वाली चैतन्य की तरगें—इन सब तरगो को भाव के रूप मे निर्माण करना और उन्हे विचार, कर्म और क्रिया तक पहुचा देना—यह लेश्या का काम है। लेश्या ही सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर के बीच सपर्क-सूत्र है।

लेश्या एक ऐसा चैतन्य-स्तर है जहा पहुचने पर व्यक्तित्व का रूपान्तरण घटित होता है। लेश्याए अच्छी होगी तो व्यक्तित्व बदल जाएगा। लेश्याए बुरी होगी तो व्यक्तित्व बदल जाएगा। दोनो ओर बदलेगा, रूपान्तरण घटित होगा। प्रश्न होता है कि वहा तक हम कैसे पहुचे। हमे रग का सहारा लेना होगा। रग हमारे व्यक्तित्व को बहुत प्रभावित करते हैं। रग स्थूल व्यक्तित्व, सूक्ष्म व्यक्तित्व, तैजस् शरीर और लेश्या-तत्र को भी प्रभावित करते है। यदि हम रगो की क्रियाओ और उनके मनोवैज्ञानिक प्रभावो को समझ लेते है तो व्यक्तित्व के रूपान्तरण मे हमे बड़ा सहयोग मिल सकता है।

लेश्या के दो भेद है—द्रव्य-लेश्या और भाव-लेश्या—पौद्गलिक (physical) लेश्या और आत्मिक-लेश्या। वह निरन्तर बदलती रहती है। लेश्या प्राणी के आभामडल (aura) का नियामक तत्त्व है। ओरा मे कभी काला, कभी लाल, कभी पीला, कभी नीला और कभी सफेद रग उभर आता है। भावो के अनुरूप रग बदलते रहते हैं।

लेश्या के छह प्रकार हैं—कृष्ण, नील, कापोत, तैजस्, पद्म और शुक्ल। इनमे प्रथम तीन अशुभ हैं और अन्तिम तीन शुभ हैं।

हमारी वृत्तिया, भाव या आदते—इन सबको उत्पन्न करने वाला सशक्त तन्त्र हैं—लेश्या-तन्त्र। बुरी आदतो को उत्पन्न करने वाली तीन लेश्याए हैं—कृष्ण-लेश्या, नील-लेश्या और कापोत-लेश्या। क्रूरता, हिंसा, कपट, प्रवचना, प्रमाद, आलस्य आदि जितने दोष है, ये सब इन तीन लेश्याओं से उत्पन्न होते हैं।

लेश्या-ध्यान के द्वारा ये तीनो लेश्याए बदल जाती है। कृष्ण-लेश्या शुद्ध होते-होते नील-लेश्या मे, नील-लेश्या कापोत-लेश्या मे और कापोत-लेश्या तेजोलेश्या मे बदल जाती है। तेजोलेश्या का रग है—बाल सूर्य जैसा। रग का मनोविज्ञान बताता है कि अध्यात्म की यात्रा लाल रग से शुरू होती है। तेजोलेश्या मे आते ही आदतो मे अपने आप परिवर्तन होने लग जाता है। उनमे स्वभावत रूपान्तरण शुरू हो जाता है। पद्म-लेश्या मे और भी अधिक बदलता है। शुक्ल-लेश्या मे पहुचने ही व्यक्तित्व का पूरा रूपातरण (trans-formation) हो जाता है।

भावधारा (लेश्या) के आधार पर आभामडल बदलता है और लेश्या-ध्यान के द्वारा आभामण्डल को बदलने से भावधारा भी बदल जाती है। इस दृष्टि से लेश्या-ध्यान या चमकते हुए रगो का ध्यान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। हमारी भावधारा जैसी होती है, उसी के अनुरूप मानसिक चितन तथा शारीरिक मुद्राए होती हैं। इस भूमिका मे लेश्या-ध्यान की उपयोगिता बहुत बढ जाती है।

तेजोलेश्या छोडती, मन पर दिव्य प्रभाव।
उजले आभावलय से, सुख का प्रादुर्भाव॥
आकर्षण आभा-जनित, आकृति पर मृदुहास।
पतझर मे भी फूलता, कोई नव मधुमास॥
जागृत शक्ति निरोध की, सक्रिय पाचन-तंत्र।
पापभीरुता, नम्रता, अचपलता का मन्त्र॥
वह लेश्या है तेजमय, अणुओ का समुदाय।
जो वैचारिक परिणति, वह भावात्मक आय॥

शुद्ध, शुद्धतर, शुद्धतम् द्रव्यो का सयोग।
तेज, आगे बढता विपुल, मिटते दु सह रोग ॥
ध्यान-साधना काल मे, लेश्या का विज्ञान।
रंगो के आधार पर, हो पूरी पहचान ॥

४.३.१५. अनुप्रेक्षा

ध्यान का अर्थ है प्रेक्षा—देखना। उसकी समाप्ति होने के पश्चात् मन की मूर्च्छा को तोडने वाले विषयो का अनुचिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। जिस विषय का अनुचिन्तन बार-बार किया जाता है, उससे मन प्रभावित हो जाता है, इसलिए उस चिन्तन या अभ्यास को भावना कहा जाता है।

आत्मा का मौलिक स्वरूप चेतना है। उसके दो कार्य हैं—देखना और जानना। हमारी चेतना शुद्ध स्वरूप मे हमे उपलब्ध नही है इसलिए हमारा दर्शन और ज्ञान निरुद्ध है, आवृत है। उस पर एक पर्दा पडा हुआ है। उसे दर्शनावरण और ज्ञानावरण कहा जाता है। वह आवरण अपने ही मोह के द्वारा डाला गया है। हम केवल जानते नही है और केवल देखते नही हैं। जानने-देखने के साथ-साथ प्रियता या अप्रियता का भाव बनता है। वह राग-द्वेष को उत्तेजित करता है। राग और द्वेष मोह को उत्पन्न करते हैं। मोह ज्ञान और दर्शन को निरुद्ध करता है। यह चक्र चलता रहता है। इस चक्र को तोडने का एक ही उपाय है और वह है—ज्ञाताभाव या द्रष्टाभाव, केवल जानना और केवल देखना। जो केवल जानता-देखता है, वह अपने अस्तित्व का उपयोग करता है। जो जानने-देखने के साथ प्रियता-अप्रियता का भाव उत्पन्न करता है, वह अपने अस्तित्व से हटकर मूर्च्छा मे चला जाता है। कुछ लोग मूर्च्छा को तोडने मे स्वय जागृत हो जाते हैं। जो स्वयं जागृत नही होते, उन्हे श्रद्धा के बल पर जागृत करने का प्रयत्न किया जाता है।

"हे अद्रष्टा ! तुम्हारा दर्शन तुम्हारे ही मोह के द्वारा निरुद्ध है, इसलिए तुम सत्य को नही देख पा रहे हो। तुम सत्य को नही देख पा रहे हो, इसलिए तुम उस पर श्रद्धा करो, जो द्रष्टा द्वारा तुम्हे बताया जा रहा हैं।"

अनुप्रेक्षा का आधार द्रष्टा के द्वारा प्रदत्त बोध है। उसका कार्य है—अनुचिन्तन करते-करते उस बोध का प्रत्यक्षीकरण और चित्त का रूपान्तरण।

४.३.१६. भावना

भावना का अभ्यास करनेवाले व्यक्ति मे ध्यान की योग्यता

आ जाती है। ध्यान की योग्यता से लिए चार भावनाओ का अभ्यास आवश्यक है—

१. ज्ञान भावना—राग-द्वेष और मोह से शून्य होकर तटस्थ भाव से जानने का अभ्यास।

२. दर्शन भावना—राग-द्वेप और मोह से शून्य होकर तटस्थ भाव से देखने का अभ्यास।

३ चारित्र भावना—राग-द्वेष और मोह से शून्य, समत्वपूर्ण आचरण का अभ्यास

४. वैराग्य भावना—अनासक्ति, अनाकाक्षा और अभय का अभ्यास।

मनुष्य जिसके लिए भावना करता है, जिस अभ्यास को दोहराता है; उसी रूप मे उसका सस्कार निर्मित हो जाता है। यह आत्म-सम्मोहन की प्रक्रिया है। इसे 'जप' भी कहा जा सकता है। आत्मा की भावना करने वाला आत्मा मे स्थित हो जाता है। 'सोऽह' के जप का यही मर्म है। 'अर्हम्' की भावना करने वाले मे 'अर्हत्' होने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। कोई व्यक्ति भक्ति से भावित होता है, कोई ब्रह्मचर्य से और कोई सत्सग से। अनेक व्यक्ति नाना भावनाओ से भावित होते हैं। जो किसी भी कुशल कर्म से अपने को भावित करता है, उसकी भावना उसे लक्ष्य की ओर ले जाती है।

भावना नौका के समान है, नौका यात्री को तट तक ले जाती है। उसी प्रकार भावना भी साधक को दु ख के पार पहुचा देती है।

प्रतिपक्ष की भावना से स्वभाव, व्यवहार और आचरण को बदला जा सकता है। मोह-कर्म के विपाक पर प्रतिपक्ष भावना का निश्चित परिणाम होता है। उपशम की भावना से क्रोध, मृदुता की भावना से अभिमान, ऋजुता की भावना से माया और सतोष की भावना से लोभ को बदला जा सकता है। राग और द्वेष का सस्कार चेतना की मूर्च्छा से होता है, और वह मूर्च्छा चेतना के प्रति जागरूकता लाकर तोडी जा सकती है। प्रतिपक्ष भावना चेतना की जागृति का उपक्रम है, इसलिए उसका निश्चित परिणाम होता है।

साधना-काल मे ध्यान के बाद स्वाध्याय और स्वाध्याय के बाद फिर ध्यान करना चाहिए। स्वाध्याय की सीमा मे जप, भावना और अनुप्रेक्षा—इन सबका समावेश होता है। यथासमय और यथाशक्ति इन सब का प्रयोग आवश्यक है। ध्यान को समाप्त कर अनित्य आदि अनुप्रेक्षा का अभ्यास करना चाहिए। ध्यान मे होने वाले विविध अनुभवो मे चित्त का कही लगाव न हो—इस दृष्टि से अनुप्रेक्षा के अभ्यास का महत्त्व है।

४.३.१७. विचार-प्रेक्षा

आत्मा सूक्ष्म है, अतीन्द्रिय है, इसलिए वह परोक्ष है। चैतन्य उसका

४. ४. ०. प्रेक्षाध्यान : निष्पत्ति

समझदार व्यक्ति परिणाम या निष्पत्ति का चिन्तन किये बिना कोई भी कार्य प्रारभ नही करता। साधक भी पहले सोचता है कि प्रेक्षाध्यान की निष्पत्ति क्या होगी। निष्पत्ति की बात बहुत आवश्यक है। प्रेक्षाध्यान की साधना की अनेक निष्पत्तिया होती हैं। प्रस्तुत प्रकरण मे हम शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक आदि दृष्टि से होने वाली निष्पत्तियो की चर्चा करेंगे, जिसमे तनावमुक्ति, चित्त की निर्मलता व एकाग्रता, ज्ञाता-दृष्टाभाव का विकास, धार्मिकता के लक्षणो का प्रकटीकरण, प्रज्ञा और चैतन्य का जागरण, कर्मतन्त्र और भावतन्त्र का शोधन, पदार्थ-प्रतिबद्धता से मुक्ति, चैतन्य का (आत्मा) साक्षात्कार आदि उल्लेखनीय हैं।

४. ४. १. अन्त करण का परिवर्तन

प्रेक्षाध्यान की साधना परिवर्तन की साधना है। यह केवल कपड़े बदलने या शरीर बदलने की साधना मात्र नही है। यह अन्त करण को बदलने की साधना है।

शरीर मे भी परिवर्तन आना चाहिए, रसायन बदलने चाहिये। रसायन सतुलन के दो मुख्य स्रोत हैं—एक पिच्यूटरी दूसरा एड्रीनल। यह ग्रन्थिया शारीरिक रसायनिक सतुलन के लिये उत्तरदायी है। साधना के द्वारा इन ग्रन्थियो के स्रावो (हार्मोना) मे यदि परिवर्तन नही हुआ, रसायन नही बदले, तो मानना चाहिये साधना ठीक नही सध रही है।

४. ४. २. मानसिक संतुलन

सामान्यत तो थोडा-सा उत्तेजना का वातावरण होता है, दिमाग गरम हो जाता है। थोडी-सी प्रशसा का, लाभ का, सम्मान का वातावरण होता है, मन प्रफुल्लित हो जाता हैं। मन सतुलित नही होता, तो एक राई जितनी घटना पहाड जितनी बन जाती है। साधना जैसे-जैसे आगे बढती है, मन का सतुलन बढता जाता है। जिसका मन सतुलित रहता है, वह बहुत बडी बात को एक मिनट मे समाप्त कर देता है। चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा की निष्पत्ति है—मन का सतुलन।

४. ४. ३. आध्यात्मिकता

आध्यात्मिक निष्पत्ति का प्रथम सूत्र है आदतो का बदलना। साधना करें, आराधना करे, ध्यान करें और आदतें न बदलें, उतना ही गुस्सा, उतना ही अहंकार, उतना ही कपट, उतना ही लालच, उतनी ही घृणा, ईर्ष्या, द्वेष बराबर चलता रहे, यह नही हो सकता।

आदतो को बदलने का कारण है—चित्त की यात्रा का परिवर्तन और

ग्रन्थि तन्त्र का परिष्कार। जब चित्त की यात्रा नाभि, पेडू और नीचे की ओर न होकर हृदय, कण्ठ, नासाग्र, भृकुटि और सिर की ओर होती है तब हमारी ग्रंथिया शुद्ध होने लगती हैं, आदतो मे अपने-आप परिवर्तन होने लग जाता है। उनमे स्वभावत रूपान्तरण शुरू हो जाता है। तब आदतो को पोषण देने वाले स्रावो मे रासायनिक रूपान्तरण शुरू हो जाता है और आदतो को पोषण देने वाला कोई नही रहता।

प्रेक्षाध्यान से आदतें बदलती हैं, इसका अर्थ यह नही कि जिस दिन ध्यान शुरू किया उसी दिन व्यक्ति बिलकुल बदल जायेगा। किन्तु परिवर्तन का क्रम शुरू हो जायेगा।

४.५.०. सारांश

१. प्रेक्षाध्यान —प्रेक्षाध्यान ध्यान की एक पद्धति है जिसकी सहायता से व्यक्ति के भावो मे परिवर्तन किया जाता है। इसकी एक विस्तृत कार्य-प्रणाली है जो विभिन्न चरणो मे सम्पन्न होती है। विभिन्न चरण हैं—कायोत्सर्ग, अंतर्यात्रा, श्वास-प्रेक्षा, शरीर-प्रेक्षा, चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा, लेश्याध्यान, अनुप्रेक्षा और भावना।

२. अर्थव्यंजना :—प्रेक्षाध्यान का अर्थ है तटस्थ होकर जानना और देखना। स्थूल से सूक्ष्म की ओर क्रमश जानना और देखना।

३. ध्येय :—प्रेक्षाध्यान का प्रमुख ध्येय है व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व का विकास करना और इस हेतु सर्वप्रथम चित्त की निर्मलता अनिवार्य है।

४. उपसम्पदा —प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करने के पूर्व व्यक्ति को सकल्प लेना पडता है, वही उपसम्पदा है। इसकी चर्या की कुल सख्या पाच है—१ भाव क्रिया २. प्रतिक्रिया विरति ३. मैत्री भाव ४. मिताहार और ५ मितभाषण।

५. एकाग्रता और अप्रमाद :—एकाग्रता अर्थात् कर्म, मन और शरीर को एक दिशा मे लगाना। एकाग्रता मे विचारो को रोका नही जाता, अपितु अप्रयत्न का प्रयत्न होता है चैतन्य का जागरण या सतत जागरूकता ही अप्रमाद है। अप्रमत्त ही एकाग्र हो सकता है।

६. कायोत्सर्ग :—शरीर की स्थिरता और शिथिलता तथा मानसिक जागरूकता की स्थिति का नाम ही कायोत्सर्ग है।

७. अन्तर्यात्रा :—शक्ति को ऊर्ध्वगामी बनाने की प्रक्रिया को अन्तर्यात्रा कहते हैं।

८. श्वासप्रेक्षा :—श्वास की गति का निरीक्षण करना श्वास प्रेक्षा है। ध्यान की इस प्रक्रिया मे चित्त को श्वास पर केन्द्रित किया जाता है तथा आने और जाने वाले श्वास की प्रेक्षा की जाती है। यहा श्वास

को लम्बा और मद बना दिया जाता है।

९. **शरीर प्रेक्षा** :—शरीर के प्रत्येक घटक पर क्रमश चित्त को एकाग्र कर वहा होने वाले प्राणधारा के प्रकम्पनो को तटस्थ भाव से देखने का अभ्यास किया जाता है।

१०. **चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा** —मानव शरीर मे कुछ ऐसे सवेदनशील प्रदेश या केन्द्र हैं जो नाडीतत्र और ग्रथितन्त्र के सम्मिलित सहयोग से बने हैं। वृत्तियो का अनुभव, अभिव्यक्तिकरण—ये सब नाडी तन्त्र के कार्य हैं, किन्तु आदतो भावनाओ की उत्पत्ति ग्रन्थि तत्र मे होती है। उन केन्द्रों की प्रेक्षा—चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा है।

११ **लेश्याध्यान** :—चेतना की भावधारा को लेश्या कहते हैं। यह प्राणी के आभामण्डल का नियामक तत्त्व है। भावधारा के आधार पर आभामडल बदलता है। लेश्याध्यान के द्वारा आभामडल को बदलने से भावधारा भी बदल जाती है।

१२. **भावना और अनुप्रेक्षा** —मन की मूर्च्छा को तोडने वाले विषयो का अनुचिंतन करना अनुप्रेक्षा है। जिस विषय का अनुचिंतन बार-बार किया जाता है या प्रवृत्ति का अभ्यास बार-बार किया जाता है, उससे मन प्रभावित हो जाता है। इसलिये उस चिन्तन या अभ्यास को भावना कहा जाता है।

१३. **विचार प्रेक्षा** —तटस्थ होकर जानना और देखना– प्रेक्षा है। प्रियता और अप्रियता से मुक्त होकर विचार-प्रवाह को देखना—विचार-प्रेक्षा है।

१४. **अर्हं-ध्वनि** —प्रेक्षाध्यान का प्रारम्भ अर्हं ध्वनि के उच्चारण से प्रारभ किया जाता है। यह बीज मन्त्र है। यह परम सत्ता का द्योतक है। यह हमे अपनी अर्हता से परिचित कराता है।

४.६.० सहायक सामग्री

१ प्रेक्षाध्यान सिद्धात और प्रयोग, आचार्य महाप्रज्ञ
प्र. जैन विश्व भारती, लाडनू (राज)

२. प्रेक्षाध्यान प्रयोग-पद्धति, आचार्य महाप्रज्ञ
प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडनू (राज)

३ प्रेक्षाध्यान : आधार और स्वरूप, आचार्य महाप्रज्ञ
प्रकाशक-जैन विश्व भारती, लाडनू (राज)

४. Preksa-dhyana : Basic Principle, Acharya Mahapragna
Pub Jain Viswa Bharati, Ladnun (Raj)

५. प्रेक्षा-अनुप्रेक्षा · आचार्य तुलसी
आदर्श साहित्य संघ, (राज.)
६. अपना दर्पण अपना बिम्ब, आचार्य महाप्रज्ञ
जैन विश्व भारती, लाडनू (राज.)
७. नया मानव नया विश्व, आचार्य महाप्रज्ञ
जैन विश्व भारती लाडनू (राज.)
८. प्रेक्षाध्यान : आगम और आगमेत्तर स्रोत, मुनि धर्मेश
जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज)
९. The Mirror of the Self, Acharya Mahapragna
Pub Jain Viswa Bharti, Ladnun, (Raj,)

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. प्रेक्षाध्यान क्या है ? इसके मूल स्रोतो का वर्णन कीजिए।
२. शरीर प्रेक्षा क्या है ? इसके आधार को समझाइये।
३. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा क्या है ? चैतन्य केन्द्रो की तुलना हठयोग के चक्रो से कीजिए।
४. लेश्याध्यान के मुख्य आधार बतलाइये।
५. अनुप्रेक्षा से आप क्या समझते हैं ? अनुप्रेक्षा के लाभ बताएं।
६. अप्रमाद केन्द्र के प्रयोग से क्या लाभ हैं ?
७. प्रेक्षाध्यान के आध्यात्मिक आधार पर प्रकाश डालिये।
८. भावना और अनुप्रेक्षा मे अन्तर स्पष्ट कीजिए।
९. उपसम्पदा की चर्या के ५ सूत्रो की व्याख्या कीजिए।
१०. अर्हम् और महाप्राण ध्वनि के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से लाभ बताएं।
११. ध्वनि तरगो के शरीर-शास्त्रीय एव मानसिक प्रभावो का विवेचन कीजिए।

तृतीय खण्ड

जीवन विज्ञान के मूल तत्त्व एवं उनका प्रशिक्षण

(Fundamentals of Jeevan Vigyan and their Training)

अध्याय-५
शरीर और शारीरिक प्रशिक्षण
(Body and Its training)

१. शरीर (Body)
- वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Perspective)
- अध्यात्मिक दृष्टिकोण (Spiritual Perspective)

२. योगासन (Yogasan)
- वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Perspective)
- आध्यात्मिक दृष्टिकोण (Spiritual Perspective)

३. कायोत्सर्ग (Relaxation with Self-awareness)
- वैज्ञानिक दृष्किोण (Scientific Perspective)
- आध्यात्मिक दृष्टिकोण (Spiritual Perspective)
- प्रयोजन (Purpose)
- निष्पत्ति (Result)

४. शरीर प्रेक्षा (Perception of Body)
- आध्यात्मिक दृष्किोण (Spiritual Perspective)
- प्रयोजन (Purpose)
- निष्पत्ति (Results)

५. सारांश (Summary)

६. सहायक सामग्री (Related Readings)

७. अभ्यासार्थ-प्रश्न (Questions)

५. शरीर और शारीरिक प्रशिक्षण (Body and its training)

५.१. शरीर : वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Body : Scientfiic perspective)

हम जीवन मे प्रतिक्षण अपने शरीर के साथ रहते हैं, किन्तु उसके प्रमुख अवयवो के विषयो मे हमारी जानकारी अल्प एव इन अवयवो के क्रिया कलापो के विषय मे अल्पतर होती है। सर्वप्रथम हमे शरीर के विभिन्न तत्रो की प्रक्रियाओ का ज्ञान प्राप्त करना होगा तभी हम अपने हृदय, फेफडे और यकृत जैसे महत्त्वपूर्ण अगो का सम्यक् परिचय कर सकेंगे उनका गलत ढग से उपयोग करना छोड सकेंगे और उनकी भली-भाति देख-रेख कर सकेंगे।

मानव-शरीर और अगोपाग खरबो की सख्या मे सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणिकाओ, जिन्हे कोशिका कहते हैं, के द्वारा उत्पादित द्रव्य एव शरीर के तरल पदार्थों से निर्मित्त है। यदि शरीर को हम इमारत कहे तो कोशिका उसकी ईंट है। यानि कोशिकाए हमारे शरीर की इकाइया हैं। इन्हे "जीव-अणु" की सज्ञा भी दी जा सकती है।

हमारे शरीर मे खरबो कोशिकाए होती हैं। प्राय सभी कोशिकाए इतनी सूक्ष्म होती हैं कि उन्हे देखने के लिए सूक्ष्मतम-वीक्षण यत्र (microscope) की अपेक्षा होगी तथा उनके भीतर झाकने के लिए उससे भी अधिक शक्तिशाली सूक्ष्मतम-वीक्षण यत्र की अपेक्षा होगी। छोटी-से-छोटी कोशिका की लम्बाई-चौडाई लगभग $\frac{१}{२००}$ मिलीमीटर होती है और बडी से बडी कोशिका $\frac{१}{४}$ मिलीमीटर लम्बी-चौडी होती है।

कोशिकाओ को अपना कार्य करने के लिए शक्ति या ऊर्जा (एनर्जी) की आवश्यकता होती है। इसका उत्पादन कोशिकाओ के भीतर रहे हुए सूक्ष्मातिसूक्ष्म ऊर्जा-उत्पादन केन्द्रो (Power-house) मे किया जाता है। लगभग सभी ऊतको मे कोशिकाए जीर्ण होती रहती हैं और उनके स्थान पर नई कोशिकाए बनती रहती हैं। नई कोशिकाओ का निर्माण जीर्ण कोशिकाओ के विभाजन से होता है।

प्रत्येक जीवित कोशिका मे सहस्रो की सख्या मे विभिन्न प्रकार के रसायन विद्यमान होते हैं। ये रसायन केवल निष्क्रिय पदार्थों का मिश्रण न होकर निरन्तर सक्रिय रूप से एक-दूसरे के साथ क्रिया मे प्रवृत्त रहते हैं।

आनुवंशिकता की सम्पूर्ण जानकारी का सकेत भी उनमे रासायनिक रूप मे होता है। शरीर के विभिन्न अगो की सरचना भी विभिन्न रासायनिक उत्पादनो से की जाती है। भिन्न-भिन्न अगो मे विद्यमान विभिन्नता का कारण भी रासायनिक पदार्थों की रचना की विभिन्नता ही है।

समान सरचना वाली कोशिकाओ के समूह एवं उनके बीच रहे हुए निर्जीव पदार्थ मिलकर ऊतक की रचना करते हैं। जैसे—

१. त्वचा या आच्छादन करने वाले ऊतक।
२. अस्थि और उपास्थि (cartilage)
३ मासपेशियो के ऊतक
४. तन्त्रिकाओ के ऊतक आदि।

एक ही प्रकार के कार्यों मे सलग्न अनेक ऊतको के समूह से अवयव बनते हैं, उदाहरणार्थ—हृदय, जो कि शरीर का एक मात्र प्राण-आधार (vital) अवयव है। जीवित शरीर को टिकाए रखने के लिए "संघ-कार्य" एक आवश्यक स्थिति है, अर्थात् सभी अवयवो द्वारा एक दूसरे को परस्पर सहयोग करना अत्यन्त अपेक्षित है। एक ही प्रकार के कार्यों की शृखला को निष्पादित करने वाले अनेक अवयवो के समूह को "तन्त्र" कहा जाता है। जैसे—श्वसन-तन्त्र।

शरीर के जिन तन्त्रो के विषय मे यहां सक्षिप्त जानकारी अपेक्षित है, वे हैं—

१. नाड़ी-तन्त्र
२. रक्त-परिसरचरण-तन्त्र
३. श्वसन-तन्त्र
४. पाचन-तन्त्र तथा विसर्जन-तन्त्र
५ अन्त.स्रावी ग्रन्थि-तन्त्र

नाड़ी-तन्त्र (तन्त्रिका-तन्त्र)

नाड़ी सस्थान (Nervous System) मानव शरीर का एक जटिलतम तन्त्र है। यह शरीर के अन्य सभी तन्त्रों का नियन्त्रण एव संयोजन करता है तथा उनके माध्यम से समग्र शरीर के क्रियाकलापो को सचालित करता है। इसलिए इसे शरीर का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तन्त्र माना जाता है। यदि नाड़ी-तन्त्र किसी भी कारण से विफल हो जाए, तो सारे शरीर की प्रवृत्तिया ठप्प हो जाएंगी, सारे अवयव स्तम्भित हो जाएगे और अन्ततोगत्वा सूक्ष्म प्राणाधार क्रियाएं बन्द हो जाएंगी। ऐसी स्थिति मे न हाथ-पैर हिल सकेंगे, न बैठना-उठना होगा, न मांसपेशियो का सचालन हो सकेगा, न आखों का उन्मेष-निमेश होगा और यहां तक कि श्वासोच्छ्वास भी बन्द हो जाएगा।

हमारे केन्द्रीय नाडी-सस्थान के मुख्य दो अग हैं—

१ मस्तिष्क (brain)

२ सुषुम्ना या मेरू-रज्जु (spinal cord)

नाड़ी-तत्र के मुख्य दो कार्य

१ शरीर के भीतर और बाहर से प्राप्त होने वाली सूचनाओ की जाच-पडताल कर उन्हे सशोधित करना।

२ पेशी-तत्र की सक्रियता के द्वारा शारीरिक सचालन का उत्पादन एव नियमन करना। मस्तिष्क के कुछ हिस्से सवेगो के नियत्रण और सूचनाओ के सग्रह के लिए जिम्मेदार होते है तथा व्यक्तित्व एव बौद्धिकता के साथ भी उनका सम्बन्ध होता है।
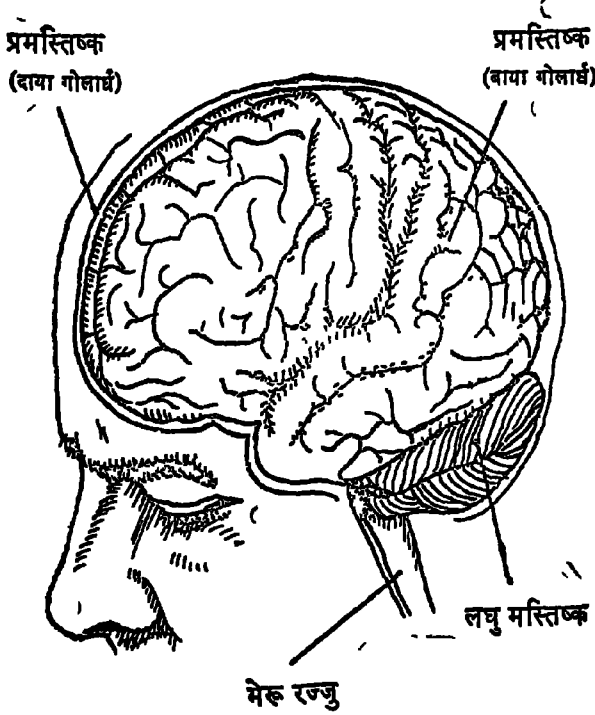
अनुकंपी-परानुकंपी तंत्रिकायें

नाडी-सस्थान मे तत्रिका-तत्र की कुछ प्रवृत्तिया ऐसी हैं, जो स्वत: सचालित होती हैं और कुछ प्रवृत्तिया मेरूदण्ड और मस्तिष्क के द्वारा सचालित होती हैं। हाथ उठाना है, आदमी की इच्छा होगी, तो हाथ उठेगा, अन्यथा नही। आन्तरिक अवयवो के कार्य; ग्रथियो का स्राव आदि सारे कार्य स्वायत्त तत्रिका-तत्र से निष्पादित होते हैं। मेरूदण्ड से सिम्पेथेटिक और पेरासिम्पेथेटिक—अनुकपी और परानुकपि—ये दो प्रकार की

तंत्रिकाओ के गुच्छे निकलते हैं। वहा से स्वायत्त-तन्त्रिका-तन्त्र सचालित होता है।

स्वायत्त नाड़ी-तन्त्र के दो पृथक् विभाग होते हैं, जिनमे प्रत्येक विभाग एक विशेष प्रकार के कार्य को सम्पादित करता है—

१ परानुकपी (Parasympathetic)

२. अनुकपी (Sympathetic)

इन दोनो की क्रिया परस्पर विपरीत है। जहा एक विभाग अंग या

केन्द्रिय तंत्रिका-संस्थान (Central Nervous System)
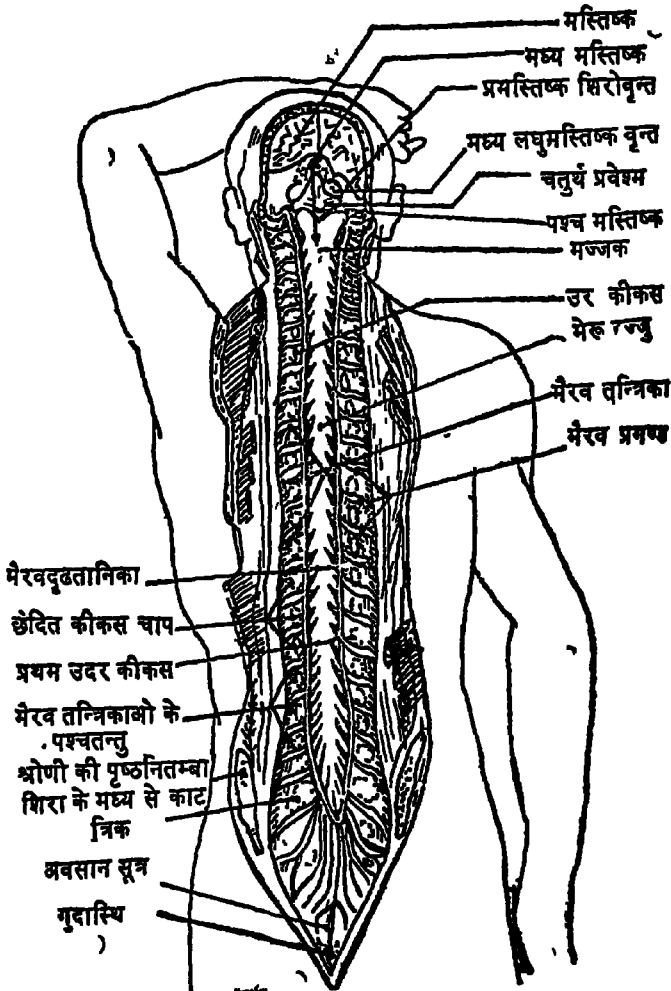
केन्द्रीय तन्त्रिका-संस्थान के मुख्य अंग-मस्तिष्क और सुषुम्ना (मेरु-रज्जु (Spinal Cord)

अवयव की क्रिया को उत्तेजित करता है, वहा दूसरा उसे शात करता है। उदाहरणार्थ—अनुकपी विभाग हृदय की गति एव उसकी सकुचन-शक्ति तथा रक्त-चाप को बढाता है, तो परानुकपी व्यवस्था इन्हे कम करती है।

रक्त-संरचना तन्त्र

मानव-शरीर की प्रत्येक कोशिका को ग्लूकोज आदि पोषक तत्त्वों
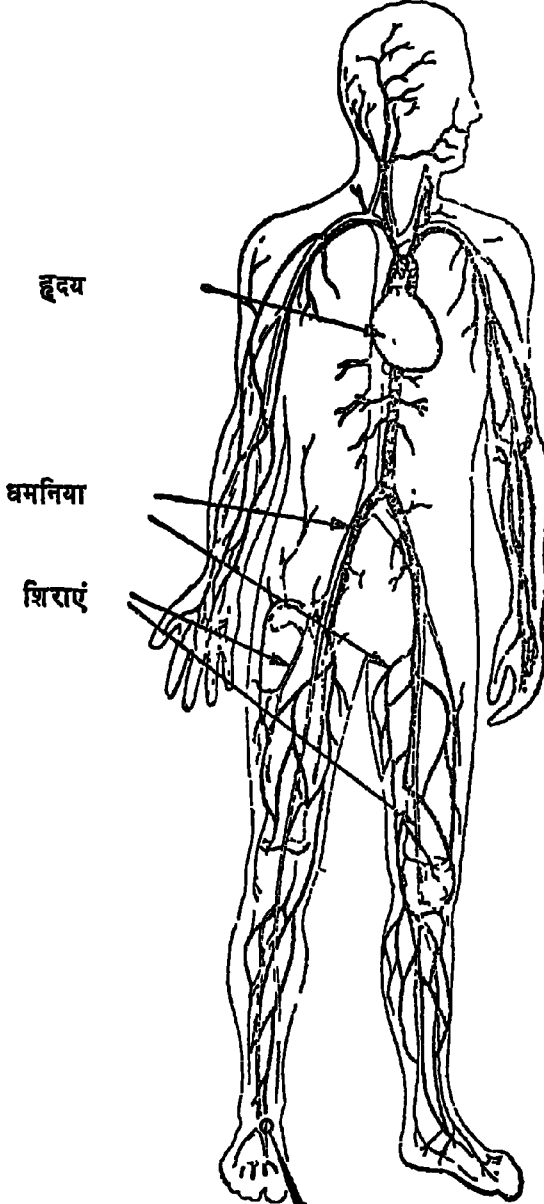
रक्त-परिसंचरण के विभिन्न अवयव —हृदय, धमनियां, शिराएं।
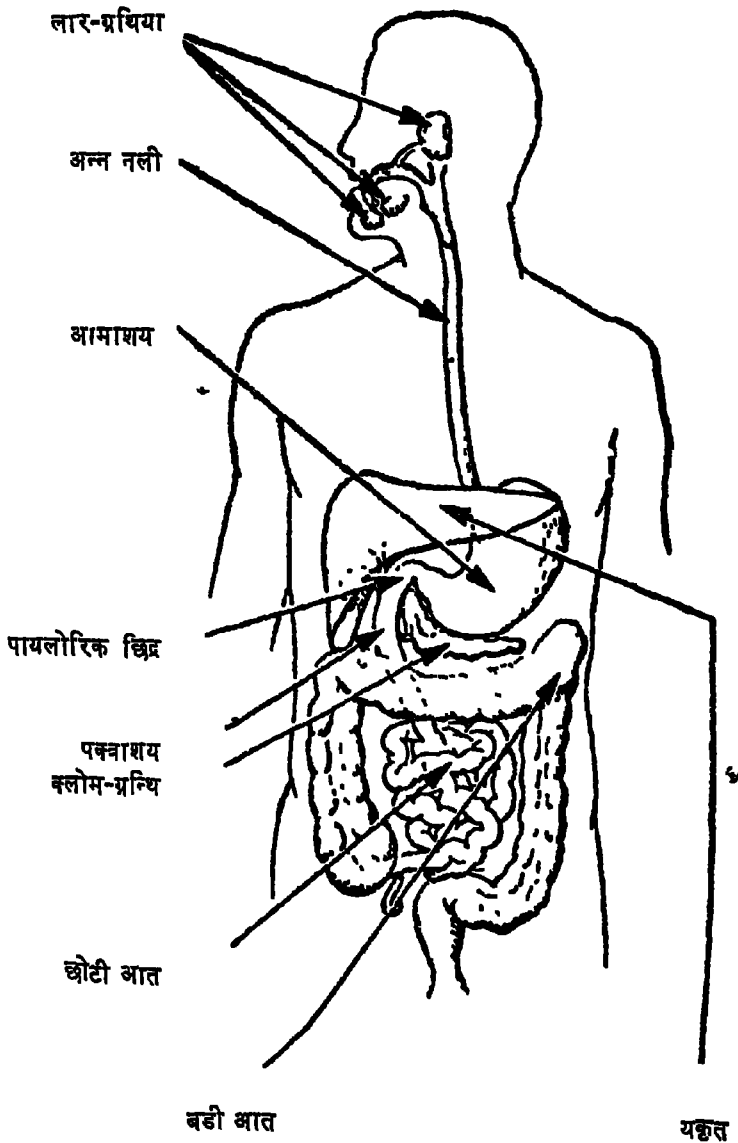
अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तंत्र

अन्त स्रावी ग्रंथिया (endocrine glands) नलिकाविहीन होती हैं। उनके स्राव सीधे ही रक्त-प्रवाह मे छोडे जाते हैं। वे पूरे शरीर मे प्रवाहित होते हैं। और उत्पादन-स्थान से सुदूर स्थानो तक अपना कार्य कर सकते है। अन्त स्रावी ग्रंथिया शरीर मे बिखरी हुई पाई जाती हैं। इसके बावजूद इन सबका एक सक्षम तन्त्र बनता है, जो शरीर की अन्यान्य क्रियाओ मे सपूर्ण

सगति बिठाकर उनका सुचारु रूप से नियन्त्रण करता है।

मुख्य अन्त स्रावीग्रन्थिया ये है—पाइनियल, पिच्यूटरी (पीयूष) थाइरॉइड, पैरा-थाइरॉयइड, एड्रीनल (अधिवृक्क), लेगरहास के द्वीप तथा गोनाड्स् (काम-ग्रथिया)। ये सब ग्रन्थिया अपेक्षाकृत काफी छोटी होती है। रक्त द्वारा इन्हे विपुल मात्रा मे पोषक सामग्री उपलब्ध होती है। इन ग्रन्थियो के उत्पादन जैव-रासायनिक-यौगिक (organic chemical compounds) के रूप में होते है। वे स्वल्प मात्रा मे भी बहुत अधिक प्रभावशाली होते है।
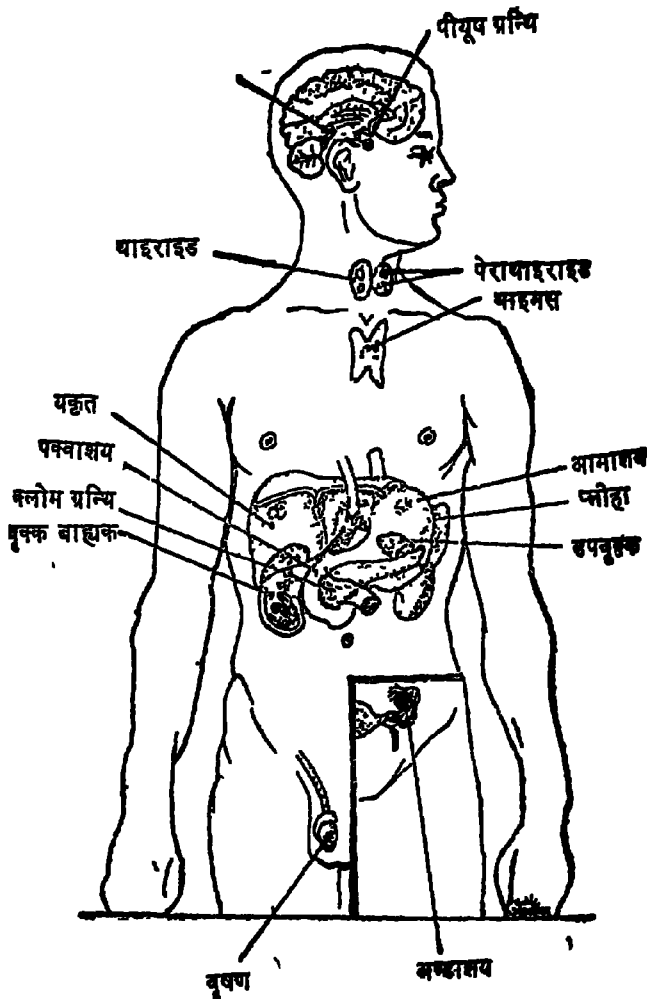
शरीर के विभिन्न भागों में स्थित अन्त स्रावी एवं बहि स्रावी ग्रन्थियां

विसर्जन तंत्र—गुर्दे

शरीर मे उत्पन्न नाईट्रोजनीय अपशिष्ट पदार्थों का विसर्जन करने के

लिए मुख्य अवयव के रूप मे गुर्दे कार्य करते है ।

प्रत्येक गुर्दे मे मूत्र का उत्पादन सतत् चौबिस घटे चालू रहता है । वह बूद-बूद कर मूत्र-वाहिनी के माध्यम से मूत्राशय (ब्लैडर) मे टपकता रहता है और सगृहीत होता है ।

मूत्राशय से मूत्र को बाहर निकालने के लिए एक नलिका होती है, जो शरीर के बाहर एक छिद्र के द्वारा खुलती है ।

रक्त की सफाई और निस्यन्दन के अतिरिक्त गुर्दे रक्त की लाल कोशिकाओ के उत्पादन को बढावा देते है । इसके अतिरिक्त वे रक्त मे सोडियम व पोटेशियम, लवण, जल एव अन्य तत्वो की मात्रा का नियमन करते है । गुर्दों के द्वारा जैविक जल-सतुलन को नियन्त्रित किया जाता है । गुर्दे हमारे रक्त को अधिक अम्लीय या अत्यधिक प्रत्यम्लीय होने से बचाते हैं ।

५.१.२ शरीर आध्यात्मिक दृष्टिकोण (Body : spiritual Perspective

हमारा अस्तित्व चेतन और अचेतन का जटिलतम सयोग है । चेतन है हमारी आत्मा और अचेतन है शरीर ।

आत्मा अरूप है, अरस है, अगध है और अस्पर्श है, इसलिए वह अदृश्य है । वह शरीर से बधी हुई है, इस दृष्टि से दृश्य भी है । ससारी आत्मा शरीर-मुक्त नही रह सकती । वह स्थूल अथवा सूक्ष्म किसी-न-किसी शरीर के आश्रित रहती है । चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम शरीर है । आत्मा और शरीर का सबध चिर-पुरातन है । जैन सिद्धात की भाषा मे अनादि है ।

परिभाषा

"सुख-दु खानुभवसाधनम् शरीरम्" । जिस के द्वारा पौद्गलिक सुख-दु ख का अनुभव किया जाता है, वह शरीर है ।[1]

जीव की जितनी प्रवृत्तिया होती है, वे सब शरीर के माध्यम से ही होती हैं । शरीर से सामान्यत हमारा तात्पर्य इस अस्थि-मास-युक्त स्थूल शरीर से ही समझा जाता है, जिसे "फिजिकल बाडी" कहा जाता है । पर फिजिकल बाडी के सिवाय भी कुछ ऐसे शरीर होते है, जिनसे हम परिचित नही है । यहा हम अपने अभिन्न मित्र शरीर से परिचित होने का प्रयास करेंगे ।

जैन तत्त्व-विद्या के अनुसार शरीर के पाच प्रकार हैं—

१. औदारिक

---

१. जैन सिद्धात दीपिका, ७।२४

२. वैक्रिय
३. आहारक
४. तैजस्
५. कार्मण।

इन पांचो को तीन वर्गो मे भी बांटा जा सकता है।

स्थूल शरीर—औदारिक शरीर—हाड-मांस आदि सप्त धातुओ द्वारा निर्मित शरीर।

सूक्ष्म शरीर—वैक्रिय शरीर—नाना रूप बनाने में समर्थ शरीर।
आहारक शरीर—विचार-संवाहक शरीर।

सूक्ष्मतम शरीर—तैजस् शरीर—तापमय या विद्युत् शरीर।
कार्मण शरीर—कर्ममय शरीर।

इस वर्गीकरण से स्पष्ट हो जाता है कि औदारिक शरीर सबसे अधिक स्थूल होता है। वैक्रिय शरीर उससे अपेक्षाकृत सूक्ष्म होता है उससे सूक्ष्म आहारक शरीर होता है। आहारक से भी सूक्ष्म होते हैं तैजस् और कार्मण शरीर।

औदारिक शरीर

यह शरीर रसादि धातुमय है। स्थूल पुद्गलो से निष्पन्न है। यह मृत्यु के बाद भी टिका रह सकता है। इसका छेदन-भेदन हो सकता है। यह अस्थि, मज्जा, मांस, रुधिर आदि से निर्मित है, इसलिए विशरण धर्मा है। यानी इसका स्वभाव है गलना-मिलना और विनष्ट होना। इस शरीर का चयापचय होता रहता है। इस शरीर की सबसे छोटी इकाई है कोशिका। प्रतिक्षण लाखों करोड़ों कोशिकाए नष्ट होती हैं और नई कोशिकाएं उत्पन्न होती रहती हैं।

शरीर भौतिक है। आत्म-स्वरूप की उपलब्धि मे या मुक्ति में बाधक है। अवतार वे ही आत्माएं लेती हैं जो सशरीरी हैं। सिद्धात्माए शरीर-मुक्त होती है। वे पुन. जन्म नहीं लेतीं। औदारिक शरीर मुक्ति का साधक भी है। वह इसलिए कि मोक्ष की साधना और प्राप्ति केवल औदारिक शरीर मे ही संभव है।

यह औदारिक शरीर एकेन्द्रिय जीवो से लेकर मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय तक सब जीवों को प्राप्त होता है।

वैक्रिय शरीर

भांति-भांति के रूप बनाने में समर्थ शरीर वैक्रिय कहलाता है। विक्रिया—विभिन्न प्रकार की क्रियाएं घटित होना। वैक्रिय शरीर-धारी प्राणी छोटा-बड़ा, सुरूप-कुरूप, एक-अनेक चाहे जैसे, चाहे जितने रूप बना

सकता है। मृत्यु के पश्चात इस शरीर का कोई अवशेष नही रह जाता। यह पारे की तरह बिखर जाता है।

देवों और नैरयिक जीवो के वैक्रिय शरीर होता है। मनुष्य और तिर्यच मे भी यह सामर्थ्य हो सकती है। उसे वैक्रिय लब्धि कहते हैं।

आहारक शरीर

यह विचारो का सवाहक शरीर है। इसमे विचार-सप्रेषण की अद्भुत क्षमता होती है। विशिष्ट योग शक्ति-सपन्न चतुर्दश पूर्वधर मुनि विशिष्ट प्रयोजनवश एक विशिष्ट प्रकार के शरीर की रचना करते हैं। उसे आहारक शरीर कहते हैं। इस शरीर के द्वारा प्रयोक्ता हजारो मीलो की दूरी को क्षण भर मे तय कर लक्षित व्यक्ति के पास पहुच जाता है। उससे जिज्ञासा का समाधान पाकर या विचार-विमर्श कर पुन यथास्थान आ जाता है। यह सारी क्रिया इतने कम समय मे हो जाती है कि दूसरे व्यक्ति को पता भी नही चलता।

जैन-शास्त्रो मे उल्लेख आता है कि किसी चौदहपूर्वी मुनि के पास यदि कोई व्यक्ति जिज्ञासा लेकर आए, किंतु समय पर ज्ञानी मुनि प्रश्नकर्त्ता को सही उत्तर देने मे समर्थ न हो तो वे आहारक नाम की विशिष्ट तपोजनित शक्ति द्वारा अपने शरीर से एक हाथ प्रमाण पुतला निकालते हैं, उसे सर्वज्ञ के पास भेजते हैं, वह पुतला सर्वज्ञ भगवान से प्रश्न का उत्तर प्राप्त कर ज्ञानी मुनि के शरीर मे प्रविष्ट हो जाता है। मुनि उत्तर प्रदान कर प्रश्नकर्त्ता को सतुष्ट कर देते हैं। कदाचित निर्दिष्ट स्थान पर सर्वज्ञ न मिलें तो उस पुतले से वैसा ही दूसरा पुतला निकलता है। सर्वज्ञ से समाधान प्राप्त कर पहले पुतले मे प्रविष्ट होता है और पहला पुतला मुनि के शरीर मे। मुनि प्रश्नकर्त्ता को समाधान दे सतुष्ट कर देते है।

आहारक शरीर औदारिक और वैक्रिय की अपेक्षा सूक्ष्म होता है तथा तैजस और कार्मण की अपेक्षा स्थूल होता है। फिर भी इसकी गति अव्यवहित होती है। कही रुकावट नही आती।

आज विज्ञान परामनोविज्ञान के क्षेत्र मे टेलीपैथी, तथा प्रोजेक्शन ऑफ एस्ट्रल बॉडी के प्रयोग-परीक्षण की व्यापक चर्चा है कोस्मिक-रे लेसर किरणो की अपार क्षमताओ की खोज, प्रयोग और परीक्षण हो रहे हैं— उसके सदर्भ मे वैक्रिय शरीर और आहारक शरीर पर विशेष अध्ययन अनुशीलन किए जाए तो आश्चर्यकारी रहस्य उद्घाटित हो सकते है।

तैजस् शरीर

तेजोमय परमाणुओ से निष्पन्न शरीर तैजस् शरीर है। यह तेजो-

लब्धि, दीप्ति और पाचन का हेतु है। यह तापमय शरीर है। हमारी उष्मा, सक्रियता और शक्ति का सचालक है। इसके बिना उष्मा उत्पन्न नही हो सकती, पाचन नही हो सकता, रक्त-सचार आदि क्रियाए नही हो सकती। हमारे स्थूल शरीर की सारी क्रियाओ का सचालन इसी शरीर द्वारा होता है।

तैजस की मदता अग्नि-मदता का हेतु है। अग्नि की मदता से प्रत्येक प्रवृत्ति बलहीन हो जाती। तैजस शरीर के मुख्यतया दो कार्य है—

१ शरीर-तंत्र का सचालन।

२ अनुग्रह-निग्रह की क्षमता।

हमारी जीवनी-शक्ति का आधार प्राण तत्त्व तैजस शरीर से ही प्रवाहित होता है।

यह ऊर्जामय शरीर है। इसे योग के आचार्य प्राणमय कोष तथा वैज्ञानिक "वाइटल बॉडी" या बायो इलेक्ट्रिकल प्लाज्मा कहते हैं। सीधी भाषा मे कहे तो यह विद्युतीय शरीर है। ऊर्जा का अपार भडार है।

वैज्ञानिक आकडे बताते हैं कि मनुष्य-जीवन को सचालित करने के लिए जितनी प्रवृत्तिया होती हैं, उन प्रवृत्तियो मे जितनी विद्युत् या ऊर्जा खपती है, उससे एक बडी कपडे की मील चलाई जा सकती है।

एक बच्चे की शारीरिक क्रियाओ मे जितनी विद्युत् खपती है उससे रेल का एक इजन चलाया जा सकता है।

मनुष्य-शरीर की प्रत्येक कोशिका मे अपना स्वतत्र "पावर-हाऊस" है, जहा विद्युत्-ऊर्जा उत्पन्न होती है। उसी से पूरा शरीर-तत्र सक्रिय रहता है।

सूरज, वायु तथा अनत आकाश मे व्याप्त सूक्ष्म तरगो से भी निरन्तर ऊर्जा मिलती रहती है। उससे भी तैजस शरीर पुष्ट होता रहता है।

प्राण-वायु ऑक्सीजन शरीर के भीतर जाकर कोशिकाओ को ऊर्जा प्रदान करती है। इससे तैजस शरीर भी प्रभावित होता है। प्राणमय कोष को निर्मल और पारदर्शी बनाने के लिए प्राण की साधना आवश्यक है। ऐसा योग के आचार्यों का अभिमत है।

मत्र-जप, प्राणायाम और दीर्घ श्वास के अभ्यास से तैजस शरीर को प्रभावित कर उसमे छिपी अनन्त शक्ति को उजागर किया जा सकता है। विचार-तत्र और आभामण्डल को भी प्रभावित किया जा सकता है।

कार्मण शरीर

ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों के पुद्गल-समूह से निर्मित शरीर कार्मण शरीर या कर्म-शरीर है। यह पूर्ववर्ती औदारिक आदि चारो शरीरो का

कारण है, इस दृष्टि से इसे "कारण शरीर" भी कहा जाता है। यह सूक्ष्मतम शरीर है। इसके बिना स्थूल शरीर का निर्माण सभव नही। कार्मण शरीर के माध्यम से ही आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर मे प्रवेश करती है या दूसरे शरीर का निर्माण करती है।

औदारिक शरीर जन्म सबधी है। वैक्रिय शरीर जन्म सबधी भी है (देवो और नारको के) और लब्धिजन्य भी। आहारक शरीर योग-शक्ति-जनित ही होता है। ये तीनो शरीर स्थूल है, अवयवी हैं। तैजस और कार्मण सूक्ष्म शरीर हैं। मृत्यु के बाद भी जीव के साथ रहते हैं।

ससारी आत्माओ के दो या तीन शरीर सदा रहते हैं। कुछ आत्माओ मे पाचो शरीरो के निर्माण की क्षमता रहती है। कम से कम दो शरीर—तैजस और कार्मण तो प्रत्येक ससारी आत्मा के साथ रहते ही हैं। इनका आत्मा के साथ अनादि सम्बन्ध है। इन दोनो शरीरो के छूटते ही आत्मा मुक्त हो जाती है। फिर उसे ससार मे परिभ्रमण करना नही पडता।

जैसा कि हमने जाना तैजस और कार्मण—ये दो सूक्ष्म शरीर प्रत्येक ससारी प्राणी के होते है। पर इसके साथ भी ज्ञातव्य है कि केवल इन दो शरीरो मे आत्मा अधिक समय तक नही रह सकती। वह केवल अन्तराल गति (एक जन्म से दूसरे जन्म-स्थान मे जाने के मध्य का समय) मे होते है। नया जन्म लेते ही उसे तीसरा शरीर धारण करना होता है।

सूक्ष्म शरीर और आधुनिक विज्ञान

इन चालीस वर्षो मे परामनोविज्ञान के क्षेत्र मे सूक्ष्म शरीर से सबधित काफी प्रयोग—परीक्षण हुए हैं। उससे सूक्ष्म शरीर के अनेक रहस्य अनावृत हुए हैं। किरलियन फोटोग्राफी आभामडल के फोटो लेने मे सफल सिद्ध हुई हैं। इससे विज्ञान जगत् की धारणा भी बनी है कि इस स्थूल शरीर से परे भी बहुत कुछ है। इसके भीतर बडा सूक्ष्म जगत् है।

मरते हुए आदमी का फोटो लिया गया, तब ऐसा लगा कि इस शरीर जैसी आकृति शरीर से बाहर आ रही है। प्राथमिक प्रयोगो ने हो सकता है इसे आत्मा माना हो, पर वास्तव मे यह सूक्ष्म शरीर ही है। आत्मा अमूर्त है, वह अदृश्य नही बन सकती। जैन-दर्शन के अनुसार सूक्ष्मतम शरीर अत्यन्त सूक्ष्म—चतु स्पर्शी परमाणु स्कधो से निर्मित है।

परमाणु स्कध दो प्रकार के होते हैं—चतु स्पर्शी और अष्टस्पर्शी। अष्टस्पर्शी परमाणु स्कधो मे भार होता है। विद्युत-आवेश होता है। प्रस्फुटन होता है और स्थूल अवगाहन होता है। चतुस्पर्शी पुद्गल स्कधो मे भार नही होता। वे न हल्के होते हैं न भारी। उनके विद्युत आवेश नही

होता। उनकी गति अप्रतिहत होती है। अस्खलित होती है। वे दीवार के पार जा सकते हैं। सूक्ष्मतम शरीर इन्हीं परमाणुओं से बना हुआ होता है।

परामनोविज्ञान की भाषा में कहा जाता है कि सूक्ष्म शरीर 'न्यूट्रिनोन' कणों से निर्मित है। चतुःस्पर्शी पुद्गलों की भांति "न्यूट्रिनोन" कणों में भी भार, विद्युत्-आवेश और चुम्बकत्व नहीं होता। विज्ञान इन कणों को अभौतिक मानता है। पर जैन-दर्शन-सम्मत सूक्ष्म शरीर भौतिक है, पौद्गलिक है। हो सकता है, विज्ञान के पास इसकी स्पष्ट भाषा नहीं है। इसलिए उसे अभौतिक कह देता है। जैन आगमों के आधार पर सूक्ष्म शरीर अभौतिक नहीं है। वह भौतिक है। पौद्गलिक है। चतुःस्पर्शी पुद्गलों से निर्मित है।

"न्यूट्रिनोन" के कण भी औरे कण के रूप में नहीं देखे जा सकते हैं। जब दूसरे कणों के साथ संघर्ष होता है तब ये कण पकड़ में आते हैं। वे ही सूक्ष्म परमाणु हमारे सूक्ष्म शरीर का निर्माण करते हैं।

शरीर : आध्यात्मिक मूल्य

कर्म शरीर संस्कारों का वाहक है। जन्म-जन्मान्तरों की संस्कार-परम्परा इसके साथ जुड़ी हुई होती है। व्यक्ति का चरित्र, ज्ञान, व्यवहार, व्यक्तित्व, कर्तृत्व—इन सबके बीज कर्म शरीर में ही सन्निहित हैं। जीनेटिक साइंस के अनुसार व्यक्ति के आकार, प्रकार, संस्कार का मूल आधार 'जीन' है। मानव शरीर में लगभग एक लाख तीस हजार किस्म के 'जीन्स' हैं। प्रत्येक जीन-शृंखला में ढाई अरब 'बिन्दु' अथवा आधार-कण के जोड़े होते हैं। इन्हीं के आधार पर व्यक्ति का व्यक्तित्व बनता है। कर्म शास्त्रीय दृष्टि से व्यक्तित्व की विविधता का मूल कर्म शरीर है।

कर्म शरीर चेतना के सर्वाधिक निकट है। चैतन्य की रश्मियों को रोकने वाली सुदृढ़ दीवार है। चैतन्य को प्रकट करने के लिए उसका हटना आवश्यक है। भगवान महावीर ने कहा—"धुणेहि कम्म सरीरगं—कर्म-शरीर को प्रकम्पित करो। धुनन करो। इसके समाप्त होते ही जन्म-परंपरा समाप्त हो जाएगी। चेतना की समस्त शक्तियां जागृत हो जाएंगी। इसका प्रारम्भ औदारिक शरीर की सिद्धि और शुद्धि से होता है। इसके लिए शरीर के क्रिया-तंत्र, विचार-तंत्र और नाड़ीतन्त्र का शोधन और संयम कर ग्रन्थि-तन्त्र के स्रावों को बदला जा सकता है। उसका फलित है भाव-शुद्धि। भाव-शुद्धि से लेश्या पवित्र होती है। लेश्या अध्यवसाय को प्रभावित करती है। पवित्र अध्यवसाय से कार्मण-शरीर प्रकम्पित होता है। जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार क्षीण होते हैं। मूर्च्छा टूटती है और चेतना का पूर्ण स्वरूप में प्रकाशित हो उठता है।

शरीर के आध्यात्मिक और शरीर-शास्त्रीय अध्ययन से चेतना के केन्द्र तक पहुचने तथा चैतन्य की समग्र शक्तियो के विकास का पथ प्रशस्त होता है।

५.२.० योगासन (Yogasan)

५.२.१. वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Perspective)

प्रेक्षाध्यान मे आसन, प्राणायाम, मुद्रा और यौगिक क्रियाओ का महत्त्व-पूर्ण स्थान है। जब तक आसन नही सधता मुद्रा ठीक नहीं होती—ध्यान की पूर्व तैयारी ही नही हो पाती। बिना आसन साधे ध्यान मे बैठ जानेवाले का शरीर स्थिर नही रह पाता जो कार्यत्सर्ग को पहली शर्त है। शरीर का शिथिलीकरण नही होना तो कायोत्सर्ग नही होता। ये दोनो हुए बिना चैतन्य के प्रति जागरूकता आ ही नही सकती, क्योकि चित्त शरीर की अस्थिरता और चचलता मे ही अटका रह जाता है। मुद्राओ का भावो के साथ सीधा सम्बन्ध है। जैसे भाव वैसी मुद्रा और जैसी मुद्रा वैसा ही भाव का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है, इसलिए ध्यान के लिए आसन, मुद्रा और यौगिक क्रियाए विज्ञान-सम्मत अनिवार्यताए हैं।

अस्थि-तन्त्र

हमारा शरीर हड्डियो का ढाचा है। वह सारे शरीर का बोझ उठाए हुए है। अस्थियो मे जगह-जगह जोड हैं जिनसे हम शरीर के उस भाग को आसानी से मोड सकते है जिस तरह दरवाजे को कई दिन न खोला जाए तो उसके कब्जे को जग पकड लेता है और दरवाजा आसानी से नही खुलता। इसी तरह शरीर के जोडो की शुरू से ही आसन आदि के द्वारा स्वस्थ नही रखा जाए, तो वे भी जल्दी ही कडे होकर दुखने लग जाते है। जोडो का दर्द आज के विश्व की एक बडी बीमारी है। आसन करने से जोड स्वस्थ बने रहते हैं और वहा शरीर से स्राव पहुचते रहते हैं जिनसे उनके मुडने मे मदद मिलती है। हड्डिया स्वस्थ बनी रहने से और मजबूत बनी रहने से हमारी रोग-प्रतिरोधक शक्ति भी बनी रहती है, क्योकि अनेक आवश्यक तत्त्व शरीर को हमारी अस्थि-मज्जा से प्राप्त होते है।

मांसपेशी तंत्र

हमारे शरीर मे अस्थितन्त्र तथा अन्य अवयवो की सुरक्षा के लिए मासपेशिया बनी हैं। ये मासपेशिया शरीर के हलन-चलन मे सहायक हैं। ये दो प्रकार की हैं—ऐच्छिक और अनैच्छिक। ऐच्छिक मासपेशियो को हम अपनी इच्छानुसार काम मे लेते है, और अनैच्छिक स्वय ही सचालित होती हैं। मासपेशियो की कुल सख्या ५१९ हैं। इसमे ४५१ तो अस्थियो के

तालिका २ : योगासन : सिद्धान्त और मूल स्रोत

बिन्दु	तथ्य	प्रमाण
प्रयोजन	शरीर को साधनानुकूल बनाना, ध्यान मे विकास करना, आसन-विजय करना। स्वास्थ्य का सरक्षण करना (पाचन तन्त्र को सक्रिय, विसर्जन तन्त्र को क्रियाशील, श्वास को सम्यक् व रीढ की हड्डी को लचीला करना), शक्ति सवर्धन करना।	ज्ञानार्णव २८।११ आयारो ९।४।१४
आध्यात्मिक दृष्टिकोण	शरीर शुद्धि एव काय-क्लेश की प्रक्रिया, निर्जरा की प्रक्रिया। आसनों के तीन प्रकार—शयन, निषीदन स्थान, ऊर्ध्व स्थान।	उत्तरज्झयणाणि ३०।२७ ओघ निर्युक्ति भाष्य गाथा १५२ मूलाराधना ३।२२३ ठाण ५।४२-५।५० मूलाराधना ३।२२५ आयारो ५।८१
वैज्ञानिक दृष्टिकोण	स्वास्थ्य सरक्षण व अस्वास्थ्य निरसन का सशक्त उपाय	
प्रक्रिया	स्थिति और गति— शरीर की स्थिति को ठीक करके मद गति से आसन की मुद्रा बनाना। आसन के अनुसार श्वास-प्रश्वास को मद गति से लेना छोडना। भावक्रिया—शरीर की गति, स्थिति एव श्वास का अनुभव करना। आसन की मुद्रा मे ठहरना एवं आसन के पश्चात् पूरे शरीर मे शिथिलता का अनुभव करना।	
निष्पति	शारीरिक स्वास्थ्य, रोग प्रतिरोधात्मक क्षमता का विकास, तितिक्षा का विकास वृत्तियो पर नियन्त्रण की क्षमता का विकास, ध्यान की भूमिका का निर्माण।	महापुराण २०।९१ भगवई १।१।९

सचालन मे सहायक हैं। वाकी ६८ आख, कान, जीभ, आदि अवयवो से सम्बधिन्त है। अनैच्छिक मासपेसिया हृदय, फेफडे, रक्त-खण्डो और पूरे पाचन-तन्त्र मे फैली हुई हैं। इन मासपेशियो पर आसनो और यौगिक क्रियाओं का जवरदस्त प्रभाव पडता है। आसन करने से मासपेशिया ज्यादा सक्रिय और मुलायम वन जाती है। उनकी कार्य-क्षमता बढ जाती हैं। शरीर की सुन्दरता भी मासपेशियो के स्वरूप पर निर्भर है। अगर मासपेशिया ढीली पड़ जाती है तो शरीर भी बूढा दीखने लगता है। मासपेशिया स्वस्थ हो तो सुन्दरता अपने आप आ जाती है, ज्यादातर मासपेशिया अस्थितन्त्र को बाधकर रखती है और अस्थियो के हलन-चलन मे सहायक होती हैं। अगर मासपेशिया मे लचीलापन नही है तो शरीर का हलन-चलन ठीक नही होगा। शरीर अकड जाने से शरीर की पूरी क्षमता लगाकर भी नही मोड सकते। शरीर की अकडन बुढापे की निशानी है। आसन करने से इन सव मे सुधार आता है। अनैच्छिक मासपेशिया भी स्वस्थ होने पर शरीर के पाचनतन्त्र, आख, हृदय, कान, जीभ आदि को अधिक सक्रिय बनाकर पूरे शरीर को स्वस्थ बनाती है। जव आसन किए जाते है तो उसके साथ भाव भी कार्य करते हैं और हमारे भावो के अनुरूप मासपेशिया वननी शुरू हो जाती हैं।

पाचनतन्त्र पर प्रभाव

आसनो और यौगिक क्रियाओ से पाचनतन्त्र का सम्यक् व्यायाम होता है। कहा जा सकता है कि व्यायाम से भी यह काम किया जा सकता है, किंतु जहा व्यायाम से ३ से लेकर १४ केलरी ऊर्जा खर्च होती है वहा आसनो से दशमलव शून्य, कायोत्सर्ग से दशमलव शून्य ३ केलरी ऊर्जा ही खर्च होती है। आमाशय, लीवर, छोटी आत, बडी आत, पेनक्रियाज, विसर्जनतन्त्र आदि सभी पाचन और विसर्जन-तन्त्र आसनो और यौगिक क्रियाओ से प्रभावित होते हैं। साथ ही वे जीवन भर लचीले बने रहते है, जबकि व्यायाम से वे कडे पड जाते है और आगे चलकर स्वास्थ्य को हानि पहुचाते है। सात्त्विक और सन्तुलित आहार योगासनो मे अनिवार्य तौर पर लेना जरूरी है। तभी आसनो से लाभ हो सकता है।

रक्त-संचारना तन्त्र

आसनो और यौगिक क्रियाओ के द्वारा हृदय, रक्तवाहिनी नलिकाएं और पुनः हृदय मे रक्त पहुचाने वाली नलिकाए—सब लचीली बनी रहती हैं और स्वस्थ रहती हैं। आसन करने और सयम से जीने वालो को जल्दी रक्त-चाप जैसी बीमारिया नही होती।

नाड़ी-तन्त्र

रीढ़ की हड्डी मे साईकल के चेन की तरह अनेक हड्डिया मिली

हुई होती हैं जो इस हड्डी को लचीला बनाती हैं। इस हड्डी का लचीलापन स्वास्थ्य की निशानी है। आसन प्राणायामो के माध्यम से रीढ़ की हड्डी को लम्बी उमर तक लचीला बनाकर रखा जा सकता है। रीढ की हड्डी के भीतर से योगशास्त्र के हिसाब से तीन मुख्य नाडिया गुजरती हैं। इडा, पिंगला और सुषुम्ना। इन नाडियो को प्राणायाम के जरिए स्वस्थ और सक्रिय रखा जाता है। आसन-प्राणायाम के जरिए न्यूरोन्स को अधिकतम विश्राम दिया जा सकता है और उनकी उम्र बढ़ाई जा सकती है। इस तरह हमारी स्मरण शक्ति लम्बे समय तक न सिर्फ बनी रहती है, बल्कि सबल भी बनी रहती है। चिन्तन और कल्पना के सही तरीके के कारण व्यक्ति की कार्यकुशलता भी बढ़ जाती है। रीढ़ की हड्डी और मस्तिष्क सम्बन्धी अनेक बीमारियों से बचाव होता है।

अन्त:स्रावी ग्रन्थितन्त्र

आसनो, यौगिक क्रियाओ, मुद्राओ और प्राणायाम का असर हमारे भावो पर पडता है। निषेधात्मक भावो की जगह विधेयात्मक भाव लेते हैं और इस तरह हमारा भावनात्मक स्वास्थ्य अच्छा होता है। दीर्घ-श्वास-प्राणायाम के अभ्यास से तमाम निषेधात्मक भावो का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। दीर्घ-श्वास-प्रेक्षा से भावो का शमन होता है और आसनो से ग्रन्थि स्राव सतुलित होते हैं। इस तरह अन्त स्रावी ग्रन्थियो पर आसनो, प्राणायाम आदि का असर स्पष्टतया दीखता है।

आज का आयुर्विज्ञान बहुत ही उन्नत है। आयुर्विज्ञान ने आसनो का अनेक रोगो पर प्रयोग किया और पाया कि जहा अनेक दवाए काम नही करती, वहा आसनो से फायदा होता है। इन्ही प्रयोगो के आधार पर आयु-विज्ञान ने एक नवीन शाखा का उदभव किया जिसे 'फीजियोथेरापी' कहा जाता है। आज विश्व मे प्राय· सभी रोगो में आसन के महत्त्व को स्वीकार किया गया है और वे अपने प्रचार-तन्त्र द्वारा आसनो का खुल कर प्रचार कर रहे हैं।

५.२.२. आध्यात्मिक दृष्टिकोण (Spiritual Perspective)

अध्यात्म, चेतना की अन्तरग अभिव्यक्ति है। व्यक्ति अपनी अनुभूतियों से गुजर कर आनन्द को उपलब्ध होता है। साधना की विविध परम्पराओ ने उसके लिए व्यक्ति का मार्गदर्शन किया है।

विज्ञान ने मनुष्य को जहा सुख-सुविधा के लिए साधन दिए हैं, वहा मानसिक तनाव और शारीरिक अस्वास्थ्य का अभिशाप भी दिया है। जो देश जितना आधुनिक यन्त्रो से सुसज्जित हुआ, वह देश स्नायविक तनाव से ग्रसित ओर मानसिक व शारीरिक दृष्टि से रुग्ण बना। हिन्दुस्तानी अभी भी

पूर्ण आधुनिक नही हैं, फिर भी ज्यो-ज्यो यत्रो के साधनो का विकास यहा हो रहा है, मानसिक तनावो के दोष विकसित होते जा रहे हैं। व्यक्ति चिन्ता, भावुकता, परेशानियो से घिरता जा रहा है, जिससे उसका जीवन तनाव-ग्रस्त होने लगता है। तनाव से ग्रसित व्यक्ति केवल मानसिक दृष्टि से ही पीडित नही होता, वल्कि शारीरिक दृष्टि से भी रुग्ण व पीडित होता है। मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के उपलब्ध होने का सरल और सहज मार्ग योगासन है। योगासन जहा साधना की सिद्धि मे सहयोगी बनते है, वहा शारीरिक स्वास्थ्य एव मानसिक प्रसन्नता के लिए वरदान बनते हैं। योगासनो से सुख-दु ख, लाभ अलाभ आदि द्वन्द्वो का अभिघात होता है। कष्ट-सहिष्णुता एव माध्यस्थ्यवृत्ति भी विकसित होने लगती है। आसन शरीर के अवयवो मासपेशियो, स्नायु-मण्डल को सक्रिय, शक्तिशाली एव सतुलित वनाने के लिए उपयोगी हैं। आसनो के असख्य प्रकार हैं। जीवो की जितनी योनिया है, उनके शरीर के जो आकार हैं, उन सबको आसन की सज्ञा दी जा सकती है। शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक शान्ति की दृष्टि से उपयोगी आसनो की विधि एव चर्चा ही यहा उपयुक्त रहेगी। योगासन प्रारम्भ करने से पूर्व कुछ आवश्यक सकेत मननीय हैं, जिनसे योगासन का पूर्ण लाभ उठाया जा सकता है।

योगासन का अभ्यास एकान्त, शान्त व खुली जगह मे करें। आसन का समय प्रात काल सूर्योदय से पूर्व सूर्योदय के एक घण्टा पश्चात् करना उत्तम है। आसन खाली पेट ही करना चाहिए। भोजन के तीन घण्टे तक आसन करना वर्जित है। आसन करते ही तत्काल भोजन न करें। आसन के समय तग वस्त्र न पहनें। आसन के समय शरीर एव मन को शात रखे।

आसन प्रारम्भ करने वाले नवीन साधक को प्रथम दिन दो-चार सरल आसन ही करने चाहिए। आसन की विधि और अभ्यास को अच्छी तरह समझ लें या योग्य व्यक्ति के निर्देशन मे अभ्यास करें।

आसन के दो प्रकार हैं—स्थित्यात्मक और गत्यात्मक। स्थित्यात्मक आसनो मे पद्मासन, सिद्धासन आदि ध्यानासन आते हैं। स्थित्यात्मक आसनो मे मासपेशियो को विश्राम मिलता है। गत्यात्मक आसनो मे शरीर के अवयवो को गतिशील करना होता है। गत्यात्मक आसनो मे उत्तानपादासन, पवनमुक्तासन आदि आसन आते है। यह गति अत्यन्त धीमी तथा सावधानीपूर्वक की जाती है। इन्हे करते समय ध्यान शरीर की बदलती हुई तान्त्रिक पेशियो को विशेप स्थिति मे लाने के लिए रखा जाता है। गत्यात्मक आसनो मे शरीर गति करता हुआ प्रतीत होता है, परन्तु गति के पश्चात् शरीर को कुछ समय तक शिथिल छोड देना आवश्यक है, जिससे विजातीय तत्त्व का निरसन एव शरीर मे शक्ति-सचय हो सके।

आसन के अभ्यास से शुरू मे पेशियो पर स्वल्प तनाव आता है। क्रमश: अभ्यास से आसन की सहज स्थिति तक पहुच जाते हैं। उस समय तनाव का अनुभव नही होता। केवल पेशियो या किसी अवयव को एक आकार मे ले जाना ही आसन का उद्देश्य नही है। आसन के साथ शरीर को शिथिल छोडना भी आवश्यक है, क्योकि उससे ही स्नायु-सस्थान मे ठहरे हुए विजातीय तत्त्वो का शोधन होता है। योगसूत्र मे उल्लिखित 'प्रयत्न-शैथिल्य" की यही अवस्था है। इससे शरीर शिथिल होकर तनाव-मुक्त हो जाता है।

यह निर्विवाद है कि काया की क्षमता के अभाव मे वाक् और मन शीघ्र उत्तेजित हो जाते हैं। वाक् और मन पर सयम से पूर्व काय-सयम आवश्यक है। उसके लिए आसनक्रिया एक सम्यक्-अनुष्ठान है। आचार्य कुन्दकुन्द ने तो स्पष्ट उद्‌घोषित किया है कि जिन-शासन को जानने के लिए आहार-विजय के साथ आसन-विजय को जानना आवश्यक है। जैन परम्परा मे आसनो को तीन श्रेणियो मे विभाजित किया गया है। वे इस प्रकार है—

१. उत्थित—खडे होकर किए जाने वाले आसन।

३ स्थित—बैठकर किए जाने वाले आसन।

२. शयन—लेटकर किए जाने वाले आसन।

उत्थित आसनो मे वीर-वदन, समपाद, एकपाद, गृध्रोड्डीन, त्रिकोणासन, ताडासन आदि है। स्थित आसनो मे पद्मासन आदि हैं। शयन आसनो मे दण्डशयन आदि हैं।

आसन-प्राणायाम भारतीय चिंतन मे भी सभी विचारधाराओ मे है। वैदिक विचारधारा—हठयोग प्रदीपिका मे आसनो के बारे मे लिखा है—

हठस्य प्रथमांगत्वादासनं पूर्वमुच्यते ॥
कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्य चांगलाघवम् ॥१७॥

इसका अर्थ इस प्रकार है—

हठयोग का प्रथम अग आसन का वर्णन करते हुए कहा है—आसन मे स्थिरता इसलिए करे कि मन की चचलता जो रजोगुण का धर्म है उसका आसन नाश करता है। यानी चित्त का विक्षेप नही होता। महर्षि पतजलि ने रोग को भी चित्त का विक्षेप कहा है। व्याधि-उत्थान-सशय-प्रमाद आलस्य-अविरति-भ्रातिदर्श अलब्धभूमि (पूर्वोक्त भूमियो का न मिलना), अनवस्थित (चचलता) ये चित्त के विक्षेप रूप विघ्न हैं अगो के लाघव से ये सभी विघ्न जल्दी नजदीक नही आते।

घेरण्ड ऋषि ने आसनो के बारे मे लिखा है—

आसनानि समस्तानी यावन्तो जीव-जन्तव ।
चतुरशीति लक्षानि शिवेनाभिहितानि च ॥२॥

तेषां मध्ये विशिष्टानि षोडशोनं शतं कृतम् ।
तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासनं शुभम् ।२।

अर्थ—महर्षि घेरण्ड ने कहा - ससार मे जितने जीवो की योनिया हैं उतने ही आसन होते हैं। जीव योनिया ८४ लाख मानी गई हैं। आसन भी ८४ लाख होते हैं। इनमे भी ८४ आसन श्रेष्ठ माने गए। इनमे भी ३२ आसन अति विशिष्ट, अधिक शुभ समझने चाहिए।

घेरण्ड मुनि के अनुसार आदिनाथ ने पहले ८४ लाख आसन वताए क्योकि ससार मे प्राणियो के भी इतने ही प्रकार होते हैं। हर प्राणी मे कुछ न कुछ विशेषता होती है। जैसे कुत्ते मे घ्राण शक्ति तेज होती है तो गिद्ध मे दृष्टि तेज होती है। जानवरो के शरीर के आकार और स्वभाव की भावना करने और तद्रूप बनने से उनके गुण भी आ ही जाते हैं, किन्तु इतने आसनो पर काम करना सम्भव न जानकर ८४ आसन विशिष्ट समझकर छाटे गए। उनमे भी ३२ आसन अति विशिष्ट मानकर तय किए गए। इस तरह हम देखते हैं कि आसनो की महत्ता हमारे अति प्राचीन योग-ग्रन्थो मे भी पाई जाती है।

विज्ञान किसी भी देश-विशेष, जाति-विशेप, वर्ग-विशेप और धर्म विशेष की वस्तु नही है। इसी तरह योग अध्यात्म का प्रयोगसिद्ध सिद्धात है। आचार्य महाप्रज्ञ के शब्दो मे "योग योग होता है। वह न जैन होता है, न बौद्ध और न पातञ्जल। फिर भी व्यवहार ने कुछ रेखाए खीच दी, योग के प्रवाह को बाध बना दिया और नाम रख दिया—जैन योग, बौद्ध योग, पातजल योग। पर इस सत्य को न भूलें— योग योग है, फिर उसका कोई भी नाम हो।"

परमाणु प्रयोगशाला मे सिद्ध वैज्ञानिक सत्य है। फिर चाहे उसको रूस के वैज्ञानिक ने अपनी प्रयोगशाला मे प्रयोग सिद्ध किया हो, चाहे अमेरिकन या जापान ने ही। उसी तरह योग के सिद्धात अध्यात्म की प्रयोगशाला मे परखे जाते हैं और तभी वे सत्य रूप मे सामने आते हैं। यह मानना नही -- जानना है। योग सत्य का प्रयोग है।

अध्यात्म मे प्राणधारा का मूल आधार सात चक्रो को माना गया है। ये सभी चक्र मस्तिष्क से लेकर रीढ की हड्डी के भीतर से जाने वाली नाड़ियो से होते हुए रीढ की हड्डी के अन्तिम छोर तक फैले हुए हैं। नई खोजो से पता चलता है कि पूरे शरीर मे अनेको चेतना-केन्द्र फैले हुए है फिर भी चक्रो, विज्ञान की अन्त स्रावी ग्रथियो और प्रेक्षाध्यान के चैतन्य-केन्द्रो की तुलना करने पर लगता है कि ये भिन्न नाम होते हुए भी एक ही प्रयोगसिद्ध सत्य का उद्घाटन करने वाले हैं।

आसनो के जरिए इन चैतन्य-केन्द्रो को प्रभावित करके शक्ति का

ऊर्ध्वारोहण किया जा सकता है। शक्ति का ऊर्ध्वारोहण होने से व्यक्ति के जीवन के लक्ष्य और प्रेरणाएं पशु स्तर से ऊपर उठकर सम्यक् ज्ञान, दर्शन से प्रभावित होती हैं। सम्यक् ज्ञान, दर्शन से प्रभावित व्यक्ति अपने लक्ष्य की ओर जब कदम बढ़ाता है तो उसका चरित्र भी तदनुरूप हो जाता है। उसकी संकल्पशक्ति दृढ़ हो जाती है।

इसी साधना-क्रम को अष्टाग योग ने ८ (आठ) अगो मे विभाजित किया, जिसमे यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार ये पाच बहिरग योग कहलाते हैं और धारणा, ध्यान और समाधि—ये तीन अन्तरग योग हैं। इसी तरह का मिलता-जुलता क्रम जैन ध्यान-पद्धति मे भी है जैसे अनशन, अवमोदर्य, वृत्ति-सक्षेप, रस-परित्याग, कायक्लेश, प्रतिसंलीनता—ये छह बहिरंग हैं। प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग—ये छः अन्तरग हैं। यम-नियमो को जैन योग मे सवर के अन्तर्गत और उपर्युक्त १२ को निर्जरा के अंतर्गत लिया है। उद्देश्य दोनो का ही कैवल्य प्राप्त करना है। इस तरह हम स्पष्ट नतीजे पर पहुचते हैं कि जहां योग और ध्यान साधना का सम्बन्ध है, वहां कही भी प्रयोगसिद्ध सच्चाई ही मान्य है।

५.२.३ आसन : प्रयोजन

आसन केवल शारीरिक प्रक्रिया मात्र नही है, उसमे अध्यात्म निर्माण के बीज छिपे हैं। आसन शब्द का अनेक अर्थो मे प्रयोग होता है। आस् धातु बैठने के लिए प्रयुक्त होती है। पतंजलि के अनुसार—'स्थिर सुखमासनम्'—जिससे स्थिरता और सुखपूर्वक ठहरा जा सके, वह आसन है। विधिपूर्वक लेटना, बैठना, खडे रहना—तीनो मुद्राओ मे आसन किए जा सकते हैं। आसन शरीर की क्रियाओ को व्यवस्थित ही नही बनाता, अपितु वाक् और मन को भी स्थिरता प्रदान करता है। वर्तमान युग मे आसनो की उपयोगिता निर्विवाद सिद्ध है।

प्रेक्षा स्वरूप उपलब्धि की प्रक्रिया है। व्यक्ति मूढ़ता से बहिर्यात्रा करने लगता है। बहिर्मुखी वृत्ति ही व्यक्ति को स्वरूप से दूर ले जाती है। स्वरूप की दूरी आधि-व्याधि और असमाधि का कारण बनती है। प्रेक्षा-साधना सर्वांगीण पद्धति है। इसमे जहां अध्यात्म के शिखरो की चर्चा है, वहां शरीर-शुद्धि, श्वास और प्राण-शुद्धि के लिए आसन और प्राणायाम का भी विधिवत् प्रशिक्षण दिया जाता है।

आसन के लिए प्रयुक्त होने वाले वस्त्र आदि को भी आसन की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। ये आसन सूत, कुशा, तिनके, ऊन आदि के होते हैं। ऊन का आसन श्रेष्ठ माना जाता है। आसन शरीर की सहज स्थिति के लिए हैं। हठयोग मे आसनो के असंख्य प्रकार बताए गए हैं। जीव योनियो

के समान आसनो की सख्या भी चौरासी लाख हैं। इनमे से चौरासी आसनो की प्रधानता रही है। समय, क्षेत्र एव शारीरिक बनावट को ध्यान मे रखते हुए प्रेक्षाध्यान की दृष्टि से कुछ चुने हुए आसनो की यहा चर्चा की गई है। शरीर की स्थिति को जैन परम्परा मे "कायगुप्ति" कहा गया है।

आसन और शक्ति-संवर्धन

सस्कार-शुद्धि के साथ सयम एव शक्ति-सवर्धन के लिए आसन का अभ्यास किया जाता है। स्थिति एव गति आसन के दो स्वरूप हैं। स्थिति गुप्ति और गति समिति है इससे सस्कार का विलय होता है। ध्यान के लिए "स्थित आसन" उपयोगी है। इसमे लम्बे समय तक ठहरा जा सकता है। पद्मासन, वज्रासन, सिद्धासन एव सुखासन ये ध्यान-आसन हैं। स्थित-आसन से मासपेशियो को विश्राम मिलता है। विश्राम की यह स्थिति कायोत्सर्ग का एक प्रकार है।

गति वाले आसनो मे मासपेशियो की पारस्परिक गति से शरीर को सतुलित बनाया जाता है। ये पेशिया जोडो को व्यवस्थित बनाती हैं तथा गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध सतुलन बनाए रखती है। इससे शक्ति का सवर्धन होता है।

आसन-विजय साधना का आधार है। उसके अभाव मे व्यक्ति दीर्घ ध्यान, कायोत्सर्ग, भावना-योग आदि का अभ्यास कैसे कर सकता है? आसनो का प्रयोग केवल शारीरिक ही नही, आध्यात्मिक भी है। आसनो के अभ्यास से न केवल कायसयम, अपितु वाक् और मन भी सयमित होता है। इससे शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक तनावमुक्ति सहज होती है। आसनो के नियमित अभ्यास से काया अन्तरग यात्रा के उपयुक्त बन जाती है। बाह्यक्लेश एव परीषह-विजय की क्षमता उत्पन्न होने लगती है।

आसन और स्वास्थ्य

आसन शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शाति एव आध्यात्मिक विकास के लिए उपयुक्त भूमिका का निर्माण करता है। आसन अस्वस्थ व्यक्ति के लिए उपयोगी हैं, तो स्वस्थ व्यक्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान युग मे कार्याधिक्य एव व्यस्तता से मनुष्य अपने जीवन की उपयोगी एव आवश्यक क्रियाओ का भी परित्याग कर देता है, जिससे न केवल वह स्वास्थ्य से हाथ धोता है, अपितु जीवन-विज्ञान के मार्ग को अवरुद्ध कर देता है।

आसन से मानसिक प्रसन्नता के साथ-साथ शरीर के अवयवो पर सीधा असर होता है। सधि-स्थल, पक्वाशय, यकृत, फेफडे, हृदय, मस्तिष्क आदि सम्यक्तया अपना कार्य करने लगते हैं।

आसन से मासपेशिया सुदृढ एव सुडौल बनती हैं, जिससे पेट एव

कमर का मोटापा दूर होता है। चर्बी भी आसन से स्वय कम होने लगती है। आसन करने से शरीर के सभी अग एव कोशिकाएं सक्रिय हो जाती हैं, जिससे रोग-प्रतिकार की क्षमता एव स्वास्थ्य उपलब्ध होता है।

स्नायु-मण्डल को शक्ति-सम्पन्न एव सक्रिय करने के लिए आसन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है। स्नायुओ मे क्रियावाहिनी और ज्ञानवाहिनी दोनो प्रकार की नाडिया होती हैं। आसन से उन पर विशेष प्रकार का दबाव पडता है, जिससे उनका सकोच-विकोच होता है। इससे वे पुष्ट एव सक्रिय बनती हैं। उनकी सक्रियता एव क्रियाशीलता शक्ति उत्पन्न करती है। स्नायु-मण्डल मस्तक से लेकर पाव के अगुष्ठ तक फैले हुए है। आसन से समस्त स्नायु प्रभावित होते है, अत स्वास्थ्य-साधना की दृष्टि से आसन की उपयोगिता से इनकार नही किया जा सकता।

साधना की दृष्टि से जोडो मे लचीलापन अत्यन्त अपेक्षित है। सुषुम्ना शीर्ष तथा सुषुम्ना के जोडो मे लचीलापन होने से उनके अन्दर से प्रवाहित होने वाले शक्ति-स्रोतो को सक्रिय किया जा सकता है। स्वास्थ्य एव साधना की दृष्टि से सुषुम्ना (स्पाइनलकोर्ड) का स्वस्थ होना अत्यन्त आवश्यक है। आसनो से सुषुम्ना पर सीधा असर होता है।

आसन की गतिविधि से पाचन-सस्थान सक्रिय बनता है। उसके रासायनिक द्रव्यो का समुचित स्राव होता है।

आसनो का असर रक्त-सचार पर भी होता है। आसन से रक्त-शिराओ की गति मे सकोच-विकोच होता है, जिससे उनमे रक्त-सचार सम्यक्तया होने लगता है। साथ ही प्रत्येक अग का पोषण एव अशुद्ध तत्त्व का परिहार होता है।

बौद्धिक विकास के साथ भौतिक वातावरण ने व्यक्ति को आज तनावपूर्ण स्थिति मे पहुचा दिया है। रक्तचाप एव रक्तमदता की बीमारी प्रतिदिन बढती जा रही है। इस पर नियन्त्रण के लिए योगासन अचूक साधन है। कायोत्सर्ग के रूप मे खोजी गई विधि जहा व्यक्ति को तनावमुक्त करती है, वहा रक्तचाप एव उसकी मदता पर भी नियन्त्रण करती है।

आसनो मे श्वास-प्रश्वास का भी विशेष प्रयोग किया जाता है जिससे फेफडो की क्रिया पूरी होती है। उसका परिणाम हृदय और रक्त-शोधन पर पडता है।

आसन का हमारी अन्त स्रावी ग्रन्थियो (एण्डोक्राइनग्लैण्ड्स) पर भी प्रभाव पडता है, जो शरीर एव भावनाओ का नियन्त्रण करती है। इन ग्रथियो से एक विशेष प्रकार का स्राव होता है, जिसे हार्मोन कहते है। इससे शरीर, मन एव चैतन्य-केन्द्रो के विकास मे सहयोग मिलता है। शरीर-विज्ञान ने ग्रंथियों के कार्य एवं प्रवृत्तियो पर सूक्ष्मता से अनुसधान किया है। उससे ज्ञात

हुआ है कि कौन-कौन सी ग्रन्थिया किन-किन भावो का कार्य एव नियन्त्रण करती हैं। उनको नियन्त्रित करने के लिए आसन, बंध एव यौगिक क्रियाओ का प्रयोग किया जाता है।

आसन-विजय

आसन से शरीर की सुघडता और सौदर्य मे अभिवृद्धि होती है। साथ ही मानसिक शाति और निश्चिन्त जीवन की उपलब्धि होती है। आसन करने का उद्देश्य है—शरीर के यत्र को साधना के अनुरूप बनाना। शरीर का प्रत्येक अवयव सक्रिय एव स्वस्थ बने, यह स्वास्थ्य और साधना दोनो दृष्टियो से अपेक्षित है। यह निर्विवाद है कि काया की क्षमता के अभाव से वाक् और मन शीघ्र उत्तेजित हो जाते हैं। वाक् और मन पर सयम से पूर्व काय-सयम आवश्यक है। उसके लिए आसन प्रक्रिया सम्यग् अनुष्ठान है। आचार्य कुन्द-कुन्द ने तो स्पष्टत उद्घोषित किया है—"जिन शासन को जानने के लिए आहार-विजय के साथ आसन-विजय को जानना आवश्यक है।"

योगासन और व्यायाम मे मौलिक अन्तर है। व्यायाम एक्सरसाइज अथवा बॉडी-बिल्डिंग से शरीर की मासपेशिया एव कुछ अवयव ही पुष्ट बनते हैं। उनकी पुष्टता एक बार मासपेशियो के उभार के रूप मे सामने आती है, पर अन्त मे उनमे कडापन आने लगता है। उनको छोड देने से मासपेशिया ढीली पड जाती हैं और वे असुन्दर दिखाई देने लगती है। दूसरे प्रकार के व्यायाम, कुश्ती, दौड, बैठकें एक बार तो शरीर की मासपेशियो आदि को प्रभावित करते हैं, किन्तु स्थायित्व की दृष्टि से उनके भी अन्तिम परिणाम सुन्दर नही आते।

योगासन योगियो द्वारा खोजा गया अनूठा विज्ञान है। योगासन हाथ-पावो को ऊचा-नीचा करना मात्र ही नही है, अपितु उसके पीछे पूरा विज्ञान है। कौन-सा आसन किस अवयव पर क्या प्रभाव डालता है, वह प्रभाव क्यो और किसलिए होता है, इन सबकी प्रायोगिक व्याख्याए आज शोधकर्ताओ के पास उपलब्ध है।

आसन की श्रेणियां

१ शयन स्थान—लेटकर किए जाने वाले आसन।

२ निषीदन स्थान - बैठकर किए जाने वाले आसन।

३ ऊर्ध्व स्थान—खडे होकर किए जाने वाले आसन।

शरीर को विधिवत् स्थिर बनाकर रखना स्थान (आसन) कहलाता है। यह कायगुप्ति है। कायगुप्ति शरीर का सयम है। यह तीनों प्रकार से हो सकता है। लेटकर, बैठकर और खडे होकर -तीनो प्रकार से आसन को सिद्ध किया जा सकता है। आसन की सिद्धि सरलता से प्राप्त की जा सके,

इसलिए सर्वप्रथम शयन-स्थान से आसन का प्रारम्भ करना शरीर-विज्ञान की दृष्टि से उपयोगी है। बच्चा प्रारम्भ से लेटकर क्रिया करता है, फिर बैठता है और फिर खडे होकर अपनी यात्रा करता है। अत आसन का क्रम भी शयन, निषीदन और ऊर्ध्व-स्थिति क्रम से रखा गया है। शयन स्थान के अतर्गत आसनो का विवरण दिया गया है। लेटने पर जो-जो अग प्रभावित होते हैं, उनको लक्षित कर शयन-आसनो का चुनाव किया गया है। शयन-स्थान पीठ के बल और पेट एव सीने के बल लेटकर किए जाते हैं, वे निम्नानुसार हैं :

शयन स्थान :—लेटकर किए जाने वाले आसन

१. कायोत्सर्ग
२ उत्तानपादासन
३. पवनमुक्तासन
४ भूजंगासन
५ शलभासन्
६ धनुरासन
७ मकरासन
८. सर्वांगासन
९. हलासन
१०. मत्स्यासन
११. हृदयस्तम्भासन
१२ नौकासन
१३. सुप्त वज्रासन,

निषीदन स्थान .—बैठकर किए जाने वाले आसन

१. सुखासन
२ स्वस्तिकासन
३. पद्मासन
४ योगमुद्रा
५. वद्ध पद्मासन
६. तुलासन
७ उत्थित पद्मासन
८ उत्कटुकासन
९. गोदुहासन
१०. गोमुखासन
११. जानुशिरासन
१२ पश्चिमोत्तानासन
१३ शशाकासन
१४. अर्धमत्स्येन्द्रासन
१५ उष्ट्रासन
१६. सिंहासन
१७ ब्रह्मचर्यासन
१८ सिद्धामन
१९ हलासन
२० कुक्कुटासन

ऊर्ध्व स्थान :—खडे होकर किए जाने वाले आसन

१. समपादासन
२. ताड़ासन
३. इष्ट वन्दन
४. त्रिकोणासन
५. मध्यपादशिरासन
६. महावीरासन
७. हस्तिशुण्डिकासन
८ उड्डियान
९ गरुडासन
१०. नटराजासन
११. पाद-हस्तासन

विशिष्ट आसन[1]

१ शीर्षासन २ अर्ध शखप्रक्षालन
३ मयूरासन ४ चक्रासन

आवश्यक निषेध

१ जिन व्यक्तियो के कान बहते हो, नेत्र-ताराए कमजोर हो एव हृदय दुर्बल हो, उन्हे शीर्षासन नही करना चाहिए।
२ उदरीय अवयवो से पीडा एव तिल्ली मे अभिवृद्धि वाले व्यक्तियो को भुजगासन, शलभासन, धनुरासन नहीं करने चाहिए।
३ कोष्ठ-बद्धता (कब्ज) से पीडित व्यक्ति को योगमुद्रा पश्चिमोत्तानासन अधिक समय तक नही करना चाहिए।
४ हृदय दौर्बल्य मे साधारणतया उड्डीयान और नौली क्रिया नही करनी चाहिए।
५ फेफड़े के दौर्बल्य मे उज्जाई प्राणायाम और कुम्भक न किया जाए।
६ जिन व्यक्तियो के उच्च रक्तचाप रहता हो, उन्हे कठोर यौगिक अभ्यास नही करना चाहिए।

मुद्रा

'मुद्रा' शब्द आते ही जो सामान्य बोध होता है, वह करेंसी के रूप मे होता है। जब विनिमय के लिए मुद्रण की व्यवस्था की गई, तब से सिक्को को मुद्रा कहना प्रारम्भ हुआ होगा। ऐसे सामान्यत टकण भी मुद्रण का एक प्रकार है। भारतीय परम्परा मे प्रत्येक शब्द के साथ उसकी आत्मा पर विचार किया गया है। शब्द यद्यपि एक सकेत होता है, फिर भी वह उसके निकटतम भाव का स्पर्श करता है। 'मुद्रा' शब्द साधना-पद्धति मे विशिष्ट आकृति के लिए प्रयुक्त होता है। आकृति को सस्थान, पोज (Pose), मुद्रा भी कहा जाता है। शरीर की भिन्न-भिन्न आकृतिया हमे भिन्न-भिन्न भावो को समझने का अवकाश देती है। मुद्रा ऐसे तो शरीर के ऊपर अभिव्यक्त होने वाली समस्त आकृतियो को ही कहा जाता है, किन्तु हमारी यह विवशता है कि हम समस्त भावो को पकड नहीं पाते हैं, इसलिए शरीर पर स्थूल रूप से निर्मित होने वाली विशिष्ट आकृतियो को मुद्रा कहते है।

मुद्रा : अन्तर की अभिव्यक्ति

हमारे अन्तर्भाव के साथ शरीर की विभिन्न आकृतिया स्वत निर्मित

---

१. आसनो की विधि और लाभ के लिए देखे प्रेक्षाध्यान : आसन प्राणायाम।

होने लगती हैं। हमारा अन्तर् और बाह्य एक दूसरे मे इतना सम्बन्धित है कि उस पर घटित होने वाली घटना बाहर से अन्दर प्रतिबिम्बित हो जाती है। अन्तर् का प्रकम्पन बाहर आकृति ले लेता है। अन्तर् मे उठने वाले आवेग प्रतिक्षण शरीर पर घटित होते हैं और शरीर पर घटने वाली घटना अन्तर् के प्रकम्पनो को प्रभावित करती है, इसलिए भी प्रतिक्षण हमारी मुद्रा मे परिवर्तन होता रहता है। उसे तेज गति वाला 'मूविंग केमरा' भी फिल्मा नही सकता। वह भी अनेक उठने वाली तरगो को स्थूल अवस्था तक पहुचाने पर ही अकित कर पाता हैं। फिल्म पर अभिव्यक्त होने वाली पूरी आकृति कई तस्वीरो का जोड़ है। उसी प्रकार अन्तर् से उठने वाली भावना के प्रकम्पनो का जोड़, एक विशिष्ट आकृति का निर्माण करता है।

मुद्रा की वैज्ञानिकता

भारतीय मनीषियो ने ध्यान के गहन प्रयोगो से गुजर कर जो अनुभूतिया पाईं, उनको बाह्य जगत् मे स्थूल रूप से अभिव्यक्त किया। उनकी खोज दो छोरो पर थी, जहा उन्हे चैतन्य की गहराई मे उतरकर निराकार का अनुभव कराना पडता था। वहा उस गहन और सूक्ष्म को साकार की ओर सकेत देना पड़ता था। निराकार से उठने वाले प्रकम्पन साकार पर एक जैसे प्रतिबिम्बत नही होते, तब साकार (शरीर) पर निर्मित की हुई आकृति पूर्णरूप से निराकार का प्रतिनिधित्व कैसे कर पाएगी ? धर्म के सम्मुख सबसे बड़ी कठिनाई है, तो यही है कि अपनी अनुभूतियो को हस्तान्तरित अथवा यंत्रप्रदर्शित नही कर सकता। लेकिन उसके अस्तित्व को ठुकराया भी नही जा सकता, क्योकि जो है, उसको कितने तर्क से अस्वीकार करे, वह वैसा का वैसा उपस्थित रहता है। हमारे शरीर पर जो कुछ मुद्रित होता है, वह केवल मानसिक एव शरीरिक घटना ही नही है, उनके साथ-साथ आत्मिक (आन्तरिक) भी हैं। आत्मा की बातें आते ही कुछ लोग चौंकते हैं, इससे क्या ? हम क्या शरीर ही हैं ? कुछ कामनाए और भावनाए ही हैं ? इतना मान लेने से प्रश्न का समाधान नही होता, विज्ञान पदार्थ को तोड़कर परमाणु पर पहुंचा, तब वह एक आश्चर्य मे पड़ा। परमाणु जब घन है तब वह उनकी पकड़ मे है और जब वह तरगित होता है तब वह है तो अवश्य, किन्तु शक्ति रूप में है। तब हम उसे इनकार कैसे करें ?

बाह्य-मुद्रा से अन्तर् का द्वार

बाह्य-मुद्रा स्थूल है, वह हमारी पकड़ मे आती है। उसके सहारे ही हम अन्तर् यात्रा के लिए उतर सकते हैं। अन्तर से उठने वाले क्रोध के आवेश के साथ हाथ की मुद्रा एक विशेष प्रकार का आकार ले लेती है। सामान्य अवस्था मे जब वैसी ही मुद्रा का प्रयोग करते हैं, तब शरीर और मन

पर कुछ तनाव अवश्य प्रकट हो जाता है। प्रेम और विनय से भरा चित्त भिन्न मुद्रा मे आ जाता है। उसी मुद्रा का पुन प्रयोग करने से चित्त प्रेम और विनय से पूर्ण बनता है। बाह्य–मुद्रा के निर्माण से चित्त की एक विशेष स्थिति निर्मित हो जाती है। इस विशेष स्थिति से भावना मे प्रगाढता आती है, भावना से प्रभावित चित्त अन्तर्-लोक मे प्रविष्ट हो जाता है। वीतराग-मुद्रा, ज्ञान-मुद्रा, ब्रह्म-मुद्रा, कायोत्सर्ग-मुद्रा, महा-मुद्रा, सर्वेन्द्रिय-सयम-मुद्रा, अनिमेष-मुद्रा आदि मुद्राए अन्तर् को समलयता मे लाने के द्वार हैं।

५.३.०. कायोत्सर्ग

५ ३.१. वैज्ञानिक दृष्टिकोण

दबाव की कार्य-पद्धति

कार्यत्सर्ग तनाव-विसर्जन की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को सीखना स्वस्थ रहने के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बोधपाठ है। कायोत्सर्ग का अभ्यास दबाव द्वारा उत्पन्न हानिकारक प्रभावो को निष्फल करने के लिए किया जाता है। 'कायोत्सर्ग' क्या है ? इसे समझने के लिए पहले समझना आवश्यक है कि 'दबाव' क्या है ?' 'दबाव' शब्द भौतिक शास्त्र का शब्द है, जो पदार्थ के किसी भाग पर पडने वाले चाप या दाब का द्योतक है। जब किसी भी पदार्थ पर पडने वाले दाव से पदार्थ के आकार मे परिवर्तन हो जाता है, तो उसे तनाव या टान कहा जाता है। इस प्रकार प्रस्तुत संदर्भ मे तनाव का अर्थ होगा—व्यक्ति के सामान्य सुख-चैन पूर्ण जीवन मे पैदा होने वाली गडबडी यानी बेचैनी। जो भी परिस्थिति हमारी सामान्य जीवन-धारा को अस्त-व्यस्त कर दे, उसे 'तनाव पैदा करने वाली' परिस्थिति कहा जाता है। 'दबाव' विषयक अन्तर्राष्ट्रीय अधिकृत विद्वान डॉ० हान्स सेल्ये (Hans Selye) 'दबाव' की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—"शरीर की टूट-फूट की रफ्तार को दबाव कहते हैं।" उनके अनुसार–सर्दी-गर्मी, गुस्सा, मादक वस्तुओ का सेवन, उत्तेजना, दर्द, शोक और हर्ष भी—ये सारे हमारे 'दबाव-तत्र' को समान रूप से सक्रिय बनाते हैं। आधुनिक मनुष्य के मानस मे पैदा होने वाले ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा, घृणा या भय के भाव, सत्ता और सपत्ति के लिए सघर्ष, लालसाए और वहम भी 'दबाव-तत्र को प्रवर्तित कर देते है। जब कभी इस प्रकार की तनावोत्पादक परिस्थिति किसी व्यक्ति के सामने उपस्थित होती है, तुरन्त ही एक आन्तरिक तन्त्र स्वत ही सक्रिय हो उठता है। इस तन्त्र मे क्रमश शरीर के निम्नलिखित हिस्से सक्रिय रूप से भाग लेते हैं—

(क) हाइपोथेलेमस (अवचेतक)—यह नाडी-तन्त्र और ग्रन्थि-तन्त्र का सधि-स्थल है। यह हमारे मस्तिष्क का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग है, जो

सामान्य रूप से चेतन मन के द्वारा जिन क्रियाओ का नियन्त्रण नही होता उन सभी क्रियाओ का सयोजन करता है।

(ख) पीयूष ग्रन्थि (पिच्यूटरी ग्लैण्ड)—यह अन्त स्रावी ग्रन्थि-तन्त्र की प्रधान ग्रन्थि है, क्योकि यह ग्रन्थि अन्य ग्रन्थियो का नियमन करती है।

(ग) एड्रीनल (अधिवृक्क) ग्रन्थिया—ये एड्रीनालीन (एपिनेफ्रीन) एव अन्य हार्मोनो का स्राव करती हैं, जिनसे व्यक्ति तनाव-युक्त एव सावधान होता है।

(घ) स्वायत्त नाडी सस्थान का अनुकम्पी विभाग—यह विपत्ति की स्थिति मे व्यक्ति को आक्रमण के लिए या भागने के लिए अन्तिम रूप से तैयार करता है।

शारीरिक स्थितियां

उपरोक्त तन्त्र के सयुक्त क्रियाकलाप के द्वारा शरीर के भीतर घटित होने वाली शारीरिक स्थिति का क्रम इस प्रकार होगा—

१ पाचन-क्रिया मन्द या बिलकुल स्थगित हो जाती है।

२. लार-ग्रथियो के कार्य-स्थगन से मुह सूख जाता है।

३ चयापचय की क्रिया मे तेजी आ जाती है।

४ श्वास तेजी से चलने लगता है तथा हाफ चढ जाती है।

५ यकृत द्वारा सगृहीत शर्करा को अतिरिक्त रूप से रक्त-प्रवाह मे छोड़ा जाती है, जिसके माध्यम से उसे हाथ-पैर की मासपेशियो को पहुंचाया जाता है।

६ शरीर के जिन भागो को अधिक रक्त की अपेक्षा हो, वहा तक उसे पहुचाने के लिए हृदय की धडकन बढ जाती है।

७. रक्त-चाप बढ जाता है।

इन सारे परिवर्तनो के अलावा और भी अनेक जटिल परिवर्तन आते हैं।

इन परिवर्तनो के द्वारा शरीर मे विद्युत्-रासायनिक एवं स्रावो (हार्मोनो) की ऊर्जा अत्यधिक मात्रा मे पैदा होती है, ताकि हम अपनी क्रियाओ को त्वरित बना सकें। पर यदि कुछ करने की आवश्यकता न हो तो वह अतिरिक्त ऊर्जा मासपेशियो मे "तनाव" के रूप मे प्रतिबद्ध हो जाती है।

अनुकम्पी और परानुकम्पी संस्थान

सकट की स्थिति समाप्त होने पर तनी हुई मासपेशियो को शिथिल, सामान्य प्रवृत्तियो को पुन चालू तथा शातिपूर्ण स्थिति को पुन स्थापित करने आदि का दायित्व स्वत -चालित नाडी-तन्त्र के दूसरे विभाग—परानुकम्पी सस्थान पर है।

यद्यपि अनुकपी और परानुकपी सस्थान का कार्य एक-दूसरे से विपरीत जैसा दिखाइ देता है, फिर भी वस्तुत॰ ये एक-दूसरे के साथ गहरा ताल मेल विठाकर कार्य करते है। परानुकपी सस्थान का उद्देश्य है —अनुकपी सस्थान के कार्य को सतुलित करना। तदनुसार सकट की स्थिति समाप्त होने पर परानुकपी सस्थान का सक्रिय होना स्वाभाविक है। उसकी सक्रियता अनुकपी सस्थान से निष्पादित उत्तेजना को समाप्त कर, मासपेशियो की रासायनिक स्थिति को पुन सामान्य बनाकर, उन्हे शिथिल करती है। जहा अनुकपी सस्थान आक्रमणशील और उत्तेजनावर्धक है, वहा परानुकपी सस्थान मरम्मत करने वाला और शातिवर्धक है। जव दोनो सस्थानो का कार्य सामान्य स्थिति मे होता है अर्थात दोनो मे सतुलन वना रहता है, तव शरीर मे सक्रियता और विश्राम/शाति का आवर्तन लयबद्ध गति से ठीक उसी प्रकार चलता है जैसा झूमा-झूमी मे होता है, किन्तु जब सतुलन बिगडता है, तब खतरनाक तनाव की स्थिति पैदा हो जाती है। चूकि वर्तमान युगीन जीवन-शैली व्यक्ति को निरन्तर उत्तेजित और सक्रिय बनाए रखती है, मरम्मत करने वाले उपकरण अर्थात् परानुकपी सस्थान को अपना कार्य करने का मौका ही नही मिलता। फलव शरीर की मासपेशिया और स्नायु अपनी सहज, शिथिल/शात अवस्था क्वचित् ही प्राप्त कर सकते है।

तनाव से गड़बड़ी

मनुष्य-सहित सभी प्राणियो मे एक आन्तरिक तत्र विद्यमान होता है और इसकी प्रतिक्रिया, जो प्राणी को सकट-स्थिति का मुकाबला करने या उससे भागने के लिए तैयार करती है, अनैच्छिक रूप से (स्वत) घटित होती है। जव सकट-स्थितिया बार-वार आती हैं, तब 'दवाव तत्र' वार-बार सक्रिय होता हैं। यदि ऊपर वर्णित शारीरिक स्थिति लम्बे समय तक बनी रहे या उसका वार-वार पुनरावर्तन होता रहे, तो गम्भीर गडबडी पैदा हो सकती है। इस प्रकार यदि रक्तचाप लगातार ऊचा वना रहे और रक्तवाहिनियो की सकुचित स्थिति लगातार बनी रहे, तो उसके परिणाम हो सकते हैं—दिल का दौरा या रक्ताघात (मस्तिष्क की रक्त-वाहिनी का फट जाना)। यदि आमाशय आदि पाचन-अवयवो को मिलने वाली रक्त की मात्रा लगातार लम्बे समय तक क्षीण रहे, तो पाचन-क्रिया मे गडबडी हो सकती है। यदि श्वास की गति लम्बे समय तक लगातार तेज बनी रहे, तो उसका परिणाम दमा आदि श्वास की बीमारियो के रूप मे हो सकता है। मासपेशियो के लम्बे समय तक लगातार तनाव से सिर, पीठ, गर्दन और कन्धे मे दर्द और पीडा पैदा हो सकती है। इन गडबडियो के अलावा, निरन्तर तनाव से मानसिक आतक की भावना पैदा हो सकती है, जो अकारण भय के रूप मे होगी। यह

न केवल भयावह होगी, अपितु मनुष्य को बिलकुल हताश बनाने वाली सिद्ध हो सकती है। इसका करण यह है कि लगातार दबाव की स्थिति रहने पर ग्रन्थि-तन्त्र पहले गडबडा जाता है और बाद मे समूचा कार्य करना ही बद कर देता है। एड्रीनलीन का स्राव बन्द हो जाए, तो हृदय की गति मन्द हो जाएगी, रक्तवाहिनिया शिथिल हो जाएगी तथा मस्तिष्क को पहुचने वाला रक्त बन्द हो जाएगा, जिससे बेहोशी आ सकती हैं। इस बात को प्रमाणित करने के लिए अब पर्याप्त प्रमाण प्राप्त हो गए हैं कि अनेक प्रकार के रोगो को पैदा करने मे तनाव काफी बडा निमित्त बनता है। यदि हम तनाव के दुष्परिणमो से बचना चाहते हैं, तो हमे ऐसा उपाय ढूढना होगा, जिससे परानुकपी सस्थान अपना कर्त्तव्य क्षमतापूर्वक निभा सके अर्थात् बिगडे हुए सतुलन को बनाकर सामजस्य को पुनः प्रस्थापित कर सके।

तनाव के कारण

ऊपर की चर्चा से ऐसा निष्कर्ष निकालना ठीक नही होगा कि तनाव एकान्तत. हानिकारक ही है। कुछ होने के लिए या उपलब्ध के लिए कुछ मात्रा मे तनाव आवश्यक भी है। जो हानि होती है, कार्य मे बाधा आती है और थकावट या बीमारिया पैदा होती है, वे तनाव की निरन्तरता के कारण तथा उनकी अत्यधिक मात्रा के कारण है। दीर्घकालीन तनाव या उसकी हानिकारक अतिमात्रा की उत्पत्ति के कारणो मे एक कारण है—व्यक्ति की जीवन-शैली मे अचानक घटित होने वाला परिवर्तन। डॉ० होम्स(Holmes) और डॉ० आर० राहे (Rahe) ने जीवन-शैली के परिवर्तनो का अकीकरण किया है—

उनके द्वारा बनाई गई सूची मे दिए गए कुछेक परिवर्तन एव उनके अक इस प्रकार है—

क्र० सं०	घटना	अंक
१.	दम्पति मे से किसी एक की मृत्यु	१००
२.	तलाक	७३
३.	चोट, बीमारी	५३
४	विवाह	५०
५.	कार्य से निष्कासन	४७
६.	सेवा-निवृत्ति	४५
७.	लैंगिक समस्याए	३९
८.	कार्य (व्यवसाय) मे परिवर्तन	२९
९.	जीवन की स्थितियो मे परिवर्तन	२५
१०.	सोने या आहार सबधी आदतो मे परिवर्तन	१६

यह सूची अपने आप मे पूर्ण नही है। इनमे दी गई घटनाएं और उनके

अक भी सभी पर समान रूप से लागू नही होते, फिर भी यदि किसी भी व्यक्ति के किन्ही घटनाओ से ३०० अक प्राप्त होते है, भयकर बीमारी की सभावना हो जाती है। १०० से ऊपर अक आ जाए, तब उपचार के उपायो का सेवन आवश्यक हो जाता है। यह स्पष्ट है कि एक ही परिवर्तन की घटना को झेलना अधिक सरल होगा, किन्तु जीवन इतना सरल नही है। व्यक्ति को अनेक परिवर्तन का युगपत् (एक साथ) सामना करना पडता है, वैसी स्थिति मे कायोत्सर्ग आदि उपचारात्मक उपायो का सेवन अपेक्षित है।

क्या बचने का उपाय है ?

आधुनिक औषध-विज्ञान द्वारा प्रदत्त प्रशामक (ट्रेन्क्वीलाइज़र्स) गोलिया केवल अस्थायी आराम का आभास कराती हैं, पर लम्बे काल मे गोलिया स्वय बीमारी से भी अधिक खतरनाक बन जाती है। तब प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या हमारी वर्तमान युगीन परिस्थितिया और वातावरण के कारण विनाश तक पहुचना ही हमारे भाग्य मे लिखा है या ऐसा कोई रास्ता भी है, जिसके माध्यम से हम अपने आपको कम से कम उस रूप मे परिस्थिति के अनुकूल बना सकते हैं, जिससे कि इस दैनिक दबाव के हानिकारक प्रभावो से बच जाए ?

सौभाग्यत हमारे भीतर एक ऐसी सुरक्षात्मक प्रणाली है, जिसे सक्रिय बनाने पर उस शारीरिक अवस्था का निर्माण किया जाता है, जो "लडो या भागो" वाली प्रतिक्रिया से नितान्त उल्टी स्थिति का सृजन कर सकती है। नोबेल-पुरस्कार विजेता स्वीट्जरलैंड के सुप्रसिद्ध शरीर-वैज्ञानिक डॉ० वालटर मे इस प्रणाली को "ट्रोपोट्रोफिक प्रतिक्रिया" की प्रणाली कहा है और उसे एक सुरक्षात्मक प्रणाली के रूप मे निरूपित करते हुए बताया है कि इससे अधिक दबाव के द्वारा उत्पादित प्रतिक्रियात्मक प्रक्रिया की प्रतिरोधी क्रिया की जा सकती है।

डॉ० हर्बर्ट बेन्शन, एम० डी० ने इसे "तनाव-मुक्ति-प्रक्रिया" कहा है। हम अपने आपको इस प्रक्रिया का प्रशिक्षण दे सकते है और स्वय-सूचन (auto-suggestion) की तकनीक द्वारा अपनी आतरिक सुरक्षात्मक प्रणाली को सक्रिय कर सकते हैं तथा तनाव द्वारा निष्पन्न स्थिति को दूर करने मे सफलता प्राप्त कर सकते हैं, एड्रीनल के अतिरिक्त स्रावो के उत्पादन मे कमी कर सकते हैं और अनुकम्पी सस्थान के दुष्प्रभाव को परानुकम्पी की सक्रियता द्वारा समाप्त कर सकते हैं, अन्ततोगत्वा मासपेशिया शिथिल और तनाव-मुक्त बनेगी और उदरीय कडापन समाप्त हो जाएगा। शिथिलीकरण (कयोत्सर्ग) का नियमित अभ्यास वर्तमान युगीन अनेक कष्टदायक बीमारियो से बचने के लिए रामबाण उपाय है।

तनाव-मुक्ति क्या है ?

तनाव-मुक्ति की साधना (कायोत्सर्ग का प्रयोग) तनाव को समाप्त करने का एकदम सीधा और निर्दोष तरीका है। तनाव-मुक्ति के बिना व्यक्ति न तो शाति प्राप्त कर सकता है, न स्वास्थ्य और न सुख, फिर चाहे व्यक्ति के पास सुखी होने के लिए कितने ही साधन क्यो न हो ? यदि कोई भी व्यक्ति इस साधना को सीख लेता है और प्रतिदिन आधा या पौन घटा नियमित उसका अभ्यास करता है तो किसी भी परिस्थिति मे न केवल तनाव-मुक्त और अनुद्विग्न रह सकता है, अपितु अपनी कार्यक्षमता और गुणवत्ता को बढ़ा सकता है।

कायोत्सर्ग की साधना का सही मूल्याकन करने के लिए हमे मासपेशियो की कार्य-पद्धति की जानकारी होनी चाहिए। हमारी मासपेशिया सबधित स्नायु को उत्तेजना मिलते ही विद्युत वेग से सकुचित होती हैं। हमारी ककाली मासपेशियो के कारण से ही हम इच्छानुसार हलन-चलन कर सकते हैं। हलन-चलन की क्रिया को समझने के लिए मासपेशियो को हम विद्युत्-चुम्बक (electro magnet) के साथ उपमित कर सकते हैं और जो स्नायु (या नाडी) उत्तेजित करता है, वह उस विद्युत् के तार के समान है, जो उसको मस्तिष्क से जोडता है।

नीद के दौरान स्नायुओ मे सामान्य रूप से विद्युत् प्रवाह बद हो जाता है और विद्युत्-चुम्बक प्राय -प्राय: चुम्बकत्व-रहित हो जाता है। केवल कुछ सुरक्षा और जीवन टिकाने वाली क्रियाओ मे प्रवृत्त मांसपेशियो को छोडकर शेष सारी मासपेशिया नीद मे शिथिल हो जाती हैं।

जब कोई व्यक्ति विश्राम की मुद्रा मे होता है, तब भी स्नायुओ मे प्रवाहित होने वाला विद्युत्-प्रवाह बहुत मन्द-सा होता है। इससे मासपेशियो का चुम्बकीकरण भी मन्द होता है और इसलिए वे शात-शिथिल पड़ी रहती हैं।

जब-जब व्यक्ति किसी भी शारीरिक (मानसिक या वाचिक) क्रिया मे प्रवृत्त होता है, तब-तब मस्तिष्क के आदेशानुसार नाडियो मे विद्युत्-प्रवाह को तीव्र कर दिया जाता है, जो विद्युत्-चुम्बको (मासपेशियो) को सक्रिय बना देता है, जिससे मासपेशिया सकुचित की जा सकती हैं। कितने सूक्ष्म क्रियात्मक स्नायुओ (मोटर नर्व्ज) को गति देना है, इसका आधार किए जाने वाले प्रयत्न की तीव्रता पर है।

नींद, विश्राम और क्रियात्मकता—इन तीनो स्थितियो मे से व्यक्ति दिनभर मे कितनी ही बार गुजरता रहता है। पर इन तीन के अतिरिक्त एक चौथी स्थिति और है, जो असामान्य होने पर भी कुछ व्यक्तियो के दैनिक

जीवन मे बार-बार घटित होती है और वह स्थिति है—अतितनाव की। निरन्तर कसे हुए जबडे, तनी हुई भृकुटिया और आमाशय की मासपेशियो का कडापन —ये इस प्रकार की स्थिति के कुछ प्रत्यक्ष चिह्न हैं। इस स्थिति मे हमारे शरीरस्थ विद्युत्-चुम्बको का तीव्र विद्युत्-प्रवाह के कारण अति-चुम्बकीकरण (over-magnetization) हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप हमारी मासपेशियो के दल एक स्थायी सकुचन की स्थिति मे बने रहते हैं, जो कि बहुत बार अनावश्यक होता है। इसके कारण हमारी स्नायविक और मासपेशीय ऊर्जा का एक बहुत बडा हिस्सा व्यर्थ चला जाता है, क्योकि इस स्थिति मे विद्युत् का निरन्तर व्यय होता है। ऊर्जा का व्यय कितनी मात्रा मे होगा, इस बात का आधार क्रियावाही मासपेशियो की सख्या पर है, न कि उनकी लबाई-चौडाई पर या उनकी शक्ति पर। जैसे—चेहरे की एक छोटी-सी मासपेशी को सकुचित करने मे उतनी ही स्नायविक ऊर्जा व्यय होती है, जितनी कि पैर की एक बडी मासपेशी को सक्रिय करने मे होती है। इस प्रकार ऊर्जा का होने वाला समग्र व्यय क्रियावाही ततुओ की सख्या और विद्युत्-वाहको के भीतर चलने वाला विद्युत्-प्रवाह के सामर्थ्य —इन दोनो पर निर्भर है। दूसरी विशेष बात यह है कि जहा हमारे अन्य ऊतको मे प्रतिदिन लाखो और करोडो की सख्या मे निकम्मी और मृत कोशिकाओ का स्थान नई और स्वस्थ कोशिकाए ले लेती हैं, वहा स्नायविक कोशिकाओ को उनके पुरानी या मृत होने पर भी बदला नही जा सकता। ज्यो-ज्यो व्यक्ति की आयु बढती है, स्नायविक कोशिकाओ की सख्या निरन्तर घटती जाती है। यदि किसी भी कारण से हम उन्हे आहत कर देते हैं (उदाहरणार्थ -- मानसिक दबाव के रूप मे उनसे, अधिक कार्य लेने पर ऐसा घटित होता है), तब हम सदा-सदा के लिए उन्हे गवा देते हैं, जो अपने पीछे अपूरणीय क्षति छोड जाती है।

सकल्पपूर्वक यदि सपूर्ण शिथिलीकरण को जागरूकता के साथ-साथ किया जाता है, जिसे कायोत्सर्ग कहा जाता है, तो हम उपरोक्त प्रकार की थकान, क्षति से बच सकते हैं। कायोत्सर्ग के द्वारा मासपेशी रूप विद्युत्-चुम्बको को विद्युत पहुचाने वाले तारो (स्नायुओ) का सबध नीद की अपेक्षा और अधिक क्षमतापूर्वक स्थगित किया जा सकता है। इसके विद्युत् के प्रवाह को करीब-करीब शून्य तक पहुचा कर ऊर्जा के व्यय को न्यूनतम बनाया जा सकता है।

कायोत्सर्ग से तनाव-मुक्ति

अनेक घटो की अव्यवस्थित निद्रा की अपेक्षा आधा घटा के सधे हुए कायोत्सर्ग से व्यक्ति के तनाव और थकान को अधिक भली-भाति दूर किया जा सकता है। कायोत्सर्ग की साधना हमारी सचेतन इच्छा-शक्ति के शरीर

पर पड़ने वाले प्रभाव को व्यक्त करने वाली एक साधना है। हमारी यह इच्छा शक्ति किसी आततायी तानाशाह की तरह हाथ मे चाबुक लेकर अपनी शक्ति के बल पर दूसरो को चलाने वाली नही, अपितु उस स्नेहमयी माता की तरह है जो ममता और धैर्य के द्वारा अपने जिद्दी बच्चे को ठीक करती है। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि कायोत्सर्ग कभी भी बल-प्रयोग, तनातनी या हिंसक भावो से नही, अपितु केवल विनम्र निवेदन-मूलक स्वत -सुझावो से ही सधता है।

स्वयं-सूचन की विलक्षण चिकित्सा-शक्ति

प्राचीन युग मे मनुष्य और पशु दोनो को ऐसी आंतरिक सज्ञाएं उपलब्ध थी, जो अपने आपको स्वस्थ रखने के लिए उन्हे क्या करना है, उस दिशा में मार्गदर्शन करती रहती थी। कालान्तर मे पशुओ मे सज्ञाएं बनी रही, पर मनुष्य ज्यो-ज्यो सभ्यता के क्षेत्र मे आगे बढ़ता गया, त्यो-त्यो अपनी इन नैसर्गिक उपलब्धियों से वंचित होता गया। फिर भी किसी तरह लगभग प्रत्येक गाव या समाज मे इक्के-दुक्के ऐसे व्यक्ति अवश्य मिलते हैं, जो अपनी ऊपर उल्लिखित संज्ञाजन्य उपलब्धियो को पर्याप्त मात्रा मे बचाकर रखते हैं। ऐसे व्यक्तियो को सामान्यत. "उपचारकर्ता" (हीलर) की सज्ञा दी जाती है। छोटे गावो मे "सयाना", "ओझा" "झाडा-झपटा करने वाला" आदि व्यक्तियो के रूप मे हम आज भी ऐसे "उपचार-कर्ताओ" को देख सकते हैं। ऐसे 'महाशयो' को प्राकृतिक उपचार, पथ्य-परहेज, जड़ी-बूटी, हड्डी बैठाना (पहलवानो द्वारा हड्डी की मरम्मत), साधारण शल्य-क्रिया आदि उपचारो के अलावा आस्था-उपचार (फेथ-हीलिंग) की पद्धति का ज्ञान भी था, जिसके द्वारा वे रोगी को शिथिलीकरण करवा कर या सम्मोहित कर सुझाव/निर्देश देते थे। इस प्रकार सुझाव-चिकित्सा अथवा स्वय-सूचन-चिकित्सा-मनोरोग-चिकित्सा प्रणालियो (साइकोथेरापी) मे सर्वाधिक प्राचीन पद्धति है, ऐसा कहा जा सकता है।

प्राचीन काल से अब तक प्राय. सभी सस्कृतियो ने चैतन्य की गहराई के स्तरो को छानबीन करने का प्रयत्न किया है। इस गवेषणा के दौरान जाने-अनजाने शिथिलीकरण/सुझाव-चिकित्सा की यह प्रक्रिया हस्तगत होती रही है। प्रत्येक सस्कृति ने अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार चैतन्य की इन शक्तियो की व्याख्या करने की कोशिश की है। इस विषय मे शोधर्ताओ ने बताया है कि सभी आदिम सस्कृतिया अपनी धार्मिक प्रवृत्ति के रूप मे उपर्युक्त प्रक्रिया को नाना रूपो मे प्रयुक्त करती थी। अब तक के समग्र इतिहास के दौरान यह बात पाई गई कि इन विविध रूपो मे एक प्रबल एकरूपता विद्यमान थी तथा उसका बुनियादी तत्त्व था—शिथिलीकरण और सुझाव (या

सूचन)। इसी तत्त्व को रोगी के उपचार हेतु काम मे लिया जाता था। मिश्र (देश) मे तीन हजार वर्ष पूर्व ऐसी प्रक्रिया के प्रमाण उपलब्ध होते हैं, जिनका अत्यन्त आधुनिक प्रक्रियाओ के साथ अद्‌भुत् सादृश्य सामने आता है।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ 'आस्था-उपचार' मे लोगो का विश्वास क्रमश क्षीण होता गया और अन्त मे लगभग नष्ट हो गया। 'आस्था-उपचार' की वह पद्धति भी जादू-टोना करने वालो या नीम हकीमो के हाथो मे चली गई। मध्य-युग मे 'आस्था-उपचार' की पद्धति पडा-पुरोहितो के हाथो मे चली गई, जो हस्त-स्पर्श, प्रार्थना आदि के माध्यम से श्रद्धालुओ का उपचार करते थे।

आधुनिक युग मे फ्राज मेस्मर नामक आस्ट्रियन डॉक्टर प्रथम व्यक्ति था जिसने व्यवस्थित 'सूचन' के महत्त्व को मान्यता दी और सामूहिक उपचार के लिए उसका प्रयोग किया। इस पद्धति को 'मेस्मरिजम' की सज्ञा दी गई जो विश्व भर मे व्याप्त हो गई और आज तक भी एक या दूसरे रूप मे प्रचलित ही है। ग्रीक भाषा मे नीद के लिए हिप्नोसिस शब्द का उपयोग होता है, जिसका अर्थ सम्मोहन भी होता है। सम्मोहन-विधि के अनेक उपयोग आधुनिक मनश्चिकित्सा के कुछ आधारभूत तत्त्व बन गए हैं। इसका एक महत्त्वपूर्ण सैद्धातिक परिणाम यह है कि 'प्रस्ताव्यता' (सजेस्टिबिलिटी) हमारे प्रतिदिन के व्यवहार का एक प्राकृतिक, स्वस्थ और सामान्य अग है, यह बात स्पष्ट हुई। आजकल अधिकाधिक सख्या मे सामान्य डॉक्टर एव मनश्चिकित्सक सुझाव-चिकित्सा को काम मे लेते हैं।

स्वयं-सूचन

स्वय-सूचन या स्व-सम्मोहन को हम एक विशेष प्रकार की सुझाव-चिकित्सा कह सकते हैं। जिसमे व्यक्ति स्वय अपने सुझावो के द्वारा अपनी चिकित्सा करता है। कुछ शोधकर्ताओ ने सिद्ध कर दिया है कि सभी प्रकार की 'सुझाव-चिकित्सा' वास्तव मे मूलत स्वय-सूचन (या स्व-सम्मोहन) पर ही आधारित है इसमे व्यक्ति अपनी क्षमता का विकास कर अपने आप गहरी शिथिलावस्था जैसी स्थिति मे जा सकता है और उसके माध्यम से वह अपनी थकान, तनाव और सिरदर्द आदि को कम कर सकता है। स्वय-सूचना के प्रयोगो को आम जनता तक पहुचाने का कार्य बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे एमिल कोवे (EmileCoue) नामक फ्रेंच डॉक्टर ने किया। उसके द्वारा प्रदत्त नारे—"दिन दूना और रात चौगुना, बनता मेरा स्वास्थ्य सौ गुना" ने ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त कर लिया।

शिथिलीकरण के प्रयोग के दौरान जो परिवर्तन शरीर मे घटित होते हैं, उन्हे मापा जा सकता है। हाल ही मे किए गए अनुशीलनो से यह पता

चला है कि इन प्रयोगो के परिणाम-स्वरूप निम्नलिखित शारीरिक घटको मे हितकर परिवर्तन घटित होते है—

(१) रक्त का शर्करा-स्तर

(२) रक्त मे श्वेत कणो की सख्या (जो रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति के उत्पादक हैं)।

(३) विद्युत् मस्तिष्कीय लेखाकन (ई. ई जी.)।

स्वय-सूचन के प्रयोग की सफलता का आधार है—शरीर की शिथिल या तनाव-मुक्त और स्थिर अवस्था। जितनी अधिक शिथिलता और स्थिरता, उतनी अधिक सफलता।

कायोत्सर्ग के प्रयोग का आधार है—स्वय-सूचन। इस प्रयोग मे शरीर के प्रत्येक अवयव को स्नेहमय स्वत. सुझावो द्वारा क्रमश शिथिल और तनाव-मुक्त बनाया जाता है।

कायोत्सर्ग के सहायक तत्त्व

स्वस्थ जीवन के लिए कायोत्सर्ग के अतिरिक्त शारीरिक प्रवृत्ति और व्यायाम भी नितान्त आवश्यक है। इससे मासपेशियो मे रक्त-सचार सुचारु रूप से होने मे सहायता मिलती है। हमारी लगभग सभी मांसपेशियो के समूह के अपने-अपने प्रतिद्वन्द्वी होते हैं—एक समूह जब शिथिल होता है, तब दूसरा समूह तन जाता है। यदि एक प्रकार के मासपेशी-समूह को लम्बे समय तक स्थिर-सकुचित (तनी हुई) अवस्था मे रखें तो रक्त-संचार अवरुद्ध होता है, जिससे थकान के कारण शरीर मे पैदा होने वाले रसायन—मुख्यत. दुग्धाम्ल (लेक्टिक एसिड) जमा हो जाता है (जो सामान्य स्थिति मे रक्त-सचार के सुचारु रूप से होने पर वहा से हटा दिया जाता है) और इसी जमा होने वाले रसायनो के कारण ही व्यक्ति को पीडा, कडापन या थकान की अनुभूती होती है। अत. मासपेशियो मे दुग्धाम्ल आदि रासायनो के जमाव को रोकने के लिए उनमे रक्त का सुचारु प्रवाह होना अत्यन्त आवश्यक है।

मासपेशियो के क्रमिक सकोच-विकोच द्वारा किए गए लयबद्ध आसन आदि व्यायाम से रक्त का सचार सुचारु बनता है तथा पीडा, थकान आदि मे कमी होती।

बैठने, खड़े रहने आदि की सही मुद्रा और आसन को मासपेशियो को तनाव-मुक्त रखने की कुंजी कहा जा सकता है। हमारे शरीर को प्रतिक्षण गुरुत्वाकर्षण का प्रतिकार करना पडता है, बैठने, खडे रहने आदि मे आदतन गलत मुद्रा या आसन से मासपेशियो मे सतत् खिचाव पैदा हो सकता है या उनकी सरचना मे विगाड हो सकता है।

सही ढग से खड़े रहने की विधि है—गर्दन और रीढ़ की हड्डी दोनो

सीधी रेखा मे रहनी चाहिए तथा सिर को सतुलित अवस्था मे गर्दन पर टिकाए रखना चाहिए। सिर न तो एक ओर झुका रहे और न आगे की ओर बाहर निकल हुआ हो। उदर का भाग थोडा-सा भीतर की ओर खीचा हुआ हो तथ छाती के भाग को पूरी तरह फूलने मे कोई अवरोध न हो कधे आगे की ओर झुके नही तथा हाथ दोनो ओर मुक्त रूप से लटकते रहे। स्मरण रहे की सही आसन (या मुद्रा) अकडकर सावधान की स्थिति मे स्थित होना नही है, अपितु मासपेशियो को शिथिल अवस्था मे रखते हुए खडे रहना है। इसी प्रकार सही ढग से बैठने मे भी गर्दन या रीढ की हड्डी सीधी रहेगी, बिना अकडन के तनाव-रहित और शिथिल रहेगी। इससे भिन्न प्रकार से बैठने या खडे रहने की आदत से पीठ मे दर्द या शरीर के आकार मे विरूपता आने की सभावना है।

बैठते समय कभी भी सुस्त नही बैठना चाहिए या पीठ को वक्रता युक्त न रखे। टेबल पर कार्य करते समय आगे अधिक झुकने या कूबड निकालकर बैठने की आदत न डाले।

स्वर-यन्त्र का कायोत्सर्ग — मौन

क्या आप यह मान सकते हैं कि एक सार्वजनिक भाषणकर्त्ता को अपनी मासपेशियो से कडी मेहनत करने वाले एक श्रमिक की अपेक्षा अधिक नाडी-तत्रीय ऊर्जा का व्यय करना पडता है ? पर वस्तुत ऐसा होता है। उसका कारण यह है कि नाडी-तत्रीय उर्जा का व्यय कार्य करने के लिए प्रयुक्त मासपेशियो के परिमाण पर आधारित न होकर क्रिया-इकाई (मोटर-यूनिट) की सख्या के अनुपात मे होता है। जितना स्नायविक बल एक बडी मासपेशी वाले अवयव (जैसे पैर) को सचालित करने मे लगता है, उतना या उससे भी अधिक बल एक छोटी मासपेशी वाले अवयव (जैसे चेहरे) को सकुचित-विकुचित करने के लिए लग सकता है। इस प्रकार एक वक्ता जो अपने स्वर-की अनेक छोटी-छोटी मासपेशियो का उपयोग करता है, वह एक श्रमिक की तुलना मे बहुत अधिक ऊर्जा व्यय करता है या एक स्टेनो-टाईपिस्ट लुहार की अपेक्षा अधिक ऊर्जा खर्च करता है। इस दृष्टि से ऊर्जा के अपव्यय को रोकने तथा उसे सगृहीत करने मे मौन एक बहुत ही मूल्यवान् माध्यम है।

जब आप बोलते हैं तो क्या होता है ? आपके मस्तिष्क मे जो चितन निर्मित होता है, उसे वाणी द्वारा व्यक्त करने के लिए पहले उसे व्याकरण और भाषा के नियमानुसार वाक्य मे परिवर्तित किया जाता है। उसके बाद उसे स्वर-यत्र की मासपेशियो की सक्रियता द्वारा ध्वनि के रूप मे परिणत किया जाता है। इस कार्य के लिए स्वर-यत्र की मासपेशियो को आवश्यकतानुसार सकुचन-विकुचन करने मे सही-सही निर्देश दिए जाते हैं और ध्वनि-तरगो को प्रसारित करने के लिए आवश्यक हवा की मात्रा का नियत्रण किया

तालिका ३—कायोत्सर्ग : सिद्धांत और मूलस्रोत

बिन्दु	तथ्य	प्रमाण
प्रयोजन	१. भेद विज्ञान २ शक्ति सुरक्षा ३ स्वभाव परिवर्तन ४ चित्त शुद्धि ५ समस्या-समाधान हेतु ६ मनोकायिक स्वास्थ्य की प्राप्ति।	आव निर्युक्ति १४६६,१४६८, १५५१,१५६८,१४७१,१५५१
आध्यात्मिक स्वरूप	१ अध्यात्म यात्रा का प्रथम सोपान –तनाव मुक्ति की साधना, कायिक ध्यान—कायोत्सर्ग २ स्थिरता एव जागरूकता की प्रक्रिया ३ मृत्युदर्शन की प्रक्रिया ४ भेद विज्ञान की साधना ५. आत्मदर्शन की प्रक्रिया ६ दुख के मूल तक जाने की प्रक्रिया ७ स्थिरता, सहिष्णुता व अभय रूपी त्रिआयामी स्वरूप ८ सहायक तत्व—सही मुद्रा, आसन-व्यायाम व स्वरयत्र का कायोत्सर्ग।	उत्तरज्झयणाणि २६।३८ आव निर्युक्ति १४६०,१४६६, १४८४
वैज्ञानिक स्वरूप	१ शिथिलीकरण की प्रक्रिया २ अनुकम्पी और परानुकम्पी नाडी तत्र के सतुलन की प्रक्रिया ३ मासपेशी मे स्थित अति विद्युत की मात्रा के विसर्जन की प्रक्रिया।	
प्रक्रिया	१ क्रमिक स्वत सूचन काय गुप्ति कायिक स्थिरता का प्रयोग।	उत्तरज्झयणाणि ३०।३७ आव नि १४६८,१४७५, १५१४,१५४४,१५५३,१५५९ दसवेआलिय १०।१३ दसवेआलिय चूलिया २।७
परिणाम	१ शारीरिक-तनावमुक्त [शिथिलता] स्थिरता, रोगप्रतिरोधक शक्ति का विकास, शरीर मे हल्कापन। २ मानसिक—१ स्फूर्ति २ तनाव-मुक्ति ३ एकाग्रता ४. मानसिक सतुलन ५. धृति मे वृद्धि। ३ भावनात्मक – १ उत्तेजना स्तर मे न्यूनता। ४ आध्यात्मिक—१ आत्म बोध २ भेद-विज्ञान ३ ज्ञाता-द्रष्टा भाव का जागरण ४ समता का विकास। ५ व्यावहारिक—१ दृष्टिकोण परिवर्तन, पदार्थ प्रतिबद्धता से मुक्ति	आयारो ४।२८ उत्तरज्झयणाणि २९।१३ आव नि १४७६

जाता है। इसके अतरिक्त जिह्वा, होठ और चेहरे की मासपेशियो को भी समान निर्देश दिए जाते है। इन सब क्रियाओ के लिए अनेक छोटी-छोटी मासपेशियो को काम मे लिया जाता है और इन मासपेशियो को सक्रिय करने के लिए हजारो की सख्या मे क्रियावाही नाडियो के माध्यम से विद्युत् आवेग का उपयोग होता है, जिसके लिए एक निश्चित मात्रा मे ऊर्जा का प्रयोग आवश्यक है। स्थिति तो यह कि यदि एक व्यक्ति को कुछ घटो तक भाषण देना पडे, तो सभवत उसे इतनी अधिक ऊर्जा व्यय करनी पडेगी की व्यक्ति अत्यधिक थक जायेगा। इस प्रकार मौन की साधना से व्यक्ति बहुत बडे ऊर्जा-व्यय से बच सकता है।

केवल इतना ही पर्याप्त नही है कि हम व्यक्त रूप मे बोलना बन्द करे वास्तविक मौन का अर्थ तो यह है कि हम मानसिक रूप से भी बोलने की प्रक्रिया को बन्द करे, क्योकि जहा तक स्नायविक ऊर्जा-व्यय का सम्बन्ध है, इसमे और व्यक्त वाणी मे समान व्यय ही होता है। ऐसा इसलिए होता है कि मानसिन रूप से बोलने मे केवल स्वर-यत्र को छोडकर उन सभी क्रियावाही (मोटर-यूनिटो) का उपयोग होता है, जिनका उपयोग व्यक्त वाणी मे होता है, इसलिए व्यक्त वाणी के सयम के साथ मानसिक वाणी के सयम का प्रयोग भी आवश्यक है, जो स्वर यत्र के शिथिलीकरण (कायोत्सर्ग) से घटित होता है।

५.३.२ आध्यात्मिक दृष्टिकोण (Spiritual Perspective)

तनाव के तीन प्रकार

तनाव तीन प्रकार के है - शारीरिक तनाव, मानसिक तनाव और भावात्मक तनाव। जब आदमी शारीरिक श्रम करते-करते थक जाता है, तब वह विश्राम करता है, पर दो घन्टे सोने से जितना विश्राम मासपेशियो को नही मिलता, उतना विश्राम आधे घटे तक विधिवत् कायोत्सर्ग करने से मिल जाता है। हम शरीर के श्रम को भी जानते है और उस श्रम को मिटाने का उपाय —विश्राम को जानते है।

हम मन का श्रम तो करते हैं, किन्तु उसको विश्राम देना नही जानते। हम चिन्तन करना जानते है, किन्तु अचिंतन की बात नही जानते, चिंतन से मुक्त होना नही जानते। जब हम सोचना प्रारम्भ करते है तब उसको तोडना कठिन हो जाता है। कठिन इसलिए है कि हम अचिंतन की बात नही जानते।

मानसिक तनाव का मुख्य कारण है —अधिक सोचना। सोचने की भी एक बीमारी है। कुछ लोग इस बीमारी से इतने ग्रस्त है कि प्रयोजन हो या न हो, वे निरन्तर कुछ-न-कुछ सोचते ही रहते है। इस मे अपने जीवन की सार्थकता समझते है।

मन को विश्राम देना तभी सभव है, जब हम वर्तमान मे रहना सीख जाए। वर्तमान मे जीने का अर्थ है—मन को विश्राम देना, भार से मुक्त होना, मानसिक तनाव से छुटकारा पाना।

तीसरा है - भावात्मक तनाव। यह बहुत ही जटिल है। यह एक बहुत बड़ी समस्या है। जो वस्तु प्राप्त नही है, उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करना, उसी प्रयत्न मे लगे रहना आर्त्त ध्यान है। प्रिय वस्तु की प्राप्ति तथा मनोज्ञ और मनोनुकूल पदार्थ की उपलब्धि के लिए प्रयत्नशील रहना और अनमोज्ञ, अप्रिय और मन के विपरीत वस्तु से छुटकारा पाने का प्रयत्न करना—भावात्मक तनाव पैदा करता है।

रौद्र ध्यान भी भावात्मक तनाव का कारण बनता है। मन मे सकल्प-विकल्प चलते रहते हैं। रौद्र ध्यान मे कभी हिंसा का भाव पैदा होता है, कभी प्रतिशोध का भाव पैदा होता है। मूल घटना कुछ क्षणो मे होती है, किन्तु प्रतिरोध की भावना वर्षो तक चलती रहती है। मन मे निरन्तर बदला लेने की भावना बनी रहती है। इसी मे सारी शक्ति का व्यय होता है। यही तनाव का कारण है।

आज के युग मे शरीरिक तनाव एक समस्या है। मानसिक तनाव उससे उग्र समस्या है और भावात्मक तनाव सबसे विकट समस्या है। मानसिक तनाव से भी इसके परिणाम बहुत भयकर होते हैं। समस्या से निबटने के लिए प्रेक्षाध्यान का सहारा लिया जाता है। कायोत्सर्ग का द्वार खोला जाता है। प्रेक्षाध्यान के अभ्यास से आर्त्त–रौद्र ध्यान छूट जाता है। उससे उत्पन्न होने वाला तनाव घट जाता है। कायोत्सर्ग तनाव-मुक्त होकर अपने आप मे जीने का साधन है अपने भाव (स्वभाव) मे रहने का उपाय है।

कायोत्सर्ग · कायिक ध्यान

हम मनुष्य हैं। हमारे पास चार गतिशील तत्त्व है—शरीर, श्वास, वाणी और मन। प्रतिक्षण ये प्रकम्पित है। ये नई ऊर्मियो को लेते है और पुरानी ऊर्मियो को छोडते है। हमारा आकाश-मण्डल इन ऊर्मियो से ऊर्मिल है, इनके प्रकम्पनो से प्रकम्पित है। ये प्रकम्पन हमारे जीवन का सचालन करते है। हमारे द्वारा छोडे हुए प्रकम्पन दूसरो को प्रभावित करते है। दूसरो द्वारा छोडे हुए प्रकम्पन हमे प्रभावित करते है। हम सक्रमण का जीवन जीते हैं, जहा हम परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। अप्रभावित कोई नही हैं, पूर्णत स्वतत्र कोई नही है। अप्रभावित स्थिति और स्वतत्रता अप्रकम्पन की दशा मे ही प्राप्त हो सकती है। ध्यान उसका मुख्य साधन है। प्रकम्पन से अप्रकम्पन की ओर जाना ही ध्यान है। शरीर का अप्रकम्पन कायिक ध्यान

कायोत्सर्ग है । श्वास का अप्रकम्पन श्वास-सयम है । वाणी का अप्रकम्पन वाचिक ध्यान है । मन का अप्रकम्पन मानसिक ध्यान है ।

क्या प्रकम्पनो को रोका जा सकता है ?

कोई भी शरीरधारी प्राणी प्रकम्पनो को सर्वथा नही रोक सकता। हमारी शारीरिक चेष्टाओ का आधार पेशी-मडल है । दो प्रकार की पेशिया होती हैं —ऐच्छिक और अनैच्छिक । ऐच्छिक पेशियो को हम अपनी इच्छा के अनुसार गति दे सकते है । अनैच्छिक पेशियो पर हमारी इच्छा का अधिकार नही होता । वे अपनी चेष्टा करने मे स्वायत्त होती हैं । हम जब शरीर को स्थिर करने का प्रयत्न करते हैं, शरीर के प्रकम्पनो को रोकने का प्रयत्न करते हैं, तब हमारा प्रयत्न ऐच्छिक पेशियो की चेष्टाओ को रोकने का ही होता है । हाथ, पैर आदि को गति देना हमारी इच्छा के अधीन है, इसलिए जब हम ध्यान करना चाहते हैं, सबसे पहले हाथ, पैर आदि को किसी विशेष मुद्रा मे स्थापित कर उनकी गति को स्थगित कर देते हैं । यह कायिक ध्यान मानसिक ध्यान की मुद्रा हो जाती है । हृदय, फुफ्फुस आमाशय, यकृत और आते —इन अवयवो की चेष्टा हमारी इच्छा के अधीन नही है, इसलिए हम ध्यान की स्थिर मुद्रा मे बैठे होते हैं, तब भी इनका प्रकम्पन चालू रहता है । मस्तिक और स्व-सचालित स्नायु-मडल की क्रिया भी चालू रहती है, इसलिए शरीर को स्थिर और मन को एक ध्येय पर केन्द्रित करने पर भी इद्रियो के अनुभव, सुख-दु ख, सर्दी-गर्मी आदि की सवेदना होती रहती है । यह ध्यान की पूर्व अवस्था है ।

शिथिलीकरण . मृत्यु की प्रक्रिया

कायोत्सर्ग मृत्यु की प्रक्रिया है । इसमे दो बातें घटित होती हैं—शरीर इतना शिथिल हो जाता है कि उसमे कोई ऐच्छिक (voluntary) प्रवृत्ति नही होती । श्वास इतना मन्द कि उसके स्पन्दन अत्यन्त हल्के हो जाते हैं । लगता है श्वास बन्द हो गया है । जब किसी व्यक्ति को जीवित होते हुए भी मृत होने की अनुभूति होती है, तब कायोत्सर्ग घटित होता है । इसे अन्य ध्यान पद्धतियो मे शवासन के रूप मे भी अभ्यास करवाया जाता है ।

भेद-विज्ञान की साधना

कायोत्सर्ग भेद-विज्ञान की साधना है—शरीर और चैतन्य का भेद, आकाक्षा और चैतन्य का भेद, प्रमाद और चैतन्य का भेद, उत्तेजना और चैतन्य का भेद । शरीर, इच्छा, नीद, प्रमाद और आवेग से भिन्न जो है, वह चैतन्य है ।

कायोत्सर्ग मे सबसे पहले होगा—ऐच्छिक सचालनो (voluntary

movements) का सयम—हाथो का सयम, पैर का सयम, वाणी का सयम और इद्रियो का सयम।

जब तक ऐच्छिक सचलनो को सपूर्ण रूप से सुसयमित नही किया जाएगा, तब तक कायोत्सर्ग प्रारभ नही हो सकता। शरीर की स्थूल (ऐच्छिक सचलनो) चचलता को समाप्त करने के बाद सूक्ष्म क्रियाओ की चचलता को मिटाना होगा। शरीर की सारी चचलता प्राण-ऊर्जा और मन की चचलता है। यदि प्राण की धारा और मन की धारा चैतन्य की ओर प्रवाहित होते लग जाती है, तो शरीर शान्त हो जाता है, क्योकि चचलता पैदा करने वाली प्राण की ऊर्जा और मन की गति उसे प्राप्त नही हो रही है। जब शरीर शात और स्थिर हो जाता है, तब उसका उत्सर्ग हो जाता है और पूरा कायोत्सर्ग सधता है।

विसर्जन : आत्म दर्शन की प्रक्रिया

शरीर का शिथिलीकरण ही विसर्जन नही है। विसर्जन का अर्थ है—शरीर और चैतन्य के पृथक्त्व का स्पष्ट अनुभव। यह लगने लगे कि शरीर भिन्न है और चैतन्य भिन्न है -पिजडा भिन्न है और पछी पिजडे से भिन्न है—मुक्त है।

जब कायोत्सर्ग की स्थिति प्राप्त होती हैं, तब जानने की स्थिति प्राप्त होती है। कायोत्सर्ग आत्मा तक पहुचने का द्वार है। आत्मा की झलक मिलती है, तो कायोत्सर्ग अपने आप सध जाता है। अध्यात्म का अर्थ है—अपने अस्तित्व की उपलब्धि—ज्ञाता-द्रष्टा भाव की उपलब्धि।

दु:ख के मूल कारण की खोज

कायोत्सर्ग से हम दु ख के उपादान (मूल कारण) तक पहुंच जाते हैं। यह स्थूल शरीर दु ख को प्रकट करने का हेतु है, किन्तु दु.ख का उपादान नही है। उपादान (मूल कारण) है—कार्मण शरीर। कायोत्सर्ग की स्थिति मे हमे दु ख के उपादान का दर्शन होता है।

हमारा विरोध है उस कार्मण शरीर से, जो हमे सता रहा है। एक सत्य स्थिर होता है कि कार्मण शरीर को क्षीण करना है, इस स्थूल शरीर का सहयोग लेना है। स्थूल शरीर के सहयोग का मतलब है उसे स्थिर करना।

चंचलता का चक्रव्यूह

कार्मण शरीर ने अपने अस्तित्व की सुरक्षा की व्यवस्था कर रखी है। हमारा अतिसूक्ष्म शरीर—कार्मण शरीर हमारे समूचे तत्र को सचालित

कर रहा है। उसकी सुरक्षा का सबसे बडा सूत्र—सबसे बडा रहस्य है—चचलता।

चचलता इसलिए कि अज्ञान बना रहे, जिससे चेतन को अपने अस्तित्व का पता न चले। यह एक ऐसा जाल है, जिसमे सब कुछ छिप जाता है। इतनी चचलता, इतनी तरगे, इतनी ऊर्मिया आ जाती है कि कुछ पता ही नही चलता। चचलता नही होती तो आत्मा अपने स्वरूप मे कभी अवस्थित हो जाती, कोई सन्देह नही इसमे केवल एक चचलता के कारण आत्मा अपने स्वरूप से भटक रही है।

इस प्रकार चचलता कर्म-शरीर की सुरक्षा-व्यवस्था का ही नही अपितु उसकी आक्रामक नीति का भी मुख्य आधार है। सर्वप्रथम चचलता को समाप्त करना होगा। चचलता को समाप्त करने की दिशा मे सबसे पहला चरण है—कायोत्सर्ग।

जब शरीर की प्रवृत्ति का निरोध होता है, तब सूक्ष्म शरीर–कर्म शरीर को एक धक्का-सा लगता है। उसके चक्रव्यूह मे एक गहरी दरार पड जाती है। कायोत्सर्ग मे हम तो निश्चय होकर बैठ जाते हैं। स्थूल शरीर का स्थिर होना सूक्ष्म शरीर के लिए विस्फोट होता है। बेचारा इतना काप उठता है कि उसे अनन्त-अनन्त परमाणुओ को उसी समय छोड देना पडता है। अनन्त-अनन्त परमाणु बिखरने लग जाते है। अपने अवयवो को तोडकर गिरा देना होता है। वे टूटकर गिरने लग जाते हैं। कार्मण शरीर की पराजय का प्रारम्भ हो जाता है।

आत्मा के बारे मे सदेह, स्वतत्र चैतन्य के बारे मे सदेह, त्रैकालिक अस्तित्व के बारे मे सदेह इसलिए है कि चचलता विद्यमान है। चचलता है, इसीलिए इतने विकल्प पैदा होते हैं, इतने तर्क पैदा होते है। उन विकल्पो के अन्धकार मे, उन तर्को के आवरण मे, अस्तित्व का प्रश्न धुधला हो जाता है और व्यक्ति के मन मे सदेह पैदा हो जाते है। यदि यह बुद्धि का व्यायाम नही होता, यदि यह तर्क नही होता और इन सबको सचालित करने वाली यह चचलता नही होती, तो अस्तित्व के बारे मे कभी सदेह पैदा नही होता। तर्क वास्तविकता पर पर्दा डाल देता है, सचाई को आवृत्त कर देता है। मनुष्य के मन मे ऐसा विकल्प उठता है कि सत्य तिरोहित हो जाता है, पर्दे के पीछे चला जाता है। इस चचलता के कारण यह घटना घटित होती है, अपने अस्तित्व का व्यक्ति को पता नही चलता। चचलता का एक काम है—आदमी को अपने अस्तित्व का पता न चले और अज्ञान बना रहे।

चचलता का दूसरा काम है—अपने दुख का पता न चले। दुख है, पर पता नही चलता। व्यक्ति मानता नही कि दु.ख है। दुख है, यह कहता है, दुख भोगता है, पाता है, अनुभव करता है, फिर भी इतनी जल्दी भूल

जाता है कि मानो दु.ख हुआ ही न हो। या चंचलता नही होती, तो ऐसा नही होता। चचलता के कारण व्यक्ति को अपने दु ख का, कमजोरी का, शक्तिहीनता का, अज्ञान का पता नही चलता।

चंचलता का चक्रव्यूह कैसे तोड़ें ?

साधना का सबसे पहला चरण है—कायोत्सर्ग—शरीर को स्थिर करना। इसका अर्थ है— शरीर की चचलता को समाप्त करना। साधना का प्रारम्भ कायोत्सर्ग से होता है। कायोत्सर्ग का एक चरण है—शरीर को बिलकुल स्थिर, निश्चल और शान्त कर बैठ जाना और कुछ भी नही करना।

लोगो ने कायोत्सर्ग को बहुत ही सीमित अर्थ मे समझा है—कायोत्सर्ग अर्थात् शरीर का शिथिलीकरण। शरीर को पूरा शिथिल कर दो, कायोत्सर्ग हो गया। यह अर्थ पूरा नही है। यह केवल पच्चीस प्रतिशत अर्थ है कायोत्सर्ग का। पच्चीस प्रतिशत अर्थ है—सहिष्णुता और पचास प्रतिशत अर्थ है— अभय। कायोत्सर्ग त्रिमूर्ति है। यह तीन मूर्तियो से बना है।

सहिष्णुता

कायोत्सर्ग का एक तत्त्व है—सहिष्णुता। साधक कायोत्सर्ग की मुद्रा मे खडा है। जो कुछ हो रहा है, होने दें। पैर दर्द कर रहे हैं, करे। शरीर दु ख रहा है, दु खे। पानी बरस रहा हैं, बरसे। आंधी और तूफान आ रहे हैं, आए। सहिष्णुता—सहन करना और सहन करते रहना है। जो होता है, होने दे, कोई चिन्ता नही। इस चिन्ता से मुक्त हो जाना ही कायोत्सर्ग है।

जिसमे सहिष्णुता का भाव विकसित नही है, वह कभी कायोत्सर्ग नही कर सकता। शरीर मे दर्द होते ही स्थिरता टूट जाती है, आसन बदल दिया जाता है। मक्खी या मच्छर का स्पर्श होते ही हाथ उठ जाता है। सारा शरीर अस्थिर हो जाता है, चंचल हो जाता है। कायोत्सर्ग नहीं कर सकता।

अभय, अभय और अभय

जब सहिष्णुता सधती है, तब अभय घटित होता है। समूचे धर्म का रहस्य है—अभय। धर्म की यात्रा आदि-बिन्दु है—अभय और अन्तिम बिन्दु है—अभय। धर्म का इति अभय है, धर्म अभय से प्रारम्भ होता है और अभय को निष्पन्न कर, कृतकृत्य हो जाता है। वीतरागता का आरंभ अभय से होता है और वीतरागता की पूर्णता भी अभय में होती है।

जो व्यक्ति भय-मुक्त नही होता, वह कभी धार्मिक नहीं बन सकता, कायोत्सर्ग नही कर सकता।

कायोत्सर्ग का अर्थ है—अभय।

कायोत्सर्ग का अर्थ है—शरीर की चिन्ता से मुक्त हो जाना।

शरीर की चिन्ता से मुक्त हो जाना, सरल-सी बात लगती है, परन्तु यह इतनी सरल बात नही है। शरीर के प्रति बने हुए भय से छुटकारा पा लेना सरल बात नही है। 'ममेद सरीरम्'—यह शरीर मेरा है—जिस क्षण मे यह स्वीकृति होती है, उसी क्षण मे भय पैदा हो जाता है। यह भय की उत्पत्ति का मूल कारण है। शरीर का ममत्व भय उत्पन्न करता है। ममत्व और भय दो नही हैं। जहा ममत्व है, वहा भय है और जहा भय है, वहा ममत्व है। ममत्व को छोडना भय-मुक्त होना है और भय-मुक्त होने का अर्थ है—ममत्वहीन होना।

शरीर के ममत्व को छोडना चैतन्य के प्रति जागना है। शरीर के प्रति जो ममत्व है, उससे छुटकारा पाना बहुत बडी उपलब्धि है।

५.३.३ प्रयोजन

(क) मन·कायिक (Psychosomatic) प्रयोजन

उच्च रक्तचाप की बीमारी होने पर भी बहुत वर्षों तक उसके रोग-लक्षण सामान्यत सामने नही आते हैं, क्योकि इस बीमारी का मायावी स्वभाव अपना खतरनाक प्रभाव छिपाकर अपने आपको निर्दोष प्रतीत कर देता है। किन्तु अन्ततोगत्वा यह बीमारी हृदय या मस्तिष्क को क्षतिग्रस्त कर देती है। अथवा व्यक्ति को एकाएक मृत्यु के मुह मे ढकेल देती है। यह बीमारी प्रत्यक्ष रूप मे धमनियो के कडेपन के बढने एव परोक्ष रूप मे हृदय और मस्तिष्क के ऊतको के विनाश का कारण बन जाती है। जब धमनी का कडापन बढ जाता है, तब सामान्य रूप से उसका निशाना हमारे तीन प्राणाधार (vita) अवयवो मे से किसी एक को बनाया जाता है—हृदय, मस्तिष्क या गुर्दे।

उच्च रक्तचाप या हाइपरटेशन हृदय को ऊचे दबाब पर रक्त पम्प करने के लिए बाध्य कर देता है। इससे हृदय को अधिक कठोर श्रम करना पडता है तथा उस पर क्षतिकारक दबाब पडता है। उच्च रक्तचाप की यह बीमारी इसलिए ज्यादा खतरनाक है कि इससे धमनियो के कडे बनने की गति तेज हो जाती है। धमनियो के कडेपन का मुख्य कारण है—धमनियो के अन्दर की दिवालो पर रक्त के थक्के, वसा (या चर्वी) और कैल्शियम आदि की परत जमना। समान्य रूप से नरम और लचीली रहने वाली धमनिया कठोर बन जाती हैं, उनका लचीलापन नष्ट हो जाता है तथा वे आशिक रूप से अथवा पूर्ण रूप से अवरुद्ध हो जाती हैं। इस अवरोध या रुकावट के घोर परिणाम आ सकते हैं।

धमनियो के कडेपन की बीमारी (etherosclerosis) होने का खतरा रक्तचाप बढने के साथ बढता जाता है, अर्थात् जितना-जितना रक्तचाप बढता है, उतना-उतना खतरा बढता है। यदि हृद्-धमनिया (coronaries), जो बहुत पतली होती हैं अवरुद्ध हो जाए तो हृदय की कोशिकाओ की मृत्यु हो जाती है तथा दिल का दौरा पड जाता है। यदि मस्तिष्क की धमनियो मे अवरोध पैदा हो जाए तो मूर्च्छा, मस्तिष्क की नस का फटना (brain haemorrhage) या पक्षाघात के दौरे पडना आदि घटित हो सकता है। इस प्रकार सतत् बने रहने वाला उच्च रक्तचाप या हाइपरटेंशन हार्ट-अटैक का एक अप्रत्यक्ष कारण है।

हाइपरटेंशन का एक प्रमुख प्रकार है अव्याख्येय (essential) हाइपरटेंशन, जिसका अनुपात है—९० से ९५ प्रतिशत। इनके कारणो का अब तक पता नही चला है। समान्य रूप से मानसिक दबाब (या तनाव) को इसका कारण माना जाता है। क्रोध, भय, चिन्ता जैसे भावात्मक आवेश, आवेग इसके होने मे मुख्य रूप से कारणभूत होते है। यद्यपि यह बात सामान्य रूप से मानी जाती है, फिर भी चिकित्सा-शास्त्रियो ने इस ओर पर्याप्त ध्यान नही दिया है। दबावपूर्ण स्थितिया और इनसे उत्पन्न होने वाले तनाव बहुधा इस प्रकार के अव्याख्येय हाइपरटेंशन के प्रत्यक्ष या परोक्ष निमित्त बन सकते हैं।

यह प्रश्न होना स्वभाविक है कि क्या हम हाइपरटेंशन के अपरिहार्य खतरनाक परिणामो से बच सकते हैं? क्या हमारे शरीर के भीतर ऐसी कोई प्रणाली है, जो दबाव की प्रणाली से नितान्त विलोम रूप मे कार्य कर सके ?

इसका उत्तर है— हा, है। सौभाग्य से हमारे शरीर मे दबाब-पूर्ण स्थितियो का प्रतिकार करने के लिए एक आन्तरिक प्रणाली है। जिसे सक्रिय करने से निश्चित रूप से रक्त-चाप को घटाया जा सकता है। हाइपरटेंशन के मरीजो को इस प्रतिरक्षात्मक प्रणाली को प्रवर्तित करना सिखाया जा सकता है, जिससे वह अपने रक्तचाप को कम कर सकता है। अगले प्रकरण मे वर्णित कायोत्सर्ग का प्रयोग रक्तचाप को कम करने का एक उपचार है। युगो-युगो से यह प्रयोग मानवीय परम्पराओ मे प्रचलित रहा है। चूकी निरन्तर बने रहने वाला उच्च रक्तचाप धमनी-काठिन्य जैसी खतरनाक बीमारी पैदा करने मे निमित्तभूत होता है, आनुषगिक दुष्परिणाम न हो ऐसे किसी भी उपाय से रक्तचाप को कम करना श्रेयस्कर होगा। हाइपरटेंशन का प्रतिकार करने वाली औषधिया हमारे अनुकपी नाड़ी-सस्थान की प्रवृत्ति को निरुद्ध कर रक्तचाप को कम कर देती है, किन्तु ऐसी औषधिया खतरनाक आनुषगिक

दुष्परिणाम लाती है और उससे अधिक गम्भीर समस्याए पैदा हो सकती है। उपर्युक्त औषधियो की तरह कायोत्सर्ग के प्रयोग से उच्च रक्तचाप को कम किया या सकता है, पर यह एक निरापद मार्ग है। कायोत्सर्ग के नियमित अभ्यास का मूल्य इसलिए बढ जाता है कि औषधियो के साथ उत्पन्न होने वाले आनुषगिक दुष्परिणामो का कायोत्सर्ग के प्रयोग मे सर्वथा अभाव होता है। इस बात से पूर्व उल्लिखित प्राक्कल्पना प्रमाणित होती है कि अधिकाश घटनाओ मे हाइपरटेंशन की बीमारी का मूल कारण दबावपूर्ण स्थितिया हैं।

कायोत्सर्ग करने का एक अन्य मुख्य कारण है उसकी रोग-निरोधक शक्ति। अनुकम्पी नाडी-सस्थान की अत्यधिक सक्रियता के दुष्परिणामो से बचने का यह एक सहज और निरापद मार्ग है। इसका अर्थ यह हुआ है कि यह प्रयोग उन भावनात्मक बीमारियो को भी शात करने का बहुत उपयोगी उपाय है, जिनकी उत्पत्ति बढी हुई अनुकम्पी नाडी-सस्थान की सक्रियता पर आधारित है।

कायोत्सर्ग का एक उपचारात्मक प्रयोग के रूप मे दूसरा महत्त्वपूर्ण उपयोग है—धूम्रपान, मद्यपान जैसे मादक पदार्थों के व्यसन से पीडित व्यक्ति को व्यसन-मुक्त करना। भाग, चरस, गाजा, अफीम एव उससे निकाले गए हेरोइन, कोकीन तथा एल एस डी आदि खतरनाक नशीले या घातक पदार्थ हैं, जो सेवन करने वाले व्यक्ति के स्वास्थ्य को बुरी तरह से बिगाड देते है तथा बहुधा उसे अकाल मृत्यु के मुह मे धकेल देते है।

प्रेक्षाध्यान-पद्धति के विभिन्न ध्यान-प्रयोगो के साथ कायोत्सर्ग के नियमित अभ्यास द्वारा कोई भी व्यक्ति सर्वथा व्यसन-मुक्त हो सकता है। इतना ही नही, वस्तुत कायोत्सर्ग का प्रभाव व्यक्ति की उन मौलिक प्रवृत्तियो पर पडता है, जो उसे नशे का सेवन करने के लिए बाध्य कर देती है। इस प्रकार कायोत्सर्ग नशीले पदार्थों का एक अरासायनिक विकल्प है, जो सर्वथा निर्दोष या निरापद ही नही अपितु स्वास्थ्यवर्धक है। नशीले पदार्थों के सेवन से जो मस्ती आती है, उसकी अपेक्षा ध्यान द्वारा होने वाली आनदानुभूति अधिक गहरी और निर्दोष होती है।

(ख) आध्यात्मिक प्रयोजन

यदि हमे अपनी स्थूल चेतना की बात को भीतर मे—सूक्ष्म तक पहुचाना है, तो कायोत्सर्ग करना आवश्यक है। यदि शरीर की प्रवृत्तियो का और स्नायविक प्रवृत्तियो का शिथिलीकरण नही है, तो बात भीतर तक नही पहुच सकती। कायोत्सर्ग दोनो ओर से किया जा सकता है—बाहर से भीतर की ओर अथवा भीतर से बाहर की ओर। बाहर से चलेगे, तब सबसे पहले

हाथो, पैरो, वाणी और इन्द्रियो का सयम करना होगा। जब हम भीतर से चलेंगे, तब उस मुद्रा मे बैठना होगा जिससे मन की दिशा और प्राण की धारा बदल जाए—मन और प्राण की सारी ऊर्जा, भीतर की ओर बहने लग जाए। यदि मन भीतर की ओर रम गया, यदि अस्तित्व और चैतन्य की कोई झलक मिल गई, तो शरीर के समस्त अवयव अपने आप शात हो जाएगे। प्रयत्न करने की कोई आवश्यकता या अपेक्षा न होगी। जब हाथ, पैर और वाणी का सयम—शिथिलीकरण घटित होता है, तब इन्द्रियो के तनाव कम हो जाते हैं। उनमे उठने वाली आकाक्षाओ की तरग कम हो जाती है। तब अध्यात्म की यात्रा शुरू होती है। अध्यात्म की यात्रा शुरू करने के लिए सबसे पहली शर्त है—कायोत्सर्ग।

शक्ति संरक्षण

साधना मे कायोत्सर्ग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कायोत्सर्ग करने का उद्देश्य क्या है? इसका एक उद्देश्य है कि शक्ति का जो व्यर्थ ही व्यय हो रहा है, उसे रोका जाए। शरीर के द्वारा जो शक्ति खर्च हो रही है, वाणी के द्वारा जो शक्ति खर्च हो रही है, मस्तिष्क की जो शक्ति व्यर्थ ही खर्च हो रही है, उसे बचाया जा सके।

दूसरे शब्दो मे कायोत्सर्ग की सारी प्रक्रिया इसीलिए है कि शक्ति को बचाया जा सके और शक्ति का सही अर्थ मे उपयोग किया जा सके। इसका एकमात्र उपाय है—कायोत्सर्ग। हम कायोत्सर्ग करें, शिथिलता का अनुभव करें, जिससे कि हमारे शरीर की कोशिकाएं, हमारे शरीर का कण-कण विश्राम ले सके और उसकी शक्ति खर्च न हो, सचित रहे। श्वास को शात करें। श्वास लम्बा लें। श्वास को मन्द करें। जब श्वास मन्द होता है, तब शरीर शिथिल होता है, कायगुप्ति और कायोत्सर्ग सधता है, ऑक्सीजन की खपत कम जो जाती है, प्राणशक्ति का व्यय कम हो जाता है।

स्वभाव परिवर्तन

अध्यात्म ने मनुष्य को बदलने की एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया दी। उस प्रक्रिया के अनेक चरण है। उसका पहला चरण है—कायोत्सर्ग। इससे पुरानी आदतो मे परिवर्तन आता है—मन का शोधन होता है। कायोत्सर्ग बुरे स्वभावो को बदलने वाला हैं। जो कायोत्सर्ग की प्रक्रिया को नही जानता, वह स्वभाव परिवर्तन नही कर सकता। सेल्फ-हिप्नोटिज्म' के विशेषज्ञो ने उसके लिए सबसे पहले जो सूत्र दिया हैं वह है—'ओटो-रिलेक्सेशन'—स्व-शिथिलीकरण। यह कायोत्सर्ग की प्रक्रिया है। चाहे स्वभाव को बदलना हो, चाहे किसी बीमारी की चिकित्सा करनी हो, तो सबसे पहले कायोत्सर्ग करना होगा।

चित्त शुद्धि

मानसिक शांति का सबसे बडा उपाय है—चित्त-समाधि। चित्त-समाधि के लिए आवश्यक है – चित्त की शुद्धि। चित्त की शुद्धि का सबसे बडा सूत्र है शरीर की स्थिरता। शरीर जितना स्थिर होता है, उतना ही चित्त शुद्ध होता है। चित्त की अशुद्धि का सबसे बडा कारण है – चित्त की चचलता। शरीर स्थिर हुए बिना चित्त की स्थिरता नही होती, शरीर की स्थिरता हुए बिना श्वास शात नही होता, मौन नहीं होता, मन शात नही होता, स्मृतिया शात नही होती, कल्पनाए समाप्त नही होती, विचार का चक्र रुकता नही, इसलिए सबसे पहले आवश्यक है – कायोत्सर्ग। कायोत्सर्ग होता है, तो अनायास सारी बाते हो जाती है। साधना के लिए अगले चरण अपने आप बढ जाते है।

हमारा यह शरीर जिस दिन हिमालय की भाति निष्प्रकम्प, अडोल और अचचल बन जाएगा, तो फिर साधना के लिए और कुछ जानने की, कुछ समझने की, और कुछ करने की जरूरत नही होगी। साधना की सारी घटनाए अपने आप घटित होने लग जाएगी और साधना स्वय साकार होकर हमारे सामने मूर्तिमती बन जाएगी।

कोई समस्या सामने आती है, आप सोचते है कि समस्या का समाधान कैसे मिले ? एकात मे जाकर बैठते है, शात होकर बैठते है, समस्या का समाधान मिल जाता है। जीवन की यात्रा चलाने वाला, व्यवहार की भूमिका पर जीने वाला हर व्यक्ति समय-समय पर कायोत्सर्ग करता है। अध्यात्म की यात्रा करने वाले व्यक्ति के लिए तो इसके सिवाय और कोई विकल्प ही नही है। जो कायोत्सर्ग की सम्यग आराधना नही करता, कायोत्सर्ग को ठीक नही साधता, वह अध्यात्म के क्षेत्र मे कोई प्रगति नही कर सकता।

५.३.४ निष्पत्तियां

अब हम शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक आदि दृष्टियो से होने वाली निष्पत्तियो की चर्चा करेंगे, जिनमे तनाव-मुक्ति, चित्त की एकाग्रता, ज्ञाता-द्रष्टा भाव का विकास, चैतन्य का साक्षात्कार, प्रज्ञा का जागरण आदि उल्लेखनीय है।

चार अवस्थाएं

कायोत्सर्ग की प्रथम अवस्था मे स्थिरता प्राप्त होती है। शारीरिक स्तर पर तनाव-मुक्ति का अनुभव होने लगता है तथा कुछ मनःकायिक रोगो मे प्रत्यक्ष सुधार का अनुभव भी होने लगता है।

कायोत्सर्ग की दूसरी अवस्था मे कुछ विशिष्ट परिवर्तन घटित होते हैं—

- स्नायु-तन्त्र प्रभावित होता है ।
- मस्तिष्क की तरगो और मस्तिष्कीय विद्युत् मे परिवर्तन आ जाता है ।
- ऑक्सीजन की खपत कम हो जाती है ।
- अनैच्छिक मासपेशियो पर नियन्त्रण स्थापित होने लगता है और स्वायत्त स्नायुतन्त्र का उत्तेजना स्तर गिर जाता है । उनमे स्थिरता आती है ।
- शारीरिक कार्य-क्षमता बढ जाती है ।
- श्लेष्म आदि दोषो के क्षीण होने से देह की जड़ता नष्ट होती है ।
- जागरूकता के कारण बुद्धि की जडता नष्ट होती है ।
- सर्दी-गर्मी आदि द्वन्द्वो को सहने की क्षमता बढ़ती है ।
- चित्त की एकाग्रता सुलभ हो जाती है ।

इसकी तीसरी अवस्था मे स्थूल शरीर का बोध क्षीण हो जाता है । सक्ष्म शरीर की सक्रियता बढ जाती है और वह कभी-कभी स्थूल शरीर को छोडकर बाहर चला जाता है । इस स्थिति मे सूक्ष्म पदार्थ दृष्टिगत होने लग जाते है ।

इसकी चतुर्थ अवस्था मे आत्मा के चैतन्यमय स्वरूप का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है ।

तनाव-मुक्ति

कायोत्सर्ग की पहली और प्रत्यक्ष निष्पत्ति है—तनाव-मुक्ति । जो भी साधक यह साधना करेगा, उसके तनाव धीरे-धीरे विसर्जित हो जाएगे । कोई कायोत्सर्ग करे और तनाव न मिटे, यह कभी हो नही सकता । कायोत्सर्ग तनाव-मुक्ति का अचूक उपाय है । जिन्होने कायोत्सर्ग का अभ्यास किया है, शरीर के शिथिलीकरण का प्रयत्न किया है, ममत्व के विसर्जन का अभ्यास किया है, उन्होने यह अनुभव किया है कि शरीर सर्वथा तनाव-मुक्त हो गया है, हल्का हो गया है । कायोत्सर्ग करने वाला मन के बोझ से ऊपर उठ जाता है । यह कायोत्सर्ग का प्रत्यक्ष लाभ है ।

चंचलता की निवृत्ति

शिथिलीकरण का अर्थ है—चचलता की निवृत्ति—शरीर पूरा स्थिर हो जाए, कोई भी अग न हिले । शरीर की सारी प्रवृत्तियो का विसर्जन करना ही शिथिलीकरण है ।

कायोत्सर्ग मे पहले हम इच्छाचालित नाडी-सस्थान को स्थिर करते है । जैसे-जैसे अभ्यास बढता है, स्थिरता फलित होती जाती है । जब इच्छाचालित नाड़ी-सस्थान पर नियन्त्रण स्थापित हो जाता है, तब स्वतःचालित

नाडी-सस्थान भी अपने आप स्थिर होने लग जाता है, हृदय की धडकन भी कम होने लग जाती है, श्वास मद हो जाता है, उसकी सख्या घट जाती है, प्राणवायु या ऑक्सीजन की खपत कम हो जाती है, सारी अपेक्षाए कम हो जाती हैं और अकल्पित शाति का वातावरण भीतर मे निर्मित हो जाता है।

शरीर पर प्रभाव

शरीर पर कायोत्सर्ग के प्रभाव की चर्चा करे, तो कहा जा सकता है कि कायोत्सर्ग के द्वारा लगभग सभी नाडी-तत्रीय कोशिकाए प्राण-शक्ति से अनुप्राणित हो जाती हैं। एक प्रकार से उन्हे ऐसा अवकाश का समय प्राप्त होता है, जिसके दौरान वे निरतर उन पर पडने वाले वोझ मे मुक्त रहती हैं—रात-दिन मस्तिष्क तक सवेदनो को पहुचाने तथा प्रवृत्ति-बहुल गतिविधियो को चलाने से थका देने वाले कार्य से विश्रान्ति का अनुभव कर सकती हैं। इसलिए यह आश्चर्य नही होना चाहिए कि दीर्घ-कालीन अशान्त निद्रा की अपेक्षा स्वल्पकालीन कायोत्सर्ग व्यक्ति को अधिक स्फूर्ति और शक्ति प्रदान करता है।

ऊपर जो बताया गया है, उससे तो स्पष्ट हो चुका होगा कि कायोत्सर्ग का प्रयोग करते समय नीद लेना प्रयोग के लक्ष्य के विपरीत होगा। पर नीद मे जाने से पूर्व कायोत्सर्ग का प्रयोग करने का परिणाम होगा—स्वस्थ शाति पूर्ण नीद।

शारीरिक लाभ

जिन व्यक्तियो को उच्च रक्तचाप आदि के कारण हृदय-रोग होने की सभावना रहती है, वे कायोत्सर्ग के नियमित अभ्यास से अपनी प्रतिकार-शक्ति को बढाकर इस खतरे से बच सकते है। एक इलेक्ट्रोनिक सामग्री-निर्माण करने वाले कारखाने के १०० श्रमिको पर एक प्रयोग किया गया।[१] इन श्रमिको को उच्च रक्तचाप, रक्त मे कोलेस्टेरोल की अति मात्रा तथा धूम्रपान आदि व्यसन के कारण हृदय रोग का खतरा हो गया था। उन्हे आठ सप्ताह तक प्रति सप्ताह एक घटे तक शिथिलीकरण का अभ्यास कराया गया। उनके रक्तचाप मे उल्लेखनीय कमी पाई गई। इसी कारखाने के ऐसे अन्य श्रमिको का दल, जिसे उपर्युक्त अभ्यास से वचित रखा गया था (जिसे 'कण्ट्रोल ग्रुप कहा जाता है), सदस्यो की तुलना मे प्रयोग के अन्तर्गत अभ्यास करने वाले दल के सदस्यो मे तीन वर्ष पश्चात् भी रक्तचाप नीचा रहा तथा उनमे हृदय-रोग की घटनाए भी कम हुई।

---

१. लन्दन मे १९८३ मे ब्रिटिश 'हॉलिस्टिक मेडिकल एसोशिएसन के उद्‌घाटन समारोह के अवसर पर बताए गए सत्य वृत्तान्त के आधार पर।

सूक्ष्म शरीर की घटनाओं का ज्ञान

अध्यात्म की साधना करने वाले व्यक्ति को अध्यात्म के नियमो से परिचित होना जरूरी है। सबसे पहला और सबसे बडा नियम है— शरीर की स्थिरता—कायोत्सर्ग। कायोत्सर्ग होता है, श्वास-दर्शन होता है। कायोत्सर्ग होता है, शरीर-प्रेक्षा अपने आप हो जाती है। शरीर मे होने वाले कम्पन अपने आप प्रकट होने लगते है। कायोत्सर्ग होता है, विचार-दर्शन होता है। शरीर के हर अवयव की स्थिरता जब सधती है, तब प्रत्येक कोशिका की स्थिरता का अभ्यास हो जाता है, तो फिर किस कोशिका मे कहा क्या हो रहा है, इस घटना का पता लगने लग जाता है। नाडी-सस्थान मे, ग्रन्थि-सस्थान मे जो कुछ हो रहा है, विद्युत्-प्रवाह की जो गति हो रही है, रसायन किस प्रकार अपने विविध परिणमन कर रहे हैं और किस प्रकार के रसायन बन रहे हैं, उन सब घटनाओ का कायोत्सर्ग में पता लग जाता है। कायोत्सर्ग जैसे-जैसे विकसित होता है, जैसे-जैसे शरीर की स्थिरता सधती है, वैसे-वैसे जागरूकता बढती जाती है। चेतना निर्मल हो जाती है और इस स्थूल शरीर का अतिक्रमण कर सूक्ष्म शरीर की घटनाओ का भी पता लगने लग जाता है।

ज्ञाता-द्रष्टा भाव का जागरण

जब कायोत्सर्ग घटित होगा, तब शरीर की सारी चचलता समाप्त हो जाएगी इतना ही नही अपितु साधक 'सुसमाहितात्मा' बन जाएगा। आत्मा का वह स्वरूप प्रकट होगा, जो पहले कभी नही हुआ था। इस स्वरूप को आज तक या तो इन्कार करते रहे थे या केवल मानते रहे थे, किन्तु अब जानने लग जाएगे। जानने की बात तब आती है जब कायोत्सर्ग की स्थिति प्राप्त होती है। कायोत्सर्ग आत्मा तक पहुचने का द्वार है। इनकी निष्पत्ति है - अध्यात्म की उपलब्धि, अपने अस्तित्व की उपलब्धि, अपने स्वरूप की उपलब्धि, ज्ञाता-द्रष्टा भाव की उपलब्धि।

आभामंडल का दर्शन

कायोत्सर्ग की प्रगाढ अवस्था मे आभामडल का दर्शन भी होने लगता है। जब कायोत्सर्ग सघन होता है, तब परमाणुओ का भीतर आना बन्द हो जाता है। उस स्थिति मे स्थूल शरीर को पार करने के पश्चात् अतिसूक्ष्म शरीर के स्पन्दन दीखने लग जाते है। उसका साक्षात्कार होते ही हमारी सारी दृष्टि बदल जाती है।

विवेक चेतना का जागरण

जब कायोत्सर्ग सधता है, तब विवेक चेतना जाग जाती है, चेतन और शरीर की भिन्नता स्पष्ट हो जाती है, साक्षात्कार हो जाता है—यह रहा

शरीर और यह रहा चैतन्य, यह रहा शरीर और यह रही आत्मा। बिलौना किया, एक बिन्दु आता है—यह रही छाछ और यह रहा मक्खन। तिल घाणी मे पिला जाता है, एक बिन्दु आता है—यह रही खल और यह रहा तेल। सोना तपाया जाता है, एक बिन्दु आता है—यह रही मिट्टी और यह रहा शुद्ध सोना। विवेक हो जाता है, पृथक्करण हो जाता है।

यह शरीर है और यह आत्मा। यह अचेतन है और यह चेतन। यह अशाश्वत है और यह शाश्वत। आत्मा और पुद्गल का स्पष्ट भेद उसे साक्षात् हो जाता है। यह विवेक-चेतना बहुत बडी उपलब्धि है। वास्तव मे शरीर का मूल्याकन वही व्यक्ति कर सकता है, जिसने कायोत्सर्ग का अभ्यास किया है। वास्तव मे शरीर का सार वही निकाल सकता है, जिसने कायोत्सर्ग को साधा है।

कायोत्सर्ग की अनुभूति के पीछे शरीर-विज्ञान की दृष्टि से कौन-सी क्रिया कार्य करती है? जैसे हम पहले बता चुके हैं, जिस समय मापेशियो को शिथिल किया जा रहा था, उस समय उनसे सम्बद्ध क्रियावाही नाडियो मे धीरे-धीरे विद्युत् का प्रवाह मन्द होता जा रहा था तथा इस प्रकार उन्हे विश्राम का अवसर दिया जा रहा था। अन्ततोगत्वा सम्पूर्ण क्रियावाही प्रणाली को निष्क्रिय बनाकर उसे विश्राम की अवस्था मे स्थापित किया गया और फिर उसी का अनुकरण, उसकी ही पूरक प्रणाली- सवेदी (ज्ञानवाही) प्रणाली द्वारा किया गया है, जो मस्तिष्क (यानि केन्द्रीय नाडी-सस्थान) तक सवेदनो को पहुचाने का कार्य करती है। इस प्रकार, सारी प्रक्रिया के दौरान जहा एक ओर चेतन मन पूर्णत जागृत और सजग था, वहा दूसरी ओर शरीर—हमारा भौतिक हिस्सा—धीरे-धीरे चेतना रहित-सा होता जा रहा था। इससे चैतन्य को उसके प्रतिपक्षी भौतिक हिस्से से मुक्त अनुभव करने का अवसर मिला। इस प्रकार क कायोत्सर्ग मे स्वय के शरीर से बाहर अपने आपको तैरते हुए अनुभव किया जा सकता है, जो निश्चित रूप से न तो स्वत सूचन का रूप है और न ही सम्मोहन है, अपितु एक वास्तविक तथ्य की सही-सही अनुभूति है।

व्युत्सर्ग-चेतना

विवेक-चेतना पुष्ट होती है, तब व्युत्सर्ग (त्याग) की क्षमता बढती है, त्याग और विसर्जन की शक्ति का विकास होता है। फिर छोडने मे सकोच नही होता, चाहे शरीर को छोडना पडे, इन्द्रिय-विषयो को छोडना पडे, परिवार या धन को छोडना पडे। उसमे छोडने की इतनी क्षमता बढ जाती है कि वह जब चाहे, तब किसी को भी छोड़ सकता है, कोई मोह नही रहता।

व्युत्सर्ग की चेतना जगाने पर साधक को स्पष्ट अनुभव हो जाता है कि मैं चैतन्यमय हू, यही मेरा अस्तित्व है। चैतन्य के अतिरिक्त जितना भी जुडाव हुआ है, वह विजातीय है, मेरा नही।

प्रज्ञा का जागरण : समता का विकास

कायोत्सर्ग की एक और महत्त्वपूर्ण निष्पत्ति है—प्रज्ञा का जागरण। जब कायोत्सर्ग के द्वारा प्रज्ञा जागती है, तब जीवन मे समता स्वत अवतरित होती है। लाभ-अलाभ, सुख-दु ख, निन्दा-प्रशसा, जीवन-मरण—इन द्वद्वो मे सम रहने की क्षमता उसी व्यक्ति मे विकसित होती है, जो कायोत्सर्ग को साध लेता है। फिर उसके लिए प्रिय और अप्रिय में कोई भेद नही होता। दोनो आयाम समाप्त हो जाते हैं। तीसरा आयाम उद्घाटित होता है। वह आयाम है—समता।

बुद्धि और प्रज्ञा मे इतना ही अन्तर होता है कि बुद्धि चुनाव करती है—यह प्रिय है, यह अप्रिय है। प्रज्ञा मे चुनाव समाप्त हो जाता है। उसके सामने प्रियता और अप्रियता का प्रश्न ही नही उठता। उसके समक्ष समता ही प्रतिष्ठित होती है। कायोत्सर्ग के अभ्यास से बुद्धि का पलडा हल्का होता जाएगा और प्रज्ञा का पलडा भारी होता चला जाएगा। जीवन मे जिस दिन प्रज्ञा की पहली किरण फूटेगी, उस दिन अपने आप समता का दर्शन होगा।

शरीर प्रेक्षा

५.४.१. शरीर प्रेक्षा : आध्यात्मिक आधार

हमारा शरीर बहुत मूल्यवान् है। इसमे जितने रहस्य भरे पडे है, वे रहस्य एक साधक ही जान सकता है, एक डाक्टर नही जान सकता। एक कुशल शल्य-चिकित्सक भी उन रहस्यो को नही जानता, जो अध्यात्म के आचार्यो ने खोजे हैं। यद्यपि आध्यात्मिक दृष्टि से शरीर का मूल्य चिकित्सक नही कर सकता, फिर भी यह तो मानना पडेगा कि नाडी-तन्त्र के बारे मे आज का चिकित्सक अच्छी तरह से जानता है, उसका फक्शन क्या है, उसकी सारी नाडिया किस प्रकार क्रिया करती हैं। इन सब को एक कुशल चिकित्सक अच्छी तरह जानता है; किन्तु इन नाडियो से किस प्रकार प्राण की धारा प्रवाहित की जा सकती है और कहा ले जाई जा सकती है, चित्त-वृत्तियो को कहा-कहा ले जाया जा सकता है, यह बात चिकित्साशास्त्र का विषय नही है।

प्राण

हृदय मे प्राण का एक प्रकार का प्रवाह है, नासाग्र मे प्राण का एक प्रकार का प्रवाह है, नाभि मे प्राण का एक प्रकार का प्रवाह है, गुदामूल मे

तालिका ४—शरीर प्रेक्षा : सिद्धान्त और मूलस्रोत

बिन्दु	तथ्य	प्रमाण
प्रयोजन	१ चित्त को पटु एव सूक्ष्म ग्राही बनाना । २ तटस्थता का विकास—ज्ञाता-द्रष्टा भाव को विशुद्ध बनाना । ३ आत्म साक्षात्कार करना ।	आयारो ५।२१
आध्यात्मिक स्वरूप	१ शरीर के सही बोध की प्रक्रिया, ममत्व विसर्जन की प्रक्रिया, अस्तित्व बोध की प्रक्रिया । २ शरीर क्या है—प्राण के केन्द्रो का स्थान, आत्मा का अधिष्ठान, आन्तरिक क्षमताओ की अभिव्यक्ति का माध्यम, सवेदी केन्द्रो का स्थान ।	उत्तरज्झयणाणि २३।७३
वैज्ञानिक स्वरूप	१ शरीर अनेक तत्रो से युक्त है, शरीर प्रेक्षा स्वास्थ्य की प्रक्रिया है, दद निवारण की प्रक्रिया है आन्तरिक दर्दनाशक-एन्डोमार्फिन को (Trigger) सक्रिय करने की प्रक्रिया ।	
प्रक्रिया	१ शरीर के प्रत्येक अवयव की तटस्थ प्रेक्षा ।	आचाराग ५।२९ आचाराग ४।३७ आचाराग २।१३० आचाराग ५।११८
परिणाम	१ शारीरिक—प्राण का सतुलन, रोग प्रतिरोधक शक्ति का विकास, शरीर का कायाकल्प । २ मानसिक—स्नायविक शक्ति का विकास । ३ भावनात्मक-तटस्थता का विकास, वृत्तियो का उपशमन । ४ आध्यात्मिक-चेतना के साथ जुडी हुई आस्था का निर्माण। इस आस्था पर सचालित होने वाली नई आस्था का निर्माण। प्रतिस्रोत चेतना का निर्माण ।	

प्राण का एक प्रकार का प्रवाह है और हमारी समूची त्वचा मे प्राण का एक प्रकार का प्रवाह है। प्राण के कई प्रवाह हैं। केवल सप्त धातुमय शरीर को जानने मात्र से भीतर की यात्रा नही हो सकती, भीतर के दरवाजे नही खुल सकते। भीतरी दरवाजो को खोलने के लिए, भीतर की यात्रा करने के लिए इन सारे रहस्यो को अनावृत करना, उद्घाटित करना परम आवश्यक होता है।

जैन दर्शन के अनुसार जीवन-शक्ति के मूल स्रोत मस्तिष्क हृदय या फुफ्फुस नही, अपितु दस प्रकार के प्राण है—पाच प्राण पाच इन्द्रियो को बल प्रदान करते हैं, तीन प्राण मन, वाणी और शरीर को बल प्रदात करते हैं। श्वासोच्छ्वास के रूप मे ऑक्सीजन और कार्बन डायोक्साइड को ग्रहण करने और छोडने की शक्ति श्वोच्छ्वास-प्राण है तथा जीवित रखने की शक्ति आयुष्य-प्राण है। इन दसो मे जब तक आयुष्य-प्राण क्रियाशील है, तब तक किसी एक शक्ति का काम बद हो जाने पर भी प्राणी जीवित रह सकता है।

औदारिक शरीर

जैन आगमो मे हमारा शरीर तीन प्रकार का बताया गया है—औदारिक, तैजस और कार्मण। औदारिक शरीर मे हमारा अस्थि-पजर, हमारी मासपेशिया तथा शरीर-विज्ञान द्वारा व्याख्यायित सभी तत्र जैसे पाचन-तत्र, श्वसन-तत्र, परिसचरण-तत्र आदि तथा पाचो इन्द्रिया—श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय एव मन आ जाते है। पाचो इन्द्रियो और मन को भोगोन्मुख या योगोन्मुख करना, यह स्वय व्यक्ति पर निर्भर है। शरीर-प्रेक्षा का एक कार्य इन्द्रिय-सयम का विकास भी है।

अध्यात्म मे इन्द्रिय-सयम एव मन-सयम पर बल दिया गया है। चेतना इन्द्रियो और मन के मनोज्ञ और अमनोज्ञ विषयो के प्रति क्रमश आसक्ति और घृणा अभिव्यक्त करती है। ये दोनो ही बधन के हेतु हैं। वास्तव मे इन्द्रियो एव मन का काम आसक्ति और घृणा नही है। बल्कि केवल जानना बिना आसक्ति और घृणा किए जानना है। यही शरीर-प्रेक्षा का लक्ष्य है। प्रमाद से मुक्त होना और जागरूक होकर शरीर का उपयोग करना शरीर-प्रेक्षा का आध्यात्मिक पक्ष है।

जैन आगम उत्तराध्ययन मे विभिन्न उपमाओ के द्वारा इन्द्रिय-विषयो और भावो मे अत्यन्त आसक्त या द्विष्ट होने वाले व्यक्ति की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण किया गया है। वहा बताया गया है—

"जो मनोज्ञ रूपो, शब्दों, गन्धो, रसो, स्पर्शों और भावो मे तीव्र आसक्ति करता है, वह वैसे ही अकाल मे ही विनाश को प्राप्त होता है जैसे

प्रकाश-लोलुप पतग रूप मे आसक्त होकर, अतृप्त बना हुआ रागातुर हरिन शब्द मे मुग्ध होकर, बिल से निकला हुआ सर्प-नाग-दमनी आदि औषधियो के गन्ध मे गृद्ध होकर, मास के रसास्वादन मे आसक्त बना रागातुर मत्स्य काटे से बीधकर, घडियाल के द्वारा पकडा हुआ भैसा अरण्य-जलाशय के शीतल जल के स्पर्श मे मग्न होकर तथा हथिनी के प्रति आकृष्ट हाथी काम-गुणो (भावो) मे आसक्त होकर विनाश को प्राप्त होते हैं।

"जो अमनोज्ञ रूपो, शब्दो, गन्धो, रसो, स्पर्शो और भावो मे तीव्र द्वेष करता है, वह अपने दुर्दम द्वेष से उसी क्षण दु ख को प्राप्त करता है। वे रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श और भाव उसका कोई अपराध नही करते।"[1]

तैजस शरीर

तैजस शरीर वह सूक्ष्म शरीर है, जो पूरे स्थूल शरीर मे फैला हुआ होता है और पूरे शरीर को ऊर्जा देता है। शरीर-विज्ञान के अनुसार हर कोशिका मे ऊर्जा का निर्माण होता है और अध्यात्म के अनुसार चेतना के असख्य प्रदेशो मे प्राण व्याप्त है।

कार्मण शरीर

कार्मण शरीर सूक्ष्मतम माना गया हैं। अध्यात्म के अनुसार ज्ञान, दृष्टि, सवेदनशीलता, आसक्ति, शरीर-सौष्ठव, बाह्य परिवेश, विघ्न-बाधाए और जीवन की अवधि आदि सभी का निर्धारण कार्मण शरीर मे होता है। कार्मण शरीर का शरीर-विज्ञान मे संवादी-तत्र है अन्त स्रावी ग्रथि-तत्र। इस प्रकार प्रतीत होता है कि ग्रन्थि-तत्र के स्रावो और कर्मस्रावो मे समानता है। हमारी कोशिकाओ मे स्थित गुण-सूत्र (chromosomes) और जिन्स (genes) ग्रथियो को प्रभावित करने वाले हैं। कर्म-शास्त्रीय दृष्टि से नाम-कर्म और गुण-सूत्र व जिन्स मे बहुत ही साम्य नजर आता है।

शरीर-प्रेक्षा द्वारा प्रत्येक कोशिका की प्रेक्षा करके हम न सिर्फ हमारी ऊर्जा के व्यय को रोकते हैं, बल्कि कार्मण शरीर को प्रभावित करते हैं। पहले हम गहराई तक भीतर चित्त को ले जाकर औदारिक शरीर को देखते हैं। हमे जिन स्पन्दनो का अनुभव होता है, वे होते है परिवहन-तन्त्र के और रासायनिक परिवर्तनो के। जब और गहराई मे जाते हैं तब हम कोशिकाओ के भीतर ऊर्जा का अनुभव करते हैं। गुण-सूत्र और जिन्स के कार्यो के प्रभाव हमारे अनुभव मे आते है।

शरीर-प्रेक्षा मे हमारा ज्ञान और दृष्टि का आवरण हटता है। हम

---

१ उत्तराध्ययन, ३२/२४, २९, ३७, ३८, ५०, ५१, ६३, ६४, ७६, ७७, ८९, ९०.

अपने आपको और शरीर को नये-नये पहलुओं से जानते और देखते हैं। सवेदनशीलता नई दृष्टि के साथ विकसित होती है।

५.४.२ प्रयोजन

आत्म-दर्शन की प्रक्रिया

शरीर हमारी आत्मा है। जब तक उसमे प्राण-शक्ति का सचार है तब तक शरीर को सर्वथा अनात्मा नही कह सकते। अगुली इसलिए हिलती है कि वह आत्मा है, शरीर मे आत्मा के असख्यात प्रदेश फैले हुए हैं।

आत्म-दर्शन का पहला प्रयोग है—शरीर को देखना।

शरीर को हम तब देख सकते है, जब शरीर-प्रेक्षा का अभ्यास करें, बाहर और भीतर चित्त को टिकाए, एकाग्र करे। शरीर के भीतर जो प्राण के प्रकम्पन हो रहे हैं, जो रसायन काम कर रहे हैं, विद्युत् काम कर रही है, उसे देखें। हमारे शरीर की "कैमेस्ट्री" अलग है, अलग ही काम कर रही है। उन सारे परिवर्तनो को जब तक हम नही देख पाते, तब तक आत्म-दर्शन की बात नही होती।

आत्मा के शुद्ध स्वरूप की यात्रा का प्रस्थान है—श्वास-दर्शन। दूसरा प्रस्थान है—शरीर-दर्शन यानी शरीर-प्रेक्षा।

शरीर-प्रेक्षा की यह प्रक्रिया अन्तर्मुख होने की प्रक्रिया है। सामान्यत बाहर की ओर प्रवाहित होने वाली चैतन्य की धारा को अन्तर की ओर प्रवाहित करने का प्रथम साधन स्थूल शरीर है।

स्थूल शरीर के भीतर तैजस और कार्मण—ये दो सूक्ष्म शरीर हैं। उनके भीतर आत्मा है। शरीर की क्रियाओ और सवेदनो को देखने का अभ्यास करने वाला क्रमशः तैजस और कार्मण—शरीर को देखने लग जाता है। शरीर-प्रेक्षा के दृढ अभ्यास और मन के सुशिक्षित होने पर शरीर मे प्रवाहित होने वाली चैतन्य की धारा का साक्षात्कार होने लग जाता है।

५.४.३. निष्पत्तियां

प्राण का सतुलन

शरीर-प्रेक्षा का महत्त्वपूर्ण परिणाम है—प्राण-प्रवाह का सतुलन। शरीर-प्रेक्षा आध्यात्मिक प्रक्रिया है। साथ-साथ यह मानसिक और शारीरिक प्रक्रिया भी हैं। स्वास्थ्य के लिए भी बहुत बड़ी चिकित्सा है-प्राण-चिकित्सा। शरीर-प्रेक्षा करने वाला केवल आध्यात्मिक प्रयोग ही नही कर रहा है, साथ-साथ मे प्राण-चिकित्सा का प्रयोग कर रहा है, बीमारियो की चिकित्सा भी कर रहा है।

यदि प्राण-शक्ति का सतुलन बना रहे, तो कोई बीमारी नही हो सकती। असतुलन ही मनुष्य को बीमार बना रहा है। कही प्राण ज्यादा हो गया और कही कम हो गया, सतुलन बिगड गया। पूरे शरीर मे प्राण-धारा का एक सतुलन होना चाहिए। शरीर मे विद्यूत् का प्रवाह सतुलित रहना चाहिए। वह सतुलन बिगडा और आदमी बीमार बन गया। प्रेक्षा करने वाला पूरे शरीर को देखता है—सिर से पैर तक देखता है। देखने का मतलब है, जहा चित्त जाता है, वहा प्राण जाता है। चित्त और प्राण दोनो साथ-साथ जाते है। चित्त केन्द्रित हुआ, प्राण को उसके साथ जाना ही होगा। प्राण चित्त का अनुचारी है, अनुगामी है। पूरे शरीर मे प्राण की यात्रा होती है। जो सतुलन बिगडा हुआ होता है, वह सतुलन फिर ठीक हो जाता है। परिणाम-स्वरूप जहा चेतना पर आया हुआ आवरण दूर होता हैं, वहा साथ ही प्राण-शक्ति, ज्ञानततुओ एव कर्म-ततुओ के पर्याप्त उपयोग तथा मासपेशियो व रक्तसचार (blood circulations) क्षमता मे सतुलन के माध्यम से अभीष्ट मानसिक एव शारीरिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

रोग-प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास

शरीर मे रोग न होने का दूसरा उपाय है—रोग-प्रतिरोधक शक्ति का विकास। जब रोग-प्रतिरोधक शक्ति प्रवल होती है, तब किसी भी प्रकार के रोग के कीटाणु आक्रमण नही कर सकते। वे आते है और पराजित होकर भाग जाते हैं। जिस व्यक्ति की प्रतिरोधात्मक शक्ति मजबूत है, उसे कीटाणु सताने का प्रयत्न करते हैं, पर सता नही पाते। हम शरीर-प्रेक्षा के द्वारा रोग-प्रतिरोधक शक्ति को सक्षम वनाते हैं, उसकी एक मजबूत दीवार खडी करते हैं, जिससे कि कोई आक्रमण न कर सके।

शरीर-प्रेक्षा की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण निष्पत्ति है—चेतना के साथ जुडी हुई आस्था का निर्माण। उस आस्था के आधार पर सचालित होने वाली नई आदतो का निर्माण। शरीर-प्रेक्षा उत्सर्जन-तत्र को सक्रिय एव सक्षम बनाए रखने मे सहायक होती है, जिससे शरीर का विष सहजतया विसर्जित हो जाए।

शरीर-प्रेक्षा के द्वारा रक्त-सचार-तत्र ठीक काम करने लग जाता है, रक्त-सचार मे होने वाले अवरोध दूर हो जाते हैं, धमनियो के अवरोध दूर होते हैं। रक्त-चाप सतुलित होता है। हृदय को अतिरिक्त श्रम नही करना पडता और वह लम्बे समय तक कार्यक्षम हो सकता है।

शरीर-प्रेक्षा का प्रभाव पाचन-तत्र पर पडने से आमाशय, यकृत, आत आदि सभी अवयवो की कार्य-प्रणाली ठीक चलने लगती हैं। इससे प्रत्येक कोशिका को पर्याप्त मात्रा मे पोषक तत्त्व मिल सकते हैं। प्रत्येक मासपेशी

अपना कार्य सुचारू रूप से संचालित करने के लिए उद्यत रह सकती है। सभी उदर-संबंधी रोगों का स्वतः निवारण हो जाता है।

शरीर-प्रेक्षा का सीधा प्रभाव नाड़ी-तंत्र पर पड़ता है। हमारे मस्तिष्क और मन से संबंधित सारी गड़बड़ियां नाड़ी-तंत्र के अवरोधों और विकृतियों के कारण पैदा होती हैं। जब नाड़ी-तंत्र शुद्ध होता है, तो सारी मानसिक बीमारियां (आधियां) स्वतः समाहित हो जाती हैं।

५. ५. सारांश (Summary)

हमारे जीवन का आधारभूत अंग शरीर है। इसका सम्यक् प्रशिक्षण जीवन को स्वस्थता एवं सफलता कि दिशा में ले जाता है। यह शरीर प्रशिक्षण के अभाव में बीमारी एवं निराशा का कारण बन जाता है। प्रशि-क्षण के लिए ज्ञान एवं अभ्यास जरूरी है। शरीर क्या है ? इसका सम्यक् ज्ञान वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं आध्यात्मिक दृष्टि से अपेक्षित है। प्रायोगिक अभ्यास के लिए आसन, कायोत्सर्ग एवं शरीर प्रेक्षा सशक्त माध्यम हैं।

शरीर

वैज्ञानिक दृष्टि से शरीर अनेक तंत्र से बना है। वे तंत्र हैं- अस्थि तंत्र, मांसपेशी तंत्र, रक्त परिसंचरण तंत्र, श्वसन तंत्र, पाचन तंत्र, उत्सर्जन तंत्र, नाड़ी तंत्र, ग्रन्थि तंत्र व प्रजनन तंत्र।

आध्यात्मिक दृष्टि से हमारा शरीर अपने भीतर तीन शरीर को समाहित किये हुए है—औदारिक शरीर (स्थूल शरीर), तैजस शरीर, कार्मण शरीर। शरीर के विभिन्न तंत्र इस औदारिक शरीर में स्थित हैं।

आसन

वैज्ञानिक दृष्टि से शरीर के तंत्रों को स्वस्थ रखने के लिए आसनों का बहुत महत्व है। इससे अस्थि तंत्र, मांसपेशी तंत्र, पाचन तंत्र, विसर्जन तंत्र, रक्त परिसंचरण तंत्र, नाड़ी तंत्र, अन्तः स्रावी ग्रन्थि तंत्र शक्तिशाली बनते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से आसन ध्यान-सिद्धि एवं शक्ति-संवर्धन में सहायक बनते हैं। इससे लाभ-अलाभ, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों को सहने की शक्ति विकसित होती है। इसे करते समय अनेक सावधानियां भी बरतनी आवश्यक है।

मुद्रा हमारे आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति है। मुद्राओं का अभ्यास भाव परिवर्तन में सहायक होता है।

कायोत्सर्ग

वैज्ञानिक दृष्टि से कायोत्सर्ग दबाव व तनाव को दूर कर तनाव-मुक्त

व शिथिल रहने की प्रक्रिया है। आन्तरिक व बाह्य दबाव से अनुकम्पी तन्त्र की सक्रियता बढ जाती है। अन्तत मासपेशियो मे तनाव बढ जाता है। कायोत्सर्ग से परानुकम्पी सक्रिय हो जाती हैं तथा अनुकम्पी की सक्रियता सतुलित हो जाती है। शरीर की शिथिलता मे सही मुद्रा, आसन व स्वर-यत्र का कयोत्सर्ग भी सहायक बनते हैं।

आध्यात्मिक दृष्टि से कायोत्सर्ग अध्यात्म यात्रा का प्रथम सोपान है। चचलता को दूर कर स्थिरता एव जागरूकता का प्रयोग है। स्थूल शरीर से परे जाने का साधन है। शरीर से भिन्न अपने आपको जानने का प्रयोग है। इससे व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप आत्मा तक पहुच जाता है। वहा पर दु ख के मूल को पहचान लेता है। सहिष्णुता, अभय, व शिथितीकरण—यह कायोत्सर्ग का त्रिआयामी आध्यात्मिक स्वरूप हैं।

आध्यात्मिक दृष्टि से कायोत्सर्ग का मुख्य प्रयोजन आध्यात्मिक विकास है। अध्यात्म की यात्रा को प्रारम्भ करने, शक्ति को बढ़ाने, स्वभाव बदलने, चित्त-शुद्धि करने एव समस्या को समाहित करने के लिए कायोत्सर्ग किया जाता है। व्यावहारिक दृष्टि इसका प्रयोग मनोकायिक बिमारियो से मुक्ति पाने के लिए होता है।

इसका प्रभाव/परिणाम शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक सभी स्तरो पर होता है।

शरीर प्रेक्षा

आध्यात्मिक दृष्टि से शरीर प्रेक्षा आत्म साक्षात्कार की प्रक्रिया है। चित्त को सूक्ष्म एव पटु बनाना शरीर प्रेक्षा का मुख्य प्रयोजन है। औदारिक शरीर, तैजस् शरीर एव कार्मण शरीर के सस्कार को देखते हुए उसमे बह रही चेतना को देखना शरीर प्रेक्षा की अन्तिम परिणति है। वैज्ञानिक दृष्टि से शरीर के प्रति जागरूकता से देखना शरीर के सम्पूर्ण तन्त्रो को स्वस्थ बनाता है। यह प्रक्रिया रोग-प्रतिरोधात्मक शक्ति को बढ़ाती है।

५.६- सहायक सामग्री

१ प्रेक्षा ध्यान : शरीर प्रेक्षा, आचार्य महाप्रज्ञ
जैन विश्व भारती, लाडनू (राज०)

२ जैन धर्म जीवन और जगत, साध्वी कनकश्री
जैन विश्व भारती, लाडनू (राज०)

३ प्रेक्षाध्यान आसन-प्राणायाम, मुनि किशनलाल,
जैन विश्व भारती, लाडनू (राज०)

४ प्रेक्षाध्यान : कायोत्सर्ग, आचार्य महाप्रज्ञ
जैन विश्व भारती, लाडनू (राज०)

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. मानव-शरीर के नाड़ी-तंत्र, परिसंचरण-तंत्र, श्वसन-तन्त्र, पाचन-तंत्र तथा विसर्जन-तन्त्र का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।

२. आध्यात्मिक दृष्टि से शरीर का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए और जैन-दर्शनोक्त तैजस शरीर और कार्मण शरीर का परिचय दीजिए ।

३. आसन का संबंध स्पष्ट करते हुए आसन का आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से महत्त्व पर प्रकाश कीजिये ।

४. व्यायाम से योगासन की श्रेष्ठता क्या है ?

५. कायोत्सर्ग का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए और आधुनिक युग मे "तनाक-मुक्ति" के लिए प्रयुक्त किये जा रहे विभिन्न उपायो के उल्लेख सहित कायोत्सर्ग की विशिष्ट उपयोगिया बताइये ।

६ तनाव और तनाव-मुक्ति का तात्पर्य प्रकट करते हुए स्पष्ट कीजिये कि तनाव के कारण आन्तरिक तन्त्रो की बार-बार सक्रियता से शरीर-स्वास्थ्य को कैसे हानि पहुचती है ।

७. कायोत्सर्ग की वैज्ञानिक दृष्टि से महत्ता क्या है ।

८. कायोत्सर्ग की आध्यात्मिक दृष्टि से उपयोगिता क्या है ।

९. कायोत्सर्ग का मन.कायिक प्रयोजन और आध्यात्मिक प्रयोजन स्पष्ट कीजिए ।

१०. कायोत्सर्ग की निष्पत्तियां क्या-क्या हैं ।

११. आत्मा के दर्शन में शरीर-प्रेक्षा का क्या उपयोग है ? स्पष्ट कीजिए ।

१२. शरीर-प्रेक्षा से मानसिक एव शारीरिक चिकित्सा में जो लाभ होते हैं, उन्हे स्पष्टतया समझाएं ।

अध्याय-६

श्वास और प्राण का प्रशिक्षण

रूपरेखा

१. प्राण
   - प्राण : वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific perspective)
   - प्राण आध्यात्मिक दृष्टिकोण (Spiritual perspective)

२. प्राणायाम (Pranayam)

३. अन्तर्यात्रा (Internal trip)

४. श्वास : (Breathing)
   - श्वास : वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific perspective)
   - श्वास : आध्यात्मिक दृष्टिकोण (Spiritual perspective)

५. श्वास प्रेक्षा (Perception of Breathing)
   - प्रयोजन : (Purpose)
   - निष्पत्ति : (Result)

६. सारांश (Summary)

७. सहायक सामग्री (Related Readings)

८. अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions)

६. श्वास और प्राण का प्रशिक्षण

६.१.१. प्राण : वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Pran : Scientific perspective)

योगी के अनुसार सम्पूर्ण आकाश मण्डल प्राण से, शक्ति से परिपूर्ण है। जैन दर्शन के अनुसार जीव के काम आने वाले पौद्गलिक स्कध (वर्गणाए) सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त है। विश्व मे प्रत्येक पदार्थ इसी प्राण से अभिव्यक्त हुआ है। यह विचार आधुनिक न्यूक्लीयर भौतिक शास्त्र (nuclear Physics) का सवादी विचार है। जिसके अनुसार ससार का प्रत्येक पदार्थ ऊर्जा का ही सगठित रूप है। आइस्टीन के विख्यात सूत्र—$E=mc^2$ के अनुसार पदार्थ ऊर्जा मे रूपातरित हो सकता है और ऊर्जा पदार्थ में। प्राण के दो रूप सामने आते हैं। एक वह प्राण है जो अविभक्त रूप से सम्पूर्ण आकाश मण्डल मे व्याप्त है। दूसरा वह प्राण है जो ऊर्जा के सभी सभावित रूपो मे विभक्त एव अभिव्यक्त हुआ है। चुम्बकीय शक्ति, विद्युत शक्ति, गुरुत्वाकर्षण शक्ति सभी प्रकार की शक्तिया प्राण की ही अभिव्यक्तियां है। हम प्राण के समुद्र मे रह रहे हैं। योगी के अनुसार जीवन का लक्षण है बाह्य प्राण को ग्रहण करने की क्षमता, सग्रहित रखने की क्षमता तथा आन्तरिक व बाह्य जगत् के कार्य के लिए आतरिक प्राण के रूपान्तरण की क्षमता।

प्रश्न हो सकता है कि प्राण को ऊर्जा या शक्ति ही क्यो नही कहा गया ? शक्ति या ऊर्जा शब्द बहुत विस्तृत है। यह पदार्थोन्मुखी तथा भौतिकता का प्रतीक अधिक बनता है। योगी के अनुसार विचार भी प्राण का ही एक सूक्ष्म रूप है। जबकि ऊर्जा शब्द अपने आप भिन्न अभिव्यक्ति देता है। योगी के अनुसार प्राण हवा मे है किन्तु यह ऑक्सीजन, नाइट्रोजन या अन्य कोई रासायनिक गैस नही है। प्राण भोजन मे है किन्तु यह कोई विटामिन्स नही है। प्राण सूर्यकिरणो मे है किन्तु यह कोई परावेगनी या अन्य प्रकार की कोई किरणें नही हैं। भोजन, पानी, सूर्य किरणे, हवा—ये सभी बाह्य प्राण के सवाहक हैं जिन पर सम्पूर्ण जीव जगत् आधारित है। बाह्य प्राण सम्पूर्ण शरीर मे गतिशील होता है। हमारे जीवन का वास्तविक पोषणहै। प्राण के विना जीवन सभव नही। हमारी क्षमताए भी प्राण का ही सूक्ष्म व विशिष्ट रूप है। जीव प्राण के माध्यम से शरीर को जीवन्त बनाता है।

योगी इस वाह्य प्राण के अस्तित्व को ही नही प्रस्तुत करते किन्तु

इसके अन्य अनेक महत्वपूर्ण तथ्यो को भी उजागर करते हैं। उनके अनुसार इस वाह्य प्राण का सग्रह मुख्यत तन्त्रिका-तत्र मे, प्रमुख रूप से मणिपुर चक्र मे, प्रेक्षाध्यान की भाषा मे तैजस् केन्द्र मे होता है इस प्राण को स्वेच्छा से सचालित किया जा सकता सकता है। यह तथ्य योग साधना का एक मौलिक आधार बनता है। योगशास्त्र इसकी प्रक्रिया को भी प्रस्तुत करता है।

वायु में स्थित प्राण

वायु हमारे आतरिक प्राण का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। हजारो वर्ष पूर्व प्राचीन योग के आचार्यो ने इस बात को प्रकट कर दिया था कि सम्पूर्ण लोक सूक्ष्म ऊर्जा से स्पदित है। 'लोय च पास विप्फदमाण'[1]—देखो! लोक स्पन्दित हो रहा है। और यही ऊर्जा अन्य सभी ऊर्जाओ का मूल स्रोत है और यह ऊर्जा हमारे शरीर मे भी विद्यमान है।

इस प्रस्तुत प्राण तत्व की तुलना आज के वैज्ञानिक अन्वेषणो से प्राप्त सिद्धान्तो से की जा सकती है। एण्डर वान लिसबेथ ने अपनी पुस्तक 'प्राणायाम' मे हवा में स्थित प्राण की तुलना विद्युत आवेशित कणो [electically charged particles] विशेष रूप से ऋण आवेशित कणो [negative ions] से की है। इन्हे हवा के साथ शरीर मे ग्रहण करने पर विद्युतीय चयापचय की प्रक्रियाए शरीर मे घटित होती है। 'वायुमडलीय विद्युत का हमारे जीवन पर प्रभाव'—इस विषय पर कुछ वैज्ञानिक विशेष रूप से कार्यरत हैं। प्रोफेसर ब्लेस ने अपनी पुस्तक 'Biological-Coditions created by the Electrical Properties of the Atmosphere' मे इस पर विस्तार से विवेचन किया है।

प्राण—विद्युत आवेशित कण

यह देखे कि कण विद्युत आवेशित कैसे होते हैं? इसका स्पष्ट उदाहरण आकाश मे बिजली की चमक है। आकाश मे धन एव ऋण आवेश बनने से बिजली चमकती है।

विद्युत आवेशित कण 'आयन' (Ions) एक परमाणु या खड है जो विद्युत से आवेशित होता है। ये कण (ions) जीवत कोशिकाओ के सक्रिय कार्यकर्ता है। वायुमडल मे दो प्रकार के कण होते है।

(क) लघु ऋणात्मक कण (Small negative ions)

(ख) वृहत् कण (large ions)

(क) लघु ऋणात्मक कण या सामान्य कण, विद्युत की दृष्टि से अत्यधिक सक्रिय होते है। ये कण अपनी शुद्ध दशा मे भरपूर शक्ति के सवाहक होते है। श्वास वायु मे यह कण एक या अनेक ऑक्सीजन या नाइट्रोजन

1. आयारो ४।३७

के कणों से निर्मित होते है। अपने साथ ये कण विद्युत आवेश (electric charge) को लाते है जो कि एक इलेक्ट्रान के बराबर होता है। ये ऋणात्मक विद्युत कण ही जीव मे शक्ति का सचार करते है। वस्तुत ये ऋणात्मक विद्युत कण ही वायुमडलीय प्राण का प्रतिनिधित्व करते है।

(ख) दूसरे प्रकार के कण वृहत् एव मद गति के होते हैं। ये अनेक अणुओ (Polymolecular nucleus) से बने होते है। अत ये छोटे कणो से आकार मे बडे होते हैं। ये कण एक प्रकार से छोटे कणो का भक्षण करते रहते हैं।

छोटे कण बहुत तीव्र एव अत्यन्त गतिशील होते हैं। वायु मे बडे कणो की अधिकता एव छोटे कणो की कमी से वायु की प्राणवत्ता कम हो जाती है। प्रदूषण, धूध, कोहरा, मिट्टी की हवा मे अधिकतर ऐसी स्थिति बनती है। उस समय बडे कणो की अधिकता होती है तव छोटे कणो की न्यूनता हो जाती है इसलिए शहरो के प्रदूषित वातावरण मे वडे कणो की आनुपातिक मात्रा अधिक हो जाती है। गावो मे जहा हवा शुद्ध है वहा प्रति एक बडे कण (Large ions) के अनुपात मे दो या तीन छोटे कण होते हैं। छोटे शहरो मे यह प्रति २७५ वडे कणो की अनुपात में एक छोटा कण हो जाता है। जहा वडे शहरो मे प्रदूपण वहुत अधिक है वहा यह ७३० वडे कणो के अनुपात मे एक छोटा कण तक हो जाता है हम इन छोटे कणो के महत्व को समझें। ये शरीर की कोशिकाओं के जीवत एव सक्रिय कार्यकर्त्ता है। इससे यह सहज समझ मे आ जाता है कि शहरो की हवा मे प्राणशक्ति का कितना अभाव है।

ये तथ्य अध्यात्म के सिद्धातों की व्याख्या एव पुष्टि करते है कि प्राण न तो ऑक्सीजन है, न ही नाइट्रोजन या अन्य कोई रासयनिक घटक जो वायुमण्डल का निर्माण करते है। क्योकि सामान्यतया वायुमडल के ऑक्सीजन के अनुपात मे बहुत अधिक अन्तर नही आता है। वह तो लगभग एक जैसा ही रहता है। शहरो की वायु की प्राणवत्ता मे कमी तो वहा की वडे कणो (large ions) की अत्यधिकता है। इस अत्यधिकता के कारण हवा मे ताजगी व शक्तिदायक क्षमता कम ही होती है। शहर मे वाहनो एव फैक्टरियो का धुआ व विषैली गैसे इन छोटे कणो का भक्षण कर लेती है। इससे हवा मे जो प्राणशक्ति है वह कम होती चली जाती है।

प्राण का संचार

ये कण पुन ऋण आवेशित व शक्तिशाली कैसे होते है? इसको भी जानना आवश्यक है। जब ऑक्सीजन परमाणु मे पुन विद्युत ऊर्जा का सचार होता है तो वे शक्तिसम्पन्न वन जाते हैं। यह प्रक्रिया प्राकृतिक ऊर्जा स्रोतो

के प्रभाव से घटित होती रहती है। पृथ्वी की अपनी विकिरणो से, सूर्य की रश्मियो से, अन्तरिक्ष विकिरणो से, समुद्री लहरो से, वाष्पीकरण से, यह प्रक्रिया चलती रहती है।

प्राणो की अपनी अधिकतम सक्रियता, ताजगी व प्राणवत्ता के लिए इन ऋणात्मक छोटे कणो का निरन्तर ग्रहण व अपने मे परिणमन (assimilation) करना होता है तथा साथ ही उपयोग मे आ चुके अनुपयोगी कणो का विसर्जन भी आवश्यक होता है। निरन्तर इस प्राण ऊर्जा से आप्लावित रखना स्वस्थ जीवन के लिए अनिवार्य है।

स्वस्थ शरीर वह होता है जिसमे इस प्राण का प्रवाह निरन्तर प्रावहित होता है जैसे बहता पानी निर्मला। अस्वस्थ शरीर वह होता है जिसमे यह प्राण का प्रवाह (ग्रहण, परिणमन व उत्सर्जन) अवरुद्ध हो जाता है। पानी का प्रवाह रुक जाता है, गदा हो जाता है। इस प्रकार एण्डर वान लीसवेथ ने पश्चिम मे हुए अन्वेषणो के आधार पर इस विश्वास को अभिव्यक्त किया है कि हवा मे स्थित प्राण का एक मुख्य रूप ऋणात्मक विद्युत कण है। ये कण आक्सीजन परमाणुओ से अभिव्यक्त हुए है। जिसका परिणमन शरीर मे विभिन्न अवयवो द्वारा होता है।

६.१.२. प्राण : आध्यात्मिक दृष्टिकोण

आधुनिक युग मे जो महत्व विद्युत ऊर्जा का है वही महत्व अध्यात्म योग मे प्राण उर्जा का है। मान ले कि हम दो हजार वर्ष पूर्व किसी योगी के पास पहुच गये है और उसे आधुनिक सभ्यता के बारे मे बता रहे हैं। क्रेन, ट्रेन, राकेट, हवाई जहाज, जूस मशीन, रेडियो, T V, उपग्रह आदि के बारे मे चर्चा कर रहे है किन्तु यदि विद्युत ऊर्जा के बारे मे चर्चा न करे तो आधुनिक युग की सभ्यता का सही रूप प्रस्तुत नही कर पायेगे। ये सब यत्र किसके द्वारा चलते हैं ? उस योगी को कुछ भी समझ मे नही आयेगा।

यदि हम प्राण को नही समझेगे, उसका मूल्याकन नही करेंगे, शरीर मे उसके प्रभाव को नही आकेंगे, कैसे उसको सग्रहीत किया जाना है ? नही जानेंगे, कैसे सचालित किया जाता है ? नही सीखेंगे तो हम अध्यात्म साधना के एक महत्वपूर्ण पहलू से अपरिचित और वचित रह जायेगे। हा, यह सत्य है कि इसके बिना भी आसन और ध्यान किये जा सकते हैं और उससे कुछ हद तक प्राण स्वत सतुलित भी होता है। किंतु प्राण पर पूर्ण अधिकार पाने के लिये साधक को और भी बहुत कुछ करना होता है। साधना मे साधक एक सीमा पर पहुच जाता हैं, जहा से उसे एक छलाग लगाने की आवश्यकता होती है। आगे अध्यात्म की गहराइयों मे प्रवेश करने की आवश्यकता होती

है वहा प्रबल प्राण शक्ति उसके लिये बहुत बडा सहारा बन जाती है। उसके लिए अध्यात्म की घाटियो को, कठिनाइयो को, उबड-खाबड राह को पार करना सरल हो जाता है।

प्राण का स्वरूप

यह जानना आवश्यक है कि प्राण क्या है ? आचार्यश्री तुलसी के अनुसार प्राण जीवनी शक्ति है। यह सम्पूर्ण जीवन को चलाने वाली ऊर्जा है। इसके सयोग से जीव जीवन अवस्था को प्राप्त होता है एव वियोग से मरण अवस्था को। प्राण जीव का वाहरी लक्षण है। यह जीव जी रहा है ऐसी प्रतीति प्राण से ही होती है।

स्वामी श्री शिवानद के अनुसार विश्व मे व्याप्त सभी प्रकार की शक्तियो का योग प्राण है। वास्तव मे यह प्राण की बहुत विस्तृत व्याख्या है। जैन दर्शन के अनुसार इसकी तुलना जीव के काम मे आने वाले पोद्गलिक स्कन्धो (वर्गणाए) से की जा सकती है। वे सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त है।

ऐतरेयारण्यक मे प्राण के वारे मे कहा गया है—

प्राण · प्राणो वा आयु ।
यावदस्मिच्छरीरे प्राणो वसति तावदायु ॥

जब तक शरीर मे प्राण रहता है तब तक आयु की स्थिति समझनी चाहिए।

शखायन आरण्यक मे प्राण-शक्ति के विषय मे निम्न सूक्त मिलता है—

"रेतो वै प्राण·"

हमारे शरीर मे जो प्राण, शक्ति, बल, ऊर्जा और तेज दृष्टिगत होता है, उसे ही प्राण माना गया है।

[१] हवाई द्वीप के लोग कहा करते थे कि हमारे शरीर मे एक ऐसी शक्ति होती है जिसके वाहर होते ही मनुष्य मर जाता है। इस प्राण ऊर्जा को "न्यूमा" भी कहा जाता है।

[२] कुछ वैज्ञानिक प्राण की परिभाषा मे कहते हैं, नलिकाविहीन ग्रन्थियो से जो जीवन रस तैयार होता है वही हमारा प्राण तत्व है।

[३] कुछ लोगो का कहना है, वायु मे व्याप्त रासायनिक परमाणु विशेष का रूपान्तरण प्राण है,

[४] ज्योतिषी लोगो का अभिमत है, आइनोस्वगेटिक प्लाज्मा जो हमारे चारो ओर अकाश गगा के घर्षण से उत्पन्न होकर छाया रहता है, वही प्राण तत्व है। गुरूत्वाकार्षण के साथ यही शक्ति होती है।

[५] साधको का अपना अनुभव है कि प्राण वह ऊर्जा-विद्युत है जिसे

चित्र से दिखाया नही जा सकता और शब्दो मे बताया नही जा सकता। उनके अनुभव मे यह प्राण प्रकाशात्मक है।

स्वामी विवेकानद 'साइकिक फोर्स' के नाम से इस ऊर्जा की व्याख्या करते थे।

प्राण क्या है ? योगी लोगो का कथन है कि प्राण तैजस और वायु इन दो तत्वो के मिश्रण से बनता है। तैजस के बिना शक्ति का जन्म नहीं होता और वायु के बिना उस शक्ति का सचार, सम्प्रेषण नही होता है।

प्राण-शक्ति एक है, उसे विभाजित नही किया जा सकता, सचालन की दृष्टि से सम्पूर्ण शरीर मे परिभ्रमण करती हुई यह शक्ति अलग-अलग स्थालो पर भिन्न-भिन्न कार्य करती है अत योग के आचार्यों ने शरीर मे स्थित प्राण को परम्परानुसार पाच विभागो मे विभाजित किया है

सामूहिक रूप से इन्हे 'पच प्राण' कहा जाता है।

[१] प्राण—यह सम्पूर्ण शरीर मे नही वरन अग विशेष मे स्थित प्राण है। कठनली तथा श्वास पटल (diaphragm) के मध्य इसकी स्थिति है। श्वसन अग, वाणी सम्बन्धी अग, निगल या अन्न नलिका (gullet) आदि से इसका सम्बन्ध है। साथ ही इन्हे क्रियाशील बनाने वाली मासपेशियो से भी सम्बन्ति है। यह वह शक्ति है कि जिसके द्वारा श्वास नीचे की ओर खीची जाती है।

[२] अपान—यह नाभि प्रदेश के नीचे स्थित है। यह शक्ति बडी आत को बल प्रदान करती है। वृक्क, गुदा-द्वार तथा मूत्रेन्द्रियो को भी शक्ति देती है। अत प्राथमिक रूप से इसका सम्बन्ध प्राणवायु के गुदा-द्वार तथा साथ ही नासिका एव मुख के द्वारा निष्कासन से है।

[३] समान—इसका सम्बन्ध छाती एव नाभि के मध्यवर्ती क्षेत्र से है। यह प्राण पाचन सस्थान, यकृत, आत, क्लोम, एव जठर तथा उनसे रस स्राव को प्रेरित तथा नियन्त्रित करता है। दिल तथा रक्त-परिसचरण को भी क्रियाशील बनाता है। भोज्य पदार्थो के पाचन मे अनुकूलता लाता है।

[४] उदान—इस प्राण-शक्ति द्वारा कठ नली से ऊपर के भागो का नियत्रण होता है। नेत्र, नासिका, कान आदि सम्पूर्ण शरीर की इन्द्रिया तथा मस्तिष्क इस शक्ति द्वारा कार्य करते हैं। इसकी अनुपस्थिति मे हममे सोच विचार की शक्ति नही रह जाएगी।

[५] व्यान—यह जीवनी शक्ति सम्पूर्ण शरीर मे व्याप्त है। यह अन्य शक्तियो के मध्य सहयोग स्थापित करती है। समस्त शरीर की गति-विधियो को नियमित व नियंत्रित करती है। सभी शारीरिक अगो तथा उनसे सम्बन्धित मासपेशियो, पेशीय ततुओ, नाडियो एव सन्धियों में समरूपता

लाती है, तथा उन्हे क्रियाशील बनाती है। यह शरीर की लम्बरूप स्थिति के लिए भी जिम्मेदार है।

महर्षि अरविंद ने प्राण को चार भागो मे विभाजित किया है—निम्न प्राण, निम्नतर प्राण, उच्चप्राण, उच्चतर प्राण। कुछ योगाचार्यों ने मंद, मध्यम और गहन ये तीन भेद बताये हैं। मद प्राण वाले व्यक्ति के विचार बिखरे और उलझे होते हैं। वह किसी को प्रभावित नही कर पाता। मध्यम प्राण वाला कुछ अधिक स्पष्ट और शिष्ट व्यवहार वाला होता है। वह प्राणायाम द्वारा एकाग्रता मे अपूर्व विकास कर सकता है। गहन प्राण के लोग सूक्ष्म विचारक, स्थिर मति तथा प्रभावी हाते हैं। ऐसे लोगो का परिवार, समाज तथा देश मे बहुसख्यक होना सपूर्ण विश्व के लिए कल्याणकारी होता है।

प्राण : जैन दृष्टिकोण

जैन दर्शन के अनुसार हमारा शरीर तीन शरीरो को समाहित किये हुए है—औदारिक, तैजस् एव कार्मण। कार्मण शरीर संस्कारों का आवास है। तैजस् शरीर औदारिक शरीर को शक्ति प्रदान करता है। यह शक्ति प्राण के रूप मे औदारिक शरीर मे पहुंचती है।

प्राण और तैजस् शरीर

प्राण का ग्रहण, परिणमन और उत्सर्जन
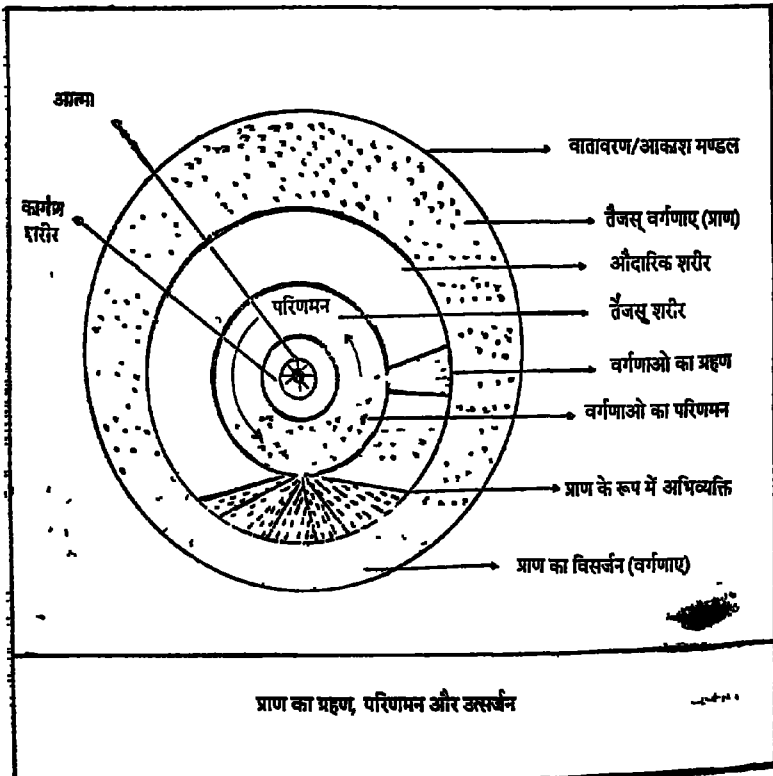
स्थूल शरीर (औदारिक शरीर) मे चैतन्य की अभिव्यक्ति प्राण द्वारा होती है। यह तैजस् शरीर से स्थूल शरीर मे आता है। तैजस् के परमाणु (तैजस् वर्गणाए) आकाश मंडल मे व्याप्त हैं। उन परमाणुओं का स्थूल शरीर से आकर्षण एव ग्रहण होता रहता है तथा उनका तैजस् शरीर मे परिणमन होता है। वह अधिक मात्रा मे होता है, तब तैजस् शरीर पुष्ट हो जाता है और कम मात्रा मे होता है, तब तैजस् शरीर क्षीण हो जाता है। तैजस् शरीर से स्थूल शरीर मे एक ही प्रकार की प्राण शक्ति का विकिरण होता है। वह प्राण शक्ति स्थूल शरीर से जुडकर अनेक प्रकार के कार्य करती है एव पुन॰ आकाश-मण्डल मे विसर्जित हो जाती है। कार्य-भेद के आधार पर वह स्थूल शरीर मे दस भागो मे विभक्त हो जाती है।

प्राण के प्रकार
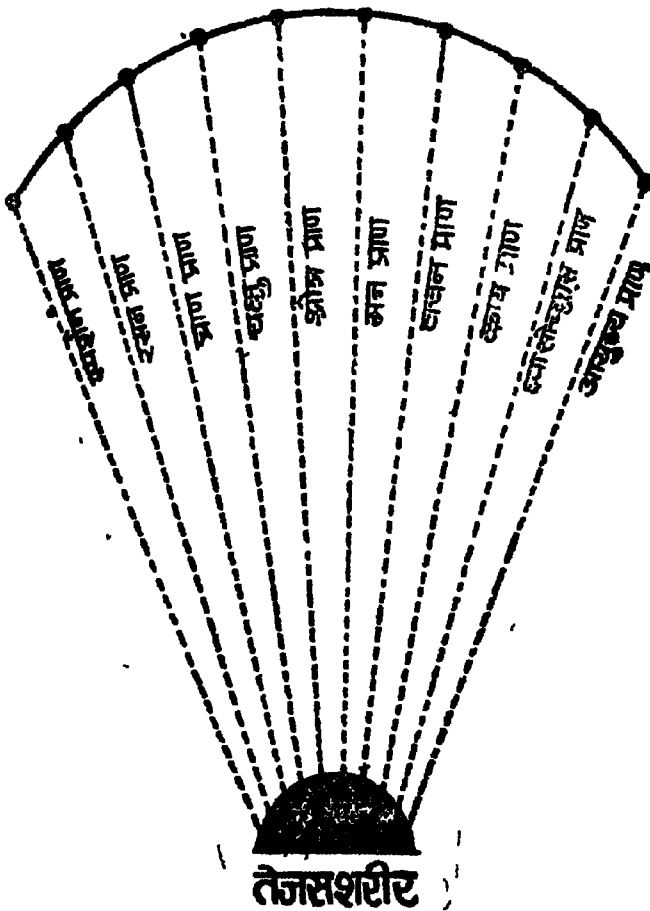
कार्यभेद के आधार पर प्राण के दस विभाग इस प्रकार हैं—

१. श्रोत्रेन्द्रिय प्राण	६. मनोबल/प्राण
२. चक्षुरिन्द्रिय प्राण	७. वचन बल/प्राण
३. घ्राणेन्द्रिय प्राण	८. काय बल/प्राण
४. रसनेन्द्रिय प्राण	९. श्वासोच्छ्वास प्राण
५ स्पर्शनेन्द्रिय प्राण	१०. आयुष्य प्राण

पांच इन्द्रियों को सक्रिय रखनेवाले प्रथम पाच प्राण हैं। मन, वचन और काया को सक्रिय रखनेवाले मन, वचन और काया प्राण हैं।

श्वासोच्छ्वास प्राण रक्त शोधन क्रिया के माध्यम से सम्पूर्ण शरीर को सक्रिय रखता है। आयुष्य प्राण जीवन की अवधि के अस्तित्व का आधार है।

प्राण और प्रर्याप्ति

मन, वचन व शरीर की क्रियाओ को सम्पादन करनेवाली शक्ति प्राण है। इन क्रियाओं के सम्पादन मे जिन पौद्गलिक संस्थान की सहायता मिलती है उन्हे पर्याप्ति कहते हैं। ये हमारे स्थूल शरीर मे छह संस्थान (पर्याप्तिया) हैं। वे सब तैजस शरीर के सवादी केन्द्र हैं। उनके
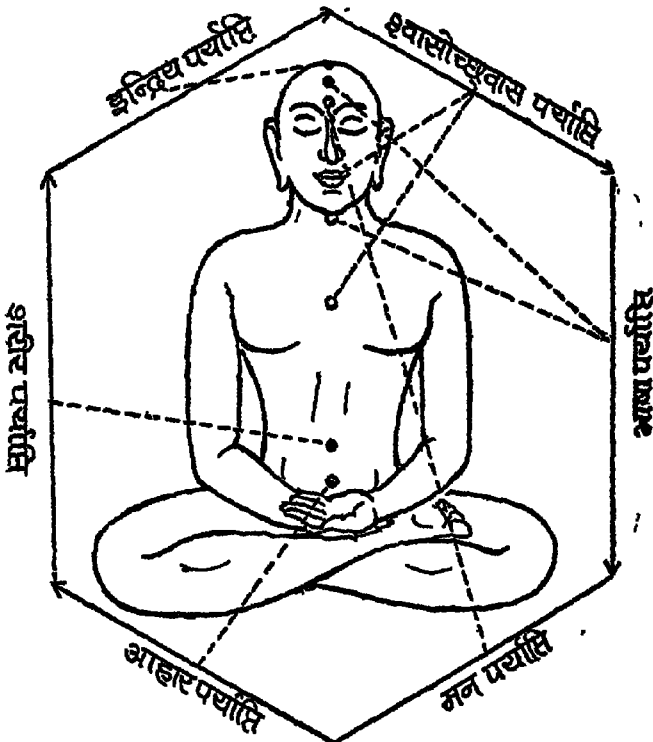
माध्यम से बाह्य प्राण (तैजस् वर्गणाए) के परमाणुओ का आकर्षण, परिणमन और उत्सर्जन होता रहता है।

पर्याप्ति का शाब्दिक अर्थ है—पूर्णता। तात्पर्य यह है कि जन्म के प्रारम्भ मे जीवनोपयोगी आधारभूत पौद्गलिक शक्ति (सस्थान) के निर्माण की पूर्णता। जब जीव एक स्थूल शरीर को छोडकर दूसरा स्थूल शरीर धारण करता तब भावी जीवन-यात्रा के निर्वाह के लिए अपने नवीन जन्म क्षेत्र मे एक साथ आधारभूत पौद्गलिक सामग्री का निर्माण करता है। इसे या इससे उत्पन्न होने वाले केन्द्र एव सस्थान को पर्याप्ति कहते है।

पर्याप्तिया शक्ति-सस्थान है और प्राण शक्ति उससे अभिव्यक्त होती है। इनमे परस्पर कार्य-कारण का भाव प्रतीत होता है। शक्ति-सस्थान कारण है—जिनसे बाह्य प्राण जो आकाश-मण्डल मे व्याप्त है, वह भीतर पहुचता है और शक्ति की अभिव्यक्ति उनके कार्य हैं। सख्या-विस्तार को सक्षेप मे लाने पर दोनो की सख्या समान हो जाती है।

स्थूल शरीर मे जितनी सक्रियता और गतिशीलता है उसका कारण प्राण शक्ति है।

शक्ति-संस्थान	शक्ति प्रवाह
आहार पर्याप्ति	आयुष्य प्राण
शरीर पर्याप्ति	काय बल/प्राण
इन्द्रिय पर्याप्ति	इन्द्रिय प्राण
श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति	श्वासोच्छ्वास प्राण
भाषा पर्याप्ति	वचन बल/प्राण
मन पर्याप्ति	मन बल/प्राण

ये शक्ति सस्थान और शक्ति प्रवाह न तो चेतन की विशुद्ध अवस्था मे होते है और न अचेतन, जड अवस्था मे होते हैं। ये चेतन और अचेतन (जड) के सयोग से उत्पन्न होते हैं। हम जितने प्राणी हैं, वे सब चेतन और अचेतन (जड) के सयोग की अवस्था मे हैं। हमारे विशुद्ध चैतन्य का उदय नही हुआ है, इसलिए हम केवल चैतन्य की भूमिका मे अवस्थित नही है। हम अनुभव शक्ति व ज्ञान शक्ति से सम्पन्न हैं। इसलिए हम केवल अचेतन की भूमिका मे ही नही, बल्कि चैतन्य और अचैतन्य की सयुक्त भूमिका मे हैं।

ये शक्ति सस्थान और शक्ति-प्रवाह जीव तथा निर्जीव तत्व के बीच व्यावर्तक (भेद डालनेवाले) हैं। जिनमे श्वास लेने की शक्ति है, वह जीव है और जिनमे आहार करने, शरीर रचना करने, इन्द्रिय रचना करने की शक्तिया नही हैं वे निर्जीव हैं।

भाषा शक्ति और चिंतन शक्ति जीव के लक्षण नही हैं किंतु वे विकास के अग्रिम सोपान हैं।

६.२.०. प्राणायाम (Pranayam)

प्राण मन का अनुगमन करता है। यह प्राण के बारे मे अत्यन्त महत्व-पूर्ण व विलक्षण अन्वेषण है। मात्र यह अन्वेषण ही अध्यात्म साधना के अध्ययन एव अभ्यास की प्रेरणा के लिए पर्याप्त है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने ग्रन्थ "योग शास्त्र" मे इस तथ्य को बहुत सरल भाषा मे स्पष्टता से उजागर किया है।

मनो यत्र मरुत् तत्र, मरुद् यत्र मनस्तत । योग शास्त्र ५।२

जहा मन है वहा श्वास है, प्राण है। जहा श्वास है, वहा मन है। दूसरे शब्दो मे एकाग्र चिन्तन/मानसिक प्रक्रिया प्राण की अत्यधिक मात्रा के संग्रहण को आसान बना देता है। इस प्रकार प्राण का ग्रहण व परिणमन एकाग्र मानसिक प्रक्रियाओ से, अर्थात् एकाग्र चिन्तन, स्मृति एव कल्पना से नियन्त्रित होते हैं। प्राणायाम और ध्यान प्राण के नियन्त्रण एव संवर्धन के सशक्त साधन हैं।

६.२.१ प्राणायाम : प्रयोजन (Purpose)

प्राण-सिद्धि

प्राण ऐसी जीवनी शक्ति है जिससे प्राणी जीवित एव सक्रिय रहते हैं। प्राणायाम जहां प्राण को नियमित और विस्तृत बनाता है, वहा दूसरी ओर प्राण की शक्ति को स्वाधीन बनाकर तेजस्वी भी बनाता है। प्राणायाम के द्वारा नाडियो और कोशिकाओ मे प्राण प्रवाहित होता है।

प्राणायाम केवल पूरक, रेचक अथवा कुम्भक ही नही है, बल्कि प्राण को अनुशासित करने की प्रक्रिया है। प्राणायाम श्वास-क्रिया का सम्यग् नियमन और नियोजन है। प्राणायाम श्वास-प्रश्वास का सम्यग् अभ्यास है। प्राणायाम ऐसा साधन है, जिससे व्यक्ति श्वास और मन को वश कर अपनी सुप्त चेतना को जागृत कर सकता है। प्राण को सिद्ध कर सकता है।

स्वास्थ्य

जहा स्वास्थ्य के लिए आसन उपयोगी है, वहा प्राणायाम उनमें नव-जीवन सचार करने वाला है। प्राणायाम प्राण-शक्ति को विकसित और जागृत करता है। इस जागृति का निमित्त प्राणायाम बनता है। श्वास-प्रश्वास को व्यवस्थित एवं सयमित करने से प्राणायाम फलित होता है। अतः श्वास-प्रश्वास—पूरक, रेचक और कुभक को प्राणायाम कह दिया जाता है, किंतु साधना करने वाला साधक इस भेद-रेखा को स्पष्ट समझता है। विद्युत् बल्ब के द्वारा अभिव्यक्त होती है। तारो मे प्रवाहित होने वाला विद्युत्-प्रवाह तार एव बल्ब से भिन्न है, हालाकि बल्ब एवं तार के द्वारा विद्युत को अनु-

तालिका ५—प्राणायाम : सिद्धान्त[1]

बिन्दु	तथ्य
प्रयोजन	प्राण सिद्धि के लिये, प्राणजय, मनोजय, स्वास्थ्य एव प्राण शुद्धि के लिये।
आध्यात्मिक स्वरूप	प्राण का विस्तार, अभिवृद्धि, नियत्रण, निरोध की प्रक्रिया, प्राण के पाच प्रकार—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान।
वैज्ञानिक स्वरूप	श्वसन की सम्यक् प्रक्रिया
प्रक्रिया	श्वास को मद एव सूक्ष्म बनाना, श्वास पर नियत्रण करना
परिणाम	नाडी शुद्धि, मानसिक स्थिरता, अतीन्द्रिय शक्ति व अतीन्द्रिय ज्ञान का जागरण।

शासित एव व्यवस्थित किया जाता है। ठीक विद्युत्-प्रवाह की तरह प्राण भी प्राणायाम के द्वारा जागृत और अनुशासित होता है। महर्षि पतजलि के अनुसार श्वास और प्रश्वास की गति का विच्छेद ही प्राणायाम है। जब श्वास-प्रश्वास अनुशासित होकर निग्रह की स्थिति मे पहुचता है, तब प्राणायाम की पूर्णता होती है। "प्राण वै बलम्" अर्थात् प्राण ही बल है—इसके अनुसार प्राण शक्ति-सपन्न होकर शरीर के अग-अग मे फैलता है, और उसे स्वस्थ एव बलवान बनाता है।

६.२.२ प्राणायाम : आध्यात्मिक दृष्टिकोण

प्राणायाम सजीवन शक्ति है, जिससे शारीरिक स्वास्थ्य तो बनता ही है, साथ-साथ चित्त की निर्मलता भी बढती है। इससे आध्यात्मिक शक्ति को जागृत होने का अवसर उपलब्ध होता है। प्राणायाम—मानसिक शाति एव आध्यात्मिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। उससे समाधि की उपलब्धि होती है, व्यक्ति अपने स्वरूप की यात्रा करने लगता है।

महर्षि पतजलि ने प्राणायाम के परिणाम की चर्चा करते हुए लिखा है—"ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्"—प्राणायाम के द्वारा प्रकाश पर आया आवरण क्षीण हो जाता है। चेतना पर आया आवरण हट जाता है। प्राणायाम केवल श्वास-प्रश्वास का व्यायाम नही है, अपितु कर्म-निर्जरा की वह महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है जिससे चित्त की निर्मलता बढती है। ज्ञान का विकास होता है। इन्द्रिय-शुद्धि, मन की प्रसन्नता एव एकाग्रता बढ़ती है।

---

१ 'मूलस्रोत' के लिए देखें—'महावीर की साधना का रहस्य',—पृष्ठ २७२, आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य सघ प्रकाशन, चूरू।

दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूना हि यथामला. ।
तथेन्द्रियाणा दह्यन्ते दोपाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

स्वर्ण, रजत आदि धातुओ के मल को जलाने के लिए अग्नि उपयोगी है वैसे ही इन्द्रिय-विकार को जलाने के लिए प्राणायाम आवश्यक है। प्राण के निग्रह मे दोषो का परिहार होता है। सिंह की तरह पराक्रम उत्पन्न होता है। प्राण की शुद्धि होती है।

प्राणायाम श्वमन क्रियाओ का सम्यग् नियमन और नियोजन है। प्राणायाम श्वास-उच्छ्वास का सम्यग् अभ्यास है। प्राण का व्यवस्थित विस्तार और सयम प्राणायाम है। प्राणायाम से शरीर को शक्ति प्राप्त होती है, वही चैतन्य-जागरण की भूमिका का निर्माण होता है। प्राणायाम से रक्त एव स्नायुमण्डल का शोधन होता है। शरीर-ताप एव गति-शीलता के लिए हजारो-हजारो नसे रक्त को प्रवाहित करती हैं। रक्त मे आए दोष प्राणायाम से विशुद्ध होते हैं और शक्ति का सचयन होता है। जठराग्नि की वृद्धि, देह में स्फूर्ति, लचक और कान्ति बढती है।

शरीर मे प्रतिक्षण रासायनिक परिवर्तन होते हैं। इस परिवर्तन से पुराने तन्तु टूटते हैं, नए निर्मित होते हैं। इस टूट फूट को व्यवस्थित करने के लिए प्राणायाम अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यद्यपि प्रत्येक प्राणी स्वाभाविक क्रम से पूरक, कुम्भक और रेचक की क्रिया करता है, परन्तु कार्याधिक्य से यह क्रिया स्वाभाविक और विधिवत् नही होती। इससे रुग्णता मे वृद्धि होती है। प्राणायाम होने से शरीर, मन, चैतन्य, स्वास्थ्य को उपलब्ध होते हैं।

साधारणत श्वास की पूरक और रेचक क्रिया मे फेफड़ो का आधे से कम हिस्सा उपयोग मे आता है। प्राणायाम द्वारा पूर्ण पूरक और रेचक कर हम फेफडो का उपयोग कर सकते है। विधिवत् प्राणायाम की क्रिया से फेफडे अधिक शुद्ध वायु ग्रहण करते हैं। दीर्घ रेचक से अशुद्ध वायु निकल जाती है, जिससे शरीर दीप्तिमान् और स्वस्थ बनता है। प्राणायाम की क्रिया से मस्तिष्क के स्नायु-मण्डल मजबूत एव तेजस्वी होते हैं। मस्तिष्क की सुप्त शक्तियां प्राणायाम से जागृत होने लगती हैं। प्राणायाम से शरीर का प्रत्येक अग स्वस्थ और सुन्दर बनता है।

प्राणायाम मे फेफडो पर सीधा असर होता है फेफड़ो मे छोटे-छोटे तन्तुओ के करोड़ो कुटीर हैं। इनका कार्य है, श्वास को भरना और उसे छोडना। जब श्वास अन्दर जाता है, तो फैलते हैं और प्रश्वास होता है, तब ये सिकुडते हैं। सामान्यत एक व्यक्ति एक मिनट मे १६ से २० तक श्वास-प्रश्वास करता है। यह श्वास-प्रश्वास ही शरीर की समस्त प्रक्रिया का

आधार बनता है। इससे ही फेफड़े रक्त शुद्ध कर शरीर को रोग मुक्त रखते हैं। श्वास-प्रश्वास के समय हम जितने जागरूक या होश मे होते हैं, श्वास का परिणाम उतना ही लाभदायक होता है।

प्राण और प्राणवायु

शब्द-सकेत की अपनी कठिनाई है। कई शब्द अर्थ की अभिव्यक्ति भिन्न रखते हुए भी एक रूप मे प्रयुक्त होते है। प्राण शब्द भी इसका अपवाद नही है। प्राण को ऊर्जा, शक्ति आदि अनेक रूपो मे समझा जाता है। योग-ग्रथो मे प्राण, अपान आदि पाचो वायुओ को भी प्राण कह देते हैं, परतु प्राण और प्राणवायु एक नही है। प्राण शक्ति है जो पाचो वायुओ के रूप मे शरीर के विभिन्न अगो मे काय करती है, इसलिए प्राण शक्ति को भी प्राणवायु समझा जाने लगा है। प्राण सूक्ष्म ऊर्जा है, जबकि प्राणवायु स्थूल तत्त्व है। प्राणवायु सभी अगो मे काम आती है, इसलिए प्राणवायु को प्रधानता मिलना अस्वाभाविक नहीं है। प्राणशक्ति जीवन का आधारभूत तत्त्व है। अत. प्राण और प्राणवायु को एक नही समझना चाहिए।

श्वास-प्रश्वास की क्रिया के अवरुद्ध हो जाने को सामान्य भाषा मे प्राण निकल गया कहा जाता है, किन्तु श्वास और प्राण मे मौलिक अतर है। श्वास-प्रश्वास जब तक जीवन रहता है, चलता। इसका तात्पर्य यह नही है कि श्वास और प्रश्वास ही प्राण है। प्राण जीवन-शक्ति है, जो सपूर्ण शरीर मे परिव्याप्त है। वह सूक्ष्म शक्ति शरीर के प्रत्येक अग एव स्नायुओ मे परिभ्रमण करती है, जबकि श्वास-प्रश्वास केवल फेफडो मे जाता है, जहा रक्त के शोधन मे सहयोगी बनता है। अत प्राण श्वास-प्रश्वास का पर्याय नही हो सकता।

लुहार धौकनी धौकता है। उससे हवा निकलती है, अग्नि प्रज्वलित होती है। एक तो धौकनी से हवा निकलती है और एक अग्नि जलती है। हवा और आग एक नही है, किन्तु जितनी तेज हवा होगी, उतनी ही तेज अग्नि भी हो जाएगी। इसी प्रकार प्राणवायु प्राण को उत्तेजित करती है। हम जितनी मात्रा मे प्राणवायु (ऑक्सीजन) लेगे, उतना ही प्राण विशुद्ध होगा, सक्रिय होगा। यदि प्राणवायु नही मिलेगी, तो प्राण मे उत्तेजना नही आएगी, सक्रियता नही आएगी। इसका शरीर-शास्त्रीय कारण यह है—हमारे शरीर मे रक्त-सचार के दो मुख्य साधन है—हृदय और फेफडा, रक्त का शोधन फेफडो मे होता है। अशुद्ध रक्त को शुद्ध कर कार्बनडाइ-आक्साईड को शरीर से बाहर कर दिया जाएगा और प्राणवायु वाला शुद्ध रक्त शरीर के अन्दर प्रवाहित होगा। अगर प्राणवायु नही मिली तो रक्त विकृत रहेगा और वह सारे शरीर को विकृत कर देगा। प्राणवायु रक्त-शुद्धि का साधन है और

शुद्ध रक्त सारे शरीर को गति देने वाला है। प्राण के साथ उसका गहरा संबंध है। प्राणवायु रक्त के माध्यम से प्राण को भी उत्तेजित करती है, सक्रिय करती है।

प्राणवायु का पर्याप्त सिंचन मिलने पर प्राण का पौधा लहलहा उठता है। पूरा सिंचन न मिलने पर वह पौधा कुम्हला जाता है, आदमी निष्प्राण और निष्क्रिय हो जाता है।

६.३.० अन्तर्यात्रा

हमारे शरीर में शक्ति प्राण के रूप में रहती है। वह शक्ति शरीर के मुख्य भागों पर अपने ढंग से गति करती है। किन्तु जब तक प्राण शक्ति की गति पर हमारा नियंत्रण नहीं हो जाता तब तक वह न शुद्ध हो सकती है न स्वेच्छा से सचालित। प्राण शक्ति को शक्ति केन्द्र से ज्ञान केन्द्र में ले जाना —यही हमारी प्राण साधना या प्राण-प्रशिक्षण का अर्थ है। यह हमारे व्यक्तित्व विकास का प्रबल आधार है। इसको हम प्राणायाम, अन्तर्यात्रा एवं श्वास-प्रेक्षा आदि ध्यान प्रक्रियाओं से प्राप्त कर सकते हैं।

तालिका ६—अंतर्यात्रा : सिद्धान्त

विन्दु	तथ्य
प्रयोजन	१. अध्यात्म में प्रवेश २. अन्तर्मुखता का विकास ३ ध्यान की भूमिका का-निर्माण ४. शक्ति विकास।
आध्यात्मिक स्वरूप	१. ऊर्जा के ऊर्ध्वारोहण की प्रक्रिया २. इडा-पिंगला के संतुलन की प्रक्रिया ३. सुषुम्ना को जागृत करने की प्रक्रिया।
वैज्ञानिक स्वरूप	१. अनुकम्पी और परानुकम्पी के संतुलन की प्रक्रिया।
प्रक्रिया	१. सुषुम्ना में चित्त की यात्रा २ सुषुम्ना में प्राण का अनुभव।
परिणाम	१. शारीरिक—नाड़ियों की शक्ति का विकास २. मानसिक मानसिक शक्ति का विकास, प्राण का संतुलन, प्राण का विकास ३. भावनात्मक—भावनात्मक स्थिरता व संतुलन। ४. आध्यात्मिक-अन्तर्मुखता का विकास

प्राण के सारे केन्द्र मस्तिष्क में हैं। प्राण-धारा के दो मार्ग हैं। उसका एक वाह्य मार्ग है और एक भीतरी। वाह्य मार्ग से प्राण-शक्ति जाती है, तो प्रत्येक कोशिका को सक्रिय करती है, हमारे शरीर-तंत्रों को सक्रिय बनाती है। जो सामान्य शक्ति है, वह उसी से उत्पन्न होती है, वह अति-रिक्तता या विशिष्टता उत्पन्न नहीं करती। यह हमारे दस प्राणकेन्द्रों को

सक्रिय करती है और जीवन यात्रा को ढग से चलाती है। जब हम प्राण शक्ति के प्रवाहित होने वाले मार्ग को बदल देते हैं, तब वहा विशिष्ट शक्तिया जागृत हो जाती हैं। सुषुम्ना के मार्ग से प्राण-शक्ति को ज्ञान केन्द्र मे ले जाने का प्रयोग है -- अन्तर्यात्रा। यह हमारे भीतर विशिष्ट शक्तियो को जागृत करता है। व्यक्तित्व-विकास की प्रबल सभावनाओ को उजागर करता है।

६.३.१. प्रयोजन

शक्ति का ऊर्ध्वारोहण

साधना मे अन्तर्यात्रा का मुख्य - प्रयोजन या उद्देश्य है—शक्ति का ऊर्ध्वारोहण व विशिष्ट क्षमताओ का जागरण। शक्ति का भण्डार हमारे नीचे के केन्द्र—शक्ति-केन्द्र के पास है। शक्ति केन्द्र मे पडी हुई शक्ति काम नही आती। शक्ति वही काम आती है जो ज्ञान केन्द्र के पास उपलब्ध होती है। जैसे कुए मे पानी बहुत है, पर दैनिक जीवन के कार्य-कलापो के लिए बार-बार कुए पर नही जाया जा सकता। कुए से पानी का भण्डारण घर पर कर लिया जाता है। वही बाद मे आवश्यकतानुसार काम मे आता है। इसी प्रकार साधना मे शक्ति का ऊर्ध्वारोहण ज्ञान-केन्द्र मे करना आवश्यक है उसी का उपयोग चित्त-विशुद्धि, विशिष्ट ज्ञान व क्षमताओ के जागरण मे होता है।

शक्ति का संतुलन

प्राण-शक्ति की धाराए हमारी रीढ के भीतर प्रवाहित होती है। योग शास्त्र की भाषा मे प्राण की मुख्य तीन धाराए हैं-ईडा, पिंगला, सुषुम्ना। इसमे ईडा की धारा जब अति सक्रिय होती है तो व्यक्ति निष्क्रिय, दब्बु एव उदासीन हो जाता है। दूसरी ओर जब पिंगला की धारा अति सक्रिय होती है तो व्यक्ति आक्रामक, उत्तेजित व उद्दण्ड हो जाता है। इन दोनो ही नाडियो का सतुलन स्वस्थ व्यक्तित्व विकास के लिए आवश्यक है। अन्तर्यात्रा का दूसरा उद्देश्य है—शक्ति का सतुलन स्थापित करना।

अन्तर्मुखता का विकास

चेतना की यात्रा कहा पर हो रही है ? यदि चेतना की यात्रा नीचे के केन्द्रो की तरफ अधिक होगी तो व्यक्ति सुख के लिए अपने से दूर (इन्द्रिय-जगत्) बाहर की दुनिया मे भटकता है। वह अपनी (इन्द्रियातीत) शक्तियो से अपरिचित रह जाता है। जब चित्त की यात्रा ऊपर के केन्द्रो की तरफ अधिक होती है तो व्यक्ति अपने आपसे परिचित होता है एव अन्तर्मुखता बढती है। सहज आन्तरिक आनन्द जागृत होता है।

६.३.२. आध्यात्मिक स्वरूप

इस शरीर मे जो ऊर्जा के स्थान हैं, केन्द्र हैं, उन्ही के पास वृत्ति और

वासना के केन्द्र भी हैं। शक्ति-केन्द्र के पास ही वासना का केन्द्र, स्वास्थ्य केन्द्र है और वृत्तियों का केन्द्र, तैजस् केन्द्र है। वासनाएं और वृत्तियां प्रबल हैं तो शक्ति का उपयोग उनको पुष्ट करने में होता है। जब तक शक्ति नीचे के केन्द्रों में रहेगी वह उनका पोषण करती रहेगी। यदि इस शक्ति का ऊर्ध्वा-रोहण, मार्गान्तरीकरण, रूपान्तरण ज्ञान केन्द्र की ओर कर लेंगे तो ज्ञान का पौधा लहलहा उठेगा। जब जिसको शक्ति का सिंचन मिलेगा वही पल्ल-वित होगा - वह चाहे ज्ञान हो या वासना। शक्ति का ऊर्ध्वारोहण ज्ञान-केंद्र में करने की एक सशक्त प्रक्रिया है—अन्तर्यात्रा।

प्राण, चित्त का अनुचर

प्राण, चित्त का अनुचर है। जहां-जहां चित्त की यात्रा होती है वहां-वहां प्राण भी उसका अनुगमन करता है। अन्तर्यात्रा में चित्त की यात्रा नीचे शक्ति-केन्द्र से ज्ञान-केन्द्र की ओर होती है। जहां-जहां चित्त उपस्थित होता है, वहां-वहां की अनुभूति, बोध एवं ज्ञान होता है। वहीं पर प्राण भी उप-स्थित होता है। चित्त की यात्रा, सुषुम्ना के मार्ग के अनुभव के साथ आगे बढ़ती है। इसी के साथ प्राण की यात्रा भी ऊर्ध्वमुखी होती है।

महापथ के प्रति समर्पण

अध्यात्म के प्रति समर्पित वीर पुरुष वासना और वृत्तियों के चंगुल से शक्ति को मुक्त कर लेते हैं। वे इस महापथ अर्थात् सुषुम्ना पथ, या कुण्ड-लिनी पथ के प्रति समर्पित रहते हैं।

जैन आगम, आयारो में भगवान महावीर ने कहा—

"पणया वीरा महावीहिं"। आयारो १।३७

वीर पुरुष महापथ के प्रति प्रणत (समर्पित) होते हैं। महापथ का अर्थ कुण्डलिनी-प्राणधारा भी है। पराक्रमी साधक ऊर्ध्वगमन के लिए इस प्राणधारा के प्रति समर्पित हो जाता है—पृष्ठरज्जु के माध्यम से प्राणधारा को मस्तिष्क की ओर प्रवाहित कर देता है। उसमें हिंसा के संस्कार समाप्त हो जाते हैं।"[1]

'सूयगडो' में भी इसी प्रकार का संकेत मिलता है—

पणए वीरे महाविहिं, सिद्धिपहं णेयाउयं धुवं। सूयगडो १।२।१२

धीर पुरुष लक्ष्य तक ले जानेवाले उस शाश्वत महापथ के प्रति प्रणत होते हैं, जो सिद्धि का पथ है।

शिव संहिता आदि में 'संधि' शब्द का अर्थ सुषुम्ना आया है।[2] 'संधि' शब्द का प्रयोग आगमों में अनेक स्थलों पर प्रयुक्त है। इसका तुलनात्मक

---

१. आचारांगभाष्यम्, भाष्यकार—आचार्य महाप्रज्ञ, पृष्ठ - ४६

२. आचारांगभाष्यम्, (आयारो ५।२०) पृष्ठ—२४६

अन्वेषण अनेक नये तथ्यो को उद्घाटित कर सकता है।

आत्मा का गुण है—चैतन्य। चैतन्य का कार्य है—जानना और देखना। जानने और देखने की प्रक्रिया हमारे शरीर मे न मासपेशिया करती हैं, न हड्डिया करती है। यह प्रक्रिया होती है नाडी तन्त्र के माध्यम से। नाडी तत्र का केन्द्रीय आधार है—मस्तिष्क और सुषुम्ना। सुषुम्ना और मस्तिष्क के भीतर चित्त की यात्रा चैतन्य को जागृत करती है। अन्तरजगत् मे प्रवेश कराती है।

६.३.३ वैज्ञानिक दृष्टिकोण

स्वायत्त तन्त्रिका-तत्र के दो भाग होते है—अनुकम्पी तथा परानुकपी तत्र। अनुकम्पी तत्र मे गैग्लियानो की बनी दोहरी श्रृखला (जजीर) होती है जो मेरुरज्जु के दाये-बाये एक-एक पडी हुई होती है। ये गैग्लिया तन्त्रिका ततुओ के द्वारा केन्द्रीय तन्त्रिका-तत्र से तथा आतरागो (Visceral organs) से जुडे रहते हैं। परानुकम्पी तत्र के गैग्लिया भी युग्मित होते हैं लेकिन ये आतरागो के अधिक निकट होते हैं। इस परानुकपी तत्र का उद्भव मस्तिष्क और मेरु-रज्जु के पश्च भाग मे होता है।

यह तत्र शरीर के तमाम भीतरी अगो के कार्यों का नियमन करते हैं। इन अगो मे परानुकम्पी और अनुकम्पी दोनो तत्रो से आयी हुइ तन्त्रिकाए पहुचती है। ये दोनो तत्र सबद्ध अगो पर परस्पर विरोधी प्रभाव डालते हैं। अनुकम्पी तत्र उस विशिष्ट अग की क्रिया को प्राय तीव्रतर अथवा उत्तेजित करता है, किंतु परानुकपी इस क्रिया को धीमा करता है अथवा उसी अग पर सदमनी (Inhibitory) प्रभाव डालता है।

योग शास्त्र की भाषा मे इडा की अतिसक्रियता के जो परिणाम परिलक्षित है, विज्ञान की भाषा मे वही परिणाम परानुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र की अतिसक्रियता से आते हैं। इडा या परानुकपी की अतिसक्रियता से व्यक्ति दब्बु, डरपोक, उदासीन व निराश हो जाता है। दूसरी ओर पिंगला या अनुकम्पी नाडी तन्त्र की अतिसक्रियता से व्यक्ति आक्रामक, उद्दण्ड व उच्छृखल हो जाता है।

मेरु-रज्जु मे चित्त की यात्रा दोनो तत्र मे सतुलन स्थापित करती है। व्यक्ति इससे सतुलित व स्वस्थ व्यवहार करता है। दीर्घ अभ्यास से व्यक्ति के जागृत मन या चित्त का नियन्त्रण केन्द्रीय नाडी तत्र पर होता है।

६.३.४ परिणाम

उच्च मानसिक शक्तियो का विकास— मानसिक शक्तियो का विकास जीवन की सफलता का एक प्रमुख घटक है। इस शक्ति के सभी केन्द्र मस्तिष्क

तालिका ७—श्वास प्रेक्षा : सिद्धान्त और मूल स्रोत

बिन्दु	तथ्य	प्रमाण
प्रयोजन	१ ज्ञाता-द्रष्टा भाव का विकास, प्राणजयी बनना	बृहद्नय चक्र, श्लोक ३८८
आध्यात्मिक स्वरूप	१ श्वास की भाव क्रिया, प्राण का सिद्धान, मानसिक एकाग्रता की प्रक्रिया, प्रकार-दीर्घ श्वास, समवृत्ति श्वास । २ श्वास क्या है —प्राण ग्रहण का सशक्त उपाय । अनेक विशिष्टताओ से युक्त । ३ श्वास का आलम्बन के रूप मे चयन क्यो ? अनेक विशिष्टताए— १ सुप्त चेतना-शक्ति को जागृत करने का सशक्त माध्यम २ यह भीतर तथा बाहर दोनों का यात्री ३ यह ऐच्छिक एव स्वतः चालित ४. प्राण-शक्ति का सवाहक है ५ आवेग नियंत्रित करने का उपाय ६ श्वास और मन का परस्पर गहरा सबध ७ श्वास—शुद्ध, सहज, आतरिक, वर्तमान कालिक प्रक्रिया ८. श्वास की गति परिवर्तनशील	सूयगडो १।२।५२ देखे —टिप्पण आयारो ३।६७, कायोत्सर्ग शतक १५१४ व्यवहार भाष्य पीठिका, गाथा १२३
वैज्ञानिक स्वरूप	१ सम्यक् व सम्पूर्ण श्वास की प्रक्रिया २ अधिकतम श्वास प्रकोष्ठो का उपयोग ३ प्राणवायु का अधिकतम विनिमय	
प्रक्रिया	१. श्वास की प्रेक्षा । जागरूकता—नाभि पर, दोनो नथुनो पर तथा उनके मध्य स्थान पर । समवृत्ति श्वास मे—चित्त की यात्रा श्वास के साथ ।	पा. च. पृष्ठ ३०४, य कल्प ३९, श्लोक ७१६ व्य पा गा १२२ म. वृ ४१।४२
परिणाम	१ शारीरिक – दोष या मल शुद्धि, स्वस्थ एव पूर्ण आयु २. मानसिक — एकाग्रता, प्राण शक्ति, स्नायु तत्र सशक्त, जागरूकता ३ भावनात्मक—आवेग या नियत्रण की क्षमता का विकास, समता का विकास, ४ व्यावहारिक—एकाग्रता से कार्य क्षमता का विकास	आयारो ३।६९

२ हृदय के कार्य-भार मे कमी,
३ रक्त-चाप मे अनावश्यक वृद्धि को रोकना,
४ स्नायविक शाति मे वृद्धि ।

वैज्ञानिक पूर्ण श्वास

वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण श्वसन का प्रारम्भ मद, शात एव पूरे उच्छ्वसन के साथ होता है । अन्त श्वसन समाप्त होने पर जब उसके लिए प्रयुक्त मासपेशिया शिथिल हो जाती है, तब विकसित छाती का हिस्सा अपने भार से ही सिकुड जाता है और भीतर की हवा बाहर निकलनी शुरू हो जाती है । उसके बाद पेट की मासपेशियो को सकुचित करने से तनुपट ऊपर की ओर खिसकता है, जिससे फुफ्फुस मे से और अधिक हवा निष्कासन करने मे सहायता होती है । फुफ्फुसीय ऊतको की स्पजी रचना के कारण हवा का अश भीतर रह जाता है । यह अवशिष्ट हवा अन्त श्वसन के द्वारा ताजी प्रविष्ट हवा के साथ मिलकर आगे की प्रक्रिया के लिए प्राप्त हवा के रूप मे काम आती है । फुफ्फुसो को जितना अधिक खाली किया जाएगा, उतना ही उनमे ताजी हवा का प्रवेश अधिक मात्रा मे हो सकेगा और श्वास-प्रकोष्ठो मे उपयोगार्थ हवा उतनी ही अधिक विशुद्ध या अमिश्रित रह सकेगी । अत जब तक पूरी तरह उच्छ्श्वसन नही करते, तब तक अन्तश्वंसन पूरा और सम्यग् नही हो सकता ।

फुफ्फुसो को खाली करने के बाद दूसरा कदम उन्हे अधिक से अधिक भरने का है । फुफ्फुसो मे समाने वाली हवा की मात्रा को फुफ्फुसीय क्षमता अथवा प्राण-क्षमता कहते हैं । औसतन रूप मे यह लगभग ६ लीटर है । इस
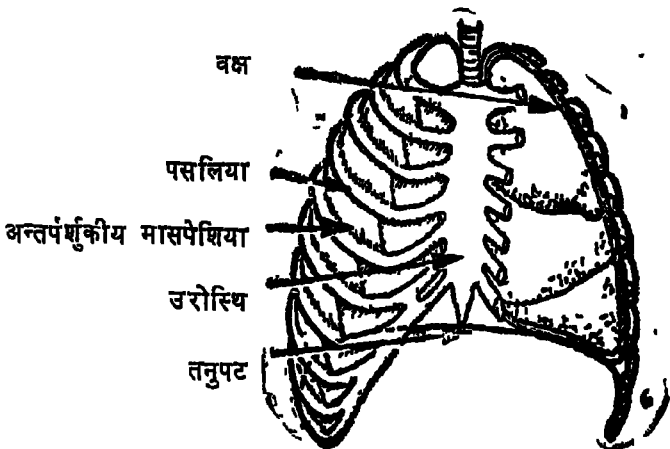
श्वसन-क्रिया मे प्रयुक्त मासपेशिया

क्षमता को बढाने की बात करने से पहले प्राप्त क्षमता का पूरा उपयोग कैसे हो सकता है, यह चिंतन आवश्यक है।

फुफ्फुस के इर्द-गिर्द श्वसन-क्रिया मे उपयोगी तीन प्रकार की मासपेशियो का उल्लेख किया जा चुका है। ये तीन प्रकार की मासपेशिया हैं—

१. अन्तरापर्शुक मांसपेशिया—ये पसलियो के ऊपर के और नीचे के छोर से सलग्न होती हैं। इन मासपेशियो के सकुचित होने पर पसलियो का समूचा ढाचा ऊपर की ओर तथा बाहर की ओर फैलता है और इनके शिथिल होने पर वह उससे विपरीत दिशा मे गति करता है अर्थात् संकुचित होता है।
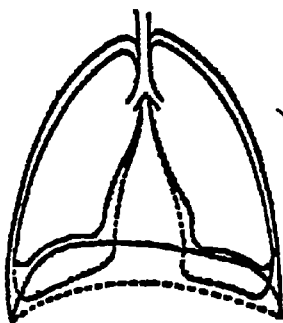
जब तनुपट नीचे की ओर सिकुड़ता है तब वक्ष की गहराई बढ़ती है।

अन्तर्पर्शुकीय मांसपेशियां पसली को ऊपर उठाती हैं तथा वक्ष के आगे-पीछे का व्यास बढ़ाती हैं। इस प्रकार पसली-पिञ्जर की चौडाई बढ जाती है।

२, तनुपट (डायाफ्राम)—श्वसन-क्रिया मे उपयोगी मासपेशियो मे यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसका आकार गुम्बज जैसा होता है। यह मासपेशी वक्षीय गुहा के फर्श या तल के रूप मे तथा उदरीय गुहा की छत के रूप मे होती है। जब इसे सकुचित किया जाता है, यह उदरीय अगो को नीचे की ओर दबाती है तथा वक्षीय गुहा के परिमाण को बढ़ाती है।

३. हंसली की मांसपेशियां—हंसली को ऊपर की ओर उठा कर इन मासपेशियो का सचालन किया जा सकता है। इस क्रिया के द्वारा फुफ्फुस के ऊपर के हिस्से मे हवा का प्रवेश होता है।

पूरे लम्बे अन्तश्वंसन के लिए उक्त तीनो प्रकार की मासपेशी समूहो का सयुक्त उपयोग किया जाता है। यह क्रिया एक ही बार मे एव लयबद्ध रूप से की जानी चाहिए। हवा का भीतर प्रवेश निरन्तर होना चाहिए, बीच-बीच में हांफना (श्वास तोड़ना) नही चाहिए।

पूरे श्वसन के लाभ

कोशिकाओ के सुचारू रूप से सचालन तथा क्षमता-वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि उन्हे पर्याप्त मात्रा मे ऑक्सीजन उपलब्ध हो, इसलिए सही रूप मे श्वास लेना बहुत जरूरी और महत्त्वपूर्ण है, जिससे कि शरीर की प्रत्येक कोशिका को पर्याप्त ऑक्सीजन मिल सके। फुफ्फुसो मे वायुओ का आदान-प्रदान भली-भाति तभी हो सकता हे, जब कि श्वसन-क्रिया पूरी और मद हो। शरीर-वैज्ञानिको के अनुसार यह आवश्यक है कि सगृहीत हवा श्वासकोषो मे १०-१२ सेकिण्ड तक रहे जिससे कि ऑक्सीजन और कार्बन-डाइ-ऑक्साइड का अधिकतम विनिमय हो सके।

इस प्राथमिक आवश्यकता के अतिरिक्त यह भी जरूरी है कि सम्यक् श्वसन के द्वारा हवा के आवागमन से सपूर्ण फुफ्फुसो की सफाई पूरी तरह हो। अन्धकार, उष्मा एव आर्द्रता-युक्त फेफडो की सफाई ठीक न होने पर वे सूक्ष्म किंतु खतरनाक कीटाणुओ के प्रजनन के उपयुक्त स्थान बन जाते हैं।

यदि श्वसन-क्रिया पूर्णत वैज्ञानिक रूप से की जाए, तो उसके परिणाम स्वरूप फुफ्फुसो मे अत्यधिक शक्तिशाली चूपण-क्षमता उत्पन्न की जा सकती है। लम्बे और मद श्वास के द्वारा फुफ्फुसो मे यकृत जैसे अवयवो मे एकत्रित रक्त को खीचने के लिए एक प्रकार की चूषण-शक्ति पैदा होती है। तनुपट और पसली-पिञ्जर के सम्यक् लयबद्ध स्पदन पूरे शरीर मे होने वाले शिरीय रक्त-सचार को बेहतर और सक्रिय बनाने मे योगदान देते हैं। इस प्रकार हृदय और फेफडो—इन दोनो सचालन-बलो का सम्यक् सयोजन रक्त के परिसचरण को श्रेष्ठ बना सकता है। ऐच्छिक और सुनियोजित दीर्घश्वास के द्वारा प्राणधारा को प्रभावित किया जा सकता है, जिससे शरीर के किसी भी प्रकार के अवयव-सबधी या क्रिया-सबधी विकार या गडबडी को पूर्णतः ठीक नही तो कम-से-कम अशतः प्रभावित तो किया ही जा सकता है। यद्यपि यह प्राणधारा तीव्र आगन्तुक औपसर्गिक विकारो को पूर्णत· ठीक करने मे समर्थ न भी हो, तो भी शरीर की प्रतिकार-शक्ति को बलवती बनाने मे एव शरीर को विकारो से मुक्त रखने मे निश्चित ही महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान करती है।

६.४.२ श्वास : आध्यात्मिक दृष्टिकोण
(Spiritual perspective)

प्राण का आहरण

श्वास का सम्बन्ध है प्राण से, प्राण का सम्बन्ध पर्याप्ति से। यह जीवन के पहले ही क्षण मे निर्मित हो जाता है। प्राण को भी प्राण चाहिए।

वह प्राण आकाश-मडल से प्राप्त होता है। सारे आकाश-मडल मे प्राण-चक्र फैला हुआ है। आहार पर्याप्ति के योग्य वर्गणाए सारे आकश मे फैली हुई है। ऊर्जा की या प्राण-शक्ति की वर्गणाए फैली हुई हैं। वे प्राप्त होती हैं—श्वास के माध्यम से। हम केवल श्वास ही नही लेते, उसके साथ प्राण भी लेते हैं। शरीर-शास्त्र के अनुसार जब जब हम श्वास लेते हैं, बाहर की हवा भीतर जाती है, जिसमे ऑक्सीजन होता है। कर्मशास्त्र की भाषा मे हम प्राण लेते हैं। श्वास के साथ जाने वाला प्राण उस प्राण को सर्वाद्धित करता है, पोषण देता है।

जैन आगम भगवती और प्रज्ञापना मे यह प्रश्न उपस्थित किया गया है कि जीव कब आहार लेता है और कितनी दिशाओ से आहार लेता है? प्रश्न के उत्तर मे कहा गया है कि जीव पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व-दिशा और अधोदिशा—छहो दिशाओ से आहार लेता है। केवल-आहार (मुह से ग्रहण किया जाने वाला भोजन आदि) का प्रसग ही नही है, रोम-आहार (रूओ से ग्रहण किए जाने वाले सूक्ष्म पोषक तत्त्व) भी अल्प मात्रा मे होता है। वहा आहार का अर्थ है—प्राण-तत्त्व का आहार। जीव जीवित रहने के लिए निरन्तर बाहर से आहरण करता है, वह निरन्तर प्राण-ऊर्जा लेता है। यह आहरण कभी नही रुकता।

ऊर्जा या प्राण के आहरण का सशक्त माध्यम है—श्वास। वह निर-तर चलता है, तो आहरण भी निरन्तर चलता है। श्वास का सबध है प्राण, से, प्राण का सबध है सूक्ष्म प्राण से और सूक्ष्म प्राण का सम्बन्ध है सूक्ष्मतम शरीर से—कार्मण शरीर से।

श्वास और प्राण

श्वास भीतर जाता है, उसके साथ प्राणवायु भीतर जाता है। प्राण-तत्त्व भी भीतर जाता है और प्राण-तत्त्व का ऊर्जा के रूप मे परिणमन होता है। हमारे जीवन का समूचा क्रम—हमारी सारी प्रवृत्तिया प्राण-शक्ति या प्राण ऊर्जा के द्वारा सचालित होती हैं। यदि प्राण की ऊर्जा नही है, तो चेतना टिक नही सकेगी। बोलना, चलना, देखना, इन्द्रिय, मन और बुद्धि का क्रियाशील होना—ये सब प्राण-ऊर्जा के कार्य हैं। इनकी सक्रियता की पृष्ठ-भूमि मे प्राण का प्रवाह कार्य करता है। शरीर, मन और इद्रिया अचेतन हैं, प्राण-ऊर्जा का योग पाकर वे सभी सचेतन हो जाते हैं।

हम जितना गहरा श्वास लेते हैं, उतनी ही अधिक प्राण-शक्ति प्राप्त होती है। जब हम श्वास-प्रेक्षा द्वारा श्वास-दर्शन करते हैं, तब प्राण-शक्ति और बढ़ जाती है। जो यौगिक प्रदर्शन आज देखने मे आते हैं, वे सारे श्वास के स्तर पर घटित होने वाले प्राण शक्ति के प्रदर्शन हैं। इसके आधार पर मोटर

या ट्रक को छाती पर से निकाला जा सकता है। आत्मा मे अनन्त शक्ति है, अनन्त वीर्य है। श्वास उस अनन्त शक्ति का अश है, इसलिए श्वास के प्रयोग से चमत्कार किये जा सकते है।

ध्यान का आलम्बन श्वास

हम अपनी चेतना को जागृत करना चाहते है—अपनी शक्ति के स्रोतो को उद्घाटित करना चाहते हैं। सूक्ष्म से परिचित होना चाहते है। यदि हमे सूक्ष्म से परिचित होना है, तो सबसे पहले हम स्थूल को सम्यक् प्रकार से जाने। बाहर का दरवाजा खोले बिना भीतर के दरवाजे तक नही पहुचा जा सकता। हमे स्थूल से सूक्ष्म की ओर गति करनी होगी। ध्यान मे श्वास का आलम्बन लेते हैं। इससे स्थूल से सूक्ष्म की ओर गति प्रारम्भ हो जाती है। श्वास ही एक ऐसा तत्त्व है, जो बाहर भी आता है और भीतर भी जाता है। दूसरा ऐसा कोई भी साधन नही है, जो बाहर भी रहे और भीतर भी रहे। मन है, पर मन बेढगा है। वह स्वय इतना चचल है कि उसे आलबन नही बनाया जा सकता। उसको तो आलम्बन देना पडेगा।

योग के आचार्यो ने मन को वश मे करने का एक उपाय बताया है। वह उपाय है—श्वास को पकडते ही मन पकड मे आ जाता है। तब मन इतना सरल, सीधा हो जाता है कि उसकी चचलता मिट जाती है।

इसलिए हमने ध्यान की प्रक्रिया मे श्वास को आलबन बनाया है। यह श्वास वह यात्री है, जो बाहर की यात्रा भी करता है और भीतर की यात्रा भी करता है। यह वह दीप है, जो भीतर को भी प्रकाशित करता है बाहर को भी प्रकाशित करता है। जो भीतर की भी यात्रा करना चाहे, तो हमारे पास एक मात्र उपाय है कि हम मन को श्वास के रथ पर चढा दे और उसके साथ-साथ भीतर चले जाए। हमारी अन्तर्यात्रा प्रारम्भ हो जाएगी, हम अन्तर्मुखी हो जाएगे, हम आध्यात्मिक बन जाएगे। आध्यात्मिक बनने का सरल उपाय है—श्वास के साथ मन को जोड देना, दोनो का योग कर देना।

श्वास का आलम्बन क्यो ?

प्रश्न हो सकता है कि श्वास को आलम्बन क्यो बनाया जाए ? श्वास-क्रिया के विशिष्ट स्वरूप को हम वैज्ञानिक धारणाओ के आधार पर समझ सकते है। हमारे शरीर के भीतर चलने वाले तत्रो और क्रियाओ का नियत्रण दो प्रकार से होता है —

१ ऐच्छिक रूप से (Voluntarily)
२ स्वत सचालित रूप से (Autonomically)

हाथ-पैर आदि का सचालन, मासपेशियो का आकुचन-विकुचन आदि

क्रियाए स्वतः सचालित न होकर ऐच्छिक रूप से नियन्त्रित की जाती हैं। दूसरी ओर पाचन (Digestion), रक्त-सचार (Blood-circulation) हृदय की धडकन (Heart-rate) आदि क्रियाए ऐच्छिक न होकर स्वत सचालित होती हैं। श्वसन (Respiration) एक ऐसी क्रिया है, जिसका नियत्रण स्वत· सचालित रूप से भी होता है और ऐच्छिक रूप से भी। दूसरे शब्दो मे कहे तो एक श्वास ही ऐसी क्रिया है, जो जाने-अनजाने हमे सभालती है।

शुद्ध, सहज और आन्तरिक आलम्बन

जब हम ऐच्छिक नियत्रण की बात करते हैं, तो उसका तात्पर्य होता है—चित्त को श्वसन-क्रिया के साथ जोडना। जब चित्त श्वसन-क्रिया के साथ जुड जाता है, तब वह श्वास को पकडने में यानी उसकी अनुभूति करने मे सक्षम बनता है। यही प्रक्रिया है—मन को एकाग्र या स्थिर करने की—उसकी चचलता को मिटाने की। इस क्रम से प्रशिक्षित किए जाने पर मन स्थूल से सूक्ष्म को पकडने मे भी सक्षम होता है।

हम इस बात को न सोचें कि हम मन को मिटा दें। मन को मिटाना असम्भव तो नही, पर बहुत मुश्किल है, किन्तु नाना प्रकार के आलम्बनो मे भटकने वाले मन के उस भटकाव को मिटा दें, एक ही आलम्बन में लम्बे समय तक वह स्थिर रह सके ऐसा प्रयत्न करें, इसीलिए श्वास को हमने चुना है। वह एक ऐसा आलम्बन है, जो सहज है—बाहर से लाना नही पडता। जब चाहें, तब उसे आलम्बन बना सकते हैं। वह न भूतकाल की स्मृति है, न भविष्य की कल्पना है, अपितु वर्तमान की वास्तविकता है। जब चित्त श्वास पर केन्द्रित होता है, तो हमे वर्तमान में जीने का अवसर प्राप्त होता है। वह एक शुद्ध और पवित्र आलम्बन है। उसके प्रति हमारा कोई राग-द्वेष हो ही नही सकता।

दीर्घ श्वास

श्वास दो प्रकार का होता है—सहज और प्रयत्न-जनित। प्रयत्न के द्वारा श्वास मे परिवर्तन किया जा सकता है—छोटे श्वास को दीर्घ बनाया जा सकता है। साधना को विकसित करने के लिए प्राण-शक्ति की प्रचुरता अपेक्षित होती है। प्राण-शक्ति के लिए श्वास का ईंधन चाहिए। श्वास का ईंधन जितना सशक्त होगा, प्राण-शक्ति उतनी ही सशक्त होगी और प्राण-शक्ति जितनी सशक्त होगी, हमारी साधना उतनी ही सफल होगी। श्वास को सशक्त बनाने के लिए ही हम उसे 'दीर्घ' बनाते हैं।

सामान्यत. आदमी एक मिनट मे१५-१७ श्वास लेता है। इसके आस-पास दो स्थितियां बनती हैं। एक स्थिति है—श्वास की सख्या को बढाने की

और दूसरी स्थिति है श्वास की सख्या को घटाने की। दूसरे शब्दो मे एक स्थिति है श्वास को छोटा करने की और दूसरी स्थिति है श्वास को लम्बाने की। ये दो स्थितिया बनती है। जो व्यक्ति साधन-रत नही है, जो बहुत आवेगशील है। वे व्यक्ति उस दिशा मे प्रस्थान करते है कि श्वास छोटा हो जाता है और उनकी सख्या बढ जाती है।

१५-१७ की सख्या ३०-४०, ५०-६० तक बढ जाती हैं। आवेश मे, कषाय मे, वासना-तृप्ति मे श्वास की सख्या बढ जाती है। श्वास की सख्या बढती है, श्वास छोटा होता है और साथ-साथ प्राण-शक्ति पर उसका प्रभाव पडता है। इसी प्रकार शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर भी उसका असर होता है; किन्तु प्रेक्षा-ध्यान की साधना करने वाला व्यक्ति श्वास की गति व्यवस्थित करता है। वह श्वास की लम्बाई को बढाता है। श्वास मद हो, श्वास दीर्घ हो, श्वास लम्बा हो—यह साधक का प्रथम प्रयास होता है। फलस्वरूप श्वास की सख्या घटती है, लम्बाई बढती है, मन शान्त होता है। इनके साथ-साथ आवेश शात होते हैं तथा उत्तेजनाए और वासनाए शात होती है।

क्र. स.	क्रिया	एक मिनट मे औसतन श्वासो की सख्या
१	वासना के आवेग मे या सम्भोग मे	६०-७०
२	क्रोध, भय आदि उत्तेजना	४०-६०
३	नीद मे	२५-३०
४	बोलते समय	२०-२५
५.	चलते समय	१८-२०
६	बैठे-बैठे	१५-१७
७	सामान्य दीर्घश्वास	८-१०
८	दीर्घश्वास—पर्याप्त अभ्यास के बाद	४-६
९	लम्बे नियमित अभ्यास	१-२

श्वास और सवेग

श्वास जब छोटा होता है, तथा वासनाए उभरती है, उत्तेजनाए आती है, कषाय जागृत होते है। या दूसरे शब्दो मे यह भी कहा जा सकता है कि जब ये उभरते है, तब श्वास छोटा हो जाता है। इन सबसे श्वास प्रभावित होता है। इन सब दोषो का वाहन है—श्वास। ये श्वास पर आरोहण करके आते हैं। जब कभी मालूम पडे कि उत्तेजना आने वाली है, तब तत्काल श्वास को लम्बा कर दें, दीर्घ श्वास लेने लग जाए, आने वाली उत्तेजना लौट

जाएगी। इसका कारण है कि श्वास का वाहन उसे उपलब्ध नही हो पाया है। बिना आलम्बन के उत्तेजना या वासना प्रगट नही हो सकती। ध्यान की साधना करने वाला साधक मन की सूक्ष्मता को पकडने मे अभ्यस्त हो जाता है। वह जान लेता है कि मस्तिष्क के अमुक केन्द्र मे कोई वृत्ति उभर रही है। वह तत्काल दीर्घ-श्वास का प्रयोग प्रारम्भ कर देता है। उभरने वाली वृत्ति तत्काल शात हो जाती है। साधक उन वृत्तियो का, उत्तेजना का शिकार नही होता।

साधक को सबसे पहला परिवर्तन जो करना होता है, वह है, श्वास की गति का परिवर्तन। जो इसके मूल्य को नही जानता, वह सचाई को नही पकड सकता। जो साधक दीर्घ-श्वास को केवल प्राणायाम के रूप मे ही स्वीकार करता है, वह अपने स्वास्थ्य तक सीमित लाभ तो उठा सकता है, किन्तु वह दीर्घश्वास-प्रेक्षा से होने वाले आतरिक परिवर्तनो के लाभ से वचित रह जाता है। हम यह स्पष्ट माने कि दीर्घ-श्वास केवल प्राणायाम ही नही है, वह उससे आगे भी है। हम दीर्घश्वास को प्राणायाम की दृष्टि से नही ले रहे हैं। उसका मूल उपयोग है—वृत्तियो का शमन, उत्तेजनाओ का शमन और वासनाओ का शमन। इसके साथ-साथ शारीरिक और मानसिक लाभ भी होते हैं।

जब गति मे मदता लाने का अभ्यास और आगे बढता है, तो साधक को अनुभव होता है कि बहुत लबे समय तक श्वास लिए बिना रहा जा सकता है, श्वास की तरग का निरोध किया जा सकता है। 'महाप्राण-ध्यान' की साधना आदि अनेक प्रकार की समाधियो मे साधक श्वास का निरोध कर श्वासहीन स्थिति मे जा सकता है।

श्वास बहुत ही मूल्यवान् है, इसे छोटा न समझा जाए। यदि यह छोटी-सी बात भी समझ मे आ जाती है, तो साधना की बडी-बडी बाते स्वतः समझ में आ जाएगी। मनुष्य की कठिनाई यह है कि वह सदा ध्वजा को देखता है, नीव को नही देखता। अध्यात्म की साधना मे श्वास को देखना नीव को देखना है। श्वास-प्रेक्षा नीव का पत्थर है, क्योकि इसी पर साधना का महल खडा किया जा सकता है। श्वास के द्वार को खोले बिना अगले द्वारो का उद्घाटन हो नही सकता।

६.५.० श्वास प्रेक्षा (Perception of Breathing)

सपिक्खए अप्पगमप्पएण आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो स्वय स्वयं को देखो—यह प्रेक्षाध्यान का मूल सूत्र है। हमारी आत्मा और शरीर तत्वत. भिन्न होते हुए भी व्यवहार के धरातल पर भिन्न नहीं है। श्वास

और जीवन—दोनो एकार्थक जैसे है। जब तक जीवन तब तक श्वास, जब तक श्वास तब तक जीवन। श्वास का शरीर और मन के साथ गहरा सबध है। यह एक ऐसा सेतु है, जिसके द्वारा नाडी सस्थान, मन और प्राण-शक्ति तक पहुचा जा सकता है। श्वास, शरीर और मन—ये सब प्राण-शक्ति द्वारा सचालित होते हैं। प्राण-शक्ति सूक्ष्म शरीर (तैजस् शरीर) द्वारा और सूक्ष्म शरीर अतिसूक्ष्म शरीर (कर्म शरीर) द्वारा सचालित होता है। अति सूक्ष्म शरीर आत्मा द्वारा सचालित होता है। इसलिए श्वास, शरीर, प्राण और कर्म के स्पदनो को देखना आत्मा को देखना है। उस चैतन्य शक्ति को देखना है, जिसके द्वारा प्राण-शक्ति स्पदित होती है।

६.५.१ श्वास प्रेक्षा : प्रकार

चेतना को शरीर मे अभिव्यक्त करने का माध्यम है—श्वास। चित्त की व्यग्रता मे श्वास चचल और एकाग्रता मे शात होने लगता है। श्वास और मन का भावात्मक ऐक्य है। जिससे दोनो एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। योग के ग्रथो मे योगी का पहला विश्लेषण श्वास विजेता ही बताया गया है।

श्वास प्रेक्षा मे श्वास का नियमन, मदीकरण तथा सूक्ष्मता का अभ्यास किया जाता है। जिससे साधना की उच्च भूमिकाओ मे जाने का प्रवेश द्वार उद्घटित हो जाते हैं।

श्वास प्रेक्षा का तात्पर्य है—चित्त श्वास को ही देखता रहे अथवा चित्त और श्वास दोनो साथ-साथ चले।

श्वास प्रेक्षा के दो प्रकार हैं—

१ दीर्घश्वास प्रेक्षा

२. समवृत्ति श्वास प्रेक्षा

१ दीर्घश्वास प्रेक्षा

दीर्घश्वास मे जब तनुपट का सकोच-विस्तार होता है, तो नाभि के आस-पास का उदर का भाग प्रकम्पित होता है यह प्रकम्पन एक वास्तविक वर्तमान कालिक घटना है, जिसे अनुभव किया जा सकता है। देखा जा सकता है।

जानना और देखना चेतना का लक्षण है। जानने और देखने की क्षमता को विकसित करने का सूत्र है—जानो और देखो। भगवान् महावीर की साधना मे, जानो और देखो – यह मुख्य सूत्र है।

"आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो" यह अध्यात्म चेतना के जागरण का महत्त्वपूर्ण सूत्र है। इस सूत्र के अभ्यास का प्रारभ हम शरीर से कर सकते हैं। श्वास शरीर का ही एक अग है, इसलिए सर्वप्रथम श्वास को

देखें। शरीर के भीतर होने वाले स्पदनो, कम्पनो या घटनाओ को देखे। इन्हे के देखने के अनवरत अभ्यास से मन पटु हो जाता है, फिर अनेक सूक्ष्म स्पन्दन दीखने लग जाते है।

चित्त की दो धाराए हैं—विचार और दर्शन या देखना और सोचना किंतु ये दोनो धाराए एक साथ नही चलती। अर्थात् जब हम देखते हैं, तो सोचते नही और जब हम सोचते हैं, तो देखते नही। इस प्रकार देखना– स्मृति, चिंतन और कल्पना के चक्रव्यूह को तोड़ने का एक सशक्त साधन बन जाता है। स्थिर होकर श्वास को देखें, तो विचार को स्थगित और विकल्प को शून्य बना सकते हैं।

जब हम चित्त को बाह्य सवेदनो या घटनाओ से हटाकर इस आतरिक घटना पर एकाग्र करते हैं तो यह 'ध्यान' हो जाता है जिसे दीर्घश्वास प्रेक्षा कहते हैं। इसमे श्वास की गति मद या शात होती है। और शरीर तनाव रहित होता है।

दीर्घश्वास प्रेक्षा मे श्वास की समस्त पर्यायो को देखने का प्रयत्न किया जाता है। दोनो नथूनो के सधि-स्थान मे चित्त को स्थापित कर आते-जाते श्वास का अनुभव किया जाता है, दोनो नथूने श्वास के भीतर प्रवेश करने और बाहर जाने के द्वार हैं वहा श्वास का स्पर्श अनुभव किया जाता है। इससे आगे चित्त के द्वारा श्वास के पथ को देखा जाता है, उसकी मात्रा और गति को जाना जाता है। यह सारी वर्तमान की वास्तविक घटना है। जिस पर चित्त एकाग्र किया जा सकता है प्राय' बाहर की हवा ठडी और उच्छ्वास की हवा गर्म होती है। अत प्रवेश करते समय ठडा स्पर्श और बाहर निकलते समय गर्म स्पर्श का अनुभव होता है।

२ समवृत्ति श्वास प्रेक्षा

जैसे दीर्घश्वास मे श्वास की गति को परिवर्तित किया जाता है, वैसे समवृत्ति श्वास मे उसकी दिशा को बदला जाता है। एक नथूने से श्वास भीतर लेकर दूसरे नथूने से बाहर निकाला जाता है तथा फिर उसी से भीतर लेकर पहले नथूने से बाहर निकाला जाता है। यह परिवर्तन सकल्प-शक्ति के द्वारा निष्पन्न हो सकता है। इस दौरान लगातार चित्त-श्वास के साथ-साथ चलता है; उसकी प्रेक्षा करता है। यही समवृत्ति श्वास प्रेक्षा है।

समवृत्ति श्वास प्रेक्षा मे नाडी-सस्थान का शोधन होता है, ज्ञान शक्ति विकसित होती है और अतीन्द्रिय-ज्ञान की सभावनाओ का द्वार खुलता है।

समवृत्ति श्वास प्रेक्षा मैत्री का प्रयोग है। हम इस बात का प्रयोग कर रहे हैं कि जो ठडा है, वह भी आवश्यक है और जो गर्म है वह भी आवश्यक है। दोनो परस्पर विरोधी होते हुए भी शत्रु नही हैं। दोनों हमारे जीवन के लिये अत्यत उपयोगी है।

दीर्घ श्वास प्रेक्षा और समवृत्ति श्वास-प्रेक्षा के समय श्वास को लय-बद्ध या ताल-बद्ध बनाया जाता है। इसके साथ श्वास को भीतर लेकर भीतर रोकना तथा बाह्य रोकना, कुम्भक कहलाता है। इस प्रकार का प्रयोग केवल उतने समय तक किया जाना चाहिए जिससे कि वैसा करने मे कठिनाई न हो। आसानी से करते हुए श्वास-सयम को क्रमश साधा जा सकता है।

६.५.२ प्रयोजन

ज्ञाता-द्रष्टा भाव

श्वास-प्रेक्षा ज्ञाता-द्रष्टा भाव को विकसित करने का सक्षम उपाय है। हमारी चेतना का मूल धर्म है—जानना और देखना, ज्ञाता-भाव और द्रष्टा-भाव। हम जब अपने अस्तित्व मे होते हैं—आत्मा की सन्निधि मे होते है, तब केवल जानना और देखना— दो ही बाते घटित होती हैं, किन्तु जब बाहर आते हैं—अपने केन्द्र से हटकर परिधि मे आते हैं, तब साथ मे और कुछ जुड जाता है, मिश्रण हो जाता है। मिश्रण होते ही जानना-देखना छूट जाता है और सोचना-विचारना, चिन्तन करना, मनन करना रह जाता है। चिन्तन-मनन सत्य की खोज के साधन नही हैं। सत्य की खोज के लिए अध्यात्म की चेतना को जगाना होगा। यह द्रष्टाभाव से ही सम्भव होता है। श्वास को देखना चेतना-जागरण की दिशा मे पहला कदम है। सही दिशा मे उठाया गया पहला कदम मजिल तक पहुचाने वाले अगले कदमो की शृखला का आदि बिंदु होता है। श्वास को देखना आत्म-साक्षात्कार की मजिल तक पहुचने का पहला कदम हैं।

श्वास को देखने का अर्थ है—दर्शन की बात पर आ जाना। यहा सोचना छूट जाता है, केवल देखना रह जाता है। देखना शुरू करते ही विचारो और विकल्पो पर प्रहार होने लग जाता है। विकल्पो से हटकर अविकल्प और चिन्तन से हटकर अचिंतन पर कदम बढने लगते हैं।

श्वास-प्रेक्षा के द्वारा हम जानने और देखने की मूल प्रवृत्ति का प्रारभ करते हैं, ज्ञाता भाव, द्रष्टा भाव को विकसित करते हैं। जब हम श्वास-प्रेक्षा का अभ्यास करते है, तब श्वास के साथ चित्त को जोडते है या चित्त से श्वास को देखते हैं। श्वास को देखते हैं, किन्तु सोचते नही। मूलत 'केवल देखने' का यह प्रयत्न है। साथ-साथ एकाग्रता भी सधती है; किन्तु हम श्वास-प्रेक्षा

केवल एकाग्रता के लिए नहीं करते, ज्ञाता-द्रष्टा भाव को विकसित करने के लिए करते हैं।

६.५.३ निष्पत्तियां

चित्त की प्रसन्नता

प्रेक्षाध्यान-साधना की अनेक प्रकार की निष्पत्तिया है, वे निष्पत्तिया मानसिक भी हैं और शारीरिक भी। ध्यान सिद्ध होने का सबसे पहला प्रमाण है—चित्त की प्रसन्नता। जैसे-जैसे ध्यान सिद्ध होने लगता है, प्रसन्नता बढती जाती है। हर्ष और शोक एक द्वन्द्व है। ध्यान की आराधना के द्वारा जो प्राप्त होता है, वह है—चित्त की प्रसन्नता—न हर्ष, न शोक।

मानसिक एकाग्रता

श्वास-प्रेक्षा मानसिक एकाग्रता का महत्त्वपूर्ण आलम्बन है। उससे रक्त को बल मिलता है, शक्ति के केन्द्र जागृत होते हैं, तैजस् शक्ति जागृत होती है, सुषुम्ना और नाडी-सस्थान प्रभावित होते हैं।

हमारे क्रियात्मक और व्यावसायिक क्षेत्र मे मानसिक एकाग्रता बहुत मूल्यवान् है। किसी भी कार्यक्षमता का आधार मानसिक एकाग्रता है। डॉक्टर, वकील, प्रोफेसर, कर्मचारी हो या किसी बडे सस्थान का प्रबध-निदेशक (मैनेजिंग डाइरेक्टर) हो या सामान्य गृह-कार्य मे रत गृहिणी हो—सबको अपने-अपने कार्य करने मे मानसिक एकाग्रता अत्यन्त अपेक्षित है। किसी भी कार्य मे जब तक चित्त एकाग्र या तन्मय नही होगा, तब तक उत्पादन-क्षमता (operational efficiency) का स्तर अत्यत निम्न होगा—क्षमता का उपयोग २०% और शक्ति का अनावश्यक व्यय ८०% होगा। किन्तु जब किसी भी कार्य मे चित्त की तन्मयता होगी तब क्षमता ८०% व अनावश्यक व्यय २०% हो जाएगा अर्थात् ठीक पहले के विपरीत।

श्वास-प्रेक्षा का प्रयोग चित्त की एकाग्रता को तन्मयता को बढाने का सरल किन्तु सक्षम उपाय है। जैसे श्वास केवल वर्तमान की क्रिया है— न अतीत की स्मृति, न भविष्य की कल्पना और साधक उसी को देखने मे तन्मय हो जाता है, वैसे ही व्यावसायिक क्षेत्र मे भी दूसरे अनेक कार्यों को छोडकर केवल वर्तमान के काम पर पूरा ध्यान देना और वैसा करने की आदत डालना, यह मानसिक एकाग्रता का प्रशिक्षण है।

औद्योगिक, वाणिज्यिक और व्यापारिक क्षेत्र के बडे सस्थान अपने वरिष्ठ प्रबधको की कार्यक्षमता बढाने के लिए, उनके प्रशिक्षण मे प्रतिवर्ष लाखो रुपए खर्च करते हैं। प्रशिक्षण देने वाले सस्थान बहुधा सेमीनार के रूप मे यह कार्यक्रम चलाते है, किन्तु वस्तुत. कार्यक्षमता का विकास करने का मूल है

मानसिक एकाग्रता का प्रयोग और उसे प्राप्त करने का साधन है—श्वास-प्रेक्षा।

जागरूकता

श्वास-प्रेक्षा जागरूकता का अचूक उपाय है। इसमे हम भीतर जाने वाले और बाहर निकलने वाले श्वास को देखते हैं। दरवाजे पर खडा प्रहरी (चित्त) यदि जागरूक न हो, तो कोई भी भीतर जा सकता है, कोई भी बाहर आ सकता है। फिर प्रहरी होने का कोई अर्थ ही नही है। आते-जाते श्वास को देखते-देखते चित्त जागरूक हो जाता है, फिर एक भी श्वास उससे बचकर निकल नही पाता, प्रत्येक श्वास को वह देख ही लेता है। श्वास और चित्त साथ-साथ चले, सहयात्री रहे। दो साथी साथ मे चलें और एक ऊघता चले यह हो नही सकता। नीद आते ही साथ छूट जायेगा। श्वास का क्षेत्र सीमित है, चित्त का क्षेत्र असीम। चित्त का काम यह नही कि वह श्वास की सीमा मे चले, श्वास के साथ ही रहे। श्वास की यात्रा छोटी है, उसका यात्रापथ नथुने से फेफडे तक बहुत सकीर्ण और छोटा है, किन्तु चित्त का मार्ग बहुत लम्बा-चौडा है, बहुत दीर्घ है। वह एक क्षण मे सारी दुनिया का चक्कर लगा सकता है। इतनी विशाल यात्रा करने वाले और इतनी तीव्र गति से चलने वाले चित्त को श्वास जैसे छोटे यात्री के साथ जोडे रखना कठिन काम है, किन्तु यह किया जा सकता है। ऐसा करने पर ही चित्त जागरूक हो जाता है, फिर वह कभी नही सोता, वह श्वास का साथी बन जाता है।

समभाव

श्वास वास्तविक है, इसलिए वह सत्य है—वर्तमान की घटना है। श्वास-प्रेक्षा करने का अर्थ है—सत्य को देखना, वर्तमान मे जीने का अभ्यास करना। श्वास एक घटना है। यह वर्तमान की घटना है, अतीत या भविष्य की नही। जिस क्षण मे हम श्वास लेते हैं, उसी क्षण मे हम उसे देख रहे है। यह वर्तमान का क्षण है। यह है—वर्तमान मे जीने का अभ्यास, वर्तमान मे रहने का अभ्यास। जब हम वर्तमान मे है, उसे देख रहे है, उस समय न कोई राग है, न कोई द्वेष है, क्योकि जब स्मृति या कल्पना नही है, तो राग भी नहीं है और द्वेष भी नही है। हम स्मृति और कल्पना से मुक्त तथा राग-द्वेष से मुक्त क्षण मे जी रहे हैं। यह है शुद्ध चेतना का क्षण—यहा न प्रियता है और न अप्रियता, न कोई अतीत का अनुभव है और न कोई भविष्य की चिंता।

श्वास को देखने का अर्थ है—समभाव मे जीना। वर्तमान मे जीना।

वर्तमान मे जीने का अर्थ है—मन को विश्राम देना, भार से मुक्त होना, मानसिक तनाव से छुटकारा पाना—वीतरागता के क्षण मे जीना, राग-द्वेष-मुक्त क्षण मे जीना। जो व्यक्ति श्वास को देखता है, उसका तनाव अपने आप विसर्जित हो जाता है।

शक्ति-जागरण

हम दीर्घ-श्वास लेते हैं, दीर्घ-श्वास की प्रेक्षा करते है, इसका अर्थ यह हुआ कि हम शक्ति के मूल स्रोतो को जागृत करने का प्रयत्न करते हैं। दीर्घ श्वास को देखने की वात वहुत छोटी-सी लगती है, किन्तु यह बहुत गहरी वात है। एक अंगुली को पकड कर समूचे घर के मालिक वन जाने की वात है। हम इस प्रक्रिया मे केवल प्राण को नही पकड़ रहे हैं, वरन् समूची प्राण-शक्ति को जागृत करने का प्रयत्न कर रहे हैं। जैसे-जैसे हम श्वास को दीर्घ करते हैं, हम पूरी ऊर्जा को खीचते हैं और उसे देखते हैं, तो शक्ति के मूल स्रोत को जागृत कर लेते हैं, जिसके विस्फोट के द्वारा हमे नई-नई शक्तियां उपलब्ध होती हैं। नई दिशाओ के उद्घाटन के लिए श्वास-प्रेक्षा बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

६.६.० सारांश

प्राण

यन्त्र या वाहन में ईन्धन न हो तो वह चल नही सकता। इसी प्रकार जीवन मे प्राण न हो तो व्यक्ति जी नही सकता। प्राण जीवनी शक्ति है। यह वल, ऊर्जा या तेज के रूप मे जानी जाती है। शरीर में स्थान व कार्य भेद से उसके पाच प्रकार किये गये हैं—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान।

प्राण के दो रूप हैं—एक आकाशमण्डल मे व्याप्त प्राण और दूसरा शरीर मे परिणत ऊर्जा या शक्ति रूप प्राण। वैज्ञानिक दृष्टि से प्रत्येक पदार्थ ऊर्जा का ही संगठित रूप है। वायु मे स्थित प्राण की तुलना विद्युत आवेशित कणो से की जा रही है।

जैन दर्शन के अनुसार आकाशीय प्राण की तुलना तैजस् वर्गणाओ से की जाती है। ये वर्गणाएं औदारिक शरीर मे स्थित पर्याप्तियो के माध्यम से ग्रहण की जाती हैं और इनका तैजस् शरीर में परिणमन (Assimitlation) होता है। वहा से पुन. औदारिक शरीर में दस प्राण के रूप मे अभिव्यक्त होती हैं। कार्य करती हैं। अन्त मे पुन: आकाश मण्डल मे वर्गणाएं विसर्जित हो जाती हैं।

प्राण एवं श्वास का प्रशिक्षण

प्राण को सम्यक् रूप से ग्रहण करने का सरल एव सशक्त साधन है—श्वास। इसके नियन्त्रण एव विस्तार का अभ्यास प्राणायाम है। प्राण के ऊर्ध्वारोहण का उपाय है—अन्तर्यात्रा। यह सतुलन का भी साधन है। श्वास को सूक्ष्म व दीर्घ करने का प्रयोग है—दीर्घश्वास प्रेक्षा। प्राण सतुलन का साधन है—समवृत्ति श्वास प्रेक्षा।

श्वास

श्वास शरीर से कार्बन डाइऑक्साइड को बाहर निकालता है और ऊर्जा स्रोत ऑक्सीजन को शरीर के भीतर पहुचाता है।

श्वास को सम्यक् एव पूरा लेने का तरीका है—हसली, पसली व तनुपट की मासपेशियो का उपयोग करना। असम्यक् व अधूरे श्वास से स्नायविक दुर्बलता एव उत्तेजना बढती है। सम्यक् व पूरे श्वास से रक्त परिसचरण ठीक से होता है। कोशिकाओ को पूरी ऑक्सीजन मिलती है। शरीर की रोग-प्रतिरोधात्मक शक्ति बढती है।

आध्यात्मिक दृष्टि से श्वास प्राण को भीतर लेने का सशक्त माध्यम है। श्वास निरतर चलता है तो प्राण का ग्रहण भी चलता है। श्वास का सम्बन्ध है प्राण से, प्राण का सम्बन्ध है सूक्ष्म प्राण से, सूक्ष्म प्राण का सबध है सूक्ष्मतम शरीर-कार्मण शरीर से। हम जितना लम्बा श्वास लेते हैं, उतनी ही अधिक प्राण-शक्ति प्राप्त होती है। श्वास-प्रेक्षा से प्राण-शक्ति और बढ जाती है। प्राण-शक्ति को ज्ञान केन्द्र मे ले जाना—यही हमारी प्राण की साधना है।

श्वास-प्रेक्षा

प्राण साधना का सशक्त आलम्बन है—श्वास-प्रेक्षा। श्वास की प्रेक्षा का मुख्य प्रयोजन है—ज्ञाता-द्रष्टाभाव का विकास। यह प्रयोग मन पर काबू पाने का अचूक उपाय है। श्वास की अनेक विशेषताए हैं जिससे यह प्रेक्षा-ध्यान का मुख्य आलम्बन बना है। श्वास स्वत चालित और इच्छा-चालित भी है। यह शुद्ध, सहज व आन्तरिक आलम्बन है। श्वास-प्रेक्षा के दो रूप हैं—दीर्घश्वास-प्रेक्षा एव समवृत्ति श्वास-प्रेक्षा। इसके अभ्यास से चित्त की प्रसन्नता, मानसिक एकाग्रता, जागरूकता, समभाव, ज्ञाता-द्रष्टाभाव एव शक्ति का जागरण होता है।

६.७.० सहायक सामग्री

१ जीव-अजीव, आचार्य महाप्रज्ञ
प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडनू (राज)

२. प्रेक्षाध्यान . श्वास प्रेक्षा, आचार्य महाप्रज्ञ
प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडनू (राज.)
३. प्राण-विज्ञान, गणाधिपति श्री तुलसी
प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडनू (राज)
४. प्रेक्षाध्यान-स्वर-साधना, साध्वी रमाकुमारी
प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडनू (राज.)
५. प्राण-चिकित्सा, साध्वी राजीमती
प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडनू (राज.)
६. मनोनुशासनम्, गणाधिपति श्री तुलसी
प्रकाशक – जैन विश्व भारती, लाडनू (राज.)
७ Pranayam, the yoga of Breathing, Ander Van Lysbeth, Pub Uuwin Paperbacks, London
८. प्राण विज्ञान, स्वामी शिवानन्द
९ प्रेक्षाध्यान . सिद्धात और प्रयोग,
प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडनू (राज.)

अभ्यासार्थ प्रश्न

१ प्राण का महत्त्व एव स्वरूप क्या है ?
२. वैज्ञानिक दृष्टि से प्राण क्या है ?
३ प्राण के बारे में आध्यात्मिक दृष्टिकोण क्या है ?
४ प्राण के बारे में जैन दृष्टिकोण क्या है ?
५ प्राणायाम का विवेचन करते हुए उसकी उपयोगिता को सिद्ध करे ।
६ श्वास की प्रक्रिया को वैज्ञानिक दृष्टि से स्पष्ट करे ।
७ श्वास, प्राण और प्राणवायु को स्पष्ट करें ।
८ 'अन्तर्यात्रा' प्रयोग के स्वरूप और महत्त्व को प्रतिपादित करिये ।
९ श्वास प्रक्रिया का आध्यात्मिक दृष्टि से महत्त्व समझाए ।
१० श्वास-प्रेक्षा की निष्पत्तियो पर प्रकाश डाले ।

अध्याय-७

मन और मानसिक प्रशिक्षण

रूपरेखा

१. मन (Mind)
- मन का स्वरूप (Nature of Mind)
- मन की अवस्थाएं (States of Mind)
- मानसिक विकास (Mental development)

२. मन और जीवन विज्ञान (Mind and Jeevan Vigyan)

३. मन की समस्या (Problem of Mind)
- मन की शक्ति (Power of Mind)
- मन की शांति (Mental Peace)
- मन की समस्या (Problem of Mind)

४. मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health)
- मनोदशा कैसे बदले ? (How to change Mood)
- मन का कायाकल्प

५. मन का अनुशासन और विलय

६. अनुप्रेक्षा और भावना
- वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Perspective)
- आध्यात्मिक दृष्टिकोण (Spiritual Perspective)
- प्रयोजन (Purpose)
- निष्पत्ति (Result)

७. सारांश (Summary)

८. सहायक सामग्री (Related Readings)

९. अभ्यासार्थ-प्रश्न (Questions)

मन और मानसिक प्रशिक्षण

७.१.० मन (Mind)

वर्तमान युग मानसिक समस्याओ का युग है । व्यक्ति मन की समस्या से सन्त्रस्त वना हुआ है । सुख एव शातिपूर्ण जीवन मे प्रमुख बाधा है—मन का समस्याग्रस्त होना । व्यक्ति मन की समस्या से मुक्ति पाना चाहता है । मन की समस्या से मुक्ति पाने के लिए मन को समझना जरूरी है । मन को समझे बिना, उसके अस्तित्व और कर्तृत्व को पहचाने बिना मन की समस्या को समाहित नही किया जा सकता ।

जीवन विज्ञान मे मन को जानना इसलिए आवश्यक है कि यह जीवन के विकास का एक मुख्य आधार है । मन स्वस्थ, संतुलित, एकाग्र एव जागृत रहता है तो जीवन भी स्वस्थ, सफल एव शातिमय बनता है । मन के अध्ययन के अन्तर्गत उसके स्वरूप, उसकी विविध भूमिकाए, उसका शरीर पर प्रभाव, मन की शक्ति का विकास, मानसिक शाति, मानसिक समस्या, मनोदशा, मन की जागृति, मानसिक रूपातरण, मन का विलय एव मनोनुशासन, एव अनुप्रेक्षा का समावेश किया गया है ।

प्रश्न है – मन क्या है ? मन कोई स्थायी तत्त्व नही है । वह चेतना से सक्रिय बनता है । एक वाक्य मे परिभाषा की जाये तो कहा जा सकता है कि जो चेतना बाहर जाती है, उसका प्रवाहात्मक, प्रवृत्यात्मक, प्रक्रियात्मक अस्तित्व ही मन है । शरीर का अस्तित्व जैसे निरन्तर है वैसे भाषा और मन का अस्तित्व निरन्तर नही है, किंतु प्रक्रियात्मक है । 'भाष्यमाण' भाषा होती है । भाषण से पहले भी भाषा नही होती और भाषण के बाद भी भाषा नही होती । भाषा केवल भाषण की प्रक्रिया के समय होती है । 'भासिज्जमाणी भाषा' । इसी प्रकार 'मन्यमान' मन होता है । मनन से पहले भी मन नही होता और मनन के बाद भी मन नही होता । मन केवल मनन की प्रक्रिया के समय होता है —मणिज्जमाणे मणे ।

मन : विभिन्न मत

मन के विषय मे अनेक धारणाए हैं—

समतात्मक भौतिकवाद के अनुसार मानसिक क्रियाए स्वभाव से ही भौतिक है ।

कारणात्मक भौतिकवाद के अनुसार मन पुद्गल का कार्य है ।

गुणात्मक भौतिकवाद के अनुसार मन पुद्गल का गुण है।

जैन दृष्टि के अनुसार मन दो प्रकार के होते है—एक चेतन और दूसरा पौद्गलिक (Material)।

पौद्गलिक मन ज्ञानात्मक मन का सहयोगी होता है। उसके बिना ज्ञानात्मक मन अपना कार्य नही कर सकता। उसमे अकेले मे ज्ञान शक्ति नही होती। दोनो के योग से मानसिक क्रियाए होती हैं।

मन का मुख्य केन्द्र

मन चैतन्य के विकास का एक स्तर है इसलिए वह ज्ञानात्मक है। उसका कार्य स्नायुमडल, मस्तिष्क और चिंतन-योग्य पुद्गलो की सहायता से होता है इसलिए वह पौद्गलिक भी है। हमारी शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकार की क्रियाए स्नायुमडल के द्वारा सचालित एव नियन्त्रित होती हैं। मस्तिष्क के दो भाग हैं—

१ वृहन्मस्तिष्क २ लघु मस्तिष्क

ज्ञानवाही स्नायु वृहद् मस्तिष्क तक अपना सदेश पहुचाते है और उसके ज्ञान प्रकोष्ठ क्रियाशील हो जाते हैं। मन का मुख्य केन्द्र यह वृहद् मस्तिष्क है। वृहद् मस्तिष्क के द्वारा जो चैतन्य प्रकट होता है, जिसमे त्रैकालिक ज्ञान की क्षमता होती है, उसका नाम है मन।

मन का कार्य

मानव जीवन की प्रवृत्तियो के सचालन के लिए एक क्रिया तन्त्र है। उसके तीन अग हैं—शरीर, वाणी एव मन। मन क्रिया तन्त्र का अग है। यह एक कर्मचारी है। इसका कार्य है स्वामी के निर्देशो का पालन करना। यह न अच्छा करता है और न बुरा। अच्छे या बुरे का सारा दायित्व स्वामी का होता है, कर्मचारी का नही। मन एक नौकर है और इसका काम है स्वामी की आज्ञा का पालन करना, चित्त के निर्देशो की क्रियान्विति करना।

मन का स्थान

एक प्रश्न है—मन कहा हैं? इस सम्बन्ध मे चार विचार धाराए हमारे सामने हैं—

- मन समूचे शरीर मे व्याप्त है।
- मन का स्थान हृदय के नीचे है।
- मन हृदय-कमल के बीच मे है। हृदय कमल की आठ पखुडिया हैं, वहा मन है। कुछ योगाचार्यों का मत है—बाए फेफडे मे जहा हृदय है, उसके एक इञ्च नीचे मन का स्थान है।

० वर्तमान शरीरशास्त्र का अभिमत है कि मन का स्थान मस्तिष्क है।

वस्तुत· ये सारी सापेक्षताएं हैं। यदि हम कहे कि मन समूचे शरीर मे व्याप्त है तो वह भी सापेक्ष ही होगा। हमारे स्नायु-सस्थान में जितने भी ग्राहक स्नायु हैं जो वाह्य विपयो को ग्रहण करते हैं, उनका जाल समूचे शरीर मे फैला हुआ है। वे शरीर के सव भागो को ग्रहण करते हैं। इस प्रकार मन का शासन सपूर्ण शरीर मे व्याप्त है।

'मन हृदय के नीचे है'—वह भी सापेक्ष है। सुषुम्ना की एक धारा हृदय को छूती है। उसका हृदय के साथ सम्पर्क है इसलिए हृदय को मन का केन्द्र मानना युक्ति सगत है। वह भाव पक्ष का मुख्य स्थान है।

मन का स्थान मस्तिष्क है यह बहुत स्पष्ट है। ज्ञानततुओ का सचालन इसी से होता है। यह उन पर नियन्त्रण व नियमन करता है।

मन और शरीर विज्ञान

शरीर मे ज्ञान के दो मुख्त केन्द्र हैं—एक मस्तिष्क या वृहद् मस्तिष्क, दूसरा मेरुदण्ड। सारे शरीर मे ततुओ का एक जाल जैसा बिछा हुआ है। उन ततुओ मे दो प्रकार के ततु हैं—एक ज्ञानग्राही (Receptors) और एक ज्ञानवाही (Sensory nerves)। ज्ञानग्राही ततु विपय को ग्रहण करते हैं और उनके द्वारा गृहीत विपय को ज्ञानवाही तन्तु मस्तिष्क तक पहुंचा देते हैं मेरुदण्ड के माध्यम से। वृहद् मस्तिष्क का जो मध्य भाग है, उसे भेजा-कारटेक्स कहा जाता है। ज्ञानग्राही ततु विषय को पकडते हैं फिर ज्ञानवाही ततु उसे ले जाते हैं और मस्तिष्क के कारटेक्स तक पहुंचा देते हैं। फिर अनुभव होता है, प्रत्यय (Percept) होता है।

एक काम होता है ज्ञान का दूसरा काम होता है चेप्टा का। मस्तिष्क मे दो केन्द्र हैं—एक ज्ञान केन्द्र (Sensory Centre) और एक चेष्टाकेन्द्र या क्रियाकेन्द्र (moter center)। ज्ञान केन्द्र का काम है ज्ञान को ग्रहण कर लेना। फिर अनुभव का आदेश होता है चेष्टा-केन्द्र को, क्रिया केन्द्र को। वह फिर प्रवृत्ति करता है। पैर मे कांटा चुभा, काटा चुभते ही जो चुभन हुई, उसका ज्ञान ठेठ मस्तिष्क तक पहुंच जाता है। वहां से हाथ को आदेश मिलता है कि कांटे को निकालो। चेष्टा केन्द्र सक्रिय हो जाता है। सक्रिय केन्द्र का आदेश होता है और क्रियावाही तन्तु सक्रिय होकर काटे को निकाल लेते हैं। यह सारी सवेदना से लेकर क्रिया करने तक की प्रक्रिया है।

प्रत्यय : इन्द्रियजन्यज्ञान

यह है हमारे शरीर की प्रक्रिया—ज्ञान करने की और क्रिया करने की। सर्दी का मौसम है, ठंडी हवा चल रही है। हमे सर्दी लग रही है। यह

है प्रत्यय या निर्विकल्प प्रत्यक्ष। यह इन्द्रियजन्य ज्ञान है। मनोविज्ञान की भाषा मे इसे प्रत्यय कहते है। यह इन्द्रिय का सम्यक् बोध है। इसके बाद हमारा जो प्रत्यय हुआ, इन्द्रिय का ज्ञान हुआ, उसके साथ फिर मन जुडता है। मन साथ मे जुडा तब उस विषय मे तर्क, ऊह, अपोह होता है, निर्णय होता है और उसके बाद धारणा हो जाती है, अनुभव का सचय हो जाता है, शक्ति का सचय हो जाता है। वे स्मृति-चिह्न बन जाते हैं। जो कुछ भी देखा, उसके स्मृति चिह्न नही बनते। बहुत सारी बातें हम देखते हैं, सामने आती चली जाती है। जिनका अध्यवसाय, निर्णय हो जाता है वे धारणाए बन जाती हैं एव निमित्त पाकर प्रकट हो जाती है।

मन की व्यापकता

इन्द्रियो के विषय केवल प्रत्यक्ष पदार्थ बनते हैं। मन का विषय प्रत्यक्ष और परोक्ष—दोनो प्रकार के पदार्थ बनते हैं। शब्द, परोपदेश, या आगम-ग्रन्थ के माध्यम से अस्पृष्ट, अरसित, अघ्रात, अदृष्ट, अश्रुत, अननुभूत, मूर्त्त और अमूर्त्त सब पदार्थ मन द्वारा जाने जाते हैं।

इन्द्रिया सिर्फ वर्तमान अर्थ को जानती हैं। मन त्रैकालिक ज्ञान है। स्वरूप की दृष्टि से मन वर्तमान ही होता है। मन मन्यमान होता है। मनन के समय ही मन होता है। मनन से पहले और पीछे मन नही होता। वस्तु ज्ञान की दृष्टि से वह त्रैकालिक होता है। उसका मनन वर्तमानिक होता है, स्मरण अतीतकालिक, सज्ञान उभयकालिक, कल्पना भविष्यकालिक, चिन्ता-अभिनिबोध और शब्द-ज्ञान त्रैकालिक। त्रैकालिक सज्ञान मे स्मृति और कल्पना का विकास होता है तथा उसमे भूत और भविष्य के सकलन की क्षमता होती है इसलिए मन को दीर्घकालिक सज्ञान भी कहा जाता है।

विकास का तरतमभाव

प्राणीमात्र मे चेतना समान होती है, उसका विकास समान नही होता। अत मन सभी प्राणियो मे नही होता। वह केवल गर्भज-पचेन्द्रिय प्राणी मे होता है। चेतना का न्यूनतम विकास एकेन्द्रिय जीवो मे होता है इनमे सिर्फ एक स्पर्शन इन्द्रिय का ज्ञान होता है। स्त्यानर्द्धि-निद्रा-गाढतम नीद जैसी दशा उनमे हमेशा रहती है, इससे उनका ज्ञान अव्यक्त रहता है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय मे क्रमश ज्ञान की मात्रा बढती है।

अव्यक्त ज्ञान या चेतना को अध्यवसाय, परिणाम कहा जाता है। अर्ध-व्यक्त चेतना का नाम है—हेतुवादोपदेशिकी सज्ञा। यह दो इन्द्रियो वाले जीवो से लेकर अगर्भज पञ्चेन्द्रिय जीवो मे होती है। इसके द्वारा उनमे इष्ट की प्रवृत्ति एव अनिष्ट से निवृत्ति होती है। व्यक्त मन के बिना भी इन

प्राणियो मे सम्मुख आना, वापस लौटना, सिकुडना, फैलना, बोलना, चलना और दौडना आदि-आदि प्रवृत्तियाँ होती है। मन गर्भज पञ्चेन्द्रिय जीवो मे होता है। वे त्रैकालिक और आलोचनात्मक विचार कर सकते हैं।

मन का स्वरूप (Nature of mind)

७.१.२. मन का स्वरूप

मन का अर्थ है—सकल्प-विकल्प। मन का अर्थ है स्मृति और चिन्तन। मन का अर्थ है—कल्पना। मन तीनो काल मे बटा हुआ है। जो अतीत की स्मृति करता है वह है मन। जो भविष्य की कल्पना करता है उसका नाम है—मन। जो वर्तमान का चिन्तन करता है उसका नाम है—मन। मन का अर्थ है स्मृति, चिन्तन, कल्पना आदि मानसिक प्रक्रियाए। तीनो चचलताए हैं जब स्मृति, चिन्तन और कल्पना नही होते, तब मन नही होता। जब मन होता है तब स्मृति, कल्पना अथवा चिन्तन अवश्य होता है।

संस्कार, धारणा और स्मृति

सस्कार या धारणा का पुनर्जागरण स्मृति है। प्रत्यय और प्रत्यय से शक्ति-सचय यानी धारना। उसके बाद अगली प्रक्रिया शुरू होती है मन की। प्रत्यय आता है तत्काल चला जाता है। प्रत्यय सामने नही रहता। हमने व्यक्ति को देखा। व्यक्ति चला गया। पर प्रत्यय या निर्विकल्प ज्ञान अपने सस्कार छोड जाता है। मस्तिष्क मे एक परिवर्तन होता है अर्थात् वह वहा सचित रह जाता है अब क्या होता है? प्रत्यय तो चला गया किन्तु हमारे मन मे एक प्रतिमा बन गई। दूसरी कोई उत्तेजना सामने आती है, वह धारणा फिर जागृत हो जाती है उसे हम कहते हैं स्मृति। सस्कार के जागरण से होने वाला सवेदन स्मृति कहलाता है। सस्कार जागा, जो धारणा मे था, वह जागृत हुआ, स्मृति हो गई। सस्कार और धारणा का एक नाम है अविच्युति। जो अनुभव हुआ वह च्युत नही होता, टीका रह जाता है और वही हमारे सामने स्पष्ट होता रहता है।

स्मृति और प्रत्यभिज्ञा (Recognition)

स्मृति का दार्शनिक अर्थ है–'सस्कारप्रबोधसम्भवा स्मृति'—सस्कार के जागरण से उत्पन्न होने वाला ज्ञान स्मृति है। स्मृति का आकार है 'वह'। दो बाते है। एक है स्मृति और दूसरी है – पहचान। पहचान अलग होती है, स्मृति अलग होती है। स्मृति मे वस्तु, व्यक्ति आदि प्रत्यक्षत सामने नही होते, परोक्ष ही रहते है। किन्तु पहचान मे वह प्रत्यक्ष ही होता है इसलिए स्मृति का आकार बनता है 'वह' और पहचान का बनता है 'यह

वह' । 'वह यह'—इसमे स्मृति और पहचान—दोनो हैं ।

मानसज्ञान : चार विकल्प

इन्द्रियज्ञान या मानसज्ञान को अभिनिबोध भी कहा जाता है। जो हम सामने देखते है, नियतरूप से देखते है, उस बोध का नाम है 'अभिनिबोध' । इस बोध की दो शर्ते है । एक है—सामने होना और दूसरी है नियत होना । सभी इन्द्रियो के कार्य नियत होते हैं । आख का काम है देखना और कान का काम है सुनना । ये नियत हैं । इन दो शर्तो के साथ जो ज्ञान होता है उसका नाम है अभिनिबोघ । इसके चार रूप हैं—मति, स्मृति, सज्ञा और चिन्ता । मति का अर्थ है मनन, विचार । स्मृति का अर्थ है—याद होना । सज्ञा का अर्थ है प्रत्यभिज्ञा, पहचान । चिन्ता का अर्थ है तर्कपूर्ण चिन्तन, व्याप्ति या सबधो की खोज ।

कल्पना

चेतना प्राणी का स्वरूपगत लक्षण है । इच्छा उसका व्यावहारिक लक्षण है । इच्छा और अभिलाषा की अभिव्यक्ति है कल्पना । प्राणी मे इच्छा होती है । वह मनोरथ या कल्पना के रूप मे प्रकट होती है । कल्पना मे कोई नया ज्ञान नही होता, केवल ज्ञान का सयोजन होता है । जो बातें ज्ञात हैं, उनका विभिन्न प्रकार से सयोजन होता है । जैसे 'आग ठण्डी है' यह एक कल्पना है । इसमे भी दो बातें हैं । दोनो हमे ज्ञात हैं । हम आग को भी जानते हैं और ठड को भी जानते हैं । दोनो का हमने एकमात्र सयोजन कर दिया और 'आग ठडी है' यह हमारी कल्पना मे आ गया ।

कल्पना और इच्छा

कल्पना के आधार पर विचित्र आकार बना लिये जाते हैं' जिनमे कोई सगति प्रतीत नही होती । पर यह एक तथ्य है—कल्पना मे जिस प्रकार का आकार, रूप, रग आया, उससे यह पता चल जाता है कि इच्छा क्या चाहती है और किस रूप मे प्रकट होना चाहती है । कल्पना के आधार पर इच्छा या आन्तरिक अभिलापा को जाना जा सकता है ।

कल्पना की सार्थकता

कल्पना का बहुत बडा उपयोग है । आदमी कल्पना करता है । वह कल्पना प्रेरक बनती है वह कल्पना हमारे पुरुपार्थ और उद्यम की निमित्त बनती है । कल्पना के आधार पर ही व्यक्ति पुरुषार्थ करता है और उस कल्पना को साकार बनाता है । विश्व मे जितने भी आविष्कार होते हैं, पहले उन सबकी कल्पना की जाती है । प्रत्येक आविष्कार का प्रारूप हमारी कल्पना मे बनता है और वह धीरे-धीरे आकार ग्रहण करता है । कल्पना को

साकार होने मे लम्बी प्रक्रिया से गुजरना होता है। वह प्रक्रिया योजना कहलाती है। योजना कल्पना का ही पूरक तत्त्व है। कल्पना, योजना और फिर उस प्रकार के चिन्तनो, व्यवहारो या साधनो का सघटन करना होता है। वह कल्पना जब क्रियान्वित होती है आकार लेती है तब नया तथ्य ससार के सामने आ जाता है।

कल्पना और संकल्प

कल्पना का सघन रूप है सकल्प। जिस व्यक्ति की कल्पना सघन और सुदृढ बन जाती है, वह सकल्प का रूप ले लेती है, तब उसमे अपूर्व शक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है। वह सकल्प उस व्यक्ति के लिए कामधेनु, कल्पवृक्ष या चिन्तामणि रत्न बन जाता है अर्थात् उसके लिए सब कुछ बन जाता है। सकल्प जीवन की सफलता का रहस्य है।

सकल्प मे बहुत बडी शक्ति होती है। जिस प्रकार का सकल्प होता है, परमाणुओ को भी उसी रूप मे सगठित होने के लिए बाध्य होना पडता है। आकाश मे बादल नही है। आदमी ने सकल्प किया। वह सघन और सुदृढ़ हुआ। इस स्थिति मे परमाणुओ को बादल के रूप मे बदलना होता है। यह इच्छाशक्ति का निदर्शन है। इच्छा शक्ति परमाणुओ का सयोजन या वियोजन करने मे सक्षम है।

कल्पना और विकल्प

कल्पना का दूसरा रूप है—विकल्प। यह मान लेना कि मैं सुखी हू, मैं दुःखी हू—यह कल्पना ही तो है। वास्तव मे सुख-दुःख अनुभव के साथ जुडता है। कल्पना के कारण ही सुख और दुःख की तीव्रता आती है। यदि आदमी दृढता से यह मान लेता है कि कुछ भी पीडा नही है तो वास्तव मे उसकी कष्टानुभूति पच्चीस प्रतिशत कम हो जाएगी। थोडी पीडा भी सकल्प के साथ अधिक तीव्र बन जाती है। पीडा की तीव्रता और मदता विकल्प के आधार पर होती है। जिस प्रकार की कल्पना होती है, उसी प्रकार की अनुभूति होने लग जाती है।

यह टेबल है, यह घडी है—ये सारे हमारे विकल्प है। वास्तव मे ये सब परमाणुओ के सगठन मात्र हैं। ये सभी पदार्थ परमाणुओ के अतिरिक्त कुछ भी नही हैं किन्तु हमने आकार के साथ अपनी कल्पना जोड दी और उसको एक नाम दे दिया। यह विकल्प है। इस प्रकार के तीन रूप बन जाते है—कल्पना, सकल्प और विकल्प।

विचार

मन का तीसरा अर्थ है—विचार। आदमी निरतर चिन्तन करता रहता है, सोचता रहता है। शब्द का व्यवहार उसका माध्यम है। शब्द भी

विचार है। विचार का शाब्दिक अर्थ है—विचरण करना, गतिशील होना। इन्द्रिया अपने-अपने प्रतिनियत विषयो का ग्रहण करती है, और वे सारे ग्रहण हमारे मस्तिष्क मे अकित होते रहते हैं। अब क्रिया का दूसरा क्रम चालू होता है। जो विषय गृहीत हैं, उनका निर्धारण करना, विश्लेषण करना, यह सारा कार्य मन करता है। एक दुखी व्यक्ति है। उसने जो कार्य किया है, उसको बाहरी जगत् तक पहुचा देना विचार का काम है। हमारे भीतर जो सस्कार, वृत्तिया और इच्छाए है, उनका सयोजन करना, नियोजन करना, वियोजन करना, एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना, एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के विषय मे, एक वस्तु से दूसरे वस्तु के विषय मे, एक स्थान या काल से दूसरे स्थान या काल के विषय मे—इन सारे सबधो मे आना-जाना, इनसे सम्पर्क स्थापित करना, ये सारी मानसिक क्रियाए विचार कहलाती हैं। विचार के बिना एक-दूसरे के साथ सपर्क स्थापित नही हो सकता।

मन की अवस्थाए

मन की तीन अवस्थाए हैं—विक्षेप, एकाग्रता और अमन।

विक्षेप की अवस्था मे स्मृतियो, कल्पनाओ और विचारो का सतत विचरण होता है। एक स्मृति के बाद दूसरी स्मृति, एक कल्पना के बाद दूसरी कल्पना और एक विचार के बाद दूसरा विचार—यह क्रम चलता रहता है। यह विक्षेपावस्था की स्थिति है। इसमे मन की भूमिका व्यग्रता की होती है। व्यग्रमन किसी एक अग्र अर्थात् आलम्बन पर नही टिकता। अनेक अग्रो-आलबनो पर भटकता रहता है। उसका भटकाव कभी नही मिटता। जितनी व्यग्रता होती है उतनी ही लक्ष्य से दूरी बनी रहती है। व्यक्ति ध्येय के निकट नही पहुच पाता। ध्येय तक पहुचने के लिए व्यग्रता को कम करना होता है।

मन की दूसरी अवस्था है—एकाग्रता। एकाग्रता का अर्थ है—एक आलम्बन पर टिके रहना। एक स्मृति पर टिके रहना, एक कल्पना या विचार पर स्थिर रहना, एक ही विषय का चिन्तन करते रहना।

मन की तीसरी अवस्था है—अमन। लोग स्थिरता को मन की तीसरी अवस्था मानते हैं। यह भ्रान्त मान्यता है। मन की प्रकृति ही है चच-लता। उसमे स्थिरता कैसे आएगी ? मन को अमन बनाना, यह तीसरी अवस्था है।

अमन का अर्थ है—मन को उत्पन्न ही नही होने देना। मन स्थायी तत्त्व नही है। वह उत्पन्न होता है और विनष्ट हो जाता है। जब व्यक्ति स्मृति, कल्पना और विचार से मुक्त होता है, सर्वथा निर्विचार अवस्था मे

चला जाता है, तब अमन की स्थिति प्राप्त होती है। उस स्थिति मे मन नही होता, क्योकि उसके तीनो घटको—स्मृति, कल्पना और विचार का वहा अस्तित्व नही है।

७. १. ३ मन की अवस्थाएं (states of mind)

मन की भूमिकाएं

योग की भाषा मे एकाग्र मन की तीन अवस्थाएं हैं—अवधान, एकाग्रता/केन्द्रीकरण या धारणा और ध्यान। मनोविज्ञान भी इसी का सवादी विचार प्रस्तुत करता है। उसमे भी तीन अवस्थाए मानी गई हैं—अटेन्शन, कान्सन्ट्रेशन और मेडिटेशन। मानसिक क्रियाए इन तीन अवस्थाओ से गुजरती हैं।

अवधान

पहली अवस्था है—अवधान, अटेन्शन। यह मन की क्रिया है, जहा हम मन को किसी वस्तु के प्रति व्यापृत करते हैं, लगाते हैं। जो मन घूमता रहता है, उसे सचेत करना, चैतन्यवान् वनाना—यह है अवधान अवस्था। इसमे पदार्थ के साथ मन का सवध जुड जाता है। हम कहते हैं—सावधान हो जाओ। इसका मतलव है कि एक कार्य के प्रति दत्तचित्त हो जाओ। जो करना है, चित्त को उसमे लगा दो।

अवधान जैसे वाह्य वस्तु के प्रति होता है, वैसे ही कभी-कभी अपने मूल स्वरूप के प्रति भी होता है। जव मौलिक स्वरूप के प्रति अवधान होता है, उस स्थिति मे वाह्य के प्रति अवधान नही होता। मन का अवधान अपने प्रति हो जाता है। अपने प्रति मन का अवधान होना एक विशेष प्रकार की स्थिति है इस स्थिति मे ही अन्तर्दृष्टि (Intation), और प्रज्ञा (wisdom) का उदय होता है, आन्तरिक चेतना प्रकट होती है।

धारणा

मन की दूसरी अवस्था है—कान्सट्रेशन। योग की भाषा मे एकाग्रता या धारणा। यह अवधान से अगली अवस्था है। जिसमे हमने अवधान लगाया, मन का पदार्थ के साथ सम्वन्ध स्थापित किया, उसीमे केन्द्रित हो जाना। जो मन चारो ओर भटक रहा था, अनेक वस्तुओ पर जा रहा था, उसे सव वस्तुओ से हटकर उसी एक वस्तु मे केन्द्रित कर देना एकाग्रता या धारणा है। यह मन की धारणावस्था है। ध्यान से पहले धारणा करनी होती है।

ध्यान—मन की तीसरी अवस्था है—मेडिटेशन ध्यान। अवधान के वाद धारणा और धारणा के वाद ध्यान। केन्द्रीकृत मन की जो सघन

अवस्था है, जहा मन लम्बे समय तक टिक जाता है, जम जाता है, वह है ध्यान

ध्यान और स्मृति

जब व्यक्ति ध्यान प्रारम्भ करता हैं तब वह सबसे पहले स्मृति का प्रयोग करता है। वह जो भी आलम्बन लेता है, उस आलम्बन की स्मृति जरूरी है। यदि स्मृति दुर्बल है तो वह ध्यान भी नही कर पाता। ध्यान का प्रारभिक अर्थ है सतत स्मृति। एक आलम्बन पर सतत स्मृति का रहना एकाग्रता है। उस काल मे दूसरी स्मृति न आये। दूसरी स्मृति आते ही एकाग्रता खण्डित हो जाती है। यदि हम स्मृति पर अपना नियत्रण स्थापित कर लेते है, जिस स्मृति को पकड़ा है, वही स्मृति निरन्तर बनी रहे, दूसरी स्मृति न आए तो यह स्मृति का सातत्य एकाग्रता बन जाती है। एकाग्रता ध्यान है। ध्यान करने वाले व्यक्ति को मन के इस रूप को पकडना जरूरी हो जाता है। सतत एक स्मृति का अभ्यास—यह मन पर पहली विजय है।

ध्यान और कल्पना

कल्पना के बिना भी ध्यान नही होता। कोई न कोई कल्पना का सहारा लेना होता है। निर्विकल्प ध्यान प्रारम्भ मे अत्यन्त कठिन होता है। हमने कल्पना ली- हम विशाल प्रागण मे बैठे है और अपने आपको विशाल रूप मे अनुभव कर रहे हैं। यह व्यापकता की कल्पना है। कल्पना की—हम रुई से भी अधिक हल्के हो गए हैं या शीशे की भाति अत्यन्त भारी हो गये है। ये सारी कल्पनाए ध्यान मे सहयोगी बनती हैं। जैसी कल्पना होती है वैसा अनुभव भी होने लग जाता है। प्रश्न होता है कि इसका लाभ क्या है ? जब हम एक कल्पना मे अपनी चेतना का नियोजन कर लेते हैं तब शेष सारी कल्पनाए और विकल्प रुक जाते हैं। यह है कल्पना को सकल्प मे बदलना। यह मन पर हमारी दूसरी विजय है।

ध्यान और चिन्तन

ध्यै चिन्तायाम्—इस धातु से ध्यान शब्द निष्पन्न हुआ है। इस धातु के अनुसार ध्यान शब्द का अर्थ होता है चिन्तन।

विचार का प्रवाह चचलता की ओर जाता है और ध्यान का प्रवाह स्थिरता की ओर। इसी आधार पर ध्यान की एक परिभाषा मिलती है—'एकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानम्।' एक आलम्बन पर चिन्तन को रोके रखना ध्यान है।

चिन्तन मे एक सतति प्रवाह का होना आवश्यक नही है किन्तु ध्यान मे एक सतति का होना आवश्यक ही नही अनिवार्य है। इसी आशय को

लक्ष्य मे रखकर ध्यान की एक परिभषा की गई है—विषयान्तरास्पर्शवती चित्त सन्तति ध्यानम्—चित्त की वह सन्तति—प्रवाह जो अवलम्बित विषय के अतिरिक्त दूसरे विषयो का स्पर्श नही करती, ध्यान कहलाती है। इससे फलित होता है कि ध्यान सामान्य चितन नही है किन्तु एक ही विषय पर जो चितन की धारा प्रवहमान होती है, वह ध्यान है।

विचार का चक्र चलता रहता है। वह सतत गतिशील रहता है, रुकता नही। विचार मे स्मृति और कल्पना दोनो का योग होता है जब ध्यान काल मे स्मृति और कल्पना पर नियत्रण स्थापित कर लेते हैं तब विचार भी नियन्त्रित हो जाते हैं। विचार पर नियमन होना मन पर तीसरी विजय है।

७.१.४. मानसिक विकास (Mental Development)

मानसिक विकास के चार रूप हैं—

- औत्पत्तिकी बुद्धि—प्रतिभा या सहज बुद्धि।
- वैनयिकी बुद्धि—आत्म-सयम, अनुशासन या गुरु-शुश्रूषा या गुरु सम्मुख सीखने से उत्पन्न बुद्धि।
- कार्मिक बुद्धि— कार्य करते-करते अभ्यास से प्राप्त कौशल।
- पारिणामिकी बुद्धि—आयु की परिपक्वता के साथ बढनेवाला अनुभव।

मानसिक विकास सब समनस्क प्राणियो मे समान नही होता। उसमे अनन्तगुण तरतमभाव होता है। दो समनस्क व्यक्तियो का ज्ञान परस्पर अनन्तगुण अन्तर हो सकता है। इसका कारण उनकी आन्तरिक योग्यता का तारतम्य है।

मानसिक योग्यता के तत्त्व

मानसिक योग्यता या क्रियात्मक मन के चार तत्त्व हैं—

- बुद्धि—इन्द्रिय और अर्थ के सहारे होनेवाला मानसिक ज्ञान।
- उत्साह—कार्यक्षमता की योग्यता मे बाधा डालनेवाले कर्म पुद्गल के विलय से उत्पन्न सामर्थ्य।
- उद्योग—क्रियाशीलता।
- भावना—पर-प्रभावित दशा।

बुद्धि का कार्य है—विचार करना, सोचना-समझना, कल्पना करना, स्मृति, पहचान, नये विचारो का उत्पादन, अनुमान करना आदि-आदि।

उत्साह का कार्य है—आवेश, स्फूर्ति, या सामर्थ्य उत्पन्न करना।

उद्योग का कार्य है—सामार्थ्य का कार्यरूप मे परिणमन।

भावना का कार्य है—तन्मयता उत्पन्न करना।

इन्द्रिय और आत्म-चेतना का मध्यवर्ती है-मन। इन्द्रियो का सम्पर्क बाहरी जगत् से है और चेतना का केन्द्र अन्तर्जगत् है। मन दोनो (इन्द्रिय और चेतना) के द्वारा प्राप्त तत्त्व का विश्लेषण करने वाला या भोग करने-वाला है। हमारी प्रत्येक प्रवृत्ति, प्रत्येक कार्य मे मन का योग रहता है। मन को जानना एक अर्थ मे स्वय को जानना है। मन की गतिविधि से अवगत रहना जागरूकता का लक्षण है। अज्ञान के कारण मन को नही जान पाते है। यदि उससे परिचित हो जाये तो मन की क्षमता, योग्यता और कार्य-सपादन की पद्धति मे विकास किया जा सकता है।

मानसिक विकास के लिए सबसे पहले अवधान का अभ्यास करना होगा। मन की वह स्थिति पैदा करनी होगी जो अवधान कर सके। मनोविज्ञान मानसिक विकास के दो साधन मानता है—वशानुक्रम और वातावरण। पहला साधन स्वभाविक क्षमता या देन है। दूसरा अभ्यास-साध्य है।

अभ्यास और प्रतिभा

कोई ऐसा प्रतिभाशाली होता है, जो आठ-दस वर्ष की अवस्था मे ही महान् कवि बन जाता है। कुछ कवि ऐसे होते है जो अभ्यास के पथ पर चलते-चलते महान बनते है। प्रत्येक क्षेत्र की यही स्थिति है।

श्री कृष्ण से पूछा गया—मन का निग्रह कैसे किया जाये ? उत्तर मिला—

असंसय महाबाहो, मन दुर्निग्रह चलम्।
अभ्यासेन च कौंतेय ! वैराग्येण च गृह्यते ॥

अभ्यास और वैराग्य द्वारा। अभ्यास कृत होता है, सहज नही है। वैराग्य स्वभाविक होता है कृत नही। महर्षि पतजलि ने भी यही कहा है—'अभ्यास और वैराग्य द्वारा मन का निरोध होता है।' अभ्यास करते-करते निरोध की अन्तिम सीढी तक पहुचा जा सकता है। अभ्यास से यदि अप्राप्त होता तो पुरुषार्थ निष्फल हो जाता। अभ्यास से जो कल नही थे, आज बन सकते हैं।

मानसिक विकास की भूमिकाएं

मन का विकास कैसे हो ? इस प्रश्न पर आचार्य हेमचन्द्र ने भी प्रकाश डाला है। उन्होने इसके लिए चार भूमिकाओ का उल्लेख किया है—

१ विक्षिप्त
२ यातायात
३ श्लिष्ट
४ सुलीन

आचार्य श्री तुलसी ने मनोविकास की छह भूमिकाओ का उल्लेख

किया है—

१ मूढ	४. श्लिष्ट
२. विक्षिप्त	५. सुलीन
३ यातायात	६ निरुद्ध

मूढ—मूढ अवस्था मे आसक्ति और द्वेष बहुत प्रबल होते हैं। मूढ अवस्था मे मन बाह्य जगत् और परिस्थिति का प्रतिबिम्ब लेता रहता है इसलिए वह एकाग्र होने की दिशा मे गति नही कर पाता।

विक्षिप्त—यह अगली भूमिका है। मूढ अवस्था की भूमिका पार कर लेने पर व्यक्ति के मन मे भीतर की ओर झाकने की भावना जागृत होती है। वह इस भावना की पूर्ति के लिए अन्तर्निरीक्षण अर्थात् ध्यान का प्रयोग प्रारम्भ करता है। आरम्भ मे कुछ समय तक ध्याता ध्यान करने की मुद्रा मे बैठ जाता है किन्तु अन्तर्निरीक्षण की स्थिति का उसे कोई अनुभव नही होता। किसी के लिए यह स्थिति थोडे समय के लिए होती है और किसी-किसी के लिए यह स्थिति लम्बे समय तक चली जाती है। जो इस स्थिति से घबराकर अन्तर्निरीक्षण के अभ्यास को छोड देता है, वह बीच मे ही रुक जाता है और जो इस स्थिति से घबराता नही है, वह अगली भूमिकाओ मे पहुच जाता है।

यातायात—विक्षिप्त की अगली भूमिका यातायात की है। इस भूमिका मे ध्याता का मन अन्तर्निरीक्षण का अनुभव कर लेता है। यद्यपि वह उसमे लम्बे समय तक टिक नही पाता, अन्तर्निरीक्षण करते-करते वह फिर बाहर आ जाता है। फिर अन्तर्निरीक्षण का प्रयत्न करता है और फिर बाहर आ जाता है। किन्तु उस भूमिका मे एक बडा लाभ यह होता है कि अन्तर्निरीक्षण का जो द्वार बन्द था, वह खुल जाता है।

श्लिष्ट—अन्तर्निरीक्षण का अभ्यास बढते-बढते मन एक विषय पर एकाग्र रहने लग जाता है। इस भूमिका मे ध्याता के साथ ध्येय का श्लेष हो जाता है। जिस प्रकार गोद से दो कागज चिपक जाते हैं, उसी प्रकार ध्याता का ध्येय के साथ चिपकाव हो जाता है। किन्तु चिपके हुए दो कागज आखिर दो ही रहते हैं उनमे एकात्मकता नही होती।

सुलीन—एकाग्रता का अभ्यास क्रमश: बढता है। उसकी वृद्धि एक दिन तन्मयता या लीनता के बिन्दु तक पहुच जाती है। यह मन की पाचवी अवस्था है। पानी दूध मे मिलकर जैसे अपना अस्तित्व खो देता है, वैसे ही इस भूमिका मे ध्याता ध्येय मे इतना तन्मय हो जाता है कि उसे अपने अस्तित्व का भान ही नही रहता। यह स्थिति पहले ही चरण मे प्राप्त नहीं होती, किन्तु पूर्वोक्त क्रम से निरन्तर आगे बढ़ते रहने से एक दिन यह स्थिति अवश्य प्राप्त हो जाती है। महर्षि पातजलि ने इसका कुछ भिन्नता से प्रति-

पादन किया है ।

निरुद्ध—पाचवी भूमिका मे मन की स्थिरता शिखर तक पहुच जाती है, किन्तु मन का अस्तित्व या उसकी गति समाप्त नही होती । ध्याता ध्येय मे लीन होकर कुछ समय के लिए जैसे अपने उपलब्ध अस्तित्व को भुला देता है किन्तु ध्येय की स्थिति बराबर बनी रहती है । छठी भूमिका मे वह ध्येय की स्मृति भी समाप्त हो जाती है । यह निरालम्बन ध्यान या सहज चैतन्य के उदय की भूमिका है । इसमे प्रत्यक्षानुभूति प्रबल हो जाती है । इन्द्रिय और मन, जो परोक्षानुभूति के माध्यम हैं, अर्थहीन बन जाते हैं, समाप्त हो जाते है ।

अमनस्कयोग की भूमिका

मानसिक विकास की अगली भूमिका है—अमनस्क योग की भूमिका। यहा मन समाप्त हो जाता है । आदमी वहा पहुच जाता है जहा कोई विचार नही, कल्पना नही, केवल प्रकाश और केवल चैतन्य । कोई दु ख नही, कोई कष्ट नही, केवल आनन्द की अनुभूति । इस भूमिका को भारतीय दार्शनिको ने विभिन्न प्रकार से अभिव्यक्त किया है । किसी ने इसे सत्, चित्त और आनन्द की भूमिका माना है । यही है सत्य, शिव, सुन्दर की भूमिका । यही है अमनस्क की भूमिका । इस कोटि के प्राणी बहुत कम होते हैं, जिन्हे सत्य की झलक मिल जाती है, सत्य का साक्षात्कार हो जाता है और यह बोध हो जाता है कि सुख की वास्तविक स्थिति अमनस्कता मे है ।

एकाग्रता और आनन्द

चैतन्य और आनन्द का स्वाभाविक सम्बन्ध है । जहा चैतन्य है, वहा आनन्द है और जहा आनन्द है, वहा चैतन्य है । इन दोनो मे से एक को पृथक् नही किया जा सकता । प्रत्येक मनुष्य के भीतर जैसे चैतन्य का अजस्र प्रवाह है वैसे ही आनन्द का भी अजस्र प्रवाह है किन्तु मन की चचलता के कारण उसकी अनुभूति निरन्तर नही होती । जिस भूमिका मे मन थोडा एकाग्र होता है, उस समय आनन्द की हल्की-सी अनुभूति हो जाती है । जैसे-जैसे मन की एकाग्रता की मात्रा बढती है, वैसे-वैसे आनन्दानुभूति की मात्रा बढती जाती है । मन का निरोध होने पर जीवन मे सहज आनन्द का साक्षात्कार हो जाता है ।

आनन्द और विभिन्न भूमिकाएं

मन की दूसरी और तीसरी भूमिका मे विकल्प, कल्पनाओ का सिल-सिला चालू रहता है । मन दूसरी-दूसरी चीजो मे अटका रहता है । फल-स्वरूप उस समय हम सहज चेतना के स्तर पर नही होते । उस समय जो आनन्द का अनुभव होता है वह मन की एकाग्रता के कारण अन्त स्रावी

नलिकाओ मे होने वाले अन्त स्राव से होता है ।

चौथी और पाचवी कक्षा मे विकल्पो का सिलसिला नही रहता। हमारा मन एक ही विकल्प पर स्थिर हो जाता है। हमारे मस्तिष्क की सुखानुभूति की ग्रन्थि तथा अन्त.स्रावी ग्रन्थियो पर उसका अधिक प्रभाव पडता है। फलस्वरूप आनन्द की अनुभूति अधिक होती है।

निरोध की भूमिका मे सहज आनन्द के साथ साक्षात् सपर्क हो जाता है। उस पर शारीरिक परिवर्तन का प्रभाव नही होता इसलिए वह चिरस्थायी होता है।

इससे पूर्व की भूमिकाओ मे सहज आनन्द की स्थिति नही होती, ऐसी बात नही है, किन्तु उसकी पूर्ण अनुभूति निरोध की भूमिका में होती है। अत पूर्व भूमिकाओ मे शारीरिक परिवर्तन से होने वाली आनंदानुभूति होती है किन्तु उसमे सहज आनद का प्रतिबिम्ब या प्रभाव रहता ही है।

७.२.० मन और जीवन विज्ञान के तत्त्व (Mind and Jeevan Vigyan)

७.२.१ मन और आत्मा (Mind and Soul)

मन मे हजारो-हजारो अवस्थाए प्रतिदिन घटित होती हैं। खाने की छोटी-सी घटना १५-२० मिनट की है किन्तु उस घटना की मध्यावधि मे मन मे पचासो-सैकडो घटनाए घटित हो जाती हैं। यह इसलिए कि मन बाह्य का साक्षात्कार कर रहा है। आत्म-साक्षात्कार से उल्टा है अनात्म-साक्षात्कार। जब मन बाह्य साक्षात्कार मे लगता है तब हमारे मन मे हजारो-हजारो घटनाए घटित होती है। अकारण भय आ जाता है, अकारण प्रेम आ जाता है, अकारण ही शत्रुता का भाव आ जाता है। चलचित्र पर जितने रूप नही उभरते, उससे ज्यादा हमारे मन के चित्रपट पर उभरते है।

बाह्य साक्षात्कार मे बडी परेशानिया होती हैं। मन मे जितने विकल्प उठते हैं, उतना ही मन अशान्त होता है। आदमी थक जाता है और बैचेनी का अनुभव करता है तब आदमी सोचता है कि दूसरे रास्ते से चलना चाहिए। वह आत्म-साक्षात्कार का रास्ता है। अनावश्यक विकल्पो, मानसिक चचलता को समाप्त करना—यह आत्म-साक्षात्कार की पहली भूमिका है। कुछ आवश्यक विकल्पो को पुष्ट करना, उनसे अपने आपको भावित करना—यह दूसरी भूमिका है। इसका अर्थ है—जो हजारो-हजारो अनचाही बातें आती थी, वे समाप्त हो जाती है और कुछेक बातो पर मन टिक जाता है। यह भी अतिम मजिल नही है। इससे आगे है—आत्म-साक्षात्कार की तीसरी भूमिका। वहा जाने पर शुद्ध आत्म-दर्शन, स्व-बोध होता है, जहा कोई विचार नही, कोई विकल्प नही, कोई संज्ञा नही, कोई अनुभव नही। चैतन्य

के सिवाय दुनिया मे कुछ और है, इसका अनुभव भी खो जाता है। केवल चैतन्य, केवल चैतन्य, केवल चैतन्य। इस स्थिति मे हम जितनी देर रहते हैं, उतनी देर आत्मा का साक्षात्कार होता है।

जब हम शुद्ध चैतन्य का अनुभव करते है तब कोरा आनन्द ही आनन्द रहता है। जानना, देखना, शक्ति का अनुभव और आनन्द का अनुभव—ये चैतन्य की चार क्रियाए हैं। अचेतन या जड पदार्थ मे ज्ञान नही, दर्शन नही और आनन्द नही, केवल शक्ति है। जड पदार्थ मे शक्ति बहुत है। चैतन्य मे अनन्त शक्ति है तो जड मे भी अनन्त शक्ति है। पर चेतना मे शक्ति के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ है, इसलिए चैतन्य का साक्षात्कार ही सत्य का साक्षात्कार है।

७.२.२ मन और कर्म

मन का कार्य है गतिशीलता। बिना किसी पौर्वापर्य या सम्बन्धो के विचारो का प्रवाह हमारे भीतर चलता रहता है। इनके सम्बन्धो को नही जानते अत. ऐसा लगता है। इसका कारण है—हमारे भीतर इच्छाओ, सस्कारो और वृत्तियो का गहरा जमाव है। वे वृत्तिया निरन्तर स्पन्दित होती रहती हैं। इनके स्पन्दित होने का कारण है—कर्म शरीर के स्पदन। कर्म शरीर के सूक्ष्म स्पदन हमारे स्थूल शरीर को प्रभावित करते हैं। उसी के कारण विचारो का सिलसिला चालू रहता है, मानसिक चचलता बनी रहती है, कभी रुकती नही।

कर्म अतीत का लेखा-जोखा है। व्यक्ति अतीत के साथ जुडा हुआ है। अतीत मे कब, क्या, कैसे सोचा, किस प्रकार का आचरण और व्यवहार किया—इन सबका अकन कर्म के रूप मे हमारे अस्तित्व मे है। कर्म शरीर मे है। व्यक्ति इनसे जुडा हुआ है। ये तथ्य इतने सूक्ष्म एव अज्ञात हैं कि इनके सम्बन्ध-सूत्रो को हर व्यक्ति खोज नही सकता। इसलिए ऐसा लगता है कि जो विचारो की श्रृखला चल रही है वह असबद्ध है।

७ २.३ मन और सवेग/वृत्ति

मन की दो अवस्थाए हैं गत्यात्मक और स्थित्यात्मक। गत्यात्मक अवस्था को मन और स्थित्यात्मक अवस्था को अमन कहा जाता है। ध्यान करते समय मन सकल्पो से भर जाता है वह अधिक चचल हो जाता है। इसका कारण क्या है ? मन वृत्तियो के चाव से चचल होता है। वृत्तियो—क्रोध, अहकार, घृणा, द्वेष, भय, लालच, कुटिलता, वासना आदि वृत्तियो, निषेधात्मक भावो, सवेगो का जितना अधिक दबाव होता है उतना ही वह चचल हो जाता है। ये वृत्तिया जितनी शान्त या क्षीण होती हैं उतना ही वह एकाग्र होता है। मन की चचलता स्वाभाविक नही है किन्तु वृत्तियो के सपर्क

से उत्पन्न होती है। मन की चचलता एक परिणाम है, वह हेतु नही है। उसका हेतु है—वृत्तियो का जागरण।

७.२.४ मन और प्राण

सकल्प के साथ-प्राण की धारा चलती है। जहा हमारी मानसिक एकाग्रता होती है, जिस दिशा मे सकल्प कर लिया, उस दिशा मे ही प्राण की धारा का मुख्य प्रवाह बहने लग जाता है। हमारे भीतर जो तैजस् शरीर है, जो प्राण शक्ति है, उसकी गति उस दिशा मे तीव्र हो जाती है। प्राण की धारा कभी-कभी इतनी तेज हो जाती है कि करेंट का धक्का-सा लगता है। इससे आश्चर्यजनक घटनाए घटित हो जाती हैं।

अपान और मन मे गहरा सबध है। अपानवायु का अशुद्ध होना भी बीमारी का कारण बनता है। अपानवायु का मुख्य स्थान नाभि से नीचे और पृष्ठ भाग के पार्ष्णिदेश तक है। उसका कार्य है—मल, मूत्र, वीर्य आदि का विसर्जन करना। उसके विकृत होने से मन मे अप्रसन्नता होती है। उसकी शुद्धि से प्रसन्नता होती है। प्राण और अपान की विषमता का तात्पर्य है शरीर और मन की अस्वस्थता। प्राण और अपान की समता का तात्पर्य है शरीर और मन की स्वस्थता।

७.२.५ मन और श्वास

मन और श्वास का बहुत गहरा सम्बन्ध है। मन की चंचलता को कम करने के लिए, श्वास की मन्दता का प्रयोग बहुत प्रभावकारी है। मानसिक एकाग्रता के लिए मन्द श्वास बहुत उपयोगी है। हम श्वास को जितना मन्द करेंगे उतनी ही मानसिक एकाग्रता बढेगी। जब-जब मन मे बैचेनी, उच्चाटता, व्यग्रता या चचलता अधिक होती है तो श्वास की गति भी तीव्र हो जाती है। श्वास छोटा हो जाता है। हम क्रमिक अभ्यास द्वारा श्वास को मन्द, लम्बा, गहरा और लयबद्ध कर सकते है। मानसिक एकाग्रता को सिद्ध कर सकते हैं।

७.२.६ मन और शरीर

विज्ञान की दो महत्त्वपूर्ण शाखाए हैं—शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान। मेडिकल साइस मे बीमारी का आधार कीटाणु और विषाणु बतलाया गया। मनोविज्ञान के अनुसार केवल कीटाणु और विषाणु ही बीमारी के कारण नही हैं, उनसे भी बडा कारण है मानसिक विकृतिया, मनोबल की कमी।

जिस व्यक्ति मे मैत्री का विकास नही होता उस व्यक्ति का मनोबल विकसित नही होता। शत्रुता एक जहरीला कीड़ा है, वह जिसके पीछे लगता

है उसे निरन्तर सताता रहता है और तब मनोबल दबता चला जाता है। वह कुठा पैदा करता है, अवसाद और घृणा पैदा करता है। कुठा, अवसाद, घृणा और विषण्णता—ये ऐसे भयकर कीटाणु हैं, जो स्वास्थ्य को लीलते हैं, आदमी बीमार होता चला जाता है।

प्रत्येक घटना के साथ मानसिक प्रभाव का होना सहज है। कष्ट मे भी यही होता है। रोग से कष्ट नही होता। कष्ट होता है रोग के सवेदन से। एक रोगी तडफ रहा है, चीख रहा है, कराह रहा है और असह्य कष्ट का अनुभव कर रहा है। मर्फिया का इन्जेक्शन दिया और उसका सारा कष्ट मिट गया। क्या दर्द नष्ट हो गया ? दर्द नष्ट नही हुआ किन्तु मादक द्रव्य के प्रयोग से उसका सवेदन केन्द्र शून्य कर दिया गया। दर्द सवेदन से होता है, स्थान या रोग से नही होता। सवेदन केन्द्र सक्रिय होता है तो कष्ट होता है। सवेदन केन्द्र निष्क्रिय होता है तो कष्ट नही होता। जब मन सवेदन-केन्द्र के साथ जुडता है तब तीव्र वेदना का अनुभव होता है और जब अन्य किसी स्थान पर लगा होता है तो वेदना की अनुभूति नही होती।

७.३.० मन की समस्या

७.३ १ मन की शक्ति (Mental Power)

ससार मे सबसे पहली और सबसे अधिक जरूरत है शक्ति की। शक्ति हमारे जीवन की, समाज और व्यक्ति की प्राथमिक आवश्यकता है। शरीर स्वस्थ और सुदृढ होता है तो शरीर की शक्ति अधिक होती है। किंतु केवल शरीर की शक्ति से ही कोई शक्तिशाली नही होता। शरीर से अधिक शक्तिशाली है—मन। जिसका मन दुर्बल होता है, उसका शरीर शक्तिशाली होने पर भी बहुत भला नही होता। शारीरिक शक्ति के लिए भी मन की शक्ति का होना बहुत जरूरी है।

शक्ति-सचार और शक्ति सुरक्षा का एक उपाय है—तनाव से बचना। जो तनाव से बचना नही जानता, वह मानसिक दृष्टि से शक्तिशाली नही हो सकता और शारीरिक दृष्टि से भी काफी कठिनाइया उठानी पडती हैं। शरीर का तनाव शरीर की शक्ति को क्षीण करता है और मानसिक तनाव मन की शक्ति को क्षीण करता है। मानसिक तनाव से बचने का उपाय है—कायोत्सर्ग।

मन की शक्ति के विकास का एकमात्र उपाय है—ध्यान। चचलता सारी समस्याए पैदा करती है। जिस व्यक्ति का मन चचल होता है वह जीवन के किसी भी क्षेत्र मे सफल नही हो सकता। ध्यान के अभ्यास से मन की शक्ति का विकास सहज ही हो जाता है। जीवन के सग्राम मे वही सफल

होता है जो ध्यान और एकाग्रता का अभ्यास करता है। मन की शक्ति या मनोबल तभी टिका रहता है जब मन की एकाग्रता व निर्मलता बढ़ती रहे।

मन की शक्ति के विकास के लिए मन को पटु बनाया जाए, मन को कुशल बनाया जाए उसे इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाये कि उसकी क्षमता विकसित हो और ध्यान की स्थिति तक पहुचने की योग्यता सपादित हो जाये। अशिक्षित मन अपनी शक्तियो को विकसिक नही कर सकता। शक्तिया शक्तिया मात्र रह जाती है। शक्ति जागरण के बिना शक्तियो का उपयोग ही नही हो सकता। जब मन एक निश्चित प्रक्रिया से प्रशिक्षित हो जाता है तब वह आश्चर्यकारी घटनाओ को घटित करने मे सक्षम हो जाता है। मन के प्रशिक्षण की एक पद्धति है।

मन की शक्ति अभ्यास द्वारा जागृत होती है। एक है अभ्यास और एक है अभ्यास की पद्धति। अभ्यास की पद्धति प्राप्त हो जाये और बार-बार अभ्यास किया जाए तो उस दिशा मे विकास हो जाता है।

शक्ति जागरण के सूत्र

शक्ति-जागरण का अभ्यास जटिल नही है उसमे कुछेक तथ्य अपेक्षित होते है। पहला तथ्य है—शिथिलीकरण। प्रत्येक शक्ति के जागरण मे इसका महत्त्वपूर्ण योग है। तनाव की स्थिति मे कोई भी शक्ति जागृत नही हो सकती। शिथिलीकरण का अर्थ हैं—प्रवृत्ति का विसर्जन। जब प्रवृत्ति का विसर्जन होता है तब भीतरी शक्तियो को जागने का अवसर मिलता हैं। जो व्यक्ति कायोत्सर्ग को साध लेता है वह शक्ति-जागरण का बीज-मन्त्र पा लेता है।

दूसरा सूत्र है—शक्ति के अपव्यय से बचना। सामान्यत. प्रत्येक व्यक्ति शक्ति का अपव्यय करता है। आवश्यकता हो या न हो आदमी सोचता रहता है, चिंतन करता रहता है। मस्तिष्क को एक क्षण भी विश्राम नही मिलता। सोते है तब भी वह चलता है, स्वप्न आते हैं, मस्तिष्क सक्रिय रहता है। यह शक्ति का अपव्यय है।

तीसरा सूत्र है—प्राणधारा को निश्चित दिशा मे बहाना। जब हम प्राणधारा को एक निश्चित दिशा मे प्रवाहित करते हैं तब एक बिन्दु ऐसा आता है, जहा दिशा उद्‌घाटित हो जाती है। उस दिशा मे अज्ञात ज्ञात बन जाता है।

चौथा महत्त्वपूर्ण सूत्र है—अनुप्रेक्षा और भावना। भावना का अभ्यास बहुत सूक्ष्म बात है। जब तक भावना का अभ्यास नही होगा, जब तक मन परम से भावित नही होगा, तब तक शक्तियो का विकास नही होगा।

७.३.२. मन की शांति

जीवन की दो दिशाए है। एक दिशा है विक्षेप की ओर जाने की तथा दूसरी दिशा है चैतन्य की ओर जाने की। आदमी जैसे-जैसे बाहर मे गया, उसका आकर्षण जैसे-जैसे बाहर मे बना, चचलता बढती चली गई। पागलपन बढता चला गया। अशाति बढती चली गई।

बाह्य पदार्थो से तृप्ति नही आ सकती। यह अतृप्ति पदार्थों से मिट नही सकती। उसे मिटाने के लिए समाधि चाहिए। जब तक अन्दर का आकर्षण पैदा नही होगा, बाह्य पदार्थों से आकर्षण व आसक्ति कम नही होगी तब तक मानसिक शाति प्राप्त नही हो सकती।

मानसिक अशाति को मिटाने की एक दूसरी धारा भी है। अनेक लोग उसके लिए ट्रैंक्वीलाइजर्स ले रहे हैं, औषधिया ले रहे हैं, ड्रग्स ले रहे है, मादक वस्तुओ का सेवन कर रहे हैं पर इससे बात बनती नही, शाति मिलती नही। मादक वस्तुओ का काम है—एक बार विस्मृति ला देना, भूलावे मे डाल देना, मूर्च्छित कर देना, और जो सवेदन के केन्द्र अशाति का अनुभव कराते हैं, उन सवेदन केन्द्रो को निष्क्रिय कर देना। यह कोई समस्या का स्थाई समाधान नही है। इससे समस्या और अधिक प्रज्वलित हो जाती है।

मानसिक शाति का स्थायी उपचार करने के लिए समाधि के सिवाय दुनिया मे कोई विकल्प नही है। वैराग्य को जगाये बिना, पदार्थ के प्रति होने वाले आकर्षण को कम किये बिना, आकर्षण की दिशा बदले बिना, चैतन्य के प्रति आकर्षण पैदा किये बिना इस मानसिक अशाति का कोई स्थायी समाधान नही हो सकता। मन की अशाति को चेतना के जागरण द्वारा ही मिटाया जा सकता है।

प्रश्न है—मन क्यो टूटता है ? मन मे बैचेनी क्यो होती है ? मन क्यो सताता है ? उसमे कमजोरिया क्यो आती है ? उसमे भय क्यो उत्पन्न होता है ? ये समस्याए मनुष्य को अशात बनाए हुए हैं। इन सारी समस्याओ से निपटने के लिए मन और मन पर होने वाले प्रभावो को समझना जरूरी है।

भाव, मन और प्रभाव—यह त्रिकोण है। एक कोण पर है आतरिक भाव, तीसरे कोण पर है बाह्य प्रभाव और दूसरे कोण पर है मन। आतरिक निषेधात्मक भाव मन पर बोझ लाद रहा है तो बाह्य परिवेश भी मन को प्रभावित कर रहा है। मन दोनो ओर से भारी हो रहा है, दोनो पाटो के बीच मे पिसता जा रहा हैं।

हमारे भीतर निषेधात्मक भावो की आग जल रही है। प्रतिशोध का भाव है, वासना का भाव है, भय का भाव है, राग और द्वेष का भाव है। यह

अग्नि जल रही है तो ऊपर रखा हुआ मन गर्म क्यो नही होगा ? वह उबलेगा क्यो नही ? अशात क्यों नही होगा ? मन पानी है। उसका स्वभाव है ठडा होना। जब नीचे आग जलती है तब उसे गर्म होना पडता है।

यदि मन की अशाति को मिटाना है तो हमे ध्यान देना होगा भावो पर। भाव की शाति, मन की शाति। भाव की अशाति मन की अशांति। यह समीकरण प्राप्त होता है।

मनोविज्ञान की भाषा मे हम जागृत चेतना-कोन्सियस माइड के स्तर पर जी रहे हैं। उसके पीछे अर्धचेतन और अचेतन माइंड के स्तर हैं– सब्-कोन्सियस और अन्-कोन्सियस माइण्ड। उनसे हम अजान है। हमारी बहुत सारी प्रवृत्तिया अचेतन मन के द्वारा प्रेरित होती हैं कि हमे ज्ञात नही है कि अचेतन मे क्या-क्या है ? हमारी प्रत्येक क्रिया का प्रतिबिम्ब अचेतन मन तक चला जाता है और फिर उसकी प्रतिक्रिया होती है, अभिव्यक्ति होती है। समस्या के समाधान मे यह बहुत बडी बाधा है। यह दोहरा व्यक्तित्व, विभा-जित व्यक्तित्व बहुत बडी बाधा है। समस्या समाधान के लिए आवश्यक है कि व्यक्तित्व अखड और एक हो जाये, सारे खंड समाप्त हो जाए।

आरपारदर्शी व्यक्ति अखड व्यक्तित्व माना जाता है। वह इधर को भी देख सके और उधर को भी देख सके। यह विचार, आचार और व्यव-हार—इन तीन स्थूल तत्त्वो को भी देखे और कर्म, भाव और रसायन—इन तीन सूक्ष्म तत्त्वो को भी देखे। स्थूल आर है और सूक्ष्म पार है। जो आरपारदर्शी होगा, वह स्थूल को भी देखेगा और सूक्ष्म को भी देखेगा। इन दोनो—स्थूल और सूक्ष्म अर्थात् छहो तत्त्वो के बीच कोई आवरण न हो। इस स्थिति मे मानसिक समस्या समाहित हो सकती है।

मन की अशाति हजार व्यक्तियो मे मिलती है तो हजार व्यक्तियो के लिए अशाति का कारण एक नही होता, अनेक कारण होते हैं और उन अनेक कारणो के लिए एक ही समाधान पर्याप्त नही होगा। किस प्रकार की समस्या है और किस प्रकार का हेतु मन की अशान्ति को उत्पन्न कर रहा है, जब तक इसका सम्यक् विश्लेषण नही होगा मन की समस्या का प्रश्न बना रहेगा।

७.३.३. मन की समस्या

शरीर की गति और अगति, मन की गति और अगति—ये दो बाते हैं। शरीर की अगति या शरीर से कोई आदमी स्थिर हो सकता है, शिथि-लीकरण कर सकता है, शात हो सकता है। पर क्या मन की अगति सभव है ? क्या मन को टिकाया जा सकता है ? हा यह सभव है, बिलकुल सभव है। उसी दिन हमारी शक्तियो का विकास होगा, जिस दिन हम शरीर को

स्थिर करने के साथ-साथ मन को भी एकाग्र कर लेगे । योग का सबसे बडा मर्म और रहस्य है- गति और अगति का सतुलन । शरीर की गति ज्यादा होती है, शरीर मे तनाव बढ जाता है । मन की गति ज्यादा होती है तो शरीर और मन दोनो मे तनाव आता है । यह गति और स्थिति का असतुलन ही मन की समस्या है । इससे मन समस्याग्रस्त हो जाता है । शरीर की गति और स्थिति का सतुलन, मन की गति और अगति का सतुलन, जो आदमी इन दोनो बातो को कर पाता है, वास्तव मे वह योग का अधिकारी है । यह योग न केवल साधु-सन्यासी के लिए ही है, किंतु जो भी व्यक्ति अच्छा जीवन, सुख का जीवन जीना चाहता है, वह प्रत्येक व्यक्ति इस योग का अधिकारी है। कोई भी व्यक्ति इस योग को छोडकर शाति का जीवन नही जी सकता ।

मानसिक असतुलन का कारण : असीमित चिन्तन

तनाव का हेतु है—असतुलन । मानसिक असतुलन का एक कारण है—अधिक सोचना । सोचने की भी एक बीमारी है । अधिक सोचना तनाव पैदा करता है । हम उतना ही सोचें जितना आवश्यक है । जरूरत पूरी होते ही सोचने का दरवाजा बद कर दे, चिंतन बन्द कर दें । मन शान्त हो जाएगा ।

अधीरता—आदमी मानसिक दृष्टि से बडा अस्त-व्यस्त है । असतुलित है । उसका दूसरा कारण है—जल्दबाजी । मनुष्य मे धृति नही है । वह प्रतीक्षा करना नही जानता । यह जल्दबाजी और अधीरता तनाव का बहुत बडा कारण बनती है ।

असहिष्णुता—मानसिक असतुलन या तनाव का तीसरा कारण है—सहिष्णुता की कमी । एक छोटा बच्चा भी सहन करना नही जानता । लगता है—आज जन्मघूटी ही असहिष्णुता की मिल रही है । वह न मा-बाप को सहन करता है, न अध्यापक की बात को सहन करता है और न किसी पडोसी की बात को सहन करता है ।

उदासी—मानसिक असतुलन का एक कारण है—उदासी । उदासी —डिप्रेशन मानसिक विकार है । उदास व्यक्ति अपनी क्षमताओ का ठीक उपयोग नही कर सकता । उसकी शक्तिया मुरझा जाती है क्षीण हो जाती है । प्रसन्न रहने वाला व्यक्ति ही अपनी शक्तियो का सही उपयोग कर सकता है ।

आग्रह — आग्रह बहुत असतुलन पैदा करता है । पारिवारिक कठिनाइयो मे जिद्द की प्रकृति सबसे ज्यादा तकलीफ देती है । एक बात पकड ली, बस अब नही छोडेंगे । समूचे परिवार मे कलह का वातावरण बन जाता है । घर मे दीवारें खिच जाती है, कई चूल्हे जल जाते हैं । कटुता के कारण

बाप और बेटा वर्षों तक नही मिलते। इसमे एकाकी दृष्टिकोण भी अशान्ति का एक प्रमुख कारण है। हमारा दृष्टिकोण सापेक्ष होना चाहिए। एक विचार के पीछे अनेक अपेक्षाए होती है। सापेक्षता से हमारी मानसिक शाति को बल मिलता है। एकागी दृष्टिकोण से अशाति निष्पन्न होती है।

यदि जीवन में शान्ति चाहते हैं, सुख की कल्पना साकार करना चाहते हैं तो अपने मन पर नियत्रण करना होगा। सुख तीन प्रकार का होता है—शारीरिक सुख, इन्द्रिय सुख और मानसिक सुख। शारीरिक सुख प्रिय है। इसे प्राप्त करने के लिए काफी सचेष्ट रहते हैं। इद्रियो के सुख के लिए लोग बहुत प्रयत्नशील रहते हैं परन्तु मानसिक सुख की ओर हमारा ध्यान नही जाता। यदि मन को अपने नियत्रण मे रखेंगे तो सुख का समुद्र लहराएगा, शाति मिलेगी।

मन को शात करने के लिए जीभ का कायोत्सर्ग और कठ का कायोत्सर्ग बहुत आवश्यक है। जीभ और स्वरयत्र को जितना अधिक स्थिर एव शिथिल करते है उतनी मात्रा मे विकल्प शात हो जाते हैं। विकल्प का न आना ही अचचलता है। विकल्प शून्यता के लिए ठुड्डी को कठकूप मे लगाना उपयोगी है। इस मुद्रा मे ५-१० मिनट रहने से विकल्प शात हो जाते हैं। मन शांत हो जाता है।

हमारा मन आतरिक निषेधात्मक भावो एव बाह्य वातावरणगत प्रभावो से निरन्तर प्रभावित होता रहता है तब मानसिक शाति का हमारे सामने प्रश्न ही नही है। हम निरन्तर मानसिक अशांति के चक्र मे ही चलते रहेगे, ऐसी बात नही है। अनेक प्रभाव आते हैं किंतु हमारे पास सुरक्षा के साधन भी विद्यमान है। यदि हम उसका उपयोग करे तो प्रभावो से बचा जा सकता है। वह उपाय है भाव शुद्धि। जो व्यक्ति निरन्तर भाव को शुद्ध रखता है, उस पर ये आक्रमण नही हो सकते और होते भी हैं तो बहुत मन्द होते है।

भाव शुद्धि एक शक्तिशाली उपाय है। यदि उसके प्रति हमारी जागरूकता बढ जाए तो इन खतरो से बचा जा सकता है। अनुकूलता का वियोग, प्रतिकूलता का सयोग, असहायता की अनुभूति, सघर्ष, सदेह, भय, द्वेष, ईर्ष्या, क्रूरता, क्रोध निराशा—ये सब मन मे असतुलन उत्पन्न करते हैं। असतुलित मन मे अशाति उत्पन्न होती है। वह सुख को लील जाती है। भावना, शाति और सुख मे कार्य-कारण का सबध है। गीता मे लिखा है—न चाभावयत शान्ति, अशान्तस्य कुतः सुखम्? भावना के बिना शाति नही होती, शाति के बिना सुख नही होता। भावना सस्कार परिवर्तन की पद्धति है। ध्येय के अनुकूल बार-बार मनन, चिंतन और अभ्यास करने पर पूर्व-सस्कार का विलोप और नये सस्कार का निर्माण हो जाता है।

परिस्थिति सदा एकरूप नही रहती। कभी वह अनुकूल होती और कभी प्रतिकूल। अनुकूलता मे जिसे हर्ष की तीव्र अनुभूति होती है वह प्रतिकूलता मे शोक की तीव्र वेदना से बच नही सकता। अपनी चेतना और पुरुषार्थ को सत्य की अनुभूति मे प्रतिष्ठित करने वाला व्यक्ति परिस्थिति से आहत नही होता है। परिस्थिति से वही मन जलता है जो सत्य से प्रभावित नही है।

- पक्षपात --मानसिक असतुलन का एक कारण है—पक्षपात। यह अपना सतुलन भी बिगाडता है और सामने वाले का सतुलन भी बिगाडतां है।
- नाडी सस्थान की दुर्बलता—नाडी सस्थान के दो मुख्य अग है—एक मस्तिष्क और दूसरा सुषुम्ना का सारा हिस्सा। मस्तिष्क की दुर्बलता और पृष्ठरज्जु की दुर्बलता—ये सब असतुलन के कारण बनते है।

सतुलन का प्रयोग—मानसिक सतुलन का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयोग है—शरीर प्रेक्षा, शरीर को देखना। इससे नाडी सस्थान दृढ होता है। यह ध्यान का प्रयोग केवल मोक्ष पाने के लिए ही नही है, वर्तमान जीवन को सुख से जीने के लिए भी है।

७.४ १. मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health)

आयुर्वेद मे रोग चार प्रकार के माने गये हैं—

१ आगन्तुक २ शारीरिक ३ मानसिक ४ स्वाभाविक।

- आगन्तुक रोगो का हेतु बाह्य उपकरण—शस्त्र आदि है।
- शारीरिक रोग अल्प, मिथ्या और अतिमात्रा मे प्रयुक्त अन्न-पान के कारण कुपित या विषम हुए वात, पित्त, कफ या इनके मिश्रण से उत्पन्न होते है।
- मानसिक रोग, क्रोध, शोक, भय, हर्ष, विषाद, ईर्ष्या, असूया, दैन्य, मात्सर्य, काम, लोभ आदि से तथा इच्छा और द्वेष के अनेक भेदो से उत्पन्न होते है।
- स्वाभाविक रोग भूख, प्यास, बुढापा, मृत्यु, निद्रा आदि हैं।

रोग का एक हेतु कर्म भी माना जाता है। कर्मज रोग किसी बाह्य हेतु के बिना भी प्रकट हो जाते है। कर्मज रोग हमारे लिए परोक्ष हैं। स्वाभाविक रोग जीवन का सहज क्रम है। आगन्तुक रोग आकस्मिक घटना है।

शारीरिक, मानसिक और आगन्तुक—इन तीनो प्रकार के रोगो मे मुख्य रोग मानसिक है। तात्पर्य की भाषा मे—रोग के मुख्य हेतु आतरिक

दोष-क्रोध आदि हैं ।

मन वशवर्ती होता है तो वात, पित्त और कफ की अतिरिक्त विषमता नही होती । मन पवित्र होता है तो क्रोध आदि जनित रोग उत्पन्न नही होते हैं । इसलिए आरोग्य की पृष्ठभूमि मे स्वास्थ्य सहज अपेक्षित है । स्वास्थ्य यानी स्वस्थिति-आत्मस्थता । यदि जीवन मे समता और सतुलन है तो मन भी स्वस्थ रहेगा और शरीर भी स्वस्थ रहेगा ।

मानसिक स्वास्थ्य के सूत्र

- मानसिक स्वास्थ्य की साधना का पहला सूत्र है—अपने-आपको जानना । जो व्यक्ति अपनी क्षमता और योग्यता को नही जानता, जो अक्षमता को नही जानता वह मन से स्वस्थ कैसे रह सकता है ? मनुष्य मे अपने आपको जानने की योग्यता है, क्षमता है वह इस योग्यता का उपयोग नही करता । वह सक्षम होते हुए भी अक्षम अनुभव करता है । उसका मन अनुताप से भर जाता है ।
- मानसिक स्वास्थ्य की साधना का दूसरा सूत्र है—परिणामो की स्वीकृति । हम प्रवृत्ति करते हैं किंतु उसके परिणामो को स्वीकार नही करते इसलिए मन मे असतोष और अशाति पैदा होती है । कृत के परिणामो से जहा अपने आपको बचाने की मनोवृत्ति होती है वहा मानसिक स्वास्थ्य खतरे मे पड जाता है ।
- मानसिक स्वास्थ्य की साधना का तीसरा सूत्र है—सत्य के प्रति समर्पण । सत्य की व्याख्या बहुत ही जटिल है । किसे सत्य माना जाए ? हमे इसमे उलझना नही है । सत्य का अर्थ है—सार्वभौम नियम । युनिवर्सल ट्रुथ । मृत्यु एक सार्वभौम नियम है, यह एक बडी सच्चाई है । कोई भी इसे नही टाल सकता । कर्म एक सचाई है । काल एक सचाई है । वस्तु-स्वभाव एक सचाई है । सार्वभौम सचाइयो के प्रति जो समर्पित रहता है, वह मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रह सकता है ।
- मानसिक स्वास्थ्य की साधना का चौथा सूत्र है—सहिष्णुता का विकास । सहिष्णुता को विकसित किये विना कोई भी संतुलित जीवन नही जी सकता । जिसने सहिष्णुता को साध लिया, उसके लिए सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, सुविधा-असुविधा कोई अर्थवान् नही होते । ऐसा व्यक्ति अपने मन और शरीर का ऐसा निर्माण कर लेता है, जिससे वह हर स्थिति को झेलने मे समर्थ और सक्षम होता है ।
- मानसिक स्वास्थ्य की साधना का पाचवा सूत्र है—अपने आपको यथार्थरूप मे प्रस्तुत करना । व्यक्ति अपने आपको यथार्थ-रूप मे

प्रस्तुत करना नही चाहता। वह अपने आपको उस रूप मे प्रस्तुत करता है जिससे उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा बढे। किंतु जब यथार्थ सामने आता है तब बहुत कठिनाइया पैदा हो जाती हैं। सामाजिक सदर्भ मे अपने-आपको अयथार्थ रूप मे प्रस्तुत करना अपने आपको धोखा देना है। इससे अनेक कठिनाइयां और समस्याए पैदा हो जाती है।

- मानसिक स्वास्थ्य की साधना का छठ्ठा सूत्र है—चैतन्य केन्द्रो की सक्रियता। जब सारे चैतन्य केन्द्र सक्रिय हो जाते हैं तब हमारी शक्ति का स्रोत फूटता है। इसके बिना मन शक्तिशाली नही बनता। मन पर निरन्तर आघात और प्रतिघात होते रहते हैं। सामाजिक, पारिवारिक और राजनैतिक वातावरण मे ऐसी घटनाए घटित होती रहती हैं जिनसे मन आहत होता है, प्रतिहत होता है। इतने आघात-प्रतिघात के बीच रहता हुआ मन स्वस्थ कैसे रह सकता है? मन पर होनेवाले आघातो से बचने का एक सशक्त उपाय है—हम अपने चैतन्य केन्द्रो को सक्रिय करे।

मानसिक स्वास्थ्य छह पेरामीटर

मनोविज्ञान मे व्यक्तित्व को अकित करने और मानसिक स्वास्थ्य को जाचने के छह सूत्र – छह पेरामीटर दिये हैं।

पहला पेरामीटर है—वेश-भूषा। व्यक्ति कैसे कपडे पहनता है? वह अपने प्रति कितना सजग है? यह कपडो को किस चतुराई से धारण करता है? कपडे पहनने की विधि से मन की प्रसन्नता नापी जा सकती है।

दूसरा पेरामीटर है—व्यवहार। व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियो मे कैसा व्यवहार करता है। सतुलित व्यवहार और कभी असतुलित व्यवहार करने वाले का मन स्वस्थ नही होता। जो व्यक्ति मानसिक दृष्टि से स्वस्थ है तो उसके प्रति सामने वाला कितना ही दुर्व्यवहार क्यो न करे, वह अपना सतुलन नही खोयेगा। वह अच्छा व्यवहार ही करेगा। वह अपने अच्छे व्यवहार के द्वारा सामने वाले व्यक्ति के व्यवहार को बदलेगा या उसे यह सोचने के लिए बाध्य करेगा कि यह व्यक्ति सचमुच ही विनम्र और सद् व्यवहार करने वाला है।

तीसरा पेरामीटर है—विचार। विचार के द्वारा व्यक्ति को परखा जा सकता है। विचार के द्वारा ही मानसिक स्वास्थ्य को जाना जा सकता है। जब मन स्वस्थ होता है तो व्यक्ति की उपज भी स्वस्थ होती है। वह सही बात को सही ढग से सोचता है।

चौथा पेरामीटर है—प्रतिक्रिया। विभिन्न परिस्थितियो मे होनेवाली विभिन्न प्रतिक्रियाओ के द्वारा समझा जा सकता है कि व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य कैसा है ? कोई व्यक्ति कटु वाणी कहता है तो उसका उत्तर कटु बात से ही दिया जाए यह जरूरी नही है। किन्तु जब ये प्रतिक्रियाए प्रकट होती हैं तब यह जान लिया जाता है कि व्यक्ति मन से कितना रुग्ण है।

पाचवा पेरामीटर है—स्वभाव। आदमी आलसी है या कर्मठ ? आशावादी है या निराशावादी ? कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो आशा मे भी निराशा खोज लेते हैं और कुछ लोग ऐसे होते हैं जो निराशा मे भी आशा ढूढ निकालते है। आशावादी व्यक्ति नीरस वातवरण मे भी उत्साह भर देता है।

छठा पेरामीटर है—निर्णय की शक्ति। व्यक्ति ठीक निर्णय लेता है या नही लेता ? व्यकि तत्काल निर्णय लेता है या नही लेता ? निर्णायक क्षमता के आधार पर मानसिक स्वास्थ्य का पता लगाया जा सकता है।

मनोविज्ञान ने मानसिक स्वास्थ्य परीक्षण के ये बिन्दु सुझाए हैं। दूसरा निष्कर्ष है– जो व्यक्ति सतुलित जीवन जीता है, समता का जीवन जीता है, मन को आवेगो और दुश्चिताओ की भट्टी मे नही झोक्ता, वह मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होता है।

७.४.२ मनोदशा कैसे बदले

मनुष्य एक रूप नही रहता। वह बदलता रहता है। उसके भाव बदलते रहते हैं, मन बदलता है। मूड बदलता है। मूड का अर्थ है—मनोदशा। प्रात काल प्रसन्न मुद्रा मे है तो मध्याह्न मे क्रुद्ध मिलेगा। प्रात.काल यदि शात है तो सायकाल भीषण ज्वार-भाटे मे मिलेगा। कहा नही जा सकता कि आदमी कब, कैसा बन जाए ? प्रश्न उभरता है— क्या कोई नियामक तत्त्व है कि आवेश की स्थिति मे आवेश मे न आए, व्यक्ति का मूड न बिगडे ? अप्रिय परिस्थिति और घटना होने पर अप्रिय व्यवहार न हो, इसका नियामक सूत्र कौन सा है ?

मूड क्यो बिगडता है ? आजकल एक विशेष रसायन पर बहुत खोज हो रही है, वह है 'ट्रिप्टोफेन'। यह 'सेरोटोनिन' का निर्माण करता है। आदमी का मूड बिगडता है। इसका शरीर विज्ञान की दृष्टि से मूल कारण है ट्रिप्टोफेन (Tryptophan) रसायान की कमी, फलत सेरोटोनिन (serotonin) की कमी। यदि यह तत्त्व पर्याप्त मात्रा मे होता है तो न मूड बिगडता है, न भय लगता है। इससे पीडा सहन करने की क्षमता भी बढती है।

जीवन का भोजन के साथ गहरा सम्बन्ध है। इसलिए कहा गया—

जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन। अन्न और मन का गहरा सम्बन्ध है। अन्न और भावो का गहरा सम्बन्ध है। अन्न के तीन प्रकार हैं—राजसिक आहार, तामसिक आहार और सात्विक आहार। सात्विक आहार करने वाले के मन मे करुणा जाग जाती है। वह दूसरो को मार नही सकता। तामसिक आहार क्रूरता को जन्म देता है। योद्धाओ के खिए मास-मदिरा की छूट थी, क्योकि क्रूर हुए बिना दूसरे का कत्लेआम नही किया जा सकता है। योद्धा को क्रूर होना होता है तभी वह अपने शत्रुओ को घास की भाति काट सकता है। उसके लिए तामसिक आहार की उपयोगिता बताई गई। पहले मास-मदिरा का प्रयोग सीमित दायरे मे था पर आज यह समाजव्यापी बन गया। सभी योद्धा बन गए। सभी का मूड आक्रामक बन रहा है। मूड को शान्त बनाये रखने के लिए सात्विक आहार पर ध्यान देना आवश्यक है।

जिसका पाचन-तत्र और उत्सर्जन-तत्र स्वस्थ नही होता, वह स्वभाव से भी स्वस्थ नही होता। पाचन-तत्र ठीक नही होता है तो स्वभाव मे विकृ-तिया आ जाती है। खाते खूब हैं किन्तु सफाई होती नही है। मल का निष्कासन ठीक प्रकार से नही होता है, कब्ज रहता है, कोष्टबद्धता रहती है तो सारी मनोदशा गडबडा जाती है। उदासी, बेचैनी, बुरी कल्पना और बुरे बिचार आने लग जाते है।

मस्तिष्क के दो पटल है—दाया पटल और बाया पटल। आज के युग मे बाया पटल अधिक सक्रिय है, दाया सुषुप्त है। अत मूड बार-बार बिगडता है। जिन्होने मस्तिष्क के दाए पटल को जागृत कर डाला है, उनके मूड को कोई विकृत नही कर सकता। दोनो मे सतुलन अपेक्षित है। समवृत्ति श्वास प्रेक्षा से यह सतुलन साधा जा सकता है। जैसे हाथी के नियत्रण के लिए अकुश घोडे के लिए लगाम होती है। वैसे ही समवृत्ति श्वास-प्रेक्षा इन दोनो पटलो के सतुलन के लिए नियत्रणकारी है। यह नियत्रण शक्ति हमारे हाथ मे होनी चाहिए अन्यथा मूड बार-बार बिगडेगा।

आज के सारे सुविधा-साधन प्रकृति के विरुद्ध है। हमारे लिए धूप और हवा आवश्यक है पर वह आज के मकानो मे सुलभ नही है। धूप तो मकानो मे घुसती ही नही। हवा भी कृत्रिम साधनो से लाई जाती है। इससे शरीर ही नही बिगडा है, आदमी की मनोदशा भी बिगडी है, मूड भी बिगडने लगा है। सुविधावादी मनोवृत्ति से वह व्यक्तित्व बच सकता है, जो सहिष्णु होता है।

आवेश की स्थिति होने पर आवेश न आए, इसके लिए बहुत जरूरी है मनोगुप्ति की साधना। मनोगुप्ति का अर्थ है मन को इतना छिपा लेना कि मन का पता ही न चले। जब मन का विलय कर लिया तो वह अमन

बन गया। अमन बनने पर ही अमन (चैन) की स्थिति बन सकती है। यह कलह निवारण, अशाति निवारण और मानसिक तनावो के विसर्जन की साधना है। इसे समझने वाला मूड को नियन्त्रित करने का सूत्र हस्तगत कर लेता है।

७ ४.३ मन का कायाकल्प

मन मे एक विचार उत्पन्न होता है। वही विचार जब रूढ बन जाता है। तब स्वभाव बन जाता है। आदत बन जाता है। स्वभाव को, आदत को बदला जा सकता है कि आदमी का पूरा व्यक्तित्व ही बदल जाता है। रूपान्तरण हो जाता है। यह है— मन का कायाकल्प। अनेक घटनाए हैं, उदाहरण हैं। अनेक डाकू सत बन गये। अनेक सन्त डाकू बन गए। केवल बुरा स्वभाव ही नही बदलता, अच्छा स्वभाव भी बदल जाता है। दोनो का कायाकल्प होता है। परिवर्तन होता है। परिवर्तन क्यो होता है ?

परिवर्तन का एक कारण है—भोजन। भोजन असतुलित होता है तब आदते बिगड जाती है, भोजन मे विटामिन 'ए' की कमी होती है तब स्वभाव चिडचिडा हो जाता है। भोजन का असतुलन, पोषक तत्त्वो की कमी स्वभाव-परिवर्तन का एक कारण है।

आयुर्वेद के अनुसार वात, पित्त एव कफ के प्रकोप से भी स्वभाव बिगड जाता है। जब व्यक्ति मे पित्त का प्रकोप होता है तो क्रोध का प्रकोप बढ जाता है। कफ का प्रकोप होता है तो लोभ बढ जाता है। अपान वायु दूषित होती है तो वासना बढ जाती है। क्रोधी व्यक्ति को पित्तशामक औषधि का सेवन कराया जाता है तो क्रोध की मात्रा कम हो जाती है। लोभ भी एक बीमारी है। बीमार व्यक्ति को यदि कफ-शामक औषधि दी जाती है तो उसमे लोभ की वृत्ति कम हो जाती है। वायुशामक औषधियो से काम-वासना शान्त हो जाती है।

विलियम जेम्स ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आदतो को बदलने का कोर्स प्रस्तुत किया है। उसमे तीन बातें मुख्य हैं—

१ बदलने की तीव्र इच्छा, २ दृढ निश्चय ३ निरन्तरता

पहली बात है कि व्यक्ति के मन मे तीव्र अभीप्सा जागे कि उसे अपनी आदतो को बदलना है। जब तक यह इच्छा ही पैदा नही होती तब तक बदलने का प्रश्न ही प्रस्तुत नही होता। पर उससे भी प्रयोजन सिद्ध नही होगा। इच्छा के साथ दृढ निश्चय भी होना चाहिए। इच्छा को दृढ निश्चय मे बदल देना चाहिए। निश्चय ऐसा हो कि मुझे बदलना ही है। बदले बिना मै चैन नही लूगा। निश्चय दृढ होगा तो रूपातरण प्रारम्भ हो जाएगा। दृढ निश्चय के साथ-साथ निरन्तरता भी होनी चाहिए। एक दिन निश्चय

किया, फिर दस दिन तक उसकी स्मृति ही नही रही तो कुछ भी रूपान्तरण घटित नही होगा। निरन्तरता से आदत अपने आप बदलने लग जाएगी।

आदतो के परिवर्तनो के लिए निम्नसूत्रो पर भी ध्यान देना आवश्यक है—

१ सकल्प शक्ति का विकास २ प्रतिक्रमण।

पहला सूत्र है—सकल्प शक्ति का विकास। जिस व्यक्ति ने अपनी सकल्प शक्ति को जगा दिया, वह इस शक्ति से असभव को सभव बना सकता है। प्राणशक्ति जितनी प्रबल होती है, सकल्प उतना ही बलवान् होता है। जितना प्रबल होता है—सकल्प। उतना ही प्रबल होता है—परिवर्तन। सकल्प का प्रबल होना स्वभाव परिवर्तन मे अपरिहार्य तत्त्व है।

दूसरा उपाय है प्रतिक्रमण। जब अतीत का प्रतिक्रमण करने मे हमारी अन्त प्रेरणा जाग जाती है तब समग्र जीवन मे परिवर्तन शुरु हो जाता है। प्रतिक्रमण और प्रायश्चित किये बिना, शोधन और परिष्कार किये बिना मानसिक ग्रन्थिया नही खुलती। प्रतिक्रमण का तात्पर्य है दिन मे या रात मे मन पर जो मैल जमा हो, मलिनता जमा हो, उसे धोकर साफ कर डाले। मन पर मैल जमता है पदार्थ के प्रति आसक्ति से/मूर्च्छा से।

मन पर जमने वाले मलो को साफ करने के लिए हमे अनुप्रेक्षा का अभ्यास करना चाहिए। तीन अनुप्रेक्षाए हैं—अन्यत्व अनुप्रेक्षा, एकत्व-अनुप्रेक्षा और अनित्य अनुप्रेक्षा। अन्यत्व अनुप्रेक्षा अर्थात् आत्मा और शरीर का भेदज्ञान। शरीर को अलग मानना, आत्मा को अलग मानना। दोष का मूल कारण है—शरीर के प्रति मूर्च्छा। यह मूर्च्छा दूसरी सारी मूर्च्छाओ को जन्म देती है। जब अन्यत्व अनुप्रेक्षा का अभ्यास होता है तब शरीर के प्रति होने वाली मूर्च्छा नही पनपती, मैल नही जमता। अनित्य अनुप्रेक्षा से पदार्थ के प्रति होनेवाली मूर्च्छा और उससे जमनेवाला मैल भी कम होने लगता है। एकत्व अनुप्रेक्षा से सामाजिक सम्बन्धो मे आनेवाली मूर्च्छा नष्ट हो जाती है।

शोधन के साथ-साथ पथ्य का सेवन भी होना चाहिए। हमारा शुद्ध रूप है—केवल ज्ञाताभाव, द्रष्टाभाव, केवल जानना, केवल देखना। यह मन के कायाकल्प का सबसे महत्त्वपूर्ण पथ्य है। न प्रियता का सवेदन, न अप्रियता का सवेदन—कुछ भी नही केवल जानना, केवल देखना। यह कठोर पथ्य है। किन्तु यदि मन का कायाकल्प करना है तो इस पथ्य का पालन करना होगा।

७.५.०. मन का अनुशासन (Mental Discipline)

व्यावहारिक दृष्टि से अनुशासन का अर्थ है नियत्रण। आध्यात्मिक

दृष्टि से अनुशासन का अर्थ है—सयम। यहा अपने पर अपना नियन्त्रण ही अनुशासन का रूप है। जहा जीवन सामुदायिक होता है, वहा व्यवस्था और अनुशासन अनिवार्य है। अनुशासन के दो प्रकार है—आत्मानुशासन और परानुशासन। अपने पर अपना अनुशासन आत्मानुशासन है। बाह्य व्यवस्था से प्राप्त अनुशासन परानुशासन है, जो आत्मानुशासी होते हैं उनके लिए व्यवस्था और बाह्य अनुशासन बन्धन नही होते। पर आत्मानुशासन क्षण भर मे नही सधता। जैसे-जैसे मोह या आसक्ति की सघनता कम होती है वैसे-वैसे बाह्य अनुशासन की अपेक्षा भी कम होती है। अभ्यास करते-करते एक दिन ऐसा आता है जिसमे पूर्ण रूप से आत्मानुशासन का उदय होता है। उस स्थिति के बाद बाह्य अनुशासन की अपेक्षा नही रहती। आत्मानुशासी अनुशासन मे रहता हुआ भी उससे मुक्त रहता है।

मन का अर्थ है—स्मृति, चितन व कल्पना की मानसिक प्रक्रियाए। मन मे कोई बुरी बात न आये यह अच्छी बात है। पर मन मे आ जाए तो उसे मन तक रखा जाए। बाहर न आने दिया जाए। यदि यह अनुशासन सीख लिया जाता है तो बहुत सारी समस्याओ का समाधान हो जाता है। जब तक मन की बात मन मे रहती है तब तक वह व्यक्तिगत बात बनी रहती है। पर जब मन की बात भाषा मे उतर आती है तो वह अपने तक सीमित नही रही, सामाजिक बन जाती है। बात बढ जाती है।

आज के इस भौतिकवादी युग मे व्यक्ति बाहरी समस्याओ से जितना परेशान नही है उससे अधिक वह अपनी आन्तरिक समस्याओ से ग्रसित है। उसका मन पर नियन्त्रण नही रहता। मन पर अनुशासन बहुत अच्छा है पर यह सरल नही क्योकि अनेक प्रकार के अनुशासनो की सीमा पार करके मन के अनुशासन तक पहुचा जाता है।

मन के अनुशासन की प्रक्रिया है—इच्छा का अनुशासन, आहार का अनुशासन, इन्द्रियो का अनुशासन, श्वास का अनुशासन, शरीर पर अनुशासन, वाणी पर अनुशासन एव मन पर अनुशासन।

७.५.१. इच्छा का अनुशासन

अनुशासन का स्वरूप है—इच्छारोध, इच्छा का निरोध करना। व्यक्ति के मन मे अनेक इच्छाए पैदा होती हैं। जैसे—किसी की कार देखकर इच्छा हो जाती है कि कार बहुत बढिया है, यह कार मैं ले लू। किसी की बढिया कोठी देखी, इच्छा हो जाती है उस मकान मे रहने की। एक दिन मे न जाने कितनी इच्छाए पैदा होती है। जो इच्छा पैदा हो और उस इच्छा के साथ-साथ आदमी चले, जो मन मे आये वही कर ले तो एक दिन मे पूरे समाज की व्यवस्था गडबडा जाए। चारो ओर लूट, खसोट,

हिंसा और आतक फैल जाये। अतः समाज मे अनुशासन सीखाया जाता है, उसके स्वरूप से परिचित कराया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति जानता है– यह मेरा मकान है। इसमे मुझे रहना है। मै दूसरे मकान मे नही रह सकूगा। मेरा कपडा ही मुझे पहनना है। मेरी रोटी ही मुझे खानी है। जब इस अनुशासन को व्यक्ति जानता है तब समाज की व्यवस्था चलती है। इसका अर्थ है कोई भी व्यक्ति मनमानी बात नही कर सकता। जो इच्छा मन मे पैदा होती है, वह उसमे काट छाट करता है, इच्छा का निरोध करता है। रिजनीग माइड (विवेक) का काम है—इच्छा की काट छाट करते रहना। यही इच्छा के अनुशासन का स्वरूप है। जो अनुशासित व्यक्ति है वह मनमानी नही करेगा, इच्छा की काट-छाट करेगा।

७.५.२ आहार का अनुशासन

मन के अनुशासन मे आहार का नियत्रण भी सशक्त साधन बनता है। मानसिक स्वस्थता का आहार के साथ गहरा सबध है। जीवन का सचालन मस्तिष्कीय केन्द्रो द्वारा होता है। ये केन्द्र रसायनो द्वारा शोषित एव सचालित होते है। अनेक रसायन, न्यूरोट्रान्सेमीटर, आहार द्वारा बनते है। वे हमारे विचार, आचार व व्यवहार को प्रभावित करते हैं। सम्यक् व सतुलित आहार से सम्यक् रसायन बनते है।

आहार-अनुशासन के निम्न सूत्र हैं—

१ निश्चित समय का अनुशासन —अर्थात् खाने के समय का निर्धारण बार-बार न बदला जाये।

२. मात्रा का अनुशासन—खाने की मात्रा का विवेक।

३ खाने की सामग्री मे वस्तुओ की सीमा—विविध प्रकार की अनेक खाद्य सामग्री को एक साथ खाना पाचन तन्त्र को अव्यवस्थित करना है। इससे वैचारिक पवित्रता मे भी बाधा आती है।

४ बार-बार न खाना।

५ खाने मे जल्दबाजी न करना।

६. आहार और निराहार का सन्तुलन रखना।

७.५.३ इन्द्रिय का अनुशासन

इन्द्रियो के अनुशासन के बिना मन के अनुशासन की कल्पना नही की जा सकती। उसके माध्यम से ही मन को खुराक मिलती है। मन मे अच्छे विचार, अच्छी कल्पनाये तभी आ सकती है जब इन्द्रियो का भी प्रत्यक्षीकरण (perception) भी वैसा ही होगा। अध्यात्म के आचार्यों ने इन्द्रियो को उतना ही मूल्य दिया है जितना उनका मूल्य है, अधिक मूल्य नही दिया।

इन्द्रिय अनुशासन के दो सूत्र हैं—

१. अपने-अपने विषयो के प्रति सम्यक् योग २. प्रतिसलीनता

विषयो के प्रति सम्यक् योग का अर्थ है कि व्यक्ति ज्ञेय इन्द्रियो को ज्ञाता की दृष्टि से जाने। न उसके साथ प्रियता को जोड़े, न अप्रियता को जोडे। इससे मन पवित्र एव स्वच्छ रहेगा।

२. प्रतिसलीनता—इसका अर्थ है कि जो लीनता वाहर की तरफ है वह अपनी चेतना के प्रति हो जाये। जव इस लीनता/तल्लीनता का रस वदल जाता है, प्रियता-अप्रियता की वात टूटती है तो यह रस हीनता नही है। वह व्यक्ति अपने भीतर महान रस की खोज कर लेता है। जिस दिन अपने भीतर रसो का पता चलता है। उस दिन इन्द्रिय का अनुशासन सहज हो जाएगा। उसके लिए आन्तरिक रस स्रोत फूट पडेगा।

७.५.४. श्वास का अनुशासन

जो व्यक्ति श्वास पर अनुशासन पा लेता है वह एकाग्र हो जाता है। आनेवाली मानसिक वुराइयो से उलझता नही है। वह उन्हे जटिल नही वनाता। एक तरफ वुरे विचार चलते है, दूसरी तरफ श्वास-दर्शन चलता है। श्वास-दर्शन का जैसे-जैसे अभ्यास वढेगा द्रष्टा भाव और ज्ञाता भाव का अभ्यास वढेगा। वूरे विचार आयेंगे और चले जायेंगे।

वच्चा जैसे-जैसे वड़ा होता है भावनाओ और आवेशो से उसका जीवन भरता चला जाता है। उसका श्वास छोटा, तीव्र व छिछला हो जाता है। श्वास को ठीक से लेना और छोडना, धीमे-धीमे लम्वा लेना और छोडना, श्वास को धीरे-धीरे रोकने का अभ्यास करना श्वास का अनुशासन है। श्वास के अनुशासन के अभ्यास सूत्र हैं—प्राणायाम, दीर्घश्वास प्रेक्षा, समवृत्ति श्वास-प्रेक्षा एव कायोत्सर्ग।

७.५.५. शरीर का अनुशासन

शरीर को साधने मे कष्ट जरूर होता है लेकिन उसका उद्देश्य शरीर को कष्ट देना नही है। इसका लक्ष्य है—कष्ट को मिटाना। काया को साधने के लिए आसन किये जाते हैं। इससे शरीर मे जमा हुआ मैल निकल जाता है। शरीर सध जाता है। शरीर की स्थिरता मन की एकाग्रता मे साधक वनती है। शरीर के अनुशासन के उपाय हैं—आसन, मुद्रा, वध, कायोत्सर्ग एव अन्यत्व अनुप्रेक्षा।

७.५.६. वाणी का अनुशासन

वाणी ही मनुष्य की अभिव्यक्ति का माध्यम है। समाज का विस्तार एव सबध वाणी के द्वारा ही होता है। मन वाणी पर ही अवलम्वित होता है। मन के अनुशासन के लिए वाणी पर अनुशासन आवश्यक है। स्मृति,

चिन्तन और कल्पना—तीनो ही वाणी पर आधारित हैं। भाषा को मुखर मन कहा जा सकता है एव मन को मूक भाषा। जब मन मुखर होता है बोलने लगता है तब मन का नाम भाषा हो जाता है। वाणी पर अनुशासन के लिए उपाय है—शुद्ध उच्चारण, ध्वनिनाद (प्रलम्बनाद) का अभ्यास, सत्यनिष्ठा आदि।

७.५.७. मन का अनुशासन

मानसिक प्रशिक्षण से मन को अनुशासित किया जा सकता है। उसके प्रशिक्षण का पहला सूत्र है—भाव-क्रिया का अभ्यास। अर्थात् जिस कार्य को कर रहे है मन को उसी कार्य में लगाने का अभ्यास करना। मन को प्रशिक्षित करने का दूसरा सूत्र है—कल्पना का विकास, सकल्प का या इच्छा शक्ति का विकास। तीसरा सूत्र है—एकाग्रता का अभ्यास। सहीमार्ग, ध्यान की प्रक्रिया, श्रद्धा, दीर्घकालीन और निरन्तर अभ्यास से मन के अनुशासन का प्रश्न समाहित हो जाता है।

७.५.८. मन का विलय

मन के विलय का तात्पर्य है कि मन के अस्तित्व का न होना। मन का उत्पन्न न होना। चिंतन का नही होना। कल्पना का नही होना। चेतना के स्तर पर दो स्थितिया निर्मित होती है—एक मन के होने की स्थिति और दूसरी मन के न होने की स्थिति। मन के न होने की स्थिति मनोविलय की स्थिति है और मन के होने की स्थिति वह है, जिसका सब लोग अनुभव करते हैं। मन का होना कोरा मन का होना ही नही है। मन का होना बहुत सारी समस्याओ का होना है। क्योकि मन जिन भावो, आवेगो एव सवेगो से सचालित होता है उनमे बहुत सारी चीजे ऐसी भी आती हैं, जिन्हे हम नही चाहते।

प्राण और वृत्ति—मन उत्पन्न होता है प्राण के द्वारा। यदि प्राण न हो तो मन उत्पन्न नही होता। जैसे ही मन उत्पन्न होता है, अपना काम करने लगता है, वृत्तिया उस पर हावी हो जाती है। प्राण और वृत्ति—एक उत्पन्न करनेवाला और एक हावी होने वाला, ये दो तत्त्व ऐसे हैं जो मन जैसे भोले बच्चे को दु खी बना डालते हैं।

जीवन मे बहुत बार आवेग आते हैं। आवेग क्यो आते हैं ? क्या मन मे आवेग हैं ? मन का अपना कोई आवेग नही है किन्तु वृत्तियो मे आवेग होते हैं और वे मन पर छा जाते हैं। मन दु ख से भर जाता है।

मन एक तरग है। ध्यान की स्थिति मे मन का सर्वथा विलय हो जाता है। इस स्थिति मे मन अ-मन बन जाता है। तरगातीत अवस्था मे चला जाता है। ऐसे समय मे ही अमन चैन की अनुभूति होती है। मन को

सर्वथा निष्क्रिय कर देना ही अ-मन की स्थिति है।

मन की दो भूमिकाएं—मन की दो भूमिकाए हैं—समन की एव अमन की। जब तक हम समन की भूमिका पर है तब तक सीधे मन को मिटाने की बात नही सोच सकते। पर इस बात की सोच होनी चाहिए कि मन को अच्छा आलम्बन मिले। मन को शुद्ध एव पवित्र आलम्बन मिले। जो मन नाना प्रकार के आलबनो मे भटकता है, वह उस भटकाव को भूलकर एक ही आलबन मे लम्बे समय तक रह सके—ऐसा प्रयत्न करें। इस भूमिका पर हमारे दो ही प्रयत्न हो—पवित्र आलम्बन एव एक दिशागामिता।

दूसरी भूमिका है अमन की। मन आलम्बन के साथ चलता है। चलते-चलते जब वह आलबन की एकाग्रता और स्थिरता के बिन्दु पर पहुच जाता है तब मन की गति लडखडाने लग जाती है, टूटने लग जाती है, मन वहा समाप्त हो जाता है, अमन की स्थिति प्राप्त हो जाती है।

लेश्या ध्यान के प्रयोग मे जब ज्योति प्रकट होती है तब एक ऐसा प्रसाद बरसता है कि मन खो जाता है। कही नही रहता है। वह मन के पार चला जाता है। अमन की स्थिति मे काल का बोध नही होता। व्यक्ति एक घटा ध्यान करता है किन्तु उसे लगता है पाच-दस मिनट हुए हैं। यह अनुभूति अमन की स्थिति मे ही हो सकती है। मन की स्थिति मे नही। अमन की स्थिति कालातीत स्थिति है। जहा मन नही रहता कोरी चेतना रहती है। इस स्थिति मे गए बिना दुःख कम नही हो सकते। यदि हम चेतना के साथ जीना सीखे तो जीवन मे अबाध सुख का स्रोत फूट सकता है।

७.६.०. अनुप्रेक्षा (Contemplation)

७.६.१. वैज्ञानिक आधार (Scientific Perspective)

मनोविज्ञान मे यह सिद्धात निरूपित हुआ है कि जो सवेग बार-बार उपयोग मे आते हैं, वे स्थाई भाव मे बदल जाते हैं और अनेक स्थाई भाव मिलकर चरित्र का निर्माण करते हैं। जैसे स्थाई भाव होते हैं, वैसे ही मनुष्य की इच्छाए होती हैं। सिगमण्ड फ्रायड नामक मनोवैज्ञानिक ने यह सिद्धात निरूपित किया कि इच्छाओ के दमन से मानसिक बीमारिया उत्पन्न होती है। जब कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छा का दमन करता है, तो वह इच्छा उसके मन के एक हिस्से—अवचेतन मे जाकर शरण ले लेती है। मन के तीन भाग होते हैं—(१) चेतन (conscious) (२) अर्ध चेतन या अव-चेतन (subconscious) (३) अचेतन (unconscious)। जो इच्छा अपूर्ण रह जाती है, वह अवचेतन मन मे चली जाती है। वह व्यक्ति स्वप्नो के माध्यम से उस इच्छा की पूर्ति करता है। ऐसी अनेक दमित इच्छाए मनो-

रोग पैदा कर देती हैं।

इस तरह स्वप्नो के विश्लेषण से रोग के कारण का पता चलता है और उसका उपचार सिग्मण्ड फ्रायड, फ्रेन्ज मेस्मर आदि ने 'सम्मोहन' (hypnotism) के प्रयोग से उसके अवचेतन मन मे गई हुई इच्छा का निरसन या रूपान्तरण करके करने की कोशिश की। सम्मोहन के द्वारा भावना का रूपान्तरण करने की इस विद्या ने यूरोप मे तहलका मचा दिया। सम्मोहन के माध्यम से शरीर को गहरा शिथिल किया जाता है और उसके बाद जो भी भावना पहूचानी होती है, रोगी के मन मे गहराई तक पहुचाई जाती है। पुरानी अतृप्त इच्छा का स्थान नई भावना ले लेती है और रोगी स्वस्थ हो जाता है।

सुप्रसिद्ध मनश्चिकित्सक जुग ने शरीर को शिथिल-अवस्था मे लाने के लिए "स्वत सूचना" (auto-suggestion) का प्रयोग किया। स्वत सूचना द्वारा अपने शरीर को शिथिल अवस्था मे लाकर उसमे, 'भावना' का प्रयोग किया और व्यक्ति निरोग हो गया। इससे रोगी किसी का भी गुलाम नही बनता और अपने व्यक्तित्व की सुरक्षा करने मे सक्षम रहता है।

जब हमारा दृष्टिकोण गलत होता है, तो हमारी इच्छाए भी अनन्त हो जाती है। जब भावना या अनुप्रेक्षा के द्वारा दृष्टिकोण बदल जाता है, तो इच्छाए समाप्त हो जाती हैं। "ये भोग हमे सुख नही देते, बल्कि बधन मे जकडने वाले हैं। जिस विषयासक्ति (या सग) को हम सार समझते थे और जिसके लिए इतने बेचैन हैं, वह सार नही, बल्कि असार है, क्योकि वह हमारे बधन और अतृप्ति का कारण है।"—जब इस 'ससार भावना' की सच्चाई को हम जान लेते हैं और यह भावना हमारे मन और मस्तिष्क मे भलीभाति छा जाती है, तब सारी भोग की इच्छाए स्वत निरस्त हो जाती है और सिग्मड फ्रायड का वह तर्क भी समाप्त हो जाता है जिसके चलते दमित और अतृप्त भोगेच्छाए मनोरोग का कारण बनती है। भावना या अनुप्रेक्षा का यह एक बहुत बडा वैज्ञानिक आधार है। अनुप्रेक्षा मे पहले शरीर को स्थिर, शिथिल और जागरूक किया जाता है, तब किसी भी भावना को मन की गहरई तक पहुचा दिया जाता है, पुरानी मिथ्या भावनाओ का निरसन हो जाता है और नई सम्यक् भावनाओ को बार-बार के अभ्यास से स्थाई भाव का रूप देकर चरित्र का अग बना दिया जाता है।

एक चिकित्सा पद्धति का नाम है—फेथ हीलिंग (Faith healing) यानी "आस्था द्वारा रोग-चिकित्सा।" यह बहुत प्राचीन काल से लगातार अब तक प्रचलित है। आधुनिक सभ्यता वाले पश्चिमी देशो मे जहा अन्य चिकित्सा-पद्धतिया चरम विकास पर पहुची हैं। वहा पर भी 'फेथ

तालिका ८—अनुप्रेक्षा और भावना : सिद्धान्त और मूलस्रोत

बिन्दु	तथ्य	प्रमाण
प्रयोजन	१ शाश्वत् सत्य की सतत् स्मृति, शक्ति का उपयोग, वैचारिक पवित्रता, वृत्तियो से सुरक्षा, समस्या-समाधान, लक्ष्य-प्राप्ति ।	समाधितन्त्र श्लोक २८, सूयगडो १५।५ शान्त सुधारस १।२, योगशास्त्र ४।१२२ आयारो २।३६
आध्यात्मिक स्वरूप	१. अनुप्रेक्षा का आधार द्रष्टा द्वारा प्रदत्त बोध, सत्य की खोज की प्रक्रिया, ग्रन्थि भेद की प्रक्रिया या मूर्च्छा निवारण की प्रक्रिया अनुप्रेक्षा-स्वाध्याय का प्रकार, धर्म्य ध्यान की चार अनुप्रेक्षाए, शुक्ल ध्यान की चार अनुप्रेक्षाए ।	आयारो २।८,१२,६२,१३०, ५।७,२९, ६।३८, ८।९७, सूयगडो १।२।६५, २।२।३४, ठाण ४।६८,४।७२, उत्तरज्झयणाणि — १३।३१,१९।७४, ३०।३४, ३१।१७, पासनाहचरिय, पृष्ठ ४६०
वैज्ञानिक स्वरूप	१ शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक चिकित्सा पद्धति, आस्था-चिकित्सा, सुझाव चिकित्सा, स्वत. सुझाव चिकित्सा, पराभौतिक चिकित्सा, मन का शरीर पर प्रभाव—अच्छे एव आशावादी विचारों से शरीर की प्रतिरोधात्मक क्षमता मे वृद्धि ।	
प्रक्रिया	१ राग-द्वेष रहित चिन्तन की एकाग्रता । शाश्वत सत्य का अनुचिंतन, अनुप्रेक्षा की सफलता के सूत्र—अभिप्रेरणा, शिथिलीकरण, एकाग्रता, साक्षात्कार । पुन· पुन· अभ्यास-भावना ।	आयारो ५।११०, ध्यान शतक श्लोक ६५
परिणाम	१ चित्त-शुद्धि, चित्त-समाधि, समस्या-समाधान, सस्कार-निर्माण	उत्तरज्झयणाणि २९।२३, पासनाहचरिअ पृष्ठ ४६०, योग शास्त्र ४।११०

हीलिंग' की पद्धति प्रचलित है। प्रश्न है—आस्था घनीभूत कैसे हो ? हमारा अपने "ईश्वर" यानी आतरिक शक्तियो के साथ सम्पर्क स्थापित कैसे हो ? जब व्यक्ति मे इस अवस्था का निर्माण हो जाता है कि शारीरिक या मानसिक बीमारिया मात्र एक सयोग है और जो सयोग होता है उसका निश्चित वियोग होता है, "मैं दु ख भोगने के लिए नही जन्मा हू", तब वह बाहरी साधनो का सहारा लिए बिना रोग और दु ख से मुक्त हो जाता है। उसके दु ख का सवेदन समाप्त हो जाता है। यह "आस्था के द्वारा रोग-चिकित्सा" और कुछ नही, वरन् "स्वय सूचना" या आत्म-सम्मोहन के द्वारा भावना का दृढीकरण है।

भावना के प्रयोगो के उपचारात्मक मूल्य को आधुनिक आयुर्विज्ञान के चिकित्सको द्वारा भी स्वीकृत किया गया है। डा० स्टीफन ब्लेक ने "माइड एण्ड बोडी" नामक पुस्तक मे लिखा है—"गहरी शिथिल अवस्था से रोगियो को लाकर सूचनात्मक भावना द्वारा उनके शारीरिक व्यवहार मे उल्लेखनीय परिवर्तन लाया जा सकता है—इस बात को आज प्रचुर प्रमाणो द्वारा सिद्ध किया गया है।"

भावना का अर्थ केवल कुछ सोच लेना मात्र नही है। उसका अर्थ है—हमारे ज्ञान-ततुओ को तथा कोशिकाओ को अपने वशवर्ती कर लेना, उन पर अपनी भावना को अकित कर देना। हमारे शरीर मे अरबो-खरबो न्यूरॉन्स हैं, तन्त्रिका-कोशिकाए हैं। ये न्यूरॉन्स हमारी अनेक प्रवृत्तियो का नियमन करते हैं। जो सकल्प न्यूरॉन्स तक पहुच जाता है, वह सफल हो जाता है। न्यूरॉन्स बडे-बडे काम सपादित करते हैं। इनकी कार्य प्रणाली को समझना बहुत ही कठिन है। अरबो-खरबो की सख्या मे ये ज्ञान-ततु हमारे मस्तिक मे बिखरे पडे हैं। इनका मन की शक्ति के जागरण मे बहुत बडा उपयोग है। इन ज्ञान-ततुओ मे विचित्र क्षमताए हैं, जिनकी हम कल्पना भी नही कर सकते। सम्मोहन का प्रयोग सूचना के आधार पर चलता है। सूचना के आधार पर शरीरिक अवयव भी उसी प्रकार काम करने लग जाते हैं। जब सूचनाओ के आधार पर ज्ञान-ततु काम करने मे तत्पर रहते हैं तब हम उनसे लाभ क्यो नही उठाए ? अपने आप सूचना दे। पुराने को बदलने के लिए, नए को घटित करने के लिए सूचनाए दें। उन ततुओ के साथ आत्मीयता स्थापित करें। आप जो होना चाहेगे, वह अवस्था घटित होने लगेगी। परिणमन प्रारम्भ हो जाएगा। मन की शक्ति का विकास होने लगेगा।

ब्रेन वाशिग का मुख्य साधन—भावना

भावना मस्तिष्क की धुलाई करने का बहुत बडा साधन है। एक ही बात को बार-बार दोहराते जाए, उसकी पुनरावृत्ति करते जाए, ऐसा करते

करते एक क्षण ऐसा आता है कि पुराने विचार छूट जाते हैं और नए विचार चित्त मे जम जाते हैं जब तक हमारी यह धारणा जमी हुई है कि सुख-दुःख देने वाला तीसरा व्यक्ति है, तब तक आदमी का रूपान्तरण नही होता। भावना योग के द्वारा जब इस विचार की धुलाई हो जाती है, इस विचार को उखाड दिया जाता है, तब सुख-दु.ख की कोई भी घटना घटित होने पर आदमी यह नही मानेगा कि सुख-दु ख देने वाला स्वय के अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति है। आदमी फिर यही सोचेगा, मैंने ऐसा ही कोई कृत्य किया है, कोई ऐसा आचरण किया है, उसी का यह परिणाम सामने आ रहा है। पूरी दृष्टि अपनी सीमा मे चली जाएगी।

प्रश्न होता है, क्या एक बात को बार-बार दोहराने से संस्कार धुल जाता है ? नाजियो का यह प्रसिद्ध सूत्र था—एक झूठ को हजार बार दोह-राओ ; वह सच हो जाएगा। हजार बार दोहराने से एक झूठ सच बन सकता है तो क्या हजार-लाख बार दोहराने मे सच सच नहीं बनेगा ? आवृत्ति का भी अपना महत्त्व है। आज विज्ञान का विद्यार्थी जानता है कि सूक्ष्म तथ्य को पकडने के लिए आवृत्ति पर ही ध्यान देना होता है। किस-किस फ्रीक्वेन्सी मे क्या-क्या पकड़ा जा सकता है, यह वह भली-भांति जानता है।

समूचा आकाश ध्वनियो के प्रकपनों से भरा है। पर हमारे कान एवं यन्त्र अन्य सभी ध्वनियो को नही पकड़ पाते। सभी अमुक-अमुक ध्वनि-प्रकपनो को ही पकड पाये हैं। यह भी आवृत्ति के सिद्धांत पर ही फलित होता है। तरग-दैर्ध्य और तरंगो की ह्रस्वता, लम्बी तरंगें और छोटी तरगें, तरग-दैर्ध्य (wave-length) को पकड़ना और आवृत्तियो (ferquency) को पकडना—ये दोनो तथ्य जब ज्ञात हो जाते हैं, तब भावना का मूल्य अपने आप समझ में आ जाता है। हम भावना की कितनी आवृत्तिया करते हैं, किस तरंग की लम्बाई-चौड़ाई के साथ करते हैं, इसी पर हमारे सस्कारो की धुलाई निर्भर करती हैं। मंत्र और जप अनुप्रेक्षा ही है। यदि मंत्र का प्रयोग करने वाला यह नही जानता कि किस मंत्र का किस आवृत्ति मे उच्चा-रण करना चाहिए, किस तरग के साथ करना चाहिए, तो उस मत्र का प्रभाव नही होता और पूरी आवृत्तियां होने तक वह सिद्ध भी नही होता।

अनुकरण और अभ्यास

चरित्र-निर्माण का स्थूल जगत् मे भी बहुत बड़ा फार्मूला या तरीका है। आदमी स्वभाव से अपने बडो का अनुकरण करता है, उनके गुणो या अव-गुणो का अनुकरण करता है। फिर उसी अनुकरण का बार-बार अभ्यास होता है और वही अनुकरण उसकी आदत बन जाता है। अच्छा अनुकरण करके अनेक लोग ऊंचाइयो पर पहुंचे हैं, तो बुरा अनुकरण करके लोग पतन

के गड्ढे मे भी गिरते देखे जाते है, नशे की जितनी भी आदतें है, वे अनुकरण से सीखी जाती हैं। बाद मे निरन्तर के अभ्यास से वे आदत बन जाती हैं। यह जान लेने के बाद भी कि ये आदते बहुत खराब हैं—इससे अनेक बुराइया उत्पन्न होती है, आदमी इनको छोडने मे कठिनाई अनुभव करता है। अगर बुरी आदतो के अनुकरण और अभ्यास से व्यक्ति बुरा बनता है, तो अच्छी आदतो का अनुकरण और अभ्यास करवाकर अच्छे नागरिक क्यो नही बनाए जा सकते ? यही अनुप्रेक्षा और भावना का कार्य है, जिसका अधिकतम उपयोग शिक्षा के क्षेत्र मे 'मूल्य-परक शिक्षा' के लिए किया जा सकता है।

७.६.१ आध्यात्मिक दृष्टिकोण

ध्यान का अर्थ है—प्रेक्षा, देखना। उसकी समाप्ति होने के पश्चात् मन की मूर्च्छा को तोडने वाले विषयो का अनुचिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। जिस विषय का अनुचिन्तन बार-बार किया जाता है या जिस प्रवृत्ति का बार-बार अभ्यास किया जाता है, उससे मन प्रभावित होता है, इसलिए उस चिन्तन या अभ्यास को भावना कहा जाता है।

जिस व्यक्ति को भावना का अभ्यास हो जाता है उसमे ध्यान की योग्यता आ जाती है। ध्यान की योग्यता के लिए चार भावनाओ का अभ्यास आवश्यक है ·

१ ज्ञान भावना— राग-द्वेष और मोह से शून्य होकर तटस्थ भाव से जानने का अभ्यास।

२ दर्शन भावना —राग-द्वेष और मोह से शून्य होकर तटस्थ भाव से देखने का अभ्यास।

३ चरित्र भावना— राग-द्वेष और मोह से शून्य समत्वपूर्ण आचरण का अभ्यास।

४ वैराग्य भावना—अनासक्ति, अनाकाक्षा और अभय का अभ्यास।

मनुष्य जिसके लिए भावना करता है, जिस अभ्यास को दोहराता है, उसी रूप से उसका सस्कार निर्मित हो जाता है। यह आत्म-सम्मोहन की प्रक्रिया है। इसे 'जप' भी कहा जा सकता है। आत्मा की भावना करने वाला आत्मा मे स्थित हो जाता है। 'सोऽह' के जप का यही रहस्य है। 'अर्हम्' की भावना करने वाले मे 'अर्हम्' होने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। कोई व्यक्ति भक्ति से भावित होता है, कोई ब्रह्मचर्य से और कोई सत्सग से। अनेक व्यक्ति नाना भावनाओ से भावित होते हैं। जो किसी भी कुशल कर्म से अपने को भावित करता है, उसकी भावना उसे लक्ष्य की ओर ले जाती है।

साधनाकाल मे ध्यान के बाद स्वाध्याय और स्वाध्याय के बाद फिर ध्यान करना चाहिए। स्वाध्याय की सीमा मे जप, भावना और अनुप्रेक्षा—इन सबका समावेश होता है। यथासमय और यथाशक्ति इन सवका प्रयोग आवश्यक है। 'ध्यान-शतक' मे बताया गया है कि ध्यान को सपन्न कर अनित्य आदि अनुप्रेक्षाओ का अभ्यास करना चाहिए। ध्यान मे होने वाले विविध अनुभवो मे चित्त का कही लगाव न हो, इस दृष्टि से अनुप्रेक्षा के अभ्यास का बहुत महत्त्व है। धर्मध्यान के पश्चात चार अनुप्रेक्षाओ का अभ्यास किया जाता है—

१. एकत्व अनुप्रेक्षा
२ अनित्य अनुप्रेक्षा
३ अशरण अनुप्रेक्षा
४. ससार अनुप्रेक्षा

अनुप्रेक्षा क्या है ?

प्रेक्षा-ध्यान का दूसरा अग है—अनुप्रेक्षा। अनुप्रेक्षा का अर्थ है— ध्यान मे जो कुछ हमने देखा, उसके परिणामो पर विचार करना। 'अनु' का अर्थ है—बाद मे होने वाला। ध्यान मे जो देखा, प्रेक्षा मे जो देखा, देखने के बाद उसकी प्रेक्षा करना, परिणामो पर विचार करना, यह है अनुप्रेक्षा। 'अनु' अर्थात् बाद मे, प्रेक्षा अर्थात् विचार करना। जैसे—हमने देखा कि शरीर के अमुक भाग मे स्पन्दन हो रहा है। परमाणु आ रहे हैं, जा रहे हैं। परमाणुओ का उपचय हो रहा है, अपचय हो रहा है। परमाणु घट रहे हैं, बढ रहे हैं। यह सारा देखा। अव सोचना है, उसका परिणाम क्या होगा ? हम अनित्य अनुप्रेक्षा करेंगे कि जहा परमाणुओ का स्पन्दन है, आना-जाना है, वह नित्य नही हो सकता, वह अनित्य होगा। हम समझ लेंगे कि शरीर अनित्य है। शरीर अनित्य है—इसे जानने का आधार क्या है ? इसे जानने का आधार है प्रेक्षा। जब हमने प्रेक्षा मे यह देखा कि शरीर मे स्पन्दन है, कपन है, गति है, परमाणुओ का आना-जाना है, परमाणुओ का चय-अपचय है, इसका अर्थ है कि वह अनित्यधर्मा है। इस अनित्यता का अनुभव करना, विचार करना, चिन्तन करना—यह है अनित्य अनुप्रेक्षा।

✓ जीवन-विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है—अनुप्रेक्षा। सच्चाइयो को ज्ञात करने के लिए प्रेक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है, किंतु आदतो को बदलने के लिए अनुप्रेक्षा को 'सजेस्टोलॉजी' कहा जा सकता है। अनेक वैज्ञानिक इस पद्धति का प्रयोग करते हैं। चिकित्सा के क्षेत्र मे इसका प्रयोग हो रहा है। 'सजेशन' दो प्रकार से दिया जा सकता है। स्वय व्यक्ति स्वय को सजेशन (सुझाव) देता है या अन्य व्यक्ति के सजेशन को स्वय सुनता है। दोनो प्रकार प्रचलित

है। इन सुझावो के द्वारा अकल्पित बातें घटित हो जाती है।

अनुप्रेक्षा का प्रयोग सुझाव-पद्धति का प्रयोग है। यह 'ऑटोसजेशन'—स्वय को स्वय के द्वारा सुझाव देने की पद्धति है।

एक आदमी यदि प्रतिदिन सप्ताह तक यह सुझाव दे कि मै बीमार हू, तो निश्चित ही वह बीमार हो जाएगा। दूसरा व्यक्ति यदि यह सजेशन देता है कि मै स्वस्थ हू, मै स्वस्थ हू तो वह स्वास्थ्य का अनुभव करने लग जाएगा। सुझाव की पद्धति को समझकर सुझाव दे, बार-बार सुझाव दे, तो स्वास्थ्य बढता जाएगा।

अनुप्रेक्षा की पद्धति स्वभाव-परिवर्तन की अचूक पद्धति है। इसके द्वारा जटिलतम आदत को बदला जा सकता है। आदत चाहे शराब पीने की हो, तम्बाकू सेवन की हो, चोरी की हो, झूठ और कपट की हो, बुरे आचरण और बुरे व्यवहार की हो, अनुप्रेक्षा-पद्धति से उनमे परिवर्तन किया जा सकता है। जीवन-विज्ञान की पद्धति मे 'प्रेक्षा' 'अनुप्रेक्षा' के प्रयोग कराए जाते है। प्रयोग के लिए साधन चाहिए। ये साधन बाहर से उपलब्ध करने की जरूरत नही हैं। ये अपने पास हैं। शरीर, वाणी, श्वास और वर्ण (रग)—ये सब हमारे पास है। बस, केवल इनका प्रयोग करना है। कहा और कैसे प्रयोग करना है, यह सीखना पडता है। हमारे पास सब कुछ है। केवल अपेक्षा हैं सही सयोजन की। उनका कब, कहा, कैसे सयोजन किया जाए। जो व्यक्ति इसको जान लेता है, वह अपने भीतर की शक्तियो का, बिजली और रसायनो का, श्वास का सही सयोजन कर जीवन की अनेक समस्याओ को हल करना जान लेता है।

अनुप्रेक्षा का प्रयोग बहुत महत्त्वपूर्ण है असत् से बचने के लिए। सारा जप का विकास इसी आधार पर हुआ है। अनुप्रेक्षा के सिद्धात के आधार पर जप का विकास हुआ है। इष्ट का जाप करो, मत्र का जप करो, क्योकि शुभ भाव और शुभ विचार तुम्हारे मन मे रहेगा, तो अशुभ भाव को जागने का मौका नही मिलेगा, इसीलिए मत्र का आलम्बन लिया गया। कुछ लोग अध्यात्म-साधना के क्षेत्र मे मत्र की उपयोगिता नही मानते। पर हमारा विश्वास कि मत्र की भी बहुत उपयोगिता है, उसे नकारा नही जा सकता, अस्वीकार नही किया जा सकता, क्योकि हम सीधे वीतराग तो बन नही सकते। सीधे छलाग वाली बात कम घटित होती है। कोई व्यक्ति ऐसा हो सकता है कि सीधी नीचे छलाग लगा सकता है। कोई-कोई ऐसा हो सकता है कि छत पर से सीधे नीचे छलाग लगा सकता है, पर हर कोई लगाने लग जाए, तो फिर सीढियो की जरूरत क्या है? फिर सीढिया लगानी निरर्थक हैं। पर सब छलागें लगाने लग जाएगे, तो शायद हॉस्पीटल मे स्थान भी खाली नही मिलेगा। बडी मुसीबत पैदा हो जाएगी। छलाग की बात सार्वजनिक बात

नही हो सकती। कदाचित् हो सकती है, अपवाद स्वरूप हो सकती है। सीधे वीतरागता की भूमिका मे चले जाने की वात एक छलाग की वात है। हमें सीढ़ियो के सहारे चलना पडेगा आदमी सीढी के सहारे चढेगा, ऊपर पहुचेगा। सीढियो मे दोनो वातें होती हैं। एक ही सीढ़ी वनी हुई है। उससे ऊपर भी चढा जा सकता है, नीचे भी आया जा सकता है। ऐसा नही होता कि ऊपर जाने के लिए सीढिया अलग वनती हैं और नीचे आने के लिए सीढिया अलग वनती हैं। उसी सीढ़ी से ऊपर चढा जा सकता है और उसी सीढ़ी से नीचे आया जा सकता हैं। हमारी एक ही भावधारा है। उसी भावधारा से ऊपर चढा जा सकता है और उसी भावधारा से नीचे उतरा जा सकता है। हमारी भावधारा जव सत् के साथ जुड़ती है तव हम ऊपर चढ सकते हैं, हमारा आरोहण हो सकता है। ज्यो-ही भावधारा असत् के साथ जुडती है तव अव-रोहण शुरू हो जाता है, आदमी नीचे उतर आता है। जप का विकास, मत्र का विकास, इसी भावना के आधार पर हुआ था कि एक ऐसा आलम्बन वना रहे जिससे वुरे भावो को आने का अवसर कम से कम मिले।

भ्रांतियों का विघटन

मिथ्या कल्पनाओ को तोडने के लिए प्रेक्षाध्यान पद्धति मे अनुप्रेक्षा का अभ्यास किया जाता है। दो शब्द हैं। एक है प्रेक्षा और दूसरा है अनुप्रेक्षा। जो सचाई है, उसे देखना, उसका विमर्श करना अनुप्रेक्षा है। सचाई को देखो। उसे अपनी धारणा से मत देखो। मछली ने धारणा वना ली कि आदमी वह होता है जिसका सिर नीचे और पैर उपर होते हैं। इसी धारणा से वह आदमी को देखती थी। यह अनुप्रेक्षा नही है। अपनी धारणा से मत देखो। सस्कार की दृष्टि से मत देखो। काल्पनिक दृष्टि से मत देखो। केवल सच्चाई को देखो, वास्तविकता को देखो। यथार्थ को देखो। जो सत्य है, जो घटना घटित हो रही है, उसी को देखो। अनुप्रेक्षा का अर्थ है—सत्य के प्रति अनुप्रेक्षा अर्थात् यथार्थ के प्रति अनुप्रेक्षा, वस्तु के प्रति अनुप्रेक्षा। उधारी धारणा से काम मत लो, किन्तु जो घटना है, जो वास्तविकता है, जो सचाई है, उसी को देखो। इस प्रकार अनुप्रेक्षा का तात्पर्य है कि हम अपनी धारणाओ को एक वार निकाल दें। अपनी पूर्व-मान्यताओ को छोड दें और फिर जो सच्चाई है, यथार्थ है, उसको देखें। प्रेक्षा-ध्यान पद्धति मे इस अनुप्रेक्षा का अभ्यास किया जाता है कि हम रूढ़ियो को, धारणाओ को छोडकर, वास्तव में सचाई को देखना सीख सकें। यह सबसे बडी कठिनाई है कि मनुष्य सच्चाई को नही देखता। वह सबसे पहले अपनी धारणाओ का चश्मा लगा लेता है और वाद मे देखता है। यदि वह ठीक नही जचता है, तो वह उसे तोड़ने-मरोड़ने का प्रयत्न करता है।

अनुप्रेक्षा का सिद्धात सत्य के लिए समर्पित हो जाने का सिद्धान्त है। सत्य के लिए पूर्णरूपेण समर्पित हो जाओ। अपनी किसी भी धारणा को महत्त्व मत दो। जो सच्चाई है उसे ग्रहण करो, स्वीकार करो यह है अनुप्रेक्षा।

सुना होगा, हिमालय के बर्फ पर साधक नग्न होकर बैठा है। चारो और बर्फ ही बर्फ है। वह गर्मी का प्रयोग आरम्भ करता है। घटा बीतता है और साधक शरीर से पसीना चूने लगता है। बर्फ पर पसीना चूने लग जाता है। यह प्राकृतिक घटना नही है। यदि प्राकृतिक घटना होती, तो एक ही आदमी के शरीर से पसीना नही चूता। वहा जितने आदमी होगे, सबके शरीर से पसोना चूएगा। पर एक ही आदमी के शरीर से पसीना चूता है और सब सर्दी मे ठिठुरते हैं। यह प्राकृतिक घटना नही है। यह ध्वनि का प्रयोग है, सकल्प का प्रयोग है और भावना का प्रयोग है। यह भावनात्मक परिवर्तन है, प्राकृतिक परिवर्तन नही है।

गर्मी के दिन हैं। भयकर गर्मी पड रही है। लूए चल रही हैं। साधक सर्दी की भावना करता है, सर्दी का सकल्प करता है और उसके शरीर मे सर्दी व्याप्त हो जाती है। वह ठिठुरने लगता है। तब वह कबल ओढता है फिर भी ठिठुरन समाप्त नही होती। यह प्राकृतिक परिवर्तन नही है, भावनात्मक परिवर्तन है।

पैर मे बिवाई फटती है, पीडा होती है। अभी बिवाई फटने का मौसम तो नही है, किन्तु आप भावनात्मक प्रयोग करें। बिवाई फटे या न फटे, दर्द प्रारम्भ हो जाएगा। यदि भावना से दर्द हो सकता है, तो भावना से दर्द मिट भी सकता है दोनो बातें घटित हो सकती हैं।

भावना

'कटकात् कटकमुद्धरेत्'—काटे स काटा निकालने की नीति साधना के क्षेत्र मे भी लागू होती है। चित्त को वासनाओ से मुक्त करना साधक का लक्ष्य होता है, पर पहले ही चरण मे दीर्घकालीन वासनाओ को एक साथ निर्मूल नही किया जा सकता। उन्हे निरस्त करने के लिए नई वासनाओ को सृष्टि करनी होती है। वे नई वासनाए यथार्थपरक होती हैं, इसलिए उनका असत् से सबन्धित वासनाओ पर दबाव पडता है और वे उनसे अभिभूत हो जाती हैं।

वासना का ही दूसरा नाम भावना है। शास्त्रीयज्ञान या शब्दज्ञान का जो सहारा लिया जाता है, वासना है। इसे भावना, जप, धारणा, सस्कार, अनुप्रेक्षा और अर्थचिंता भी कहा जाता है और ये सब स्वाध्याय के ही प्रकार हैं।

जैन साधना-पद्धति मे 'भावनायोग' शब्द का व्यवहार हुआ है। भावना

से मन आत्मा या सत्य से युक्त होता है, इसलिए यह योग है। भावना मे ज्ञान और अभ्यास—इन दोनो के लिए अवकाश है।

भावना का अर्थ है—सविषय ध्यान। यही इसकी परिभाषा है। जब आपके मन मे कोई विषय है, आपने कोई ध्येय चुना है, आप सविषय ध्यान कर रहे है, यह है भावना। भावना, सविषय ध्यान और जप मे कोई अन्तर नही है। तीनो एक हैं। अपनी उपयोगिता के आधार पर भिन्न-भिन्न नामो का चुनाव हुआ है। तात्पर्य मे कोई अन्तर नही है। जप का अर्थ यह है कि जो जप्य है, जिसका जप करना है, उस जप्य वस्तु के प्रति व्यक्ति का तन्मय और एकाग्र हो जाना। भावना का अर्थ है—भाव्य व्यक्ति या वस्तु के प्रति तन्मय और एकाग्र हो जाना। धारणा का अर्थ भी यही है। जिसकी धारणा करनी है, उसके प्रति तन्मय और एकाग्र हो जाना। सविषय ध्यान भी यही है। विषय के प्रति या ध्येय के प्रति तन्मय और एकाग्र हो जाना। जप, भावना, धारणा और सविषय ध्यान—चारो एक कोटि के है। इसमे तात्पर्य भेद नही है, नाम-भेद है।

भावना नौका है। भगवान् महावीर ने कहा- जिसकी आत्मा भावना-योग से विशुद्ध होती है, वह जल मे नौका की तरह है। वह जब चाहे पार पहुच सकती है। अब इस नौका का उपयोग कैसे हो ? वह प्रश्न शेष रहता है। भावना से भावित होना आवश्यक होता है। आप भावित नही होते तब तक वह स्थिति नही बनती। आगमो मे 'भावितात्मा' शब्द आता है। भावितात्मा होने के बाद जो होना होता है, वह हो जाता है। यह सारा एकाग्रता का चमत्कार है। हम जो भी होना चाहते हैं, हो जाते हैं। जो घटित करना चाहते है, वह घटित हो जाता है। जिस रूप मे मन को बदलना चाहते है, बदल लेते है। मन एक आकार का होता है। उसके असख्य पर्याय हैं। वह भिन्न-भिन्न आकारो मे बदलता है। हम जैसे चाहते है, उसी प्रकार का आकार वह लेना शुरू कर देता है। यह मन की विशेषता है तन्मयता और एकाग्रता के साथ हमने जो भावना की, वैसे ही होना होता है। उसमे कोई अन्तर नही आता। प्रश्न है एकाग्रता का, स्थिरता का। मन बदलता है, तो साथ-साथ शरीर भी बदलता है। स्व-सम्मोहन का प्रयोग, ऑटोसजेशन, अपने आपको सूचना देना, यह अपने आप भावना के द्वारा सम्मोहित हो जाना है। शरीर-प्रेक्षा के द्वारा शरीर के भीतर देखना, फिर सकल्प-शक्ति और भावना के प्रयोग द्वारा बदलने की भावना को अवचेतन मन तक पहुचा देना। यह है रूपान्तरण की प्रक्रिया।

प्रत्येक कोशिका मे ज्ञान-केन्द्र है। हर कोशिका का अपना एक कारखाना है, विद्युत् का, शक्ति का। वे कोशिकाए अपने ढग से काम करती है। उनको बदलना है, उनको नया जन्म देना है, उनको नया रास्ता देना

है, तो आपको अपनी भावना को उन तक पहुचाना होता।

जब तक हमारी भावना उन तक नही पहुचती, तब तक हम नही बदल सकते। उदाहरण लें—एक आदमी अपनी क्रोध की आदत को बदलना चाहता है। सकल्प करता है—मैं क्रोध नही करूगा। बार-बार सकल्प करता है, पर सफल नही होता। सकल्प तो करता है पर गुस्सा वैसा ही आ जाता है। इससे तो ऐसा लगता है कि यह प्रयोग सार्थक नही है, यह उपाय कारगर नही है। मैं बदलना चाहता हू, फिर भी नही बदलता हू। कितने ही लोग बुरे काम करते है और पछताते हैं। फिर सोचते है, फिर ऐसा नही करूगा। पर ठीक समय आता है, काम हो जाता है। गुस्सा भी आता है, वासना भी सताती है, वृत्तिया भी सताती हैं। सब अपने समय पर सताने लगते हैं। शराबी शराब को छोडने का सकल्प करता है, तम्बाकू का व्यसनी तम्बाकू को छोडने का सकल्प करता है, सोचता है, सेवन नही करूगा, पर समय आता है, तो भीतर मे ऐसी प्रबल माग जगती है कि उसका सकल्प धरा का धरा रह जाता है। सकल्प भग हो जाता है। ऐसा क्यो होता है ? इसलिए होता है कि हम अपने सकल्प को वहा तक पहुचा नही पाते। बाहर ही बाहर मे देखते है। हम बहुत अभ्यासी हैं बाहरी बात मे। बाहर को देखते हैं और सारी कल्पना बाहर करते हैं।

परिवर्तन की प्रक्रिया का दूसरा सूत्र है—भावना का प्रयोग, सकल्प-शक्ति का प्रयोग, अप्रभावित रहने का प्रयोग। यह सतुलन का प्रयोग होता है।

साधक ध्यान के पूर्व और ध्यान के बाद भावनाओ के अभ्यास का सतत् स्मरण करता रहे। उनसे एक शक्ति मिलती है, धीरे-धीरे मन तदनुरूप परिणत होता है, मिथ्या धारणाओ से मुक्त होकर सत्य की दिशा मे अनुगमन होता है, और एक दिन स्वय को तथानुरूप प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है। भावना और ध्यान के सहयोग से मजिल सुसाध्य हो जाती है। साधक इन दोनो की अपेक्षा को गौण न समझे। सभी धर्मो ने भावना का अवलम्बन लिया है।

भावनाए विविध हो सकती हैं जिससे चित्त की अशुद्धि होती है, वे सारी भावनाए हैं। आज की भाषा मे भावना का अर्थ है—ब्रेन वाशिंग। इसका अर्थ है—मस्तिष्क की धुलाई। राजनीति के क्षेत्र मे ब्रेन वाशिंग की प्रक्रिया बहुत प्रचलित है इसका प्रयोजन है, पुराने विचारो की धुलाई कर उनके स्थान पर नए विचारो को भर देना। यह बहुत प्रचलित प्रक्रिया है। इसका प्रयोग राष्ट्र करता है।

७.६.३. प्रयोजन

अनुप्रेक्षा नही करने वाला साधक ध्यान की मर्यादा को नही जान

सकता। उसके लिए ध्यान मे जाना भी सहज, सरल नही होता। अनुप्रेक्षा एक सोपान है। जो अनुप्रेक्षा के सोपान पर आरोहण नही करता, वह प्रेक्षा-ध्यान के सोपान पर भी आरोहण नही कर सकता। दोनो साथ-साथ चलते हैं। प्रेक्षा के पश्चात् अनुप्रेक्षा और अनुप्रेक्षा के पश्चात् प्रेक्षा। ये दोनो एक ही चित्त की दो आवस्थाए हैं। जब तक पानी तरल है तब तक पानी है और जब वह जम जाता है, तब वर्फ बन जाता है। मूलत दोनो मे कोई अन्तर नही है। वर्फ का भी अपना मूल्य है और तरल पानी का भी अपना मूल्य है तरल रहने से उसका मूल्य समाप्त नही हो जाता। अनुप्रेक्षा हमारे चित्त की तरल अवस्था है। एक बिन्दु पर हम चित्त को केंद्रित करते हैं, चित्त वहा जम जाता है स्थिर हो जाता है वह चित्त ध्यान बन जाता है। जब चित्त उस बिन्दु पर स्थिर नही होता, आसपास घूमता है, तब वह अनुप्रेक्षा होती है। समस्या को सुलझाने के लिए अनुप्रेक्षा बहुत जरूरी है। एक समस्या पर ध्यान को केंद्रित करना "विचय ध्यान" की प्रक्रिया है। अज्ञात को ज्ञात, अनुपलब्ध को उपलब्ध और सत्य का अनुसधान करना है, तो चिन्तन के एक बिन्दु पर ध्यान केंद्रित करना होगा। जब चेतना की धारा एक दिशागामी, एक विचारगामी होती है तब समस्या सुलझ जाती है, अज्ञात ज्ञान हो जाता है जब तक ध्यान की स्थिति नही बनती, तब तक चितन या अनुचिन्तन के द्वारा ही समस्या को सुलझाया जा सकता है।

ध्यान-साधक के सामने भी अनेक समस्याए उपस्थित होती है। यदि अनुप्रेक्षा का आलबन न हो, तो साधक उलझ जाता है। कुछ एक व्यक्ति कहते हैं—"ध्यान के साधक को ग्रथ नही पढने चाहिए जप नही करना चाहिए, सकल्प-शक्ति और प्राण-शक्ति का प्रयोग नही करना चाहिए, चितन-अनुचितन नही करना चाहिए। ध्यान साधक निर्विचार रहे।" प्रारम्भ मे उसके लिए ध्यान का अभ्यास करणीय है। किन्तु निर्विचारता की उपलब्धि प्रारम्भ मे नही हो जाती।

अनुप्रेक्षा बचाव

ध्यान के द्वारा जब कर्म के साथ छेड़छाड होती है, तब वह रौद्र रूप धारण कर लेता है। यदि उस समय अनुप्रेक्षा का सम्बल नही मिलता, तो साधक उस स्थिति को सभाल नही पाता। ध्यान करने से जब ऊर्जा जागती है, तब क्रोध भी बढ जाता है। शक्ति का कार्य उत्तेजना पैदा करना है। जब यह शक्ति जागती है और उसे यदि सही रास्ता मिल जाता है, नियामक तत्त्व मिल जाता है, तब वह साधक भी अन्यान्य निष्पत्तियो के सवर्धन मे हेतुभूत हो सकनी है। यदि ऐसा नही होता, तो शक्ति बहुत खतरनाक हो सकती है।

विचय ध्यान के द्वारा यह जाना जा सकता है कि शक्ति-जागरण होने

पर किस प्रकार की अनुप्रेक्षाए करनी चाहिए। जब अनुप्रेक्षाओ का सहारा लिया जाता है, तब कोई कठिनाई नही होती, साधक अपनी शक्ति का सतुलन बनाए रखता है। तात्पर्य है—हम अपनी पूर्व धारणाओ और मान्यताओ को एक बार निकाल दें और फिर जो परम सत्य है, उसका अनुभव करे। प्रेक्षा-ध्यान साधना-पद्धति मे अनुप्रेक्षा का अभ्यास इसलिये किया जाता है कि हम रूढियो, सस्कारो और धारणाओ को छोडकर सच्चाई को देखना सीख सके। अनुप्रेक्षा का सिद्धात यथार्थ मे सत्य के दर्शन का सिद्धात है, सत्य के लिए पूर्णरूपेण समर्पित हो जाए—यह है अनुप्रेक्षा।

भगवान् महावीर ने सच्चाई का जीवन जीने के लिए (भ्राति को मिटाने के लिए) अनुप्रेक्षाओ का बोध दिया। अनुप्रेक्षाए भ्राति के चक्र को तोडने वाली हैं। जो व्यक्ति अनुप्रेक्षा नही करता, उसकी भ्राति सघन होती चली जाती है, किंतु अनुप्रेक्षा की तेज धार चक्र को बढाने नही देती।

बारह अनुप्रेक्षाओ मे एक अनुप्रेक्षा है—अकेलेपन की अनुभूति। व्यवहार की भाषा मे "मैं अकेला हू" ऐसा नही कहा जा सकता। मेरी मा, मेरा भाई, मेरा परिवार, मेरा धन, मेरा समाज, मेरा राष्ट्र—न जाने सम्बन्धो की शृखला कितनी व्यापक बन जाती है। न जाने आदमी कहा-कहा से जुड़ा हुआ है व्यवहार मे आदमी फैल जाता है। आदमी सैंकडो-सैंकडो धागो से बधा हुआ है। वह इतना जकडा हुआ है कि समाज और व्यवहार के क्षेत्र मे उसे कही भी अकेलेपन का अनुभव नही होता। व्यवहार की बात तो ठीक है, किंतु वह अतिम सच्चाई नही है। हम व्यवहार को व्यवहार के जीवन तक ही रहने दें और सच्चाई का जीवन भी साथ मे जीए। जो आदमी कोरा व्यवहार का जीवन जीता है, वह अपने लिए सदा सिरदर्द पैदा करता है। सिरदर्द को वही मिटा सकता है, जो व्यवहार के साथ सच्चाई का जीवन भी जीता है।

हमे दोनो प्रकार का जीवन जीना चाहिए। व्यवहार का जीवन इसलिए कि हम उनके बिना अपनी आवश्यकताओ को पूरा नही कर सकते, अपने लिए जीने का साधन नही जुटा सकते, न कोई रोटी परोसने वाली मिलेगी, न पानी पिलाने वाला मिलेगा, न कोई सेवा-चाकरी करने वाला मिलेगा, न कोई देनेवाला और न कोई लेनेवाला, इसलिए व्यवहार का जीवन जीना, सामाजिक जीवन जीना हमारे लिए बहुत जरूरी है, किंतु दूसरी ओर यदि हम सच्चाई का जीवन नही जीते है, तो वह व्यवहार और वह समाज हमारे लिए सिरदर्द पैदा कर देता है। व्यवहार का जीवन जीते हुए सच्चाई के जीवन की पृष्ठभूमि बनाए रखना अपेक्षित है। आगे व्यवहार रहे और पृष्ठभूमि मे सच्चाई रहे। दोनो साथ-साथ चले, तो हमारे जीवन की यात्रा ठीक चलेगी और सिरदर्द भी पैदा नही होगा।

परिवार, समाज आदि बनाना व्यक्ति के लिए जरूरी है किंतु जो व्यक्ति इनको अन्तिम सच्चाई मान कर यह मान लेता है कि मेरा त्राण, मेरी सुरक्षा कही है, तो ये परिवार आदि हैं, तो एक दिन वह स्वय अनुभव करता है कि वह धोखे मे था और व्यक्ति इस सच्चाई को बराबर मानता रहता है कि सुविधा के लिए परिवार है, समाज है, किंतु अन्तिम सच्चाई यह है कि वस्तुत "मैं अकेला हू"। ऐसे व्यक्ति को कभी धोखा नही होता।

वास्तविकता यह है कि धोखा देनेवाला कोई और नही होता। व्यक्ति अस्वीकार करता है। सच्चाई को बराबर ध्यान मे रखने वाला कभी धोखा नही खाता, इसलिए हम एकत्व अनुप्रेक्षा के प्रयोग के द्वारा इस सत्य का अनुभव करे कि "मैं अकेला हू, मेरा दूसरा कोई नही है, न मैं किसी का हूं और न मेरा कोई है।"

व्यवहार के धरातल पर हमने सत्य की हत्या की है। यदि हम सत्य को स्वीकार कर चलते कि व्यक्तियो का जुडना, परिवार और समाज का बनना मात्र एक "सयोग" है, किंतु अन्तिम सच्चाई नही है। यदि हम दोनो सच्चाइयो को सामने रखकर चले कि "सयोग" और "सबध" भी एक सीमा मे यथार्थ है और "वियोग" तथा "अकेलापन" भी एक वास्तविकता है, तो समस्या उलझती नही। "सयोग" और "सबध"—ये व्यवहारिक धरातल की सच्चाइया हैं; परन्तु इस अटपटे तथ्य को समझना या जानना अनुप्रेक्षा के अभ्यास के बिना नही हो सकता। जब साधक एकत्व अनुप्रेक्षा का अनुचिंतन ओर अनुभव करता है और जब यह अनुभव गहरा होता चलता है, तब यह सच्चाई प्रत्यक्ष हो जाती है कि "मैं अकेला हू।"

यह बात अटपटी अवश्य लग सकती है कि समाज के परिप्रेक्ष्य मे व्यक्ति कैसे मान ले कि "मैं अकेला हू"। यह प्रश्न उभर कर आता है कि क्या इस चिंतन से सारे परिवारिक सम्बन्ध टूट नही जायेंगे ? यह प्रश्न उभर सकता है, किंतु हम एकागी दृष्टिकोण से विचार न करे। जीवन-यात्रा को चलाने के लिए व्यवहार की भूमिका पर तय बात भी जरूरी है कि "मैं अकेला नही हूं। मेरे साथ अनेक सम्बन्ध जुडे हुए हैं। मेरे साथ परिवार का, गाव का, राष्ट्र का सम्बन्ध जुडा हुआ है। मैं इन सूक्ष्म धागो से बधा हुआ हू।" एक ओर व्यवहार की भूमिका पर आदमी अपने आपको हजारो-हजारो धागो से बन्धा अनुभव करे और दूसरी ओर अध्यात्म की भूमिका पर उन धागो से मुक्त अनुभव करे। दोनो स्थितिया साथ-साथ चलें। दोनो का सामजस्य हो। व्यवहार की दृष्टि भी चले और निश्चय की दृष्टि, प्रेक्षा की दृष्टि भी चले। जो सामाजिक जीवन जीता है, उसे इन धागो से बधा रहना पडता है; किंतु केवल इसी मे रह जाए और आध्यात्मिक चेतना को न जगा पाए,

तो मूर्च्छा इतनी सघन हो जाती है और वे धागे मजबूत रस्से बन जाते है, फिर उनसे छूटना सरल नही होता।

एकत्व अनुप्रेक्षा के द्वारा हम अपनी चेतना को जगाए और अपने आपमे यह अनुभव करें कि—"मै अकेला हू ।" जब यह सच्चाई अनुभव के स्तर पर घटित हो जाती है तब व्यक्ति का जीवन सतुलित हो जाता है। आदमी व्यवहारो तथा सम्बन्धो को सच्चाई मानकर जीता जा रहा है जब वह इन सच्चाइयो का अनुभव कर लेता है, तब व्यवहार नीचे रह जाते हैं और सच्चाई उजागर हो जाती है। अनुप्रेक्षा का प्रयोग केवल सुनने का प्रयोग नही है, करने का प्रयोग है। जब हम प्रयोग करते हैं, तब वास्तविकता गहरे मे अवचेतन मन तक पहुच जाती है, इसलिए अनुप्रेक्षा का प्रयोग जरूरी है।

साधक प्रयोग और अभ्यास मे विश्वास करे। जो प्रयोग करता है। अभ्यास से गुजरता है, उसको अवश्य अनुभव होता है। जो बात अनुभव के स्तर पर आती है, वह स्थायी और शाश्वत उपयोगी बन जाती है। अभ्यास निरन्तर चले, असभव सभव लगने लगेगी।

७.६.४ निष्पत्तियां

चित्तशुद्धि की प्रक्रिया

अनुप्रेक्षाए अनेक हैं। जो व्यक्ति प्रेक्षा के साथ-साथ अनुप्रेक्षाओ का अभ्यास करता है, उसके चित्त पर कोई मूर्च्छा नही जमती, मैल नही जमता। इसलिए प्रेक्षाध्यान करने वाले साधको को चित्तशुद्धि के लिए अनुप्रेक्षाओ का अभ्यास करना जरूरी है। प्रेक्षाध्यान साधना-पद्धति मे जहा ध्यान का महत्त्व है, वहा अनुप्रेक्षा का भी महत्त्व है—इस वास्तविकता को बराबर मानते चलें, तो ध्यान के साथ-साथ हमारे चित्त की निर्मलता और चित्त की निर्मलता के आधार पर सभावित दोषो का शोधन करते चले जायेगे; तब व्यवहार के क्षेत्र मे भी जीवन-यात्रा सुखद होती चली जायेगी।

अनित्य अनुप्रेक्षा

अनित्य अनुप्रेक्षा का क्रम प्रारभ करने के लिए शात और जागृत रह-कर सकल्प करे कि अनित्य अनुप्रेक्षा करनी है। पहला सूत्र है—"इमं सरीरं अणिच्चं"—यह शरीर अनित्य है ।

दूसरा सूत्र है - "इमं सरीरं चयावचयधम्मयं"—यह शरीर चय अप-चय धर्मा है, अर्थात् यह पुष्ट होता है, क्षीण होता है।

तीसरा सूत्र है "इमं सरीरं विपरिणामधम्मय'—यह शरीर विप-रिणामधर्मा है, अर्थात् इसमे नाना प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं। कभी गर्मी से, कभी सर्दी से, कभी भोजन से, कभी बीमारी से परिवर्तन होता रहता है।

चौथा सूत्र है—"इमं सरीरं जरा-मरण-धम्मं"। यह शरीर जरा-मरण-धर्मा है अर्थात् इसमे वृद्धावस्था घटित होती है और मृत्यु घटित होती है। हम शरीर को इतना ढीला छोड दे कि मानो मृत्यु का अनुभव हो रहा हैं। यह भावनात्मक परिवर्तन है। भावनात्मक परिवर्तन के द्वारा भावना की अत्यन्त तीव्रता और सघनता के द्वारा हम उस स्थिति का अनुभव करते हैं, जो कुछ समय के बाद घटित होने वाली है।

शरीर अनित्य है, यौवन अनित्य है, परिवार का सयोग अनित्य है, वैभव सम्पदा अनित्य है, इष्ट का सयोग भी अनित्य है और क्या—जीवन भी अनित्य है। जिस साधक को अनित्यता का यह अनुचिंतन और अनित्यता का अनुभव होता है, उसमे क्रोध आने का अवकाश नही रहता। जिसकी चेतना मे यह बात जम गई कि संयोग अनित्य है, पदार्थ नश्वर है, तब पदार्थ के चले जाने पर वह दु खी नही होता।

हमारे व्यावहारिक जीवन मे अनित्य अनुप्रेक्षा का बहुत बड़ा महत्त्व है। जिस व्यक्ति के चित्त मे यह सस्कार पुष्ट बन जाता है कि सब पदार्थ अनित्य हैं, फिर उस व्यक्ति के मन से विवाद बढ़ाने वाली बात समाप्त हो जाती है। उसकी मानसिक विकृतिया कम हो जाती है। बहुत सारी पीडा जो व्यर्थ की भोगनी पडती है, वह समाप्त हो जाती है।

यह कोई तत्त्वज्ञान की बात नही है, अनुभव मे उतारने की बात है। अनुप्रेक्षा करने वाला व्यक्ति घटना को जान लेता है, भोगता नही। नही करने वाला व्यक्ति जानता नही, भोगता है। घटना को जानने वाला व्यवहार को मधुर बना देता है, भोगनेवावा दुःख पाता है। अनुप्रेक्षा का साधक मानसिक विकृतियो से मुक्त होकर स्वस्थ चिंतन करने वाला, स्वस्थ व्यक्तित्व वाला बन जाता है।

प्रश्न हो सकता है कि "अपने आपको अकेला अनुभव करने वाला व्यक्ति क्या व्यवहार से च्युत नही हो जाएगा ?" उत्तर है—नही होगा। जो व्यक्ति अनुप्रेक्षा का यानी स्वस्थ चिंतन का अनुकरण करता है, वह कभी असामाजिक और अव्यावहारिक नही होगा, प्रत्युत् व्यवहार में जितना परिष्कार आता है, समाज मे जितना सुधार, क्रांति और भलाई आती है, बस ऐसे व्यक्तियो द्वारा ही आ सकती है।

अनुप्रेक्षा के द्वारा जिन आध्यात्मिक सच्चाइयो का अनुभव किया जाता है, वे यदि सामाजिक व्यक्ति के जीवन मे चरितार्थ हो जाए, तो समाज का चित्र नया हो जाएगा। आध्यत्मिक भूमिका पर जिस समाज की सरचना होगी और इन सच्चाइयो के आधार पर जिस समाज का ढाचा खडा होगा, वह समाज सचमुच ही व्यवस्थित, शातिप्रिय और मैत्रीप्रधान होगा।

सहिष्णुता

सहन करना सामान्य बात नही है। इसके लिए पुष्ट आलम्बन चाहिए। किसी आलम्बन के आधार पर ही सहिष्णुता का विकास किया जा सकता है। सामन्यत क्रोध का उत्तर क्रोध से, उत्तेजना का उत्तर उत्तेजना से दिया जाता है। कोई क्रिया हो और सामने वाला प्रतिक्रिया न करे, ऐसा सभव नही लगता, किन्तु अनुप्रेक्षा के आलबन के सहारे इस स्थिति को सहा जा सकता है, कोई प्रतिक्रिया नही होती। आवेशजन्य स्थितियो को सहने के लिए और मन को शात और सतुलित रखने के लिए अनुप्रेक्षा के माध्यम से सहिष्णुता का विकास किया जा सकता है।

समाधि की उपलब्धि

अनुप्रेक्षा की एक महत्त्वपूर्ण निष्पत्ति है समाधि। जीवन का सबसे बडा विज्ञान है समाधि। जिस व्यक्ति को समाधि उपलब्ध हो जाती है, उसकी दूसरी सारी विशेषताए नीचे रह जाती है। दूसरी-दूसरी विशेषताओ से सम्पन्न व्यक्ति अत्राण और असहाय देखे जाते है, किन्तु जिस व्यक्ति को समाधि उपलब्ध है। वह कभी अत्राण और असहाय नही होता। वह कभी अशरण और दुखी नही रहता। समाधि की उपलब्धि तब होती है, जब व्याधि नही सताती, उपाधि नही सताती और आधि नही सताती। ये तीनो—व्याधि, उपाधि और आधि जब निशेष हो जाती हैं, तब समाधि घटित होती है। व्याधि आती है, रोग होता है, तब आदमी की स्थिति भयकर हो जाती है। मानसिक उलझन आदमी को इतना बेचैन बना देती है कि आदमी एक क्षण के लिए भी सुख की सास नही ले सकता। आधि की कठिनाई व्याधि से अधिक है। आधि की स्थिति मे आदमी पागल बन जाता है। सब कुछ साधन होने पर भी वह बहुत दुखी बन जाता है। उपाधि की स्थिति आधि से भी ज्यादा भयकर होती है। उपाधि का अर्थ है—कषाय। उसमे क्रोध जागता है, कपट उभरता है, लालच जागता है। इन सबके अस्तित्व मे आदमी सब कुछ करता है, जो उसे कभी नही करना चाहिए। व्याधि, आधि और उपाधि—तीनो खतरे हैं। इनकी अवस्थिति मे समाधि नही आ सकती।

समाधिस्थ होने के लिए तीनो से पार जाना जरूरी होती है। शरीर निरन्तर बीमार रहता है, समाधि कैसे होगी ? मन उलझनो से भरा रहता है, समाधि कैसे होगी। आदमी उपाधि से भरा रहता है, कषाय से भरा रहता है, समाधि कैसे उपलब्ध होगी ? इन सबसे पार जाने पर ही समाधि का बिन्दु उपलब्ध होगा। प्रत्येक मनुष्य अपने मार्ग का चुनाव कर सकता है। मुझे कौन-सा जीवन जीना है ? व्याधि, आधि और उपाधि का जीवन जीना है या समाधि का जीवन जीना है ? आप पूछना चाहेंगे कि यह कोई चुनाव

का प्रश्न है ? क्या कोई व्यक्ति आधि, व्याधि और उपाधि का जीवन जीना चाहेगा ? प्रश्न हो सकता है। सहज लगता है प्रश्न। किंतु उत्तर भी जटिल नही है, बहुत सीधा है। आदमी चाहता है, तब बीमार होता है, आदमी चाहता है, तब मानसिक उलझनो मे फसता है और चाहता है, तब उपाधि से ग्रस्त होता है। अगर वह न चाहे, तो कभी वह बीमार नही हो सकता, कभी अधिग्रस्त नही हो सकता और कभी उपाधिग्रस्त नही हो सकता। यह सब चाह पर निर्भर होता है। कठिन है उस चाह को पकडना, उस चाह को समझना और देखना। हम देखना नही चाहते। हमारे भीतर बीमार होने की चाह जागती है और हम बीमार हो जाते है। व्यक्ति अति काम, अति भोजन, अति क्रोध करता है, यह सारी बीमारी की चाह है। हम कैसे भेद रेखा खीचेंगे कि अति भोजन की चाह, अति स्वाद की या अति लोलुपता की चाह तो है और बीमारियो की चाह नही है। असयम की चाह का मतलब है—बीमार होने की चाह। हम उन्हे अलग नही कर सकते, कभी नही कर सकते। जिसके मन मे बीमार होने की चाह नही होती वह बीमार नही होता। जिस व्यक्ति मे मानसिक उलझनो मे जाने की चाह नही होती वह मानसिक उलझन मे नही जाता। मानसिक उलझन इसलिए होती है कि हमारे मन मे मानसिक उलझनो मे जाने की चाह मौजूद है। जब हमारे भीतर किसी को प्रिय मानने की चाह है और किसी को अप्रिय मानने की चाह है, तब अप्रियता का सवेदन रहे और मानसिक उलझ न रहे, यह कभी नही हो सकता। हम मानसिक तनाव मे, मानसिक उलझन मे, प्रियता और अप्रियता के सवेदन मे भी कोई अन्तर नही कर सकते। उनसे बीच मे कोई भेद-रेखा नही खीच सकते। जो क्रोधी होना नही चाहता, क्या वह कभी क्रोधी हो सकता है ? क्रोध उसी व्यक्ति को आएगा, जो क्रोधी होना चाहता है। सबसे बडी बीमारी है चाह, अतृप्ति, आकाक्षा। सारी बीमारियो की जड मे है आकाक्षा, अविरति। यदि आकाक्षा मिट जाए, अविरति समाप्त हो जाए, तो फिर न कषाय होगा और न कोई बीमारी होगी। हम इस सच्चाई को देखे, इस सच्चाई को जानें, और जो इस सच्चाई को जानते है, उनके सामने यह प्रश्न जटिल नही बनता कि चुनाव कैसा होना चाहिए ?

व्याधि, आधि और उपाधि से पीडित होने का चुनाव कौन करेगा ? किन्तु आदमी यह चुनाव करता है। वह इसीलिए करता है कि उसके भीतर चाह मौजूद है; परन्तु जब मनुष्य को स्वतन्त्रता है और वह चुनाव करने मे सक्षम है, तो वह व्याधि, आधि और उपाधि से दूर हटकर समाधि का चुनाव करता है, तब उसकी सारी जीवन की दिशा बदल जाती है। समाधि हमारे जीवन की दिशा है। समाधि हमारे जीवन का मार्ग है। यह जीवन की एक पद्धति है। जो इस जीवन की पद्धति को समझ लेता है, जीवन की कला को

समझ लेता है, जीवन के विज्ञान को समझ लेता है, वह शात और सहज जीवन जीता है। समाधि की साधना समग्र जीवन की साधना है। प्रेक्षा और अनुप्रेक्षा द्वारा जैसे-जैसे देखने और जानने का—चैतन्य-केन्द्र मे होने वाले प्रकपनो को जानने का—अभ्यास बढता है, वैसे-वैसे राग-द्वेषमुक्त क्षण मे जीने का विकास होता है, साधना बढती है, अनुभव करने का अभ्यास बढता है। साधक जीवन-यात्रा को चलाते हुए भी, व्यवहार की भूमिका पर करणीय कार्य करते हुए भी समाधि को प्राप्त कर अच्छे साधक का जीवन जी सकता है।

अनुप्रेक्षा की प्रक्रिया को समझ लेने पर ध्यान की बहुत बडी प्रक्रिया हस्तगत हो जाती है। हमारे हाथ मे एक बहुत बडा आलबन आ जाता है। वह आलबन है सयम का, सवर का, समता का और सामायिक का। अनुप्रेक्षा के बिना सयम घटित नही हो सकता, सवर घटित नही हो सकता, सामायिक घटित नही हो सकता, मन मे समता का अवतरण नही हो सकता।

इसलिए समाधि की अभ्यर्थना करने वाला साधक, समाधि को उपलब्ध होने की भावना रखने वाला साधक, दर्शन और ज्ञान की क्षमता को विकसित करने वाला साधक, अनुप्रेक्षा का आलबन ले, उसके प्रयोग के सहारे वस्तु-सत्यो को खोजे, वस्तु-स्वभाव को जाने। जो वस्तु-स्वभाव को जानता है, उसे प्रियता और अप्रिता के सवेदन से, राग और द्वेष से, अहकार और ममकार मे मुक्ति पाने का बहुत सरल उपाय उपलब्ध हो जाता है, और जो साधक, प्रियता और अप्रियता, राग और द्वेप अहकार और ममकार से मुक्ति पा लेता है, वह आधि, व्याधि और उपाधि से मुक्त होकर समाधि प्राप्त करता है।

व्याधि-मुक्ति

शरीर मे नाना प्रकार की अवस्थाए आती हैं। आदमी कभी दु खी होता है, कभी सुखी, कभी स्वस्थ होता है, कभी बीमार, कभी जवान होता है, कभी बूढा। तीन दु ख बतलाए गए हैं रोग, बुढापा और मौत। आदमी को रोग के दु ख की अनुभूति होती है। दु ख आने पर आदमी बेचैन होता है। सामान्यत हर आदमी को रोग आता है, पीडा होती है।

वर्तमान मे वैज्ञानिक इस खोज मे लगे हुए हैं कि बीमारी की अवस्था मे भी पीडा न हो। वे पीडा कम करने के लिए पीडाशामक औषधिया देते है। दर्द शात करने के लिए अफीम से बनने वाली गोलिया, मोर्फिन का इजेक्शन आदि, अरबो-खरबो रुपयो की औषधिया प्रतिवर्ष बाजार मे बिक रही है और बहुत सारे लोग सिरदर्द, पेटदर्द, जोडो का दर्द, घुटनो का दर्द—

इन सब दर्दों को मिटाने के लिए गोलिया खाते रहते है।

दर्द को मिटाने के लिए और रोग को शान्त करने के लिए चिकित्सा की अनेक पद्धतिया विकसित हुई । एक पद्धति उसके साथ मैत्री स्थापित करने की है। आज के मनोवैज्ञानिक बता रहे हैं कि हम दस-बीस वर्षों मे ऐसी मानसिक प्रक्रिया खोज लेंगे और बीमार को ऐसा प्रशिक्षण देंगे कि वह बिना दवा के दर्द को सहन कर सके। हमारी एक शरीर प्रणाली है, उसमे पीड़ाशामक रसायन बनते हैं (जिसे "एण्डोर्फीन" कहते हैं)। साधना के द्वारा बीमार व्यक्ति पीड़ाशामक रसायन को भीतर ही पैदा कर पीडा को सहन कर सकता है।

साधना के क्षेत्र मे एक उपाय खोजा गया जिससे बीमारी की अवस्था मे भी आदमी शात रह सकता है, समता मे रह सकता है और सुख का अनुभव कर सकता है। इधर पीड़ा और उधर वह सुख अनुभव करे, यह एक बहुत विचित्र खोज है। साधना के प्रयोग से रोगी भय, चिंता और तनाव से मुक्त हो सकता है। अनुप्रेक्षा के प्रयोग से व्यक्ति अभय का विकास करे, चितामुक्त रहे तो पिडा पाच प्रतिशत जितनी भी अनुभव नही होगी। भय और चिता के साथ पीडा बढ जाती है और अभय एव निश्चितता की स्थिति मे पीड़ा कम हो जाती है। हमारी भावात्मक और मानसिक स्थितिया पीड़ा के होने और न होने मे हेतुभूत बनती हैं। अनुप्रेक्षा की निष्पत्ति है—अभय का विकास करना और चिन्ता एव तनाव से मुक्त होना।

भावना के प्रयोग से आदमी मे परिवर्तन आ जाता है। भावना बदली और आदमी बदल जाता है, क्योकि भावना के साथ हमारे रसायन बदलते हैं। उसमे विश्वास और आस्था की शक्ति बड़ा काम करती है। न जाने कितने लोग सतो के पैरो की धूलि लेकर भयकर बीमारियो से मुक्त हो जाते हैं। तो क्या यह धूली का चमत्कार है ? नही यह भावना का चमत्कार है, विश्वास और आस्था की शक्ति का चमत्कार है। ऑटो-सजेशन (भावना) के प्रयोग के द्वारा आस्था और विश्वास की शक्ति को काम मे लाया जा सकता है और रासानिक परिवर्तनो के द्वारा बिमारियो का शमन किया जा सकता है तथा उन्हे नष्ट भी किया जा सकता है। आतरिक रसायनो को बनाने की और बदलने की प्रक्रिया एक प्रकार से आध्यात्मिक चिकित्सा की प्रक्रिया है।

प्रेक्षा और अनुप्रेक्षा इन दोनो की समन्वित साधना व्यक्ति को आधि, व्याधि और उपाधि से मुक्ति दिला सकती है। प्रेक्षा के प्रयोग से पता चलता है कि स्थिति क्या है। जैसे-जैसे देखने का अभ्यास बढता है, पूरे शरीर से होने वाले प्राण के प्रकम्पनो को जानने का व अनुभव करने का अभ्यास बढता है। उसे पता चलता है। शरीर के कौन-से तत्र और कौन-से

अवयव मे गडबडी है। फिर भावना-प्रयोग से उस तन्त्र या अवयव की प्रक्रिया मे सुधार किया जा सकता है और व्यक्ति व्याधि से मुक्त हो सकता है।

७.७.० सारांश (Summary)

जीवन मे सफलता एव शान्ति के लिए मन को जानना एव प्रशिक्षित करना आवश्यक है। जीवन की प्रवृत्तियो के सचालन के लिए हमारे पास क्रिया तत्र है। उसके तीन अग है—शरीर, वाणी, और मन। चित्त के आदेशो को क्रियान्वित करना मन का कार्य है। शरीर विज्ञान की दृष्टि से मन का सम्बन्ध हमारे स्नायु सस्थान से है। स्नायु सस्थान के माध्यम से होने वाली चिन्तन, स्मृति एव कल्पना की प्रक्रियाओ को मन कहा जाता है। यह मन सभी प्राणियो मे नही पाया जाता। यह मात्र उच्च चेतना से युक्त प्राणियो मे होता है।

मन की तीन अवस्थाए है—विक्षेप अवस्था, एकाग्र अवस्था एव अमन अवस्था। विक्षेप अवस्था मे मन चचल एव व्यग्र रहता है। एकाग्र अवस्था मे चचलता कम होती है, मन एक ही विषय मे गतिशील रहता है। अमन अवस्था मे मन रहता ही नही है। स्मृति, चिन्तन व कल्पना नही रहती। सघन एकाग्रता एव अमन अवस्था—ये दोनो सविकल्प और निर्विकल्प ध्यान की अवस्थाए हैं।

मन की एकाग्रता मे आनन्द की अनुभूति होती है। जैसे-जैसे एकाग्रता बढती है आनन्दानुभूति बढती जाती है। मन का निरोध होने पर जीवन मे सहज आनन्द का साक्षात्कार हो जाता है।

आत्म-साक्षात्कार की स्थिति मे मन अमन हो जाता है मन रहता नही है। मन की व्यग्रता, बेचैनी, थकान व चचलता का कारण है—अतीत का लेखा-जोखा, कर्म का जमाव। यह कर्म का जमाव सवेगो के रूप मे बाहर आता है एव मन को प्रभावित करता है। जिस दिशा मे मन गति करता है प्राण भी उसी का अनुगमन करता है। मन को एकाग्र करने का सरल उपाय है श्वास की गति को मन्द करना। श्वास को मन्द करने से मन की चचलता एव बेचैनी कम हो जाती है। शरीर की स्वस्थता और अस्वस्थता मन के स्वास्थ्य पर बहुत निर्भर है अत मन के स्वास्थ्य पर ध्यान देना बहुत आवश्यक है। शरीर को शक्तिशाली बनाने के लिए मन को शक्ति-शाली बनाना आवश्यक है।

मन की शक्ति के सचय और सुरक्षा का उपाय है—कायोत्सर्ग। उसके विकास का उपाय है—ध्यान। मन की अशान्ति पागलपन को बढाती है। इसको कम करने एव शान्ति को प्राप्त करने का एक उपाय है—चैतन्य के प्रति आकर्षण पैदा करना। दूसरा उपाय है—भावो पर ध्यान देना। तीसरा

है—कारण पर ध्यान देना। मन की समस्या मन की गति और विश्राम (अगति) के सतुलन पर निर्भर है। इसके असतुलन के कारणो को मिटाना मन की समस्या का समाधान है। मानसिक स्वास्थ्य के लिए जीवन मे समता एव सतुलन का अभ्यास आवश्यक है। हमारी मनोदशा एक जैसी नही रहती। मूड बदलता रहता है। मूड नही बिगडे अत आहार, निहार पर ध्यान देना आवश्यक है। समवृत्ति श्वास प्रेक्षा प्रसन्न मनोदशा के निर्माण मे बहुत सहायक है। व्यक्तित्व के रूपान्तरण मे मन का कायाकल्प आवश्यक है। मन मे विचार आते है। वे रूढ बन जाते हैं। आदत बन जाती हैं। उनको बदलना ही मन का कायाकल्प है। दृढ सकल्प और प्रतिक्रमण से मन का कायाकल्प हो जाता है।

व्यक्ति का मन पर नियत्रण नही है, अनुशासन नही है अत वह अनेक व्यक्तिगत एव सामाजिक समस्याओ से ग्रसित हो जाता है। मन पर अनुशासन के लिए आवश्यक है—इच्छा पर अनुशासन, आहार का अनुशासन, इन्द्रियो का अनुशासन, श्वास पर अनुशासन, शरीर पर अनुशासन, वाणी पर अनुशासन, अतत मन पर अनुशासन। अबाध सुख और आनन्द के लिए चेतना के साथ जीना आवश्यक है। मन से परे होने का अभ्यास आवश्यक है।

मन की शक्ति के उपयोग एव उसके प्रशिक्षण का सशक्त माध्यम है—अनुप्रेक्षा। मानसिक रोगियो को स्वस्थ करने के लिए वैज्ञानिक युग मे स्व-सम्मोहन, स्वत सुझाव व आस्था चिकित्सा के प्रयोग किये जाते हैं। ये अनुप्रेक्षा के ही प्रयोग है। आध्यात्मिक दृष्टि से मूर्च्छा को तोडने वाले एकाग्र अनुचितन को अनुप्रेक्षा कहते हैं। अनुप्रेक्षा को मुख्य प्रयोजन हैं - समस्याओ का समाधान एव वृत्तियो से बचाव। अनुप्रेक्षा से चित्त-शुद्ध होता है। समाधि की प्राप्ति होती है। व्याधियो से मुक्ति मिलती है।

७.८.० सहायक-सामग्री

१. चित्त और मन, आचार्य श्री महाप्रज्ञ
   जैन विश्व भारती, लाडनू (राज०)
२ मनोनुशासनम्, आचार्य श्री तुलसी
   आदर्श साहित्य सघ, चूरू (राज०)
३ मैं कुछ होना चाहता हू, आचार्य महाप्रज्ञ
   जैन विश्व भारती, लाडनू (राज०)
४ प्रेक्षाध्यान · अनुप्रेक्षा, आचार्य महाप्रज्ञ
   जैन विश्व भारती, लाडनू (राज)
५ अमूर्त्त चिंतन, आचार्य महाप्रज्ञ, जै वि. भा. लाडनू

६ किसने कहा मन चचल है, आचार्य महाप्रज्ञ, जै वि भा. लाडनू
७ मन के जीते जीत, आचार्य महाप्रज्ञ ,,
८. एकला चलो रे, आचार्य महाप्रज्ञ ,,
९. मैं कुछ होना चाहता हू, आचार्य महाप्रज्ञ ,,
१० आस्तिक दर्शनो मे मनस्तत्त्व, श्रीमती प्रतिभा रानी द्विवेदी
राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली-२
11. Concept of Mind in Indian Philosophy (19 1)
by Sarsvat Chinna Kesavi, Motilal Banarsidas, Delhi

अभ्यासार्थ-प्रश्न (Questions)

१. मन को समझना क्यो आवश्यक है। उसका स्वरूप क्या है ?
२ मन की कितनी अवस्थाए हैं ? विवेचन कीजिये।
३ मानसिक विकास कैसे किया जा सकता है ?
४ मन का आत्मा, कर्म, सवेग, प्राण, श्वास और शरीर से क्या सम्बन्ध है ?
५ मन की शक्ति को कैसे बढाये ?
६ मन की शान्ति को प्राप्त करने के सूत्र क्या है ?
७ मन की समस्या से आप क्या समझते है ?
८ मानसिक स्वास्थ्य को कैसे बनाए रखें ?
९ मूड क्यो बिगडता है, उसे कैसे नियन्त्रित किया जाए ?
१० मन का कायाकल्प कैसे करे ?
११ क्या मन पर अनुशासन किया जा सकता है ? कैसे ?
१२ अनुप्रेक्षा का वैज्ञानिक आधार क्या है ?
१३ अनुप्रेक्षा की परिभाषा क्या है और उसके आध्यात्मिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करे।
१४ अनुप्रेक्षा का प्रयोजन क्या है ?
१५ अनुप्रेक्षा की निष्पत्तियो की चर्चा करे।

अध्याय-८

चित्त और चैतसिक प्रशिक्षण

रूपरेखा

१. चित्त और मन में अन्तर (Difference between Psyche and Mind)

२. मनोविज्ञान में चेतना/मन (consciousness in Psychology

मन एवं इसकी कार्य प्रणाली

३. चेतना के स्तर एवं चित्त (Levels of consciousness and Psyche)

४. मनोविज्ञान एवं जीवन-विज्ञान के दृष्टिकोण की तुलना

५. समाधि का स्वरूप एवं महत्त्व (Nature and importance of Samadhi)

६. समाधि की अवस्था (State of Samadhi)

समाधि के विघ्न (Disturbances in Samadhi)

समाधि की प्रक्रिया (Process of Samadhi)

७. समाधि एवं चित्त-शुद्धि (Samadhi and purity of consciousness)

चित्त-शुद्धि और प्रेक्षाध्यान

८. चैतन्य-केन्द्र प्रेक्षा (Perception of Psychic Centres)

वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Perspective)

आध्यात्मिक दृष्टिकोण (Spiritual Perspective)

प्रयोजन (Purpose)

निष्पत्तियां (Results)

९. सारांश (Summary)

१०. सहायक सामग्री (Related Readings)

११. अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions)

८. चित्त और चैतसिक प्रशिक्षण

साधारणतया चित्त और मन को एकार्थक माना जाता है। वस्तुतः ये एकार्थक नही है। मनोविज्ञान मे चित्त के अर्थ मे मुख्यतया मन का ही प्रयोग किया गया है। समस्या यह है कि क्या मन स्वय सचालित है ? या वह किसी दूसरे के द्वारा सचालित है ? यदि वह स्वय सचालित है तो फिर उसे वश मे करने की बात निरर्थक है, उसके व्यग्र और एकाग्र होने की बात भी निरर्थक हो जाती है, अर्थहीन हो जाती है। उसका नियामक चित्त है। उसकी व्यग्रता और एकाग्रता चित्त पर निर्भर है इसलिए चित्त और मन—दोनो की भेद रेखा पर ध्यान केन्द्रित होना जरूरी है।

चित्त और मन को व्यवहार मे एक मानने से कोई कठिनाई नही आती किन्तु ध्यान साधना के क्षणो मे यह कठिनाई उभर कर सामने आ जाती है। यह ध्यान मन का ही एक खेल है तो बन्दर की स्थिरता को भी इसकी चचलता का ही एक प्रदर्शन माना जायेगा।

ध्यान के विकास का पहला चरण है—विकल्प ध्यान और दूसरा चरण है—निर्विकल्प ध्यान। निर्विकल्प ध्यान समाधि की अवस्था है। ध्यान का वास्तविक स्वरूप यही है। यह स्थिति मन की सारी प्रवृत्तियो के समाप्त होने पर ही उपलब्ध होती है। इस अवस्था मे मन विलीन हो जाता है, चित्त की वृतिया विलीन हो जाती हैं किन्तु चित्त विलीन नही होता। इस बिन्दु पर चित्त और मन की पृथकता का अनुभव किया जा सकता है।

८.१.० चित्त और मन में अन्तर

चित्त का अर्थ है स्थूल शरीर के साथ काम करने वाली चेतना। और मन का अर्थ है—उस चित्त के द्वारा काम कराने के लिए क्रियातत्र या प्रवृत्ति तत्र का अग। चित्त चतन्य तत्र का भाग है। यह क्रियातत्र का सचालक है। मन भौतिक तत्व है। चित्त आत्मिक है। चित्त का अर्थ है—अनुभव करना। चिदि-ज्ञाने, अर्थात् ज्ञान करना। मन का अर्थ है मनन करना। मननात् मन अर्थात् मनन करना। निम्नलिखित दृष्टियो से चित्त और मन के भेद को समझा जा सकता है—

तालिका ९ : चित्त और मन में अन्तर

क्र.	अन्तर बिंदु	चित्त	मन
१.	संचालन	संचालक, मालिक, चैतन्य का एक भाग है	संचालित, नौकर, क्रियातंत्र का अंश है।
२	स्वरूप	चैतन्य धर्म है, सचेतन है ज्ञानात्मक है	चेतना रहित है, जड है, पौद्गलिक है, भौतिक है।
३.	स्थिरता	यह स्थिर हो सकता है	स्थिर नही हो सकता, एकाग्र हो सकता है।
४	अस्तित्व	त्रैकालिक अस्तित्व है। सभी प्राणियो मे है।	यह स्थायी नही है। केवल कुछ प्राणियो मे है।
५.	क्षेत्र	चित्त व्यापक है, इसका सम्बन्ध चेतना की गहराई तक है	ऊपर तक सिमित है सम्पूर्ण व्यवहार की व्याख्या मात्र इससे संभवनही।
६	कार्य	अनुभव, "चिदी ज्ञाने" ज्ञान करना, अनुभव करना	मननात् मन। मनन, चिंतन, कल्पना, स्मृति करना

चित्त संचालक

मानसिक प्रक्रियायें चित्त के सहयोग से ही सम्पन्न होती हैं। उसके सहयोग के विना मन कुछ भी नही कर सकता। हाथ की अंगुलिया चलती है और अनेक कार्य सम्पन्न हो जाते हैं। ये शारीरिक और मानसिक कार्य मस्तिष्क द्वारा चित्त का सहयोग प्राप्त होने पर ही सम्पादित होती हैं। क्रिया करना शरीर का काम है, संचालन करना चित्त का काम है। ठीक इसी प्रकार मानसिक क्रिया करना मस्तिष्क का काम है। संचालन करना चित्त का काम है, हारमोनियम से आवाज निकलती है जब व्यक्ति हारमोनियम को बजाता है। वैसे ही चित्त (व्यक्ति) का सहयोग प्राप्त होने पर मस्तिष्क (हारमोनियम) द्वारा मानसिक प्रक्रियायें (आवाज) निष्पन्न होती हैं।

चित्त चैतन्य धर्मा

चित्त भिन्न है मन भिन्न है। चित्त चैतन्य धर्मा, चेतनावान या सचेतन है मन चैतन्य रहित है, जड या पौद्गलिक (Material) है। मन व्यक्तित्व का ऊपरी हिस्सा है, जो चित्त का स्पर्श पाकर सचेतन जैसा प्रतीत होता है, चित्त हमारी भीतर की सारी चेतना का स्थूल व्यक्तित्व पर प्रतिनिधित्व करता है।

चित्त की स्थिरता

चित्त स्थिर हो सकता है, मन स्थिर नही हो सकता। मन एकाग्र हो सकता है। मन की दो अवस्थायें है—विक्षिप्तावस्था और एकाग्र अवस्था।

विक्षिप्तावस्था मे मन एक बिन्दु पर नही टिकता। एकाग्रावस्था मे वह एक बिन्दु पर एकाग्र हो सकता है। दोनो चचलता के रूप है। दोनो मे अन्तर इतना सा है कि जो मन अनेक विषयो मे जा रहा था। उसको एक विषय मे एकाग्र कर दिया। अनेक स्मृतियो या कल्पनाओ मे उलझने वाले मन को एक स्मृति या कल्पना पर टिका दिया - यह है एकाग्रावस्था पर इस अवस्था मे भी यह नही कहा जा सकता कि मन स्थिर हो गया।

मन का स्वभाव है चचलता। उसका अस्तित्व चचलता मे ही है। हम चित्त को स्थिर कर सकते हैं। जब चित्त स्थिर होता है तब मन अमन बन जाता है, मन होता ही नही।

चित्त का अस्तित्व

चित्त हमारे अस्तित्व से जुडा हुआ है। स्थायी तत्त्व है ऐसा नही होता कि चित्त अभी पैदा हुआ और अभी समाप्त हो गया। मन स्थायी तत्व नही है मन उत्पन्न होता है, विलीन होता है। हम जब चाहते है मन को उत्पन्न कर लेते हैं। और जब चाहे उसको विलीन कर देते है, अमन हो जाते है। चित्त का अस्तित्व सभी प्राणियो मे होता है। मन का अस्तित्व केवल विकसित पाच इन्द्रियो वाले प्राणियो मे ही होता है।

चित्त का क्षेत्र

मन के द्वारा सम्पूर्ण जीवन और कार्य कलापो की पूरी व्याख्या नही की जा सकती। मन एक सीमित तत्व है उसका सम्बन्ध ऊपरी व्यक्तित्व तक ही है। चित्त व्यापक है उसका सम्बन्ध हमारी आन्तरिक चेतना के साथ है। चित्त और मन—दोनो के आधार पर ही समूचे आचार और व्यवहार की व्याख्या की जा सकती है।

चित्त का कार्य

चित्त का कार्य है—अनुभव करना, मात्र जानना, देखना। मन का कार्य है मनन करना, स्मृति, चिन्तन, कल्पना करना। दुसरे शब्दो मे अनुभूति करना चेतना का विशिष्ट लक्षण है। यह चित्त का कार्य है। वस्तुत इन मानसिक प्रक्रियाओ को ही मन कहा जा सकता है।

८.२.० मनोविज्ञान में चेतना या मन (Cousciousness in Psychology)

मनोविज्ञान मे चेतना और मन की स्पष्ट भेद रेखा नही मिलती। इसका भी कारण है चित्त की स्थिरता, एकाग्रता का विकास, उसके उपाय एव परिणामो का अध्ययन, आन्तरिक आनन्द का जागरण, समाधि की प्राप्ति आदि विषय अभी तक मनोविज्ञान की परिधि मे समाविष्ट नही है।

पिछले कुछ दशकों मे इन विषयो पर अनुसंधान मात्र प्रारम्भ हुए हैं अतः चित्त और मन के भेद का प्रश्न भी उनके सामने नही रहा। चेतना के सम्बन्ध मे अन्य अनेक दृष्टिकोणो से मनोविज्ञान मे अध्ययन किया गया है। भिन्न-भिन्न वैज्ञानिको ने चेतना के सम्बन्ध मे भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त किये हैं परन्तु इस तथ्य से अधिकाश विद्वान सहमत है कि चेतना मे निम्नलिखित तीन बातें पाई जाती हैं[1]—

१ ज्ञान (Cognition)
२ क्रिया (Connation)
३. भाव (Affection)

ड्रेवर का कथन है कि चेतना क्रियाओ की एक ऐसी विशेषता है जो विलक्षण है परन्तु इससे क्रियाओ को अलग किया जा सकता। चेतना मानसिक क्रियाओ तथा शारीरिक क्रियाओ का परिचय देने वाली एक व्यापक क्रिया है। आन्तरिक दृष्टि से व्यक्ति अपनी आन्तरिक अनुभूतियो से अलग कुछ भी नही और अनुभूतियो की व्यापक विशेषता ही चेतना कहलाती है।

विलियम जेम्स ने चेतना की निम्नलिखित विशेषताओ का वर्णन किया है[2]—

१ चेतना का सम्बन्ध व्यक्ति विशेष से होता है। (Every conscious state tends to be a part of personal conscious)
२ चेतना मे निरन्तर परिवर्तन होता रहता है (conscious is always changing)
३ प्रत्येक व्यक्तिगत चेतना मे विचार निरन्तर बना रहता है (within each personal consciousness thought is sensibly continous)
४. प्रत्येक चेतना चयनात्मक होती है (Every consciousness is selective)

प्रसिद्ध मनोविश्लेषण वादीयो मे सिगमड फ्रायड ने मन को तीन-तीन अवस्थाओ मे विभाजित किया है, जिन्हे चेतन (conscious) अग्रचेतन (preconcisous) तथा अचेतन (Unconcious) के रूप मे जाना जाता है।

८.२.१. मन एवं इसकी कार्य प्रणाली

मस्तिष्क एक अवयव है, जो कि हमारे सिर के अन्दर के भाग मे

---

१ सामान्य मनोविज्ञान, डा० एस० एस० माथुर, पृ० ३३०, १४ वा संस्करण।

२ आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, डा० एस० एन० शर्मा, पृ० ३४९, ५ वा सस्करण।

सुरक्षित एव स्थित रहता है व पूरे शरीर की गतिविधियो पर नियत्रण करता है, जबकि उसके क्रियात्मक पहलू को मन कहते है। मस्तिष्क एव मन की तुलना पुष्प व गध से कर सकते है। एक को हम देख सकते हैं व दूसरे को हम सिर्फ महसूस कर सकते हैं। मन का एक प्रमुख आधार है—चेतना, इसी आधार पर मन तीन स्तर पर कार्यरत रहता है—चेतन, अर्द्धचेतन एव अचेतन।

चेतन मन— मन का वह स्तर है, जिसमे व्यक्ति को अपनी क्रियाओ का वर्तमान समय मे ज्ञान रहता है। चेतन मन मे विचार या भाव धारा के समान निरन्तर बहते रहते है। जिन पर हमारा कभी नियत्रण रहता है और कभी नही। यह मन का ऊपरी और प्रथम स्तर है। मन के इस स्तर को अवधान का केन्द्र या चेतना का केन्द्र कहते हैं। मन का यह भाग जागृत अवस्था मे शृखलाबद्ध रहता है। चेतना मन की क्रियाओ का सचालन तथा नियत्रण वास्तविकता के अनुसार करता है। ये क्रियाए वातावरण के द्वारा प्रभावित होती हैं। अधिकाश समय तक इसका सम्बन्ध क्षणिक उत्तेजनाओ से न रहकर ज्ञान से रहता है। कोई भी कार्य से पूर्व यह मन विचार कर लेता है। इसकी क्रियाए प्राय तर्क द्वारा सचालित होती हैं। चेतन मन के तीन पक्ष होते है—१ ज्ञानात्मक २ भावात्मक ३. क्रियात्मक। मन की ये तीनो मानसिक क्रियाए मिलकर काम करती हैं। हा ये बात अवश्य है कि कभी कोई मानसिक प्रक्रिया की प्रधानता रहती है, कभी कोई प्रक्रिया की। उदाहरण के तौर पर कोई व्यक्ति बाजार मे सुन्दर वस्तु को देखता है, उसे खरीदकर अपने मित्र को देता है, इसमे वस्तु को देखना उसकी सुन्दरता को समझना ज्ञानात्मक होता है, उसे देखकर विशेष मित्र को देने का ध्यान आना भावात्मक क्रिया है और उसे लाकर भेट करना क्रियात्मक क्रिया है। इस प्रकार चेतन मन की प्रत्येक क्रिया मे तीन प्रक्रियायें होती हैं।

अर्द्धचेतन मन— अर्द्धचेतन या अवचेतन मन का वह स्तर है, जिसकी क्रियाए ध्यान की सीमा से परे होते हुए भी प्रयत्न करने पर ध्यान केन्द्र मे लायी जा सकती हैं।

अर्द्धचेतन मन की क्रियाए न तो पूर्णरूप से व्यक्त होती हैं, न अव्यक्त। प्रयत्न करने पर वे व्यक्त या अव्यक्त दोनो हो सकती है। अर्द्धचेतन मन की क्रियाए बिना किसी प्रतिबध के चेतन मन मे आ जाती हैं।

अचेतन मन—यह मन का वह भाग है, जिसके बारे मे व्यक्ति प्रयास करे तो भी उसे ज्ञात नही होता। इसे चेतना की गहराई (deph) का भी नाम दिया जाता है। फ्रायड का विचार है कि व्यक्ति अपने जीवन काल मे

जिन-जिन इच्छाओ का दमन कर देता है। वे इच्छाए चेतन मन से निकलकर अचेतन मन मे प्रवेश कर वही सरक्षित रहती है; और इन्ही दमित इच्छाओ से चेतन मन का विकास भी होता है।

अचेतन मन एव अर्द्धचेतन मन के बीच मे फ्रायड के अनुसार एक 'सेन्सर' ऐसा द्वारपाल रहता है, जो अचेतन मन मे पड़ी दमित इच्छाओ को अर्द्धचेतन अथवा चेतन मन मे आने से रोक देता है। हमारा अचेतन मन बहुत प्रबल होता है।

जब सेन्सर के कारण अचेतन मन अव्यक्त इच्छाओ को प्रकट करने मे असमर्थ हो जाता है तब वह इन इच्छाओ को ऐसा स्वरूप प्रदान कर देता हैं, जो चेतन मन को स्वीकार हो।

हमारा अचेतन मन दमित आवेगो, भूले हुए अनुभवो, इच्छाओ, आवश्यकताओ, सवेगो एव लालसाओ का भण्डार है जो कि सेन्सर की क्रिया के कारण अभिव्यक्त होने के लिए मार्ग प्राप्त नही कर पाते। फ्रायड ने अधिकाश मनारोगो का कारण अचेतन मन मे बताया है।

अर्द्धचेतन एवं अचेतन मन में अन्तर

अर्द्धचेतन मन की क्रियाए न तो पूर्ण रूप से व्यक्त होती हैं न अव्यक्त, ये सीधे एवं सरलतापूर्वक चेतन मन मे प्रवेश कर जाती हैं। इन पर कोई प्रतिबन्ध काम नही करता, सभी क्रियाए चेतन मन के समान ही होती है। इनको व्यक्ति ज्ञात कर सकता है व इनका सचालन वास्तविकता के नियमानुसार होता है।

जबकि अचेतन मन की क्रियाए पूर्णतया अव्यक्त होती हैं। उन पर प्रतिबन्धक का नियन्त्रण होता है तथा अप्रत्यक्ष रूप से बदले हुए स्वरूप मे चेतन मन मे प्रवेश करती हैं। इनका ज्ञात होना मनोविश्लेषण पर ही निर्भर करता है। फ्रायड के अनुसार अचेतन मन की क्रियाये नीति तथा समाज विरुद्ध एव वासनाजन्य होती हैं। इनका सचालन वासना के नियम के अनुसार होता है।

मन के उपकरण—फ्रायड ने बताया कि मन इदम (इड), अहम् (ईगो) एव विवेक (सुपर ईगो) तीन उपकरणो के माध्यम से काम करता है। इदम अचेतन होता है, जो कि जन्म से व्यक्ति की जैविक एव भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए कार्यरत रहता है। सुपर इगो परिवार, समाज, सस्कृति के प्रभाव से बनता है, जो सही गलत का बोध कराता है। अहम् (इगो) केन्द्रीय ईकाई होती है, जो कि वातावरण के प्रभाव को ध्यान मे रखते हुए कार्य करती है।

८.३.०. चेतना के स्तर एवं चित्त

भगवान महावीर ने कहा "अणेगचित्ते खलु अय पुरिसे"—आयारो। यह पुरुष अनेक चित्त वाला है। हमारे चित्त की वृत्तिया अनेक होती हैं चित्त की अनेक वृत्तियो के कारण चित्त भी अनेक हो जाते हैं।

हमारे व्यक्तित्व के दो प्रकार हैं—

१ स्थूल/बाह्य व्यक्तित्व २. आतरिक/सूक्ष्म व्यक्तित्व

व्यक्तित्व के इन दोनो पक्षो का सचालन चैतन्य के द्वारा होता है। हमारे स्थूल व्यक्तित्व के तीन घटक हैं—शरीर, वाणी और मन। यह व्यक्तित्व प्रवृत्यात्मक है, क्रियात्मक है, चचल है, उसमे शरीर प्रधान है। यह दृश्य है, यह प्रवृत्तियो का सबसे बडा स्रोत है।

प्रवृत्ति का दूसरा स्रोत है—मन। इसके द्वारा चिन्तन, स्मृति एव कल्पना की प्रक्रियायें होती है। शरीर की प्रवृत्तिया निरन्तर जारी रहती हैं। मन की प्रवृत्ति कभी-कभी रुकती है। उमको निरन्तर प्रवृत्त भी कह सकते हैं।

प्रवृत्ति का तीसरा स्रोत है—वाणी। वाणी की प्रवृत्ति निरन्तर नही होती। बोलने पर वाणी की प्रवृत्ति होती है, चिंतन करते हैं तब भी वह होती है, स्वप्न देखते है तब भी वह होती है। इन तीनो अवस्थाओ मे स्वर-यत्र चालू रहता है। वाणी कभी अव्यक्त या आतरिक रूप मे रहती है। कभी व्यक्त या प्रकट रूप मे। अत: वाणी की प्रवृत्ति निरन्तर न रहते हुए भी लम्बे समय तक जारी रहती है।

हमारे बाह्य व्यक्तित्व मे प्रवृत्तिया स्थूल होती हैं। उसका सचालन चैतन्य चेतना के द्वारा होता है। जो चेतना स्थूल व्यक्तित्व का सचालन करती है उसे स्थूल चित्त कहा जाता है।

आचार्यश्री तुलसी ने चित्त की परिभाषा करते हुए लिखा है—

"मनोवाक्काय प्रवर्तक निश्चयात्मक ज्ञान चित्त।"

जैन सिद्धात दिपिका २/२३

मन, वचन और शरीर का सचालन करने वाले निश्चयात्मक ज्ञान को चित्त कहा जाता है।

हमारा दूसरा व्यक्तित्व है आतरिक। यह बाह्य व्यक्तित्व से भिन्न है इसमे प्रवृत्ति स्थूल नही, सूक्ष्म होती है, जो आतरिक व्यक्तित्व का सचालन करने वाली चेतना है उसे अध्यवसाय चित्त या अध्यवसाय कहा जाता है इस अध्यवसाय चित्त मे सस्कारो के प्रकम्पन घटित होते हैं।

आतरिक व्यक्तित्व और बाह्य व्यक्तित्व इन दोनो के बीच एक सेतु है वह वह दोनो को जोडने वाला है। उसे लेश्याचित्त, भावचित्त या लेश्या-

भाव कहा जाता है। इसका कार्य है—आतरिक व्यक्तित्व मे जो भी प्रकपन घटित होते हैं जिस प्रकार के प्रकम्पन होते हैं। सभी प्रकम्पनो को स्थूल शरीर तक पहुचाना।

इस प्रकार एक ही चेतना क्षेत्र भेद और कार्य भेद के कारण तीन भागो मे विभक्त हो जाती है—अध्यवसाय, लेश्या एव चित्त। ये सब एक चेतना के विभाग हैं। इनमे चेतना अलग-अलग नही है।

८.४.०. मनोविज्ञान एवं जीवन विज्ञान के दृष्टिकोण की तुलना

मानसिक व्यग्रता, विक्षेप, परिवर्तनशीलता, चचलता और विविधता की समस्याओ का समाधान मात्र बाह्य व्यक्तित्व या स्थूल व्यक्तित्व से नही हो पाता हैं जितना हम स्थूल स्तर पर जानते है—उनसे इन सभी प्रश्नो का उत्तर नही मिल सकता। इन विभिन्न व्यवहारो की व्याख्या के लिए मनोविज्ञान ने अज्ञात की खोज की। आतरिक जगत् की खोज की। मनोविज्ञान ने Depth Psychology का concept प्रस्तुत किया। जिसमे ज्ञात, दृष्ट, श्रुत जगत् की सीमा को पार कर अचेतन की गहराइयो मे समाधान की खोज प्रारम्भ हुई।

फ्रायड ने कहा था—मनुष्य का मन एक हिम खण्ड (Ice berg) जैसा होता है। हिम खण्ड का बहुत सारा भाग समुद्र मे छिपा होता है। केवल थोडा सा सिरा दिखाई देता है। जितना दिखाई देता है हिम खण्ड उतना ही नही होता। बहुत बडा होता है। दिखने वाला भाग छोटा है और न दिखने वाला बहुत बड़ा। ज्ञात छोटा और अज्ञात बडा।

कार्ल गुस्ताव युग ने मन की तुलना एक महासागर से की है, मन एक महासागर है उसमे ज्ञात मन एक द्वीप जैसा है। अज्ञात मन महासागर जैसा है हम अपने सारे व्यवहार की व्याख्या और आचरण की व्याख्या ज्ञात मन के माध्यम से करना चाहते है। यह कभी सभव नही होगा। सम्पूर्ण व्याख्या के लिए ज्ञात और अज्ञात मन दोनो का समावेश करना होगा। अज्ञात मन के लिए फ्रायड ने डेप्थ साईकोलोजी की व्याख्या की। मनोविज्ञान ने जो अचेतन मन की व्याख्या की वह व्याख्या भारतीय दर्शनो ने कर्मवाद के आधार पर की। अज्ञात मन, अचेतन मन की व्याख्या सूक्ष्म चित्त, अध्यवसाय के आधार पर की। अज्ञात मन, अचेतन मन और सूक्ष्म चित्त को अध्यवसाय कहा जा सकता है और ज्ञात मन को मन कहा जा सकता है।

चित्त और प्रेक्षाध्यान (Psyche and Preksha Meditation)

प्रेक्षाध्यान के सदर्भ मे चित्त और मन का बहुत प्रयोग होता है ध्यान

काल मे सुझाव देते समय बहुत जागरूक रहना होता है कि ध्यान काल मे हम कहा मन का प्रयोग करें और कहा चित्त का प्रयोग करें। जब हम प्रेक्षा-ध्यान मे अन्तंयात्रा का प्रयोग करते हैं तब चित्त को शक्ति केन्द्र से ज्ञान केन्द्र तक तथा ज्ञान केन्द्र से शक्ति केन्द्र तक लाना होता है। इस प्रक्रिया मे चित्त का प्रयोग उपयुक्त लगता है . मन का प्रयोग उचित नही होता। उसका भी कारण है। अन्तंयात्रा के समय केवल चैतन्य का अनुभव करना होता है। नाडी तत्र मे सर्वत्र व्याप्त जो चित्त है या चित्त की रश्मिया है, उसके कारण नाडी तत्र के तन्तु ज्ञान तन्तु बने हुए हैं उन ज्ञान तन्तुओ का अनुभव करना होता है। उन पर ध्यान केन्द्रित करना होता है यह सारा अनुभूति का कार्य चित्त का हो सकता है, मन का नही। इसी प्रकार कायोत्सर्ग की प्रक्रिया मे भी अगूठे से लेकर सिर तक चित्त को ले जाया जाता है मन को नही। प्रेक्षा-ध्यान मे हम सुझाव देते है। चित्त शात रहे। वृत्तिया चित्त मे उभरती हैं मन मे नही। जो चचलता है वह चित्त की है। चित्त मे ही चचलता पैदा होती है। उसी चित्त को शात करना होता है।

चित्त का महत्त्व (Importance of Psyche)

मनोविज्ञान मे अनेक प्रवृत्तियो की व्याख्या अचेतन मन के आधार पर की गई है। व्याख्या का वह भी एक दृष्टिकोण है उससे बाहरी व्यक्तित्व को लाघकर भीतर मे प्रवेश हुआ है। जैन दर्शन की पहुच आरम्भ से ही बहुत आगे रही है। उसके अनुसार हमारे सस्कार आतरिक व्यक्तित्व मे है वह सस्कार चित्त का निर्माण करता है, आहार, भय, मैथुन, लोभ, परिग्रह, मान माया - ये सारी वृत्तिया और सज्ञाए सस्कार चित्त या अध्यवसाय चित्त से आती हैं और इस स्थूल चित्त मे आकर प्रकट होती हैं। फिर स्थूल चित्त की क्रिया का सवहन मन करता है। मन मूल स्रोत नही है। यह क्रिया-तन्त्र है इसलिए जो रूपातरण होता है वह मानसिक स्वर पर कभी नही होता, वह होता है चित्त के स्तर पर। अत व्यक्तित्व रूपातरण, आतरिक आनन्द व समाधि की अनुभूति के लिए चित्त को समझना बहुत आवश्यक है।

मन समाप्त हो जाता है पर चित्त, चेतना समाप्त नही होती। जब मन काम करता है तब चित्त कुछ दब जाता है। जब मन शात होता है, अमन की अवस्था मे आता है तब चित्त अधिक सक्रिय बन जाता है दृष्टि मे परि-वर्तन होना प्रारम्भ हो जाता है। चित्त की चचलता कम हो जाती है। उस स्थिति मे उसकी शक्तिया क्षीण कम होती हैं सचित ज्यादा होती हैं जब

चित्त शक्तिशाली बनता है तब वह स्थिर बन जाता है इस स्थिति मे सस्कार या घटना को वह देखता है पर उससे प्रभावित नही होता। पदार्थ को पदार्थ की दृष्टि से देखता है, यथार्थ को यथार्थ की दृष्टि से देखता है। वह न प्रियता मे उलझता है न अप्रियता के भाव मे। वह सत्य को सत्य की दृष्टि से देखता है यह है चैतन्य की प्रतिष्ठा। चित्त की स्थिरता। जब हमारा चैतन्य प्रतिष्ठित नही होता तब तक समाधि की घटना घटित नही होती और जब चैतन्त स्वरूप मे प्रतिष्ठित हो जाता है तब सहज समाधि का, सहज आनन्द का अनुभव होने लग जाता है परिवर्तन की, रूपातरण की शक्ति जाग जाती है।

८.५.१ समाधि का महत्त्व (Importance of Samadhi)

प्रश्न है कि जीवन मे समाधि का क्या महत्त्व है ? समाधि की खोज क्यो की गई ? समस्या है इसलिए समाधि की खोज भी जरूरी है यदि कोई समस्या नही होती तो समाधि के खोज की भी आवश्यकता नही रहती। समस्या को समाहित करने के लिए समाधि की खोज जरूरी है। समाधि की साधना जरूरी है।

इस युग मे शारीरिक समस्याओ का बहुत समाधान हुआ किन्तु मानसिक समस्याओ का समाधान बहुत ही कम हुआ। इनको सुलझाने का जितना प्रयास किया गया ये समस्यायें उतनी ही उलझती गई और आज ऐसा लग रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति मानसिक समस्याओ से ग्रसित है इसलिए समाधि की बहुत आवश्यकता है। अतीत मे समाधि की उतनी आवश्यकता नही थी जितनी कि आज है क्योकि आज बीमारिया बढ गई हैं और पागल-पन का प्रतिशत भी बढ गया है।

आज के जीवन मे जितना मानसिक तनाव और दबाव है उतना अतीत में नही था। इतिहास इसका साक्षी है। आज तनावो के कारणो की सख्या भी बढ गई है इन कारणो मे मुख्य कारण है – भय। भय का इतना बड़ा तनाव है कि जिसके कारण सारी व्यवस्था गड़बडा जाती है इसके कारण नाड़ी संस्थान, तन्त्रिका तन्त्र और समूचा शरीर तन्त्र अव्यवस्थित हो जाता है। शरीर के रसायन और विद्युत प्रवाह बदल जाते हैं ऐसे भयाकित व्यक्ति सुख से, चैन से कैसे जी सकते हैं। सुखी जीवन का एकमात्र उपाय है समाधि। निर्भय हुए बिना समस्या मुक्त जीवन नही जिया जा सकता।

आज प्रत्येक व्यक्ति के लिए समाधि, ध्यान जरूरी है। योगी बनना जरूरी है। जो गृहस्थ योगी नही बनेगा, ध्यान और योग का अभ्यास नही करेगा वह पूरा जीवन नही जी सकेगा उसे अकाल मृत्यु का सामना करना

पड़ेगा। ८० वर्ष जीने वाला ५० वर्ष मे काल कवलित हो जायेगा। आज समाधि की आवश्यकता सबके लिए है। इसके लिए हमे सबसे पहले इन्द्रिय की और मन की समस्या पर ध्यान देना होगा। इन्द्रिय और मन की समस्या को सुलझाने मे सक्षम है व्यक्ति की समाधि।

दर्शन (देखना) और ज्ञान (जानना) आत्मा का, चैतन्य का सहज स्वरूप है। इसलिए समाधि का उद्देश्य है दर्शन और ज्ञान की क्षमता को बढाकर, चित शुद्धि के उपायो को आलम्बन बनाकर, अपने स्वरूप को पहचानना, सूक्ष्म जगत् की यात्रा करना। अपनी आत्मा को उपलब्ध होना ही समाधि है। चैतन्य, आनन्द और शक्ति की आराधना किये बिना व्यक्ति समाधि मे नही जी सकता। समाधि की प्राप्ति के लिए इनकी आराधना आवश्यक है। यह सब सहज समाधि की अवस्था है। समाधि का तात्पर्य यह नही कि सभी व्यक्ति गृह त्याग कर योगी बन जायें या अरण्यवासी हो जाए। घर मे रहते हुए गृहस्थ का जीवन जीते हुए भी ध्यान, योग और समाधि की अवस्था मे जीए। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मे सहज समाधि घटित हो अत. समाधि का उद्देश्य है हर क्षण आत्म स्वभाव मे रमण करना।

समाधि का प्रयोजन (Purpose of Samadhı)

समस्या निवारण के लिए, सुखी एव निर्भीक जीवन जीने के लिए, पूर्णता का जीवन जीने के लिए, इन्द्रियो और मन की समस्याओ के समाधान के लिए समाधि का अभ्यास आवश्यक है। इन्द्रिय और मन की परिधि मे जीने वाले लोग अनेक प्रकार की समस्याओ से गुजरते है। इन समस्याओ को सुलझाना किसी व्यक्ति या सरकार के वश की बात नही है। रोटी, कपडा और मकान की समस्या को तो सरकार सुलझा सकती है किंतु इद्रिय और मन की समस्या को कोई समाहित नही कर सकता। इन समस्याओ से समाहित होने का एकमात्र साधन है व्यक्ति की अपनी समाधि। समस्या का अर्थ है आश्रव और समाधि का अर्थ है सवर। आश्रव अर्थात् आसक्ति, मूर्च्छा आदि और समाधि अर्थात् चैतन्य का अनुभव। इस प्रकार की सारी समस्याओ का एकमात्र उपाय है— समाधि।

८.५.२. समाधि का स्वरूप

पातंजल योग दर्शन मे समाधि—महर्षि पातजली ने पातजल योग दर्शन मे समाधि का अर्थ किया है चित की एकाग्रता और उसका निरोध। अष्टाग योग मे धारणा, ध्यान और समाधि इन तीनो का

प्रतिपादन किया गया है। धारणा चित्त की एकाग्रता का अभ्यास है। धारणा से बारह गुणा एकाग्रता ध्यान है। ध्यान से बारह गुणा एकाग्रता समाधि है।

बौद्ध दर्शन में समाधि—बौद्ध साधना पद्धति मे समाधि का अर्थ है चित्त और चैतसिक का दृढ स्थिरीकरण। मन ध्यान वस्तु मे स्थिर हो जाता है क्योकि मन के साथ रहने वाले मानसिक तथ्य (चैतसिक) पवित्र होते हैं और वे मन को स्थिर होने मे सहयोग देते हैं। दृढ स्थिरीकरण का अर्थ है—मन का किसी एक वस्तु मे स्थिर हो जाना। इसमे किसी और बाधाओ और दोषो का समावेश नही होता। बौद्ध दर्शन मे समाधि की अवस्था मे चित्त कुशल कर्मों की ओर एकाग्र हो जाता है और एकाग्र होने से तृष्णा और वासना नष्ट हो जाती है। बौद्ध दर्शन मे दो प्रकार की समाधि का वर्णन किया है—उपचार समाधि और अर्पणा समाधि। उपचार समाधि मे चित्त एकाग्र होता है और अर्पणा समाधि मे चित्त को अत्यधिक शुद्ध बनाने की प्रक्रिया है। विशुद्धिमग्ग मे समाधान को ही समाधि माना है। समाधान अर्थात् एक आलम्बन मे चित्त और चित्त वृत्तियो का समान और सम्यक् आराधन करना ही समाधान है।[1]

जैन दर्शन मे समाधि—जैन दर्शन मे समाधि का अर्थ है—शुद्ध चैतन्य का अनुभव, चित्त का समाधान या चित्त का सतुलन। जैनो के अनेकार्थनिघण्टु में चित्त के समाधान को ही समाधि माना है। प आशाधर ने जिनसहस्रनाम की स्व सज्ञा वृति मे कहा है—केवलज्ञान है लक्षण जिसका ऐसे शुक्ल ध्यान रूप समाधि से जो सुशोभित है उसे समाधिराट् कहा है। ध्येय मात्र का आभास होना ही समाधि है। जैन दर्शन मे समाधि के लिए शुद्धोपयोग शब्द का प्रयोग हुआ है। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा कि वच्चनोच्चारण की क्रिया को त्याग कर वीतराग भाव से आत्मा का ध्यान करना ही समाधि है। भट्ट अलककदेव ने ध्यान और समाधि को योग का चरम लक्ष्य माना है। योग का अन्तिम अग समाधि है। समाधि की व्युत्पत्ति की गई है—"सम्यगाधीयते एकाग्रीक्रियते विक्षेपान् परिहृत्य मनोयत्र स समाधि" अर्थात् अच्छी तरह से विक्षेपो को हटाकर चित्त का एकाग्र होना समाधि है। समाधि शब्द "सम+अधि" से बना है। सम का अर्थ है एक रूप करना। अत: समाधि का अर्थ हुआ मन को उत्तम परिणामो मे या शुद्धोपयोग मे एकाग्र करना। समाधि की अवस्था मे ध्याता

१. अर्चनार्चन स्मृति ग्रथ पृ. स. ७ से खड ५, "मनोनुशासनम्" पृ० ९५

ध्यान और ध्येय का भेद मिट जाता है। समाधि मे आन्तरिक और बाह्य समस्त प्रकार के विकल्पो एव जल्पो का क्षय हो जाता है और एक मात्र शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा का बोध होता है।

८.६.० समाधि की अवस्था (State of Samadhı)

समाधि अवस्था मे केवल चैतन्य का अनुभव होता है। जब केवल चैतन्य का अनुभव होता है तो भीतर का सारा समुद्र शात हो जाता है। उसमे कोई तरग नही उठती है। अन्दर के सारे सकल्प विकल्प समाप्त हो जाते है। केवल चेतना का समुद्र निस्तरग और शान्त अवस्थित रहता है। यह है पूर्ण समाधि की अवस्था।

असमाधि एव समाधि की अवस्था
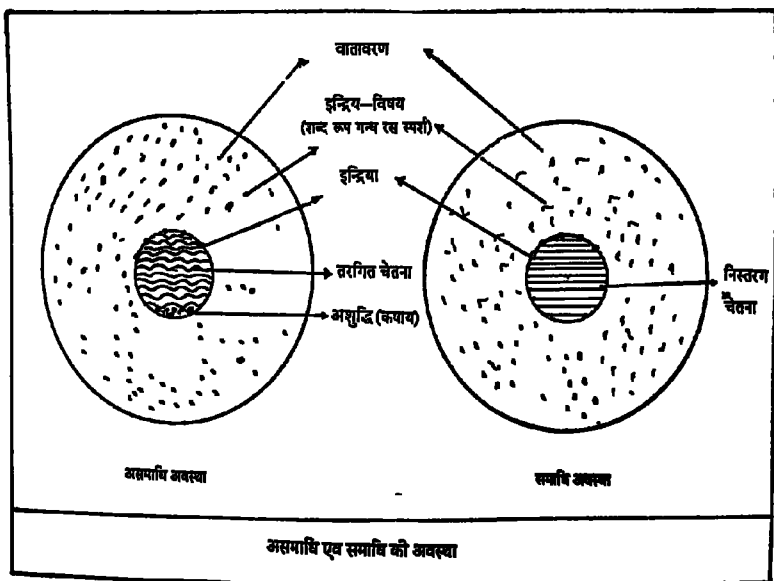
समाधि और ध्यान (Samadhı and Meditatıon)—वैसे देखा जाए तो ध्यान और समाधि दोनो एक ही है। किन्तु फिर भी इनमे सूक्ष्म अन्तर की ज्योति प्रज्ज्वलित होती है और समाधि से हमारे भीतर एक चैतन्य का प्रकाश फूटता है और वह प्रकाश ऐसा है जिसकी झलक बाहर के जगत् मे कभी उपलब्ध नही होती। ध्यान और समाधि मे कोई अन्तर नही होता। समाधि के साथ ध्यान स्वय आ जाता है और ध्यान मे समाधि स्वय आ जाती है। भीतर मे जागने का जितना प्रयत्न है वह सारा का सारा प्रयत्न समाधि का है। जब-जब आदमी भीतर मे जागता है, चैतन्य का अनुभव करता है और जिस बिन्दु से जागना शुरू करता है उस बिन्दु से लेकर चरम बिन्दु तक पहुचता है वह सारा का मारा समाधि है।

भीतर मे जागना ध्यान और भीतर मे जागना समाधि। इस दृष्टि से तो दोनो मे कोई अन्तर नही है तो फिर सहज ही प्रश्न उठता है कि ध्यान और समाधि मे भेद क्यो ? ध्यान समनस्कता की स्थिति है। ध्यान मे मनुष्य समनस्क और सेन्द्रिय रहता है। ध्यान मे मनुष्य अमन नही होता। अमनस्कता नही आती और इन्द्रिया भी बिलकुल निष्क्रिय नही होती/बनती। समाधि की अवस्था मे मनुष्य अमनस्क और अनिन्द्रिय बन जाता है। यदि हम समाधि के द्वारा अनिन्द्रिय और अमनस्क बन जाये तो फिर हमारा मन समाप्त हो जाएगा और इन्द्रियो का हमारे लिए कोई उपयोग नही रहेगा। इसलिए जैनाचार्यो ने समाधि की अवस्था को न तो सन्द्रिय कहा और न ही अनिन्द्रिय कहा उसे "नोइन्द्रिय नोअनिन्द्रिय" कहा है। वहा इन्द्रिय की चेतना और मन की चेतना समाप्त हो जाती है। अतः उसे "नो समनस्क नो अमनस्क" कहा है। समाधि की अवस्था मन अमन से रहित तीसरी अवस्था है।

महर्षि पातजलि ने समाधि की अवस्था के लिए अर्थमात्र निर्भास, शब्द का प्रयोग किया है जहा ध्येय छुट जाता है केवल ध्येय का निर्भास मात्र रह जाता है। वह समाधि की अवस्था है। गोरक्ष पद्धति मे बहुत स्पष्ट भेद रेखा खीची गई है कि जब तक शब्द सुनाई देता है, इन्द्रियो के विषय आते रहते हैं, सकल्प-विकल्प आते रहते हैं, सूक्ष्म हो जाते हैं फिर भी आते रहते हैं वह ध्यान की अवस्था है। जब सारे शब्द समाप्त हो जाते हैं। न बाहर का शब्द न भीतर का शब्द काम करता है, वह समाधि की अवस्था है। समाधि की अवस्था मे चेतना सर्वथा निरालम्बन और विषय शून्य हो जाती है। इस अवस्था मे आत्मानुभव, स्वानुभव, चैतन्य का अनुभव और आत्म-साक्षात्कार या परमात्मा का साक्षात्कार होने लगता है। ध्यान और समाधि मे यही अन्तर है।

ध्यान और नींद (Meditation and Sleep)

नीद का मतलब है सो जाना, चेतना का लुप्त हो जाना, बाहर की चेतना का समाप्त होना और भीतर की चेतना का भी नही जागना। यह नीद की स्थिति है। समाधि या ध्यान का मतलब है कि बाहर की चेतना का सुप्त हो जाना किन्तु भीतर की चेतना का बहुत तीव्रता मे जाग जाना। वैज्ञानिको ने ध्यान और नीद का तुलनात्मक अध्ययन किया और बहुत बडी खोज की इस विषय मे। ध्यान करने वाले व्यक्ति के तीन मिनट के ध्यान मे ऑक्सीजन की खपत मे १६%की कमी हो जाती है। जबकि ५ घटा की गहरी नीद आदमी लेता है उसमे मात्र ८%ऑक्सीजन की ही खपत कम होती है। कितना बडा अन्तर है

दोनो मे तीन मिनट मे १६%की कमी और ५-घटे की नीद मे ८%की कमी। ध्यान मे त्वचा की अवरोध शक्ति वढ जाती है। हमारी त्वचा मे इतनी अवरोधक क्षमता है कि वह बाहर की विद्युत की तरगो को नही पकडती।

नीद की अवस्था मे त्वचा की अवरोधक क्षमता तो बढती है किन्तु वहुत कम मात्रा मे। ध्यान की तुलना मे बहुत नगण्य बढती है। ध्यान की स्थिति मे मस्तिष्क मे अल्फा तरगे (Alfa waves) जाग जाती है। इससे हमे सुख और शाति का अनुभव होता है। नीद मे Alfa waves नही जागती है। यदि नीद शुरू होती है तो जो Alfa waves होती है वे भी समाप्त हो जाती हैं। तब Beta, thita waves जागनी शुरू हो जाती है। किन्तु जब गाढ नीद वनती है तो उसमे अल्फा तरगे भी कुछ जागती हैं। इसलिए नीद मे भी आदमी सुख का अनुभव करता है। किन्तु ध्यान की तुलना मे A W. बहुत कम जागती है। इसलिए हम ध्यान और नीद, समाधि और नीद को एक तराजु पर नही तोल सकते। दोनो मे वहुत बडा अन्तर है। आधा घटे का ध्यान जो पुरे दिन ताजगी और आनद देता है वही २-४ घटे की नीद का प्रभाव वहुत थोडे समय तक रहता है। ध्यान का प्रभाव स्थायी है नीद का प्रभाव तात्कालिक होता है : समाधि और नीद को भी एक कोटि मे नही रखा जा सकता। नीद मे मस्तिष्क के सवेदन निष्क्रिय बन जाते है किन्तु भीतर की सारी क्रिया चालु रहती है। ध्यान मे हमारे शरीर की जैविक क्रिया वहुत मन्द हो जाती है। शक्ति का व्यय रुक जाता है। ध्यान हमारी आन्तरिक जागरूकता है और एक अलौकिक जगत का साक्षात्कार होने लगता है ध्यान और नीद मे यही मौलिक अन्तर है।

८.६.१. समाधि के विघ्न (Disturbances in Samadhi)

असमाधि के निमित्त/सहायक कारक— इन्द्रिय विषय (शब्द, रूप, गन्ध, रस एव स्पर्श)

असमाधि की अवस्थाये - समाधि की बाधक आधि, व्याधि, उपाधि

असमाधि का कारक तत्व -- इन्द्रिय और मन की चचलता

असमाधि का वीज —कषाय, प्रियता-अप्रियता

असमाधि का बीज

चित्त की असमाधि का मूल हेतु है कषाय। यह कषाय परिग्रह, प्रियता-अप्रियता, आसक्ति आदि रूपो मे अभिव्यक्त होता है। मनुष्य जितना परिग्रही होता है उतना ही अभिमानी होता है। परिग्रह का अर्थ है—मूर्च्छा, आसक्ति। यह असमाधि का वीज है इससे स्थूल शरीर मे चचलता बढ़ती है। यह चित्त की चचलता पुन असमाधि का कारण वनती है। यह एक

विषाक्त चक्र बन जाता है। इससे प्रतिक्रिया और दु ख बढता चला जाता है। असमाधि बढती जाती है।

समाधि के विघ्न
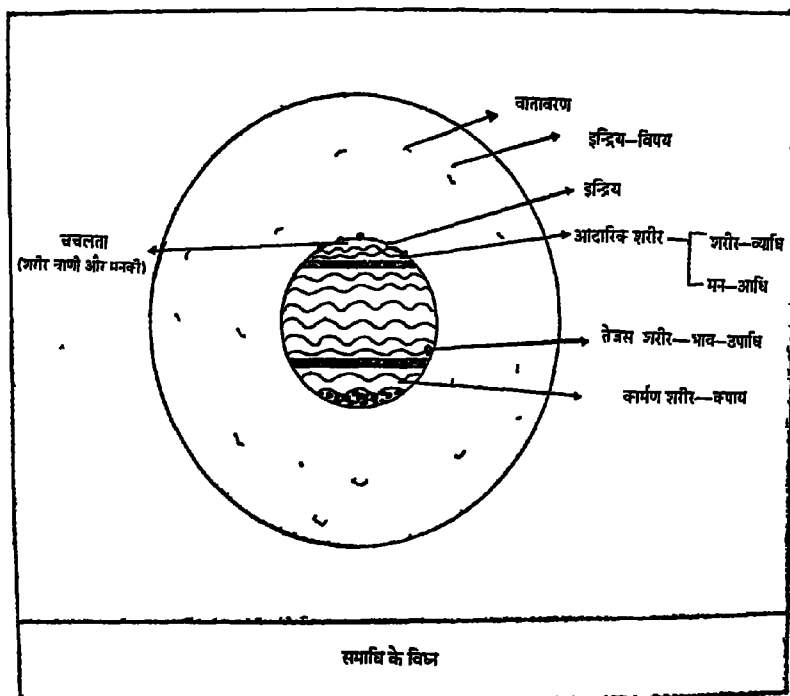
हम समाधि मे जाना चाहते हैं और परमानन्द को प्राप्त करने के लिए ध्यान करते हैं। यह समाधि की यात्रा है इस समाधि मे तीन बडे विघ्न आते हैं। तीन असमाधि की अवस्थाओ से सामना करना होता है—व्याधि, आधि और उपाधि।

व्याधि का अर्थ है—शारीरिक बीमारी। शारीरिक बीमारियो को मिटाये बिना हम समाधि तक नही पहुंच सकते। जब साधक ध्यान मे बैठता है। शारीरिक बीमारिया उग्र होने लगती है और ध्यान मे मन नही लगता है। व्याधिया सताती है तो समाधि प्राप्त नही होती। समाधि तक पहुचने के लिए व्याधि पर नियत्रण पाना जरुरी है।

आधि

यह मानसिक अस्वास्थ्य है। हम मन की उपेक्षा करते हैं किन्तु सबसे ध्यान देने योग्य वस्तु है मन प्राय. सभी व्यक्ति मन की बीमारी से ग्रस्त रहते हैं। व्यक्ति प्रिय-अप्रिय और सुख-दु ख तथा सयोग-वियोग इन सब आधियो से ग्रस्त रहता है। यह भी समाधि को प्राप्त करने मे बहुत बडा विघ्न है।

उपाधि

यह समाधि के यात्रा पथ का तीसरा अवरोधक तत्व है। यह सबसे खतरनाक है। यह हमारी चेतना का सबसे भीतरी अस्तित्व है। यह सूक्ष्म शरीर से सबधित है। इसमें व्यक्ति भावनात्मक बीमारी से ग्रस्त रहता है। यह भी समाधि का बहुत बडा विघ्न है।

अध्यात्म की भाषा मे समाधि के दो विघ्न है—कषाय और चचलता। जब व्यक्ति के भीतर कषाय की तीव्रता होगी तो वह समाधि तक पहुच नही सकता और जब इन्द्रिय तथा विषयो के प्रति चचलता होगी तो भी वह समाधि तक नही पहुच सकता। ये दोनो बहुत बडे विघ्न हैं। उससे चैतन्य, शक्ति, और आनन्द पर अवरोध आता है। इन तीनो को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति समाधि को स्वीकार करता है। इससे हमारा चैतन्य अनावृत बनता है। आनन्द निर्बाध बनता है और शक्ति अप्रतिहत होती है।

समाधि के विघ्न, कार्यशैली और परिणाम

चित्त को अशुद्ध बनाने वाला मूल तत्व है—कषाय। उसी के भेद-प्रभेद अनेक बन जाते है।—राग, द्वेष क्रोध, मान, माया, लोभ आदि। ये असमाधि के मूल आन्तरिक तत्व हैं।

समाधि का मूल तत्व -- कषाय मुक्ति। कषाय-मुक्ति से वीतरागता की प्राप्ति होती है। वीतरागता से चित-चेतना मे उपस्थित हो जाता है। यही समाधि का स्वरूप है। जब तक साधक कषायमुक्त होने का लक्ष्य नही बनाता है तब तक जन्म-मरण व दु.ख की परम्परा से मुक्त नही हो सकता। प्रेक्षा-ध्यान का केन्द्रीय तत्व है—कषाय मुक्ति।

चैतन्य के तीन तत्व हैं—ज्ञान, आनन्द और शक्ति। कषाय तरगें चैतन्य को धारणाओ से ग्रसित करती है, चयनात्मक बनाती है। यह ज्ञानात्मक स्वरूप को सकुचित कर देती है। इससे ज्ञान की क्षमता सीमित हो जाती है। चेतना का ज्ञानात्मक स्वरूप आवृत हो जाता है। चैतन्य की वस्तु के प्रति जागरूकता होने पर उसका ज्ञान होता है। वस्तु के साथ प्रियता-अप्रियता या राग-द्वेष का भाव जुडता है तो चेतना उसी के प्रति प्रतिबद्ध एव सीमित हो जाती है उसकी मानसिक प्रक्रियाए भी उसी मे लग जाती हैं। चेतना वस्तु के अन्य पहलु से अपरिचित ही रह जाती है उस वस्तु का यथार्थ ज्ञान नही होता। अयथार्थ ज्ञान से दु ख चक्र प्रारम्भ हो जाता है।
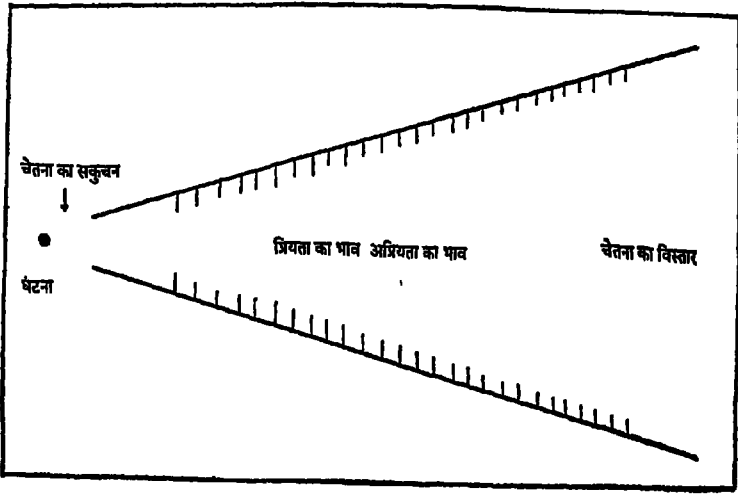
चेतना का सकुचन एव विस्तार

कषाय चैतन्य के दूसरे तत्त्व आनन्द को भी प्रभावित करते हैं। कार्मण शरीर से कषाय की तरगे आगे बढने पर चैतन्य को प्रतप्त करती है। उसमे आकाक्षा, वासना, अह व क्रोध को पैदा करती है, सहज आनन्द की स्थिति अवरूद्ध हो जाती है। प्रियता-अप्रियता का द्वन्द्व, सघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। दु ख और सुख का द्वन्द्व प्रारम्भ हो जाता है। चित्त मूढ़ बन जाता है। चित्त, औदारिक शरीर का सचालक, मालिक बन जाता है। अशुद्ध बन जाता है, अपने स्वरूप के प्रति जागरूकता कम हो जाती है, जागरूकता के कम होने पर चेतना कषाय से प्रभावित हो जाती है। यह द्वद्व या कुचक्र चलता रहता है। चेतना मे उपाधि की अवस्था सघन हो जाती है।

चैतन्य का तीसरा तत्त्व है—शक्ति। वह भी कषाय से प्रतिहत होती है शक्ति क्षीण होती है। कषाय की तरगें कार्मण शरीर से चलकर तैजस शरीर मे प्रवेश करती है, तैजस शरीर मे लेश्या की विशुद्धता को कम करती है। तैजस शरीर को क्षीण करती है। कषाय की तरगें औदारिक शरीर मे प्रविष्ट होने पर क्रिया तत्र को प्रभावित करती है। शरीर, मन व वाणी की चचलता बढती है। जितनी अधिक चचलता, उतना ही अधिक मानसिक तनाव बढ़ता है, आधिया बढ़ती है। जितना अधिक तनाव, उतनी ही शक्ति का अपव्यय होता है, थकान आती है। रुग्णता, व्याधिया बढती है।

वस्तु के स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण कषाय को उभारने मे निमित्त बनते है। क्रिया तत्र की चचलता कषाय को पोषण देती रहती है। चैतन्य

की शक्ति, आनन्द और ज्ञान को प्रतिहत, मूर्च्छित तथा सीमित करने का मूल उपादान कषाय ही है। कषाय के हटते ही आनन्द अबाधित, ज्ञान अनावृत और शक्ति अप्रतिहत हो जाती है। चैतन्य की सपूर्ण सत्ता अभिव्यक्त हो जाती है। व्यक्ति अपने स्वरूप मे अवस्थित हो जाता है। अपने स्वरूप मे अवस्थित होना ही समाधि है।

८.६.२ समाधि की प्रक्रिया (Process of Samadhi)

समाधि है अप्रयत्न

समाधि का अभ्यास एक प्रयत्न नही है। यह शरीर बहुत-सी क्रियाए करने का प्रयत्न करता है और प्रयत्न करते-करते तनाव से भर जाता है। इन प्रयत्नो से जागरूकता कम होती है, मूर्च्छा बढती है और व्यक्ति की आखे बन्द हो जाती है। आखे बद होती है इसलिए व्यक्ति जी रहा है जिस दिन आख खुल जाएगी, रोशनी आ जाएगी उस दिन सारा लगाव एक झटके मे ही टूट जाएगा। यदि हमारी सही आख खुलती है तो हम एक सुन्दर ससार का निर्माण कर सकेंगे। हम प्रयत्नो को छोडने का प्रयत्न करें ताकि मन, वाणी और शरीर को शान्त कर सके।

समाधि का अर्थ है भीतर मे जागना। जो व्यक्ति भीतर से जागृत होना प्रारम्भ कर देता है वह समाधि को प्राप्त हो जाता है। असमाधि का अर्थ है—बाहर मे जागना। समाधि का अर्थ है—भीतर से परिचित होना, अपने आप मे परिचित होना। जब व्यक्ति स्वय से परिचित हो जाता है तो उसके लिए बाहर जीना कठिन हो जाता है। वह बाहर जीता है तो भी वह तटस्थता के साथ जीता है। इस प्रकार व्यक्ति समाधि की अवस्था मे पहुच जाता है।

समाधि की साधना

जब हम समाधि की साधना करते है तो केवल जानते हैं, देखते है प्रियता-अप्रियता के सवेदन से मुक्त होते है। अपने शक्ति के प्रयोग की स्वतन्त्रता से दूसरो को बाधा नही पहुचाते, दूसरो के हित मे विघ्न नही डालते ऐसा करना ही समाधि की साधना है।

इससे हमे भेद-विज्ञान की अनुभूति होने लगती है। आने वाली हर कठिनाई को हसते-हसते झेल लेते हैं। लाभ-अलाभ, दु ख-सुख आदि द्वन्द्वो मे

सम रहते हुए राग-द्वेष के विकल्प से शान्त हो जाते है, चित्त समाहित हो जाता है, अपने स्वरूप का बोध होने लगता है। केवल चैतन्यमय ज्ञान और आनन्दमय सत्ता की ही अनुभूति होती है। केवल ज्ञान और केवल दर्शन की साधना का विकास होता है। इस प्रकार समाधि की साधना समग्र जीवन की साधना है।

प्रक्रिया

आत्मा का स्वभाव केवल चेतना अर्थात् देखना ही नही है। आत्मा के तीन तत्त्व है— चेतना, शक्ति और आनन्द। हम चेतना का उपयोग करे, देखे और जाने। हम आत्मा के दूसरे तत्त्व शक्ति का उपयोग करे और परिवर्तनो को घटित करें, स्वभाव को बदले, आदतें, दुःख देने वाले तत्त्व और प्रतिक्रियाओ को बदले। इस शक्ति के अनेक आयाम है, हम सकल्प, कल्पना, इच्छा और एकाग्रता की शक्ति का उपयोग करे तब आनन्द का अनुभव होता है।

त्याग नियत्रण का एक अश है। नियन्त्रण की प्रक्रिया तब होगी जब चेतना और शक्ति को जगाने तथा आनन्द को प्राप्त करने की प्रक्रिया साथ-साथ चलेगी।

समाधि की साधना के तीन बिन्दु हैं—प्रतिसलीनता, समता और शोधन। भगवान् महावीर की भाषा मे जो प्रतिसलीनता है वही महर्षि पतजली की भाषा मे प्रत्याहार है। प्रत्याहार का अर्थ है निरोध, अपने आप मे गुप्त रहना। यदि समस्या का समाधान करना है, समाधि को प्राप्त होना है तो सबसे पहले इन्द्रियो के सवेदन को बद करें। बाहर से जो कुछ आ रहा है। सब बन्द, यह समाधि का पहला बिन्दु है। इससे बुरे के साथ अच्छे का भी निषेध हो जाएगा, इस प्रश्न को समाहित करने के लिए समाधि का दूसरा बिन्दु खोजा गया।

समाधि का दूसरा बिंदु है—समता। जो आता है, उसे आने दो। शब्द, रूप, रस और गध जो भी आए, इन्द्रिया जो कुछ भी ग्रहण करे, उसे आने दो। भीतर प्रवेश करने दो। मन मे जो भी विचार उठें, उन्हे रोको मत, उठने दो। बस, एक ऐसी चेतना जागृत करो कि वह जो कुछ आए उसका सवेदन न करे, केवल देखे, जाने, किन्तु उसके साथ प्रियता, अप्रियता को न जोड़े। चेतना को इतना समतामय बना ले कि अच्छा आए तो भी स्वागत है और बुरा आए तो भी स्वागत है। कोई भी आए, उसका स्वागत

है। किन्तु उससे कोई प्रयोजन नही। आने वाला आए और चला जाए, यह है समता। यह है समाधि का दूसरा बिंदु। (पृ० १००)

समाधि की प्रक्रिया
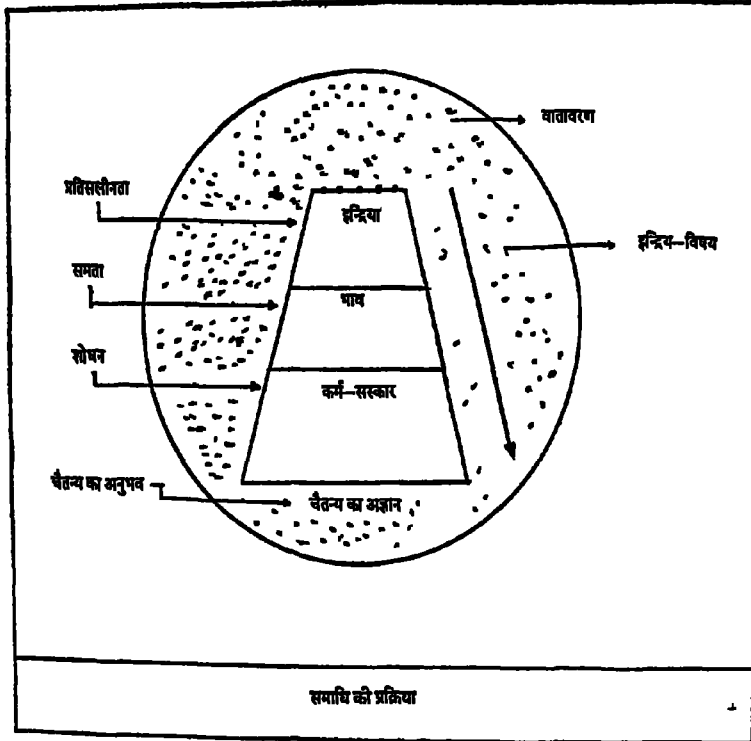
दो बाते हो गई। पहली बात है बाहर से कुछ लिया नही और दूसरी वात है कि बाहर से जो आया उसके साथ प्रियता-अप्रियता का सबध नही जोडा। परन्तु इन दोनो से भी समस्या का पूरा समाधान नही हुआ।

जब बाहर से कोई नही आ रहा है तो भीतर वाले को जागने का मौका मिल जाता है। जब चेतन मन जागता है तब भीतर का तत्र सोया रहता है। जब हम इस चेतन मन को सुला देते हैं तब भीतरी मन जाग जाता है। जब बाहरी मन जागता रहता है तब भीतर का भडार भरता जाता है और एक दिन ऐसा आ सकता है कि एक भीषण विस्फोट होता है और आदमी उसे झेल नही पाता। जब चेतन मन जागृत रहता है तब हमे समस्याओ का अनुभव ही नही होता। वास्तव मे जब हम ध्यान साधना के द्वारा चेतन मन को सुला देते हैं तब हमे ज्ञात होता है कि भीतर क्या-क्या है। जब तक सफाई का प्रयत्न नही किया जाता, तब तक कुछ भी पता नही लगता।

केवल आख बंद कर लेने मात्र से, केवल प्रतिसलीनता का अभ्यास कर लेने मात्र से या प्रियता-अप्रियता की भावना को साध लेने से समस्या का समाधान नही होता। समस्या का समाधान तब होता है जब भीतर मे रहे हुए शब्द, रूप, गध, रस और स्पर्श के भडार को रिक्त करना जान ले। चित्त को शुद्ध करना जान ले। यह निर्जरा की प्रक्रिया है। इससे भडार खाली हो जाता है। चित्त शुद्ध हो जाता है। समाधि का तीसरा बिन्दु है—चित्त का शोधन।

समाधि का अन्तिम बिन्दु है—केवल चैतन्य का अनुभव। जब केवल चैतन्य का अनुभव होने लगता है तब भीतर के सारे शब्द, रूप आदि बन्द हो जाते है। यह है समाधि की अवस्था।

८.७ ० समाधि एव चित्त शुद्धि

चित्त के द्वारा वस्तु के स्वभाव को जान लेने के पश्चात् जब उसके साथ हमारी रागात्मक और द्वेषात्मक धारा जुडती है, अहकार और ममकार की भावना जुडती है, प्रियता और अप्रियता का सवेदन जुड़ता है तब चित्त निर्मल, शुद्ध नही रहता, ज्ञान, ध्यान नही रहता, वह विचार और विकल्प-ध्यान नही रहता और कुछ बन जाता है। यदि वह ध्यान बना रहता है तो उसकी सज्ञा होगी—आर्त्त ध्यान, रौद्र ध्यान। चेतना को उज्ज्वल बनाने वाला, चेतना की उपाधि मुक्त करने वाला ध्यान नही रहता। चित्त शुद्धि का तात्पर्य है कि जिसके साथ किसी भी प्रकार का प्रदूषण नही है, जिसके साथ न राग है, न द्वेष है, न ममकार है, न अहकार है और न प्रियता-अप्रियता का सवेदन है।

समाधि तक पहुचने का केन्द्रीय तत्त्व है—चित्त शुद्धि। जिसके बिना समाधि सभव नही। समाधान, सतुलन या समता सभव नही। समाधि को केवल शारीरिक स्थिरता तक सीमित करने का तात्पर्य होगा कि समाधि की व्यापकता को सीमित एव कुण्ठित करना। समाहित चित्त, निर्मल चित्त ही समाधि का वास्तविक स्वरूप है। जिसका हृदय है चित्त शुद्धि।

असमाधि, मानसिक अशाति और तनाव को मिटाने का एक मात्र उपाय है चित्त को शुद्ध करना अर्थात् प्रियता की अनुभूति को समाप्त करना या कम करना। एक दिन मे वह कम नही हो सकती। धीरे-धीरे इसको कम करना होता है। प्रियता के सवेदनो को कम करने से शेष सारे सवेदन कम होने लगेंगे।

असमाधि का मूल कारण है—प्रियता-अप्रियता का सवेदन। सवेदन जितना तीव्र होता है असमाधि भी उतनी ही तीव्र होती है। समाधि की प्राप्ति के लिए इस सवेदन को कम करे। प्रियता-अप्रियता तब कम होती है

जब आदमी को भीतर की झलक मिल जाती है। आतरिक अनुभव जाग जाता है। अनुभव चेतना जाग जाती है।

प्रियता और अप्रियता के सवेदन पर नियन्त्रण पाना—यह असमाधि की सघनता को मिटाने का पहला प्रयत्न है। प्रियता और अप्रियता को सर्वथा छोड देना असभव कार्य है। क्योकि इतना दीर्घकालीन सस्कार जिसे शरीर और मन प्रभावित करते है, इन्द्रिया प्रभावित करती हैं, उस चक्र को सहसा कैसे तोडा जा सकता है? उसे तोड देना सभव नही लगता। किन्तु कभी कोई ऐसी घटना घटित होती है, अनुभव जागता है और वह बात फलित हो जाती है। हम ध्यान, कायोत्सर्ग और शरीर प्रेक्षा का अभ्यास इसलिए करते हैं कि कोई ऐसी घटना घटित हो जाए, जिससे शरीर से भिन्न अपने चैतन्य का बोध हो जाये। उसकी झलक मिल जाए, अनुभव चेतना जाग जाए।

अनुभव की चेतना समाधि का पहला चरण है। यहा पहुचने पर प्रियता-अप्रियता का सवेदन समाप्त हो जाता है या कम हो जाता है। उस स्थिति मे जीवन के सारे व्यवहार, कर्म और प्रवृत्तिया प्रतिक्रिया शून्य हो जाते हैं। काम चलता है, पर प्रतिक्रिया नही होती है।

८.७.१. चित्त शुद्धि

ध्यान-साधना बहुत ही आकर्षण का विषय बन रहा है। इसके साथ अनेक भ्रातिया भी चल रही हैं। कुछ लोग चमत्कारिक शक्तियो के लिए इसका उपयोग करते है। कुछ साधक अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्ति के लिए इसका प्रयोग करते हैं। कुछ व्यक्ति इसे मात्र शारीरिक और मानसिक तनावो से मुक्ति तक सीमित कर देते है। कुछ साधक मात्र आनन्द का साधन मानकर विराम ले लेते है। प्रश्न यह है कि ध्यान साधना का वास्तविक उद्देश्य या प्रयोजन क्या है? एव उसके आनुसगिक परिणाम क्या हैं?

ध्यान साधना का वास्तविक प्रयोजन है सत्य कि खोज एव दुःख मुक्ति। आनुसगिक रूप मे जीवन के सभी स्तर प्रभावित होते है। लाभान्वित भी होते हैं। मुख्य रूप से ध्यान साधना की तीन दिशाए बनती हैं—

१ अतीन्द्रिय ज्ञान के लिए ध्यान साधना।

२ अतीन्द्रिय शक्ति के लिए ध्यान साधना।

३ अतीन्द्रिय चेतना या चित्त शुद्धि के लिए ध्यान साधना।

अतीन्द्रिय ज्ञान के लिए ध्यान साधना

इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना जो ज्ञान होता है उसे अतीन्द्रिय ज्ञान की कोटि मे रखा जाता है। निस्सदेह साधक ध्यान साधना द्वारा इस

प्रकार की क्षमता अर्जित करता है। प्रश्न यह है कि क्या व्यक्ति इस प्रकार की साधना से दु ख मुक्त हो सकता है ? जैन दर्शन के अनुसार देवता और नरक जीवो मे यह क्षमता सहज होती है, किन्तु दु ख से तो वे भी मुक्त नही हो पाते है।

अतीन्द्रिय शक्ति के लिए ध्यान साधना

इस क्षमता के द्वारा साधक पदार्थों को विना किसी बाह्य या स्थूल माध्यम के प्रभावित करने लग जाता है, तब उसे अतीन्द्रिय शक्ति सपन्न माना जाता है। जैसे बिना स्पर्श या यन्त्र के अलमारी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रख देना। इस प्रकार की अनेक शक्तिया हैं। किन्तु प्रश्न है कि क्या इस प्रकार की साधना से व्यक्ति दु:ख मुक्त हो सकता है ? क्या इससे व्यक्ति को सत्य-बोध या आत्म-बोध हो सकता है? क्या इससे आत्मोपलब्धि हो सकती है ?

अतीन्द्रिय चेतना के लिए ध्यान साधना

इस साधना मे व्यक्ति की इन्द्रियातीत चेतना का विकास होता है। वीतरागता की साधना करता है। इन्द्रिय विषय जन्य सुख-दुःख सवेदनो के प्रति तटस्थता की चेतना का विकास करता है। राग-द्वेष रहित, प्रियता-अप्रियता से मुक्त चेतना का विकास करता है। यही चेतना व्यक्ति को दु.ख से मुक्त कराती है। सत्य का बोध कराती है। आत्म स्वरूप तक ले जाती है। साधक का मुख्य प्रयोजन भी यही बनता है—अतीन्द्रिय चेतना का विकास।

दु:ख से मुक्ति के लिए, सत्य बोध, आत्म-बोध व आत्मोपलब्धि के लिए अतीन्द्रिय चेतना का विकास जरूरी है। अतीन्द्रिय चेतना का विकास तब होता, जब चित्त को राग-द्वेष की मलिनता से मुक्त रखने का अभ्यास किया जाता है। चित्त को शुद्ध करते हैं। प्रेक्षाध्यान साधना का मुख्य ध्येय है कि साधक अतीन्द्रिय चेतना सम्पन्न बने। आत्म-स्वरूप का बोध करे। अत आवश्यक है कि साधक साधना पथ मे सजग रहे। भ्राति मे न फसे। अत प्रेक्षाध्यान के प्रयोग मे "ध्यान का सकल्प" जोडा गया है। साधक साधना के उद्देश्य के प्रति सजग रहे, इसलिए सकल्प करता है 'कि मैं चित्त शुद्धि के लिए प्रेक्षाध्यान का प्रयोग करता हू।' यह सकल्प साधक को सही दिशा देता है। भटकाव से बचाता है।

चित्त शुद्धि या अतीन्द्रिय चेतना की साधना मे अतीन्द्रिय ज्ञान व अतीन्द्रिय शक्तिया भी उपलब्ध होती हैं। साधक इनमे उलझे नही, चित्त को शुद्ध व निर्मल बनाता जाए। रुके नही। चलता चले जब तक अन्तिम मजिल 'वीतरागता" प्राप्त न हो। सम्पूर्ण अतीन्द्रिय चेतना का जागरण न हो

जाये। रास्ता बहुत विषम है साधक की प्रतिपल जागरूकता अपेक्षित है। इस उद्देश्य की पूर्ति करता है—ध्यान का सकल्प —"मै चित्त शुद्धि के लिए प्रेक्षा-ध्यान का प्रयोग कर रहा हू।"

८ ७.२. चित्त शुद्धि और प्रेक्षाध्यान

चित्त को शुद्ध बनाने के लिए कषाय, चचलता व बाह्य निमित्त तीनो पर ध्यान देना आवश्यक है। प्रेक्षाध्यान साधना चित्त शुद्धि की साधना है। इसमे तीनो ही बातो पर ध्यान दिया गया है। निमित्तो से बचाव के लिए सकल्प, व्रत एव प्रतिसलीनता की साधना की जाती है। चचलता को दूर करने के लिए कायोत्सर्ग, श्वास-प्रेक्षा आदि प्रयोगो की व्यवस्था है। कषाय-मुक्ति के लिए शरीर प्रेक्षा, चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा, लेश्याध्यान, अनुप्रेक्षा एव भावना के प्रयोग महत्वपूर्ण हैं।

प्रेक्षाध्यान के प्रयोगो के द्वारा चचलता को कम किया जाता है और साथ-साथ मे कषाय को भी दूर करने का उपक्रम चलता रहता है। कायोत्सर्ग के द्वारा साधक शारीरिक चचलता को दूर करता है। दूसरे शब्दो मे शारीरिक स्थिरता को साध कर अपने स्वरूप का बोध करता है।

श्वास प्रेक्षा द्वारा साधक चैतसिक जागरूकता का विकास करता है। मन की चचलता को दूर करता है एव ज्ञाता द्रष्टा भाव का विकास करता है।

शरीर प्रेक्षा के द्वारा साधक शरीर मे होने वाले प्रिय-अप्रिय सवेदनो के प्रति तटस्थता का विकास करता है। इसमे कषाय की तीव्रता पर प्रहार होता है। जागरूकता के द्वारा वर्तमान मे घटित होने वाले शारीरिक सवेदनो के प्रति चित्त को मूढ या मलिन होने से बचाया जाता है।

चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा द्वारा कषाय की ग्रन्थियो को खोलने के लिए विशेष चैतन्य केन्द्रो पर प्रेक्षा की जाती है। धीरे-धीरे चित्त उन ग्रन्थियो की पकड से मुक्त होने लगता है। चित्त शुद्ध एव निर्मल होता है।

लेश्याध्यान द्वारा अशुद्ध लेश्या को शुद्ध करते हैं। प्रकाशमान रगो के ध्यान से भावधारा को अधिक प्रभावित किया जाता है। धीरे-धीरे इससे लेश्या शुद्ध होने लगती है एव चित्त की मलिनता दूर होती है।

अनुप्रेक्षा मे शाश्वत सत्य का अनुचिंतन किया जाता है। इस प्रक्रिया के द्वारा चित्त की मूर्च्छा या मूढता को दूर किया जाता है। भावना के प्रयोग के द्वारा चित्त शुभ एव निर्मल भावो से भावित किया जाता है।

प्रेक्षाध्यान के द्वारा चचलता एव कषाय को दूर किया जाता है। यह साधना वीतरागता की दिशा मे ले जानेवाली है। यह अर्हम् बनने की साधना है। चित्त शुद्धि की साधना ही व्यक्ति को दु ख से मुक्त करने मे सक्षम है। आत्म साक्षात्कार कराने मे सक्षम है। समाधि तक ले जाने वाली है।

तालिका ६—चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा : सिद्धान्त और मूल स्रोत

बिन्दु	तथ्य	प्रमाण
प्रयोजन	१ विवेक चेतना का विकास	आयारो २।१२६
अध्यात्मिक स्वरूप	१ चैतन्य केन्द्र चेतना की अभिव्यक्ति के विशिष्ट केन्द्र आत्मा/चैतन्य, चेतना, चेतना के स्तर, चैतन्य केन्द्र, चित्त, मन का तात्पर्य २ चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा -१ चेतना की विशिष्ट शक्तियों को जगाने की प्रक्रिया २ वृत्तियों के परिष्कार की प्रक्रिया है ३ वृत्ति, प्रवृत्ति, पुनरावृत्ति ।	आचाराग भाष्य ५।२०, आचाराग भाष्य ५।२०, आयारो ५।२०, आयारो २।१०६, भगवती ६।११५, षट्खण्डागम पुस्तक १३ पृष्ठ २९५, षट्खण्डागम १३, पृष्ठ २९६
वैज्ञानिक स्वरूप	१ चैतन्य केन्द्र, नाडी ग्रन्थि तन्त्र के विशिष्ट स्थान है । चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा—नाडी ग्रन्थि तन्त्र का सतुलन, विधायक भावो का विकास, निषेधात्मक भावो से मुक्ति दिलाने वाला प्रयोग । विधायक दृष्टिकोण	–
प्रक्रिया	१. चैतन्य केन्द्रो पर दीर्घकाल तक तटस्थ प्रेक्षा ।	–
परिणाम	१ शारीरिक रासायनिक सतुलन २. आध्यात्मिक आदतो का, स्वभाव का, अन्त.करण का परिवर्तन, केन्द्रो की स्वतन्त्र निष्पत्तियाँ जैसे ज्ञान-केन्द्र—अतीन्द्रिय ज्ञान, जाति स्मरण, प्राण, अवरोध आदि । दर्शन केन्द्र अन्तर्दृष्टि का जागरण । चैतन्य केन्द्र का निर्मलीकरण, आनन्द केन्द्र का जागरण, शक्ति केन्द्र का जागरण ३ व्यावहारिक—दृष्टिकोण परिवर्तन और व्यक्तित्व विकास ।	आयारो ५।३०

८.८.० चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा

८ ८.१. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा : वैज्ञानिक दृष्टिकोण

प्रत्येक प्राणी के जीवन का अस्तित्व तथा शारीरिक क्रियाओ का सचालन इस बात पर आधारित है कि उसके शरीर मे अनेक तन्त्र एक "टीम" (मिलजुल कर काम करने वाले दल) के रूप मे विविध क्रिया-कलापो को निष्पादित करे। एक ही प्रकार के कार्यो की शृखला को निष्पादित करने वाले अनेक अवयवो के समूह को "तन्त्र" कहा जाता है।

नाड़ी-ग्रन्थि-तन्त्र (Nenro-endocrine System)

नाडी-तत्र और अन्त'स्रावी ग्रन्थि-तत्र– ये दो शरीर के प्रमुख नियत्रण एव सयोजक तत्र हैं। वे शरीर के अन्य सभी तत्रो का नियोजन एव सयोजन करते हैं तथा उनके माध्यम से समग्र शरीर के क्रिया-कलापो को सचालित करते हैं। इन दोनो तत्रो के वीच क्रिया-कलापो का विलक्षण पारस्परिक अनुवध है और दोनो मिलकर सर्वागीण रूप से शरीर-यत्र को सचालित करते रहते हैं। इन दोनो का पारस्परिक अनुवन्ध इनना विलक्षण है कि नाडी-तत्र और ग्रन्थि-तत्रो के अवयवो को अखण्ड तत्र के ही अगरूप माना जाने लगा है जिसे नाडी-ग्रन्थि-तत्र (Neuro-endorıne System) की सज्ञा दी गई है। अन्त स्रावी ग्रन्थि-तत्र अपने प्रभावो का निष्पादन रासायनिक नियत्रको के स्रावों (हार्मोन) के माध्यम से करना है। प्राणी की वृद्धि और विकाम, काम-प्रवृत्तिया गर्भाधान और जनन, चयापचय आदि महत्त्वपूर्ण कार्यो का नियमन करने का दायित्व इन स्रावो पर होता है। ये हार्मोन न केवल प्रत्येक शारीरिक क्रिया मे भाग लेते हैं, अपितु व्यक्ति की मानसिक दशाओ, स्वभाव और व्यवहार पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं। ये हार्मोन मनुष्य के भीतरी आवेशो और आवेगो तथा वृत्तियो और वासनाओ के अत्यन्त शक्तिशाली व प्रेरक बलो को उत्पन्न करने वाले प्रमुख स्रोत हैं। वृत्तिया आदि न केवल कामनाओ को उत्पन्न करती है, अपितु उनकी पूर्ति के अनुरूप प्रवृत्ति के लिए व्यक्ति को वाध्य करती हैं। प्रेम, घृणा, भय आदि भाव अन्त स्रावी स्रोतो द्वारा जनित आवेग हैं।

वहुत लम्वे समय तक यह अवधारणा रही कि मस्तिष्क ही मनुष्य की चैतन्य-ऊर्जा का स्रोत है तथा वही समस्त भावावेगो का उत्पत्ति स्थान है। अन्त स्रावी ग्रन्थि-शास्त्र (विज्ञान की वह शाखा जो अन्त स्रावी ग्रन्थि-सस्थान का अध्ययन करती है) के क्षेत्र मे पिछले वर्षो मे हुई उल्लेखनीय प्रगति ने अव यह सिद्ध कर दिया है कि हमारे सारे भावावेश और भावावेग –वृत्तिया और वासनाए हमारे अन्त स्रावी ग्रन्थि-तत्र की ही अभिव्यक्तिया है।

मनुष्य की जितनी आदतें वनती हैं, उनका उद्‌गम-स्थान है—ग्रन्थि-

तंत्र। नाडी-तंत्र मे हमारी सारी वृत्तिया अभिव्यक्त होती हैं, अनुभव मे आती हैं और फिर व्यवहार मे उतरती हैं। व्यवहार, अनुभव या अभिव्यक्तीकरण—ये सब नाडी-तंत्र के काम हैं, किन्तु आदतो का जन्म, आदतो की उत्पत्ति ग्रन्थि-तंत्र मे होती है। वे ही आदतें मस्तिष्क के पास पहुचती है, अभिव्यक्त होती हैं और व्यवहार मे उतरती हैं।[1]

अन्त.स्रावी ग्रन्थि-तंत्र और नाडी-तंत्र का घनिष्टतम संबंध निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो सकता है—किसी युवक के सामने कोई सुन्दर युवती उपस्थित होती है। उसके सामने आते ही उसके नाडी-तंत्रीय संवेदन (चाक्षुष संवेदन) विद्युत आवेग के द्वारा उसके मस्तिष्क मे रहे हुए केन्द्र—हाइपोथेलेमस् (अवचेतक) के अमुक भाग को उत्तेजित करेंगे, उसके परिणामस्वरूप हाइपोथेलेमस पिच्यूटरी ग्रन्थि के अग्रभाग को सक्रिय करेगा,। अब पिच्यूटरी की बारी आती है—वह अपनी ओर से काम-ग्रन्थियों (गोनाड्स) को गोनाडोट्रोफीन नामक हार्मोन भेजकर उन्हे सक्रिय करती है। तब उस युवक की काम-ग्रन्थिया अपने लैंगिक हार्मोन—एण्ड्रोजन का स्राव करती हैं, जो रक्त के माध्यम से मस्तिष्क मे पहुचकर नाडी-तंत्र को प्रभावित करता है। उसके फलस्वरूप हृदय और नब्ज की गति मे वृद्धि हो जाती है, रक्त-चाप बढ़ जाता है, मासपेशियो मे तनाव पैदा हो जाता है और काम-भावना उद्दीप्त हो जाती है।

इस तंत्र के हार्मोनो के स्रावो का नियमन अधिकाशत: पिच्यूटरी द्वारा होता है। पिच्यूटरी द्वारा स्रावित विविध प्रकार के हार्मोन रक्त-प्रवाह के माध्यम से अन्य ग्रन्थियो तक पहुंच कर उन्हे एक निश्चित प्रकार के हार्मोन को निश्चित मात्रा मे स्रावित करने के लिए उत्तेजित करते है। ये स्राव पुन: पिच्यूटरी तक पहुचते हैं और यदि उत्पादन आवश्यकता से अधिक हो, तो उत्तेजक रसायनो का निरोध किया जाता है। इस प्रकार फीड-बैक पद्धति और रासायनिक अन्त संचार के माध्यम से पिच्यूटरी अन्य ग्रथियो के स्रावो का नियमन करती है।

---

१. जब किसी पुरुष को समारोह या पार्टी मे शामिल होना होता है, जहा महिलाओ की उपस्थिति भी होती है, तब उस स्थल पर पहुचने पर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को प्रभावपूर्ण बनने के लिए कुछ क्रियाए करता है, जैसे अपनी वेशभूषा को थोडा सवार लेना, टाई को ठीक-ठाक कर लेना बालो को कघी या हाथ से सवार लेना आदि। ये क्रियाए व्यक्ति प्राय ओटोमेटिक (अनालोचित या यत्रवत) कर लेता है। इसमे चेतन मन का प्राय कोई भाग नही होता। वस्तुत: यह सारी क्रिया पिच्यूटरी द्वारा स्रावित गोनाडोट्रोफीन नामक हार्मोन के कारण होती है।
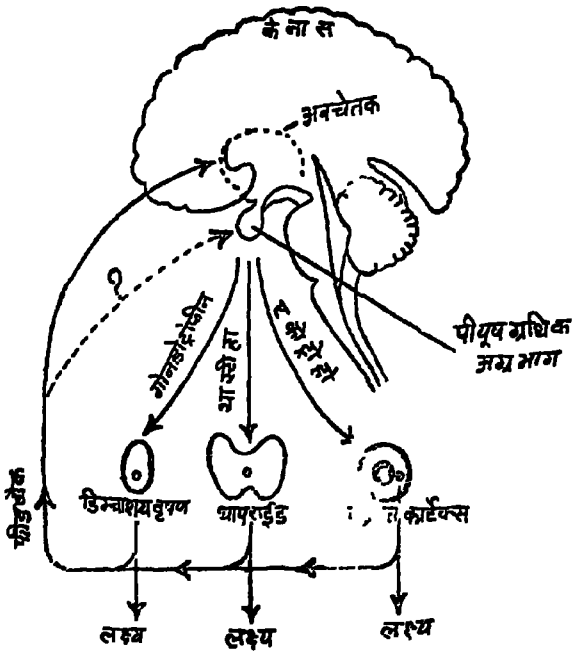
ग्रन्थियां : स्थान और कार्य

अन्त स्रावी तत्र की प्रत्येक ग्रन्थि का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है

१. पाइनियल ग्रन्थि

इस ग्रन्थि का स्थान मस्तिष्क के मध्य मे होता है। यह परिमाण मे वहुत छोटी होती है—लगभग गेहू के दाने जितनी। पिच्यूटरी ग्रन्थि के पीछे की ओर थोडी-सी ऊपर यह ग्रन्थि मस्तिष्क के निचले हिस्से मे एक छोटी-सी गुफा के आकार वाले छिद्र मे छिपी हुई रहती है। इस ग्रन्थि का एक महत्त्व पूर्ण कार्य गोनाड्स (काम-ग्रन्थियो) के स्रावो का निरोध करना है। इस प्रकार यह ग्रथि शैशवावस्था मे व्यक्ति की काम-वृत्ति का नियमन कर उसे यौवन-प्राप्ति तक उससे मुक्त वनाए रखती है। यौवन-प्राप्ति के वाद यह ग्रन्थि यौवनोचित वयस्कता को लाने मे सहायक वनती है। प्रयोगो के आधार पर कुछ ऐसे प्रमाण भी प्राप्त हुए हैं कि इसके स्राव पिच्यूटरी के ACTH नामक स्राव का निरोध कर अप्रत्यक्ष रूप से एड्रीनल के स्रावो का नियमन करने मे सहायक होते हैं।

२. पिच्यूटरी ग्रन्थि (पीयूष ग्रन्थि)

यह ग्रन्थि मस्तिष्क के लगभग मध्य मे स्थित होती है। उसका स्थान मस्तिष्क के निचले छोर पर तथा नाक के मूल भाग के पीछे की ओर होता
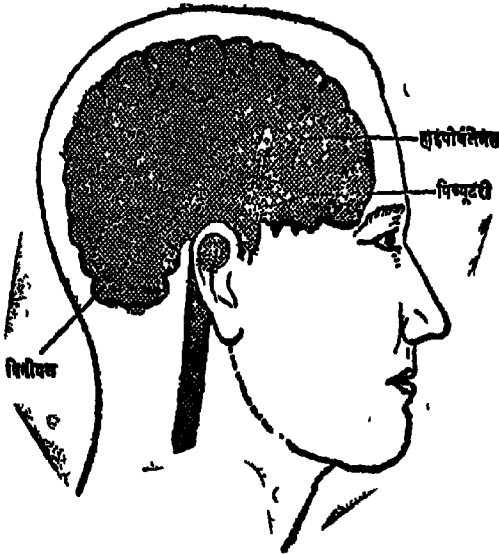
है। मस्तिष्क के नीचे एक छोटी-सी प्याली या पालने मे यह ग्रथि लटकती-सी रहती है। मटर के दाने जितनी होती है।

इस ग्रन्थि के दो खण्ड है—१ अग्र खण्ड, २. पृष्ट खण्ड। अग्र खण्ड का हिस्सा सम्पूर्ण अन्त स्रावी ग्रथि-तन्त्र का नायक या अग्रणी माना जाता है। यह हिस्सा कम से कम नव प्रकार के विभिन्न हार्मोनो का स्राव करता है और जीवन के अनेक महत्त्वपूर्ण क्रिया-कलापो पर अपना प्रभाव डालता है। इसके प्रभाव से शरीर का कोई भी भाग अछूता नही है। थायराइड, एड्रीनल कार्टेक्स तथा गोनाड्स् को प्रेरित/निरोध करने वाले हार्मोनो के स्राव पिच्यूटरी के अग्र भाग से होते हैं।

पिच्यूटरी पृष्ठ भाग से निकलने वाले स्राव वस्तुत' तो उसके निकटवर्ती अवचेतक (हाइपोथेलेमस्) मे उत्पन्न होते है। वहा से पृष्ठ भाग मे आते हैं, सगृहीत होते हैं और शायद कुछ परिवर्तन के साथ आवश्यकतानुसार शरीर के विभिन्न भागो तक पहुचते है।

३. थाइरॉइड ग्रन्थि

थाइरॉइड ग्रन्थि दो पिण्डो से बनी हुई है। स्वर-यन्त्र के समीप श्वास नली के उपर के छोर पर यह ग्रन्थि आसीन है। इन दो पिण्डो को जोडने वाली एक सकडी पट्टी होती है, जो टेटुआ (कण्ठमणि) के ठीक नीचे होती है। इस ग्रन्थि को अत्यधिक विपुल मात्रा मे रक्त की आपूर्ति की जाती है। उदाहरणार्थ—गुर्दे की अपेक्षा इसे चार गुना अधिक रक्त मिलता है।

इस ग्रन्थि के मुख्य हार्मोन का नाम 'थाइरोक्सिन" है। विपुल

मात्रा मे आयोडीन के अतिरिक्त लोहा, आर्सेनिक व फास्फोरस की कुछ मात्रा इसमे होती है। यह नाडियो तथा मस्तिष्क ऊतको के निर्माण मे काम आता है। थाइरॉइड ग्रन्थि मूलत शरीर मे ऊर्जा उत्पादन का अवयव है। चयापचय की मात्रा तथा व्यक्ति मे सक्रियता की तीव्रता को निर्धारित करने का मुख्य
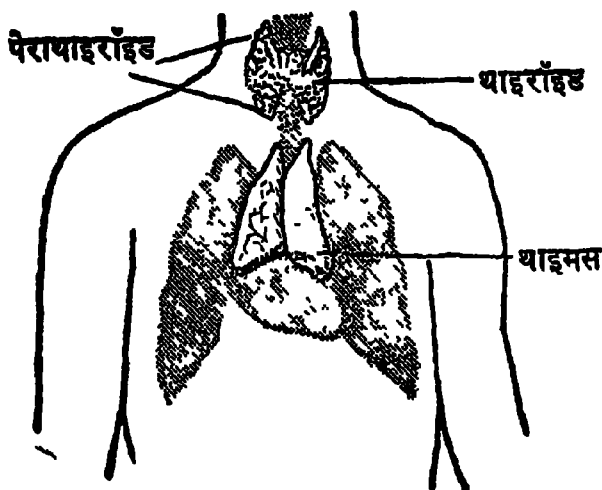
पेराथाइरॉइड थाइरॉइड और थाइमस ग्रथियां एवं स्थान

दायित्व इस ग्रन्थि पर है। पाचन-क्रिया मे भी यह ग्रन्थि सहायक होती है। इसके स्राव शरीर मे जमा होने वाले विषो का प्रतिकार करते हैं। मस्तिष्कीय सतुलन को बनाए रखने का दायित्व भी इस पर है। शरीर मे होने वाली वसा, प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट की चयपचय-क्रिया को नियन्त्रित करने मे भी इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है। गलगण्ड की बीमारी की रोकथाम या निवारण करने के लिए यह ग्रथि उत्तरदायी है।

४. पेराथाइरॉइड

पेराथाइरॉइड की छोटी-छोटी अण्डाकार ग्रन्थिया होती है। ये थाइरॉइड ग्रन्थि के दोनो पिण्डो मे ऊपर-नीचे जटित-सी होती हैं। इन ग्रन्थियो के हर्मोन 'पेराथोर्मोन' कहलाते हैं। इसके प्रभाव से शरीर मे केल्शियम की मात्रा निश्चित होती है।

५ थाइमस ग्रन्थि

यह ग्रन्थि दोनो फेफडो के बीच मे थोडी-सी ऊपर की ओर होती है। शैशवावस्था के प्रारम्भिक दो-तीन वर्षो मे इस ग्रन्थि की वृद्धि बहुत तेज गति से होती है, फिर उसके विकास मे मदता आती है तथा २० वर्ष की आयु के पश्चात् वह धीरे-धीरे सिकुड जाती है, फिर भी स्राव पैदा करने वाली उसकी कुछ कोशिकाए आजीवन बनी रहती हैं।

यह शैशवावस्था मे बच्चे के शारीरिक विकास का नियमन करती है तथा १४ वर्ष की आयु तक इस विकास का अधिकतर क्रम समाप्त हो जाता है। इस आयु तक उसका कार्य है—दूसरी ग्रन्थियो को—विशेषतया गोनाड्स् (काम-ग्रन्थियो) को सक्रिय न होने देना है जिसके कारण यौवनावस्था के उन्मादो का निरोध होता रहता है। यह ग्रन्थि मस्तिष्क के सम्यग् विकास मे सहायक होती है तथा लसिका-कोशिकाओ के विकास मे अपने स्रावो द्वारा सहयोग कर रोग-निरोधक कार्यवाही मे अपना योगदान देती है।

६. एड्रीनल ग्रन्थियां

एड्रीनल ग्रन्थिया जोडे के रूप मे होती है। उनका आकार त्रिकोणाकार टोपी जैसा होता है। ये गुर्दे के ऊपर के भाग पर स्थित होती हैं। प्रत्येक एड्रीनल के दो खण्ड होते हैं—कार्टेक्स या बाह्य हिस्सा तथा मेडूला या भीतरी हिस्सा।

कार्टेक्स : एड्रीनल ग्रथियो का अधिकाश द्रव्य कार्टेक्स मे होता है। इन ग्रथियो से गुजरने वाले रक्त की मात्रा इनके परिणाम के अनुपात मे बहुत अधिक है। तीन दर्जन से भी अधिक प्रकार के स्रावो को पैदा करने वाली ये ग्रन्थिया अन्य सभी ग्रन्थियो की अपेक्षा सभवत सबसे अधिक सख्या मे स्रावो का उत्पादन करती है। इनमे से अनेक स्राव जीवन के लिए अनिवार्य होते है। वे स्राव मस्तिष्क तथा प्रजनन अवयवो के स्वस्थ विकास को प्रेरित करने

एड्रीनल, पेन्क्रियाज, गोनाडस ग्रंथियां एवं उनका स्थान
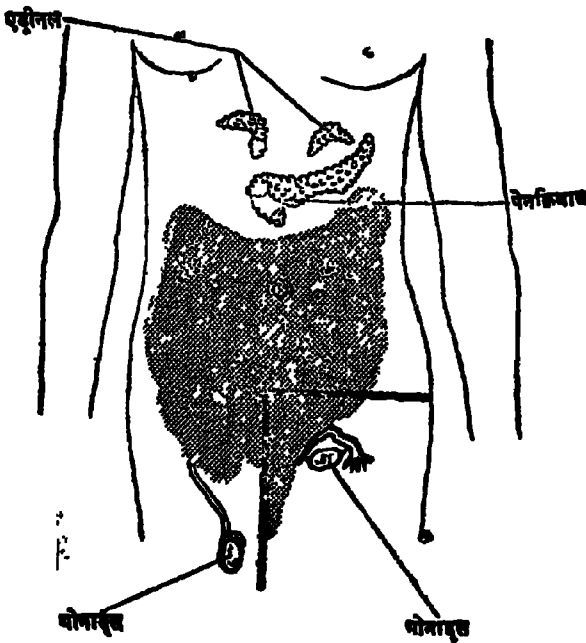
मे महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। इनसे मानसिक एकाग्रता तथा शारीरिक सहनशीलता का विकास भी होता है। इन स्रावो के प्रभाव से शरीर की स्नायविक तथा मासपेशीय सरचना स्वस्थ और बलवान होती है।

मेडूला : एड्रीनल-मेडूला का समस्त क्रियाकलाप अनुकपी नाडी-तत्र के साथ गहराई से जुडा हुआ है। भय, दर्द, अधिक शीत का प्रकोप अल्परक्त-चाप, भावात्मक उद्वेग आदि स्थितिया 'एपीनेफ्रीन' (जिसे 'एड्रीनालीन' भी कहते हैं) और 'नोर-एपीनेफ्रीन' नामक हार्मोनो के स्रावो मे निमित्त बनते हैं। उत्तेजना, क्रोध, भय आदि के बार-बार होने पर एड्रीनल ग्रथि के एड्रीनालीन सगृहीत करने वाले भण्डार रिक्त हो जाते हैं।

एड्रीनालीन के अभाव मे अनिर्णायकता, चिंतातुरता तथा थोडा-सा निमित्त पाते ही रोने की वृत्ति आदि लक्षण देखे जाते है।

७. गोनाड्स (काम ग्रन्थियां)

स्त्रियो मे मुख्य रूप से गोनाड्स् का कार्य डिम्बाशय तथा पुरुषो मे वृषणो द्वारा किया जाता है। प्रजनन के लिए बीज पैदा करने के अतिरिक्त गोनाड्स् अन्त.स्रावी ग्रन्थियो के रूप मे भी कार्य करती हैं। गोनाड्स् उन हार्मोनो का स्राव करती है जिनेके द्वारा स्त्री, स्त्रीत्व प्राप्त करती है और उनमे स्त्रियोचित व्यक्तित्व बना रहता है। दूसरी ओर पुरुषो मे इन अन्त स्रावी हार्मोनो के द्वारा पुरुषत्व जागृत होता है, जिससे उनका पुरुष-रूप व्यक्तित्व बना रहता है। इन ग्रथियो के हार्मोन न केवल काम-वृत्ति पर अपितु शरीर के अन्यान्य अवयवो तथा उनके क्रिया-कलापो पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं।

'एस्ट्रोजन' और प्रोजेस्टेरोन' नामक दो हार्मोन स्त्रियो मे ही होते हैं, जो स्त्री को पुरुष से भिन्न दिखाने वाले लक्षणो को पैदा करते हैं। पुरुष के लैंगिक हार्मोनो को 'एन्ड्रोजन' कहते है। 'टेस्टोस्टेरोन' वृषणो द्वारा उत्पादित एन्ड्रोजनो मे एक मुख्य हार्मोन है। स्त्रियो और पुरुषो—दोनो जातियो मे पिच्यूटरी के हार्मोन गोनाड्स् की क्रियाओ को नियन्त्रित करने मे काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

८.८.२. आध्यात्मिक स्वरूप

हमारा द्वैतात्मक अस्तित्व

आत्मवादी दर्शन हमे इस सत्य की अनुभूति कराता है कि हमारा अस्तित्व द्वैतात्मक है—दो तत्त्वो का सयोग है। एक है—चेतन-तत्त्व—जीव, दूसरा है—अचेतन तत्त्व—शरीर। द्वैत तब तक बना रहता है जब तक चेतना का विशुद्धतम स्वरूप उपलब्ध नही हो जाता है। द्वैतात्मक स्थिति मे हमारे अभौतिक चैतन्यमय तत्त्व (आत्मा) को अपने सुख-दु.ख के सवेदन के लिए

तथा क्रियात्मक प्रवृत्ति के लिए एक स्थूल शरीर से ही काम नही चलता, अपितु सूक्ष्म शरीरो की अपेक्षा भी बनी रहती है। हमारे व्यक्तित्व की व्यूह-रचना बहुत जटिल है। रचनाक्रम इस प्रकार बनता है—सम्पूर्ण व्यक्तित्व के केन्द्र मे है—चैतन्य तत्त्व—द्रव्य आत्मा या मूल आत्मा। उस केन्द्र से बाहर परिधि मे अतिसूक्ष्म शरीर यानी कार्मण शरीर है, जो कषाय के वलय को पैदा करता है। केन्द्र से चैतन्य तत्त्व के जो स्पन्दन निकलते है, वे कषायतत्र को पार कर बाहर आते है। वह है—अध्यवसाय का तत्र। यह स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर—तैजस् शरीर के साथ सक्रिय होकर काम करता है।

इस प्रकार हमारे मौलिक मनोवेगो, पाशवी आवेगो एव कामुकता पर नियत्रण प्राप्त करने के लिए जो हमारे विवेक और प्रज्ञा को जगाता है और हमे उन पर प्रभुत्व प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करता है, वह हमारी सूक्ष्म चैतन्यशील आत्मा ही है।

अन्त.स्रावी ग्रन्थि-तंत्र

ज्यो ही हम अस्तित्व के द्वैत को स्वीकार करते है, हमे यह भी स्वीकार करना पडेगा कि भौतिक (स्थूल) शरीर और अभौतिक (सूक्ष्म) आत्मा के बीच मे परस्पर सचार-व्यवहार के लिए कोई सचार-माध्यम की आवश्यकता होगी। अर्थात् शरीर के भीतर ही कोई ऐसी अन्तर्निमित व्यवस्था होनी चाहिए, जिसके माध्यम से हमारा सूक्ष्म चेतन-तत्त्व अपनी शक्ति और प्रभुत्व को क्रियान्वित कर स्थूल भौतिक (शारिरिक) अवयवो—अस्थि, मास और जैविक रसायनो कानियत्रण/नियमन कर सके। इस व्यवस्था मे हमारी चेतना की अति सूक्ष्म और अमूर्त्त अभिव्यक्तियो के स्थूलीकरण की तथा अभौतिक आदेशो की भौतिक स्तर पर क्रियान्विति की क्षमता होनी चाहिए। यह आतरिक संचार-माध्यम और कोई नही अपितु हमारे शरीर का अन्त.स्रावी ग्रन्थि-तत्र है, जो हमारे अस्तित्व के दोनो स्तरो—सूक्ष्म चेतना तथा स्थूल भौतिक शरीर के बीच कम्प्यूटर या परिवर्तक (ट्रांसफार्मर) का कार्य करता है। इसके लिए वह हार्मोन नामक रासायनिक पदार्थों का उत्पादक एव प्रसारण करता है।

चैतन्य-केन्द्र और ग्रन्थि

दार्शनिक, वैज्ञानिक और चिकित्सक—सभी एकमत से यह बात कहते हैं कि व्यक्ति की भावधारा और मनोदशाओ के साथ इन अन्त:स्रावी ग्रथीयो का गहरा सम्बन्ध है।

डॉ० एम० डब्ल्यू० काप (KAPP) एम० डी०, ने अपनी पुस्तक (Glands our invisible Guardians) मे लिखा है—"हमारे भीतर जो ग्रथियां हैं, वे क्रोध, कलह, ईर्ष्या, भय, द्वेष आदि के कारण विकृत बनती

हैं। जब ये अनिष्ट भावनाए जागती है, तब एड्रिनल ग्लैण्ड को अतिरिक्त काम करना पडता है। वह थक जाती है। और-और ग्रन्थिया भी अतिश्रम से थक कर श्लथ हो जाती है।"

जब-जब हमारे मस्कार के कारण आवेग जागते है, तब-तब उन ग्रन्थियो पर अतिरिक्त भार पढता है। वे अस्वाभाविक रूप से काम करने लगती हैं। स्राव अधिक होता है। यह अतिरिक्त स्राव अनेक विकृतिया पैदा करता है। ग्रथियो की शक्ति क्षीण हो जाती हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि हम इन आवेगो और भावनाओ को नियन्त्रित करे। आवेगो को समझदारी से समेटे और ग्रन्थियो पर अधिक भार न आने दें।

आयुर्वेद और एक्यूपक्चर

भगवती सूत्र मे बतलाया गया ---'सव्वेण सव्वे' हमारी चेतना के असख्य प्रदेश है। वे सब चैतन्य केन्द्र है, किन्तु कुछ स्थान ऐसे है, जहा चैतन्य दूसरे स्थानो की अपेक्षा अधिक सघन होता है। विज्ञान की भाषा मे हमारा पूरा शरीर विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र है। किन्तु कुछ विशेष स्थानो मे विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता अन्य स्थानो की तुलना मे अनेक गुनी अधिक होती हैं। हमारा मस्तिष्क, इन्द्रिया, अन्त स्रावी ग्रथिया ऐसे केन्द्र हैं। आयुर्वेद की भाषी मे इन चैतन्न-केन्द्रो को मर्मस्थान कहा गया है। आयुर्वेदाचार्यो ने ऐसे १०५,१०७ मर्मस्थान बताए है। इन मर्मस्थानो मे प्राण का केन्द्रीकरण होता है। ये रहस्य के स्थान हैं। यहा चेतना विशेष प्रकार से अभिव्यक्त होती है। प्रेक्षा-ध्यान के चैतन्य-केन्द्र और आयुर्वेद के मर्मस्थानो मे स्थान की दृष्टि से और महत्त्व की दृष्टि से अद्भुत समानता है।

एक्यूपचर के चिकित्सको ने हमारे शरीर मे ऐसे ७०० से अधिक केन्द्र खोज निकाले हैं, जिन्हे सुई द्वारा उत्तेजित करने पर अनेक प्रकार के रोगो की चिकित्सा की जाती है। अनेक असाध्य रोगो का उपचार किया जाता है। एक्यूपक्चर और एक्यूप्रेसर मे माना गया है—जो केन्द्र हमारे मस्तिष्क मे हैं, वे हमारे अगूठे मे भी हैं। ये केन्द्र एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। इस प्रकार मर्मस्थान, एक्यूपक्चर के पोइट्स्, अन्त स्रावी ग्रथिया—ये सब चैतन्य-केन्द्र से सम्बद्ध और प्रभावित हैं।

चैतन्य-केन्द्र सब अवयवो मे सक्रियता पैदा करने वाले है। ये इन्द्रियो को भी सचालित करते हैं और मन को भी सचालित करते हैं। उनकी क्रियाओ को सतुलित करना साधना का मुख्य अग है। यह कार्य चैतन्य-केन्द्र की प्रेक्षा द्वारा किया जा सकता है।

चैतन्य-केन्द्र स्थान और नाम
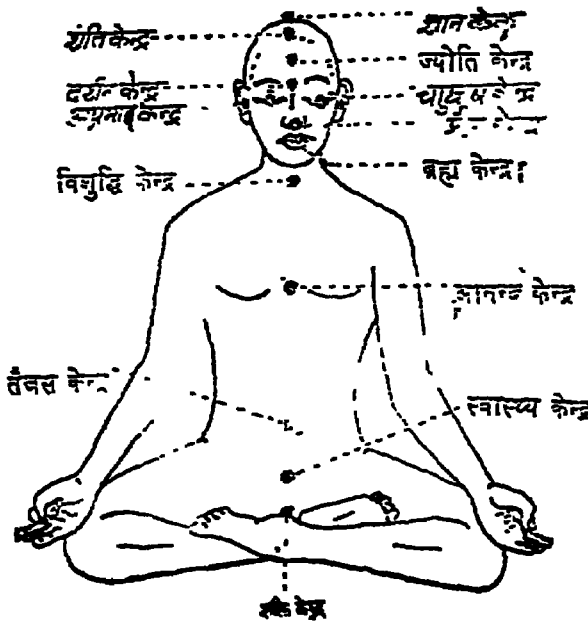
ज्ञानकेन्द्र और कामकेन्द्र

हम इस दृश्य शरीर को दो मुख्य केन्द्रों में विभाजित कर सकते हैं—ज्ञानकेन्द्र और कामकेन्द्र। नाभि से ऊपर मस्तिष्क तक का स्थान ज्ञानकेन्द्र है—चेतना-केन्द्र है और नाभि से नीचे का स्थान कामकेन्द्र है। हमारी चेतना इन दो वृत्तियों के आसपास उलझी रहती है। जहां चेतना ज्यादा उलझी रहती है, वहां चेतना का प्रवाह भी अधिक हो जाता है। ऊर्जा का मुख्य केन्द्र कामकेन्द्र है। सारी चेतना इसी के आसपास बिखरी हुई है। नाभि और जननेन्द्रिय के आसपास मनुष्य की चेतना और ऊर्जा बिखरी पड़ी है। ज्ञानकेन्द्र में ऊर्जा बहुत कम है, क्योंकि आज के मनुष्य की मौलिक वृत्ति है—'काम' और इसलिए उसकी सारी चेतना, सारी ऊर्जा वहीं सिमटी पड़ी है। उसका ध्यान उधर ही ज्यादा जाता है। मानसशास्त्री कहते हैं—"मनुष्य में काम का जितना तनाव होता है, उतना और किसी वृत्ति का नहीं होता। भय का तनाव कभी-कभी होता है क्रोध का तनाव कभी-कभी होता है। ईर्ष्या और मान का तनाव कभी-कभी होता है। इसी प्रकार अन्य आवेगों का तनाव भी कभी-कभी होता है; किन्तु काम का तनाव सबसे ज्यादा होता है, सघन होता है। उसकी जड़ें बहुत गहरे में हैं।" इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या[1]—इन तीनों अप्रशस्त

---

१. लेश्या के विषय में अगले प्रकरण में विस्तार से चर्चा की जाएगी।

या अधर्म लेश्याओ का केन्द्र भी यही होना चाहिए और यथार्थ मे यही है। हमारी प्रत्येक वृत्ति और उसकी अभिव्यक्ति का केन्द्र इसी स्थूल शरीर मे हैं। इन तीन अधर्म लेश्याओ की अभिव्यक्ति का केन्द्र कामकेन्द्र है। आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान के केन्द्र भी ये ही हैं। जब चेतना यहा रहती है, तब इष्ट का वियोग होने पर व्याकुलता उत्पन्न होती है, अनिष्ट का संयोग होने पर क्षोभ पैदा होता है, प्रियता, अप्रियता की अनुभूतिया उत्पन्न होती हैं। वेदना के आने पर व्याकुलता, वेदना को नष्ट करने की चेष्टाए, क्रूरता, ईर्ष्या, घृणा आदि के स्पन्दन कामकेन्द्र के आस पास अनुभूत होते हैं। वे यही उभरते है। हमारे कामकेन्द्र की चेतना के आस पास ही वे स्पन्दन क्रियान्वित होते हैं।

चेतना का आंतरिक स्तर

मन चेतना का आतरिक स्तर नही हैं। चेतना का आतरिक स्तर है— आवेग, क्रोध, मान, ईर्ष्या, लालच आदि। हमारी वृत्तिया चेतना का आतरिक स्तर है। बीमारिया वहा आती है। चरित्र भी वही से आता है। मस्तिष्क से चरित्र नही आता। चरित्र आता है—वृत्तियो से और वे आती है ग्रथि-तत्र से। ग्रथियो का स्थान मस्तिष्क नही है। आज तक यही माना जाता था कि मस्तिष्क हमारे शरीर का मुख्य अवयव है। इसी प्रकार हृदय और गुर्दे भी महत्त्वपूर्ण अवयव माने जाते है, किन्तु अब शरीर-शास्त्रीय नए आविष्कारो ने यह प्रमाणित कर दिया हैं कि शरीर का सबसे महत्त्वपूर्ण अवयव है हमारा ग्रथि-तत्र—डक्ट्लेस ग्लैण्ड्स। आवेग, आवेश और भ्रष्ट आचरण—इन सबका निमित्त है—ग्रथि-तत्र। ग्रथि-तत्र को प्रभावित किए बिना आदमी को सच्चरित्र, प्रामाणिक नही बनाया जा सकता। भ्रष्टाचार को समाप्त करने और जीवन मे सचाई लाने के लिए ग्रन्थि-तत्र को प्रभावित करना होगा। आदमी उपदेशो से सच्चरित्र नही होता, जितना वह ग्रन्थि-तत्र के स्रावो के बदलने से होता है। यह तथ्य आज अनुभव-सिद्ध हो चुका है।[1]

१ लगभग प्रत्येक धर्म की उपासना-पद्धति मे उपासना करते समय एक विशिष्ट प्रकार का आसन और मुद्रा का प्रयोग किया जाता है, जिसमे व्यक्ति घुटनो के बल पर बैठकर हाथो को जोडकर, मस्तक झुकाकर मस्तक से भूमि पर स्पर्श करता है। मुसलमान नमाज पढते समय, ईसाई चर्च मे प्रार्थना करते समय, वैदिक, बौद्ध, जैन आदि देव-वदन या गुरु-वदन करते समय लगभग इसी आसन-मुद्रा का प्रयोग करते हैं। जब कमर को झुकाकर मस्तक को भूमि तक झुकाया जाता है, तब एड्रीनल ग्रन्थि मे से अहकार को पैदा करने वाले हार्मोनो का परिष्कार होता है, उपासक मे नम्रता के भाव पैदा होते हैं। अति प्राचीन समय से सार्वभौम रूप मे सर्वत्र यह प्रथा प्रचलित है। आसन, मुद्रा एव भावना के सयुक्त प्रभाव से ग्रन्थियो के हार्मोनो को परिष्कृत करने का यह एक अच्छा उदाहरण है।

यह नियम ३५% लोगो पर लागू होता है। कुछेक व्यक्ति, जिनकी चेतना अत्यन्त प्रबुद्ध होती है, वे इसके अपवाद हो सकते है। सामान्य रूप से तो यही नियम है कि ग्रन्थि-तन्त्र को बदले विना आदमी को नही बदला जा सकता है।

वृत्ति, प्रवृत्ति, पुनरावृत्ति

कर्म का प्रेरणा-स्रोत है—वृत्ति। वृत्ति से प्रेरित होकर ही मनुष्य और पशु कर्म करते हैं। वृत्तिया अनेक हैं—आहार की वृत्ति., भय की वृत्ति, काम और परिग्रह की वृत्ति, क्रोध और मान की वृत्ति, माया और लोभ की वृत्ति। इन वृत्तियो से प्रेरित होकर ही प्राणी कर्म करता है। प्रत्येक कर्म के पीछे इनमे से किसी एक या अधिक वृत्तियो की प्रेरणा मिलेगी। वृत्ति से प्रवृत्ति और प्रवृत्ति से पुनरावृत्ति—यह चक्र निरन्तर चलता रहता है। वृत्ति जागी, प्रवृत्ति हुई।

हाथ से चाटा मारने के पीछे जो हमारी क्रोध की वृत्ति है, उसका शोधन करना है। हाथ का क्या शोधन होगा ? हाथ चलता ही रहेगा। चाटे मारने मे हाथ नही चलेगा, तो वह प्रणाम करने मे चलेगा, भोजन करने मे चलेगा। हाथ का शोधन नही करना है। कर्म, अकर्म तब बनता है जब वृत्ति का शोधन हो। कर्म के साधनो का शोधन नही होता, कर्म की प्रेरणा का शोधन हो सकता है। पर कर्म की प्रेरणा का शोधन केवल मनुष्य ही कर सकता है, पशु नही कर सकता। यही मनुष्य और पशु के बीच की भेद-रेखा है। आदमी और पशु की परिभाषा हम इन शब्दो मे कर सकते हैं—जो वृत्ति का शोधन नही कर सकता है, वह होता है पशु। पशु की पशुता चलती रहेगी, इसलिए कि उसमे वृत्ति-परिष्कार की कोई सभावना नही है। मनुष्य पशुता से ऊपर उठ सकता है, क्योकि उसमे वृत्ति-परिष्कार की क्षमता है।

मनुष्य की विलक्षण क्षमता

अनेक अर्थो मे मनुष्य भी नि सदेह एक 'प्राणी' है। वह अन्य सभी प्राणियो की तरह ही आहार-सज्ञा, भय-सज्ञा, मैथुन-सज्ञा और परिग्रह-सज्ञा वाला है, इसीलिए उसे भूख लगती है, वह भयभीत होता है, वह कामासक्त होता है और आक्रमण करता है। इसी प्रकार भोजन की सामग्री जुटाने के लिए प्रयत्न करना, स्व-सरक्षण के लिए लडाई करना तथा प्रजनन करना—इन सभी प्रवृत्तियो को मनुष्य भी अन्य सभी प्राणियो की तरह ही करता है, क्योकि मनुष्य भी अन्य प्राणियो की तरह ही अपनी दैनिक आवश्यकताओ की अन्त.प्रेरणा से प्रेरित है। द्वेष, अनुराग, इच्छाओ, वासनाओ जैसी वृत्तिया

उसकी प्रवृत्तियो पर उसी तरह हावी होती है, जिस प्रकार अन्य प्राणियो पर होती है। इन सब दृष्टियो से तो मनुष्य भी केवल एक 'प्राणी' ही है। पर, इन सबके बावजूद मनुष्य मे कुछ ऐसी विलक्षणताए हैं, जिनसे वह अन्य प्राणियो से नितान्त भिन्न और बहुत अर्थो मे 'अद्वितीय' प्राणी है। मनुष्य की सबसे महान् विलक्षणता यह है कि उसकी चेतना अन्य प्राणियो की चेतना से अधिक विकसित है—वह 'विवेक चेतना' से युक्त है। मनुष्य ने मस्तिष्कीय विकास और प्रतिभा के क्षेत्र मे अद्वितीय उपलब्धि की है और समग्र विश्व मे पैदा होने वाले प्राणियो मे उसने श्रेष्ठतम स्थान प्राप्त किया है। यह इसी-लिए हुआ है कि केवल मनुष्य ही अपनी अन्तर्निहित युक्तिसगत विचार-चेतना के द्वारा, जिसका कि मुख्य फल 'विज्ञान' है, अपने विकास के लिए उच्चतर मानदण्डो एव मूल्यो का सस्थापन कर सकता है। मनुष्येतर प्राणियो मे यौक्तिक मानस का अभाव होता है। उनमे केवल जिजीविषा और अपने तात्कालिक परिस्थितियो के अनुरूप अपने आपको ढालने की क्षमता ही अन्-तर्निहित होती है। वे (पशु-पक्षी, वनस्पति आदि) जीव अपनी असख्य पीढियो मे उसी प्रकार जीवन बिता रहे हैं—उन्होने कोई विकास नही किया है।

मनुष्य की विलक्षणताए शरीर-विज्ञान से सम्बन्धित भी है और मनो विज्ञान से भी। उसकी शारीरिक विलक्षणताए शायद यहा अप्रासगिक होगी। प्रस्तुत चर्चा के सदर्भ मे मनुष्य की जिस विलक्षणता का हम उल्लेख करना चाहते हैं, वह है—उसकी 'प्रत्ययात्मक विमर्श' की क्षमता एव विवेक चेतना। मनुष्य के मन के दो स्तर हैं—चेतन मन और अवचेतन मन। यह अवचेतन मन ही मनुष्य की वह चेतना है जो उसके भीतर सर्वाधिक प्रेरक बल रखती है। यही अन्त स्रावी ग्रथियो के माध्यम से अभिव्यक्त होता हैं। इन ग्रन्थियो का कार्य है—हमारे भावावेशो को पैदा करना। चेतन मन मे स्वय कोई भावावेश उत्पन्न नही होता।

कर्मशास्त्रीय व्याख्या

आज के शरीर- शास्त्रियो ने शरीर मे अवस्थित ग्रन्थियो के विषय मे बहुत सूक्ष्म विश्लेषण किया है। बौना होना, लम्बा होना, सुन्दर या असुन्दर होना, स्वस्थ या बीमार होना, बुद्धिमान् या बुद्धिशून्य होना—सब इन ग्रन्थि-यो के स्राव पर निर्भर है। ग्रन्थियो के स्राव इन सबको नियत्रित करते है। इस तथ्य को हम कर्मशास्त्रीय भाषा मे समझें।

आठ कर्मो मे एक कर्म है - नाम कर्म। उसके अनेक विभाग है। 'सस्थान नाम कर्म' के कारण मनुष्य लम्बा या बौना होता है। इस प्रकार

सुन्दर असुन्दर सुस्वर वाला या दुःस्वर वाला आदि सब नाम कर्म की विभिन्न प्रकृतियों के कारण होता है। नाम कर्म का सूक्ष्म अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि हमारे शरीर का सारा निर्माण नाम कर्म के आधार पर होता है।

उपरोक्त कर्मशास्त्रीय विश्लेषण और शरीरशास्त्रीय विश्लेषण को मिलाकर देखें। दोनों में भाषा का अन्तर है, तथ्य का नहीं। शरीरशास्त्री 'हार्मोन' 'सिक्रीशन्स ऑफ ग्लैण्ड्', 'ग्रन्थियों का स्राव' कहते हैं। कर्मशास्त्री 'कर्मों का रसविपाक' अनुभाग बन्ध' कहते हैं।

योगशास्त्र और शरीरशास्त्र

हमारे शरीर में ग्रन्थियां हैं, चक्र हैं, कमल हैं। कमल जैसी चीज नहीं मिली, तो डॉक्टरों ने कहा—हमने सारे शरीर को चीरफाड़ कर देख डाला, अणु-अणु का विश्लेषण कर दिया, पर कहीं भी कमल नहीं मिला, कहीं चक्र दिखाई नहीं दिए। हां डॉक्टरों को कुछ भी नहीं मिला। नाभि कमल हो या न हो, आज्ञा चक्र हो या न हो, विशुद्ध केन्द्र हो या न हो, किन्तु जो पाईनियल, पिच्यूटरी, थाइरॉयड आदि ग्रन्थियां हैं, ग्लैण्ड्स हैं, उनको यदि हम तुलानात्मक दृष्टि से देखें तो योगशास्त्र और शरीरशास्त्र के प्रतिपादन में कोई विशेष भेद प्रतीत नहीं होगा।

आगे हम प्रत्येक चैतन्य-केन्द्र के कार्य तथा उसकी प्रेक्षा से होने वाले महत्त्वपूर्ण परिणाम आदि विषयों की चर्चा करेंगे।

८.८.३. प्रयोजन

विवेक-चेतना का विकास

प्रत्येक मनुष्य में विवेक-चेतना अन्तर्निहित होती है। इसका जागरण नहीं होता, तब तक मनुष्य अपने चेतन मन के द्वारा केवल बुद्धि और तर्क के आधार पर ही अपनी वृत्तियों को मांग पर विमर्श करता है। उसमें विवेक-चेतना को प्रयोग में नहीं लाता। वस्तुत. उसकी बौद्धिक और तार्किक शक्ति पर वृत्तियां इतनी अधिक हावी हो जाती हैं कि वह उनकी मांग के औचित्य-अनौचित्य का सही निर्णय करने में सक्षम नहीं होती। ऐसी स्थिति में उसका चेतन मन वृत्तियों की मांग को उचित ठहराने हेतु कोई-न-कोई तर्क या युक्ति ढूंढ निकालता है, इसलिए अपनी मौलिक मनोवृत्तियों के प्रेरक बलों पर प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य के उस विलक्षण वैशिष्ट्य को उजागर किया जाए, जिसे "विवेक चेतना" और "विवेकपूर्ण तर्क" कहा जाता है और अन्त में शारीरिक, मानसिक और

भावनात्मक सभी प्रवृत्तियो पर विवेक-चेतना का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित किया जाए।
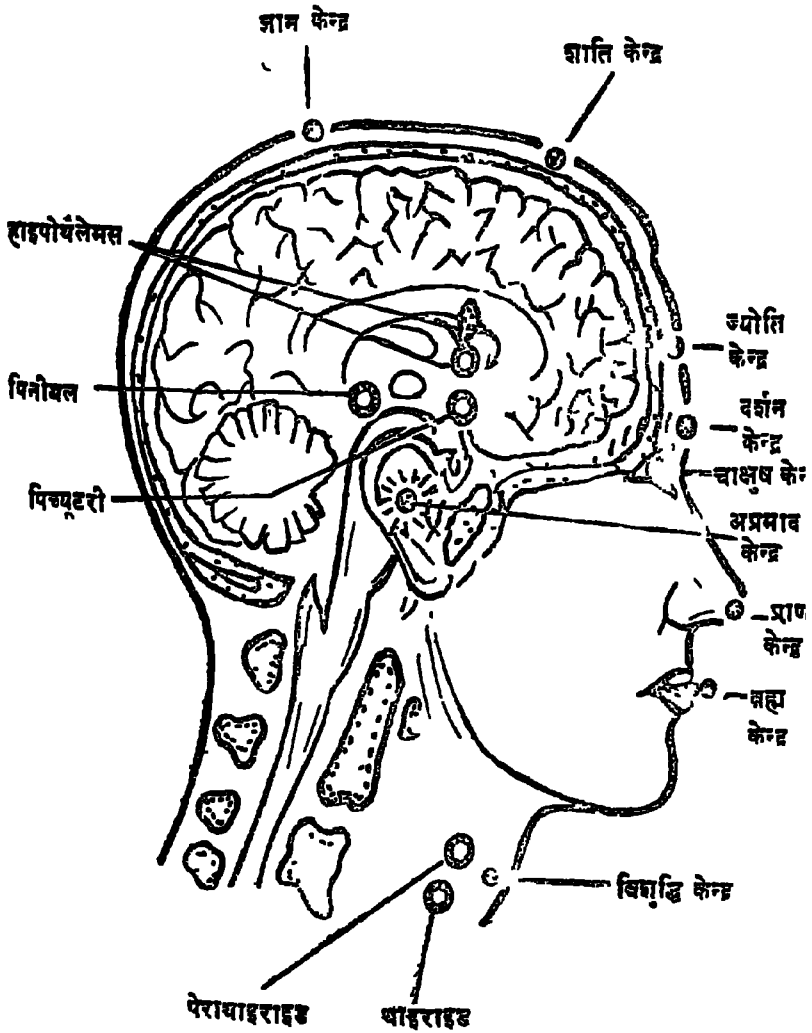
अन्त स्रावी ग्रन्थि-तन्त्र का संतुलन

वृत्तियो के आवेगात्मक वलो के उद्दीपन या शमन करने की मूलभूत चावी है—अन्त स्रावी ग्रन्थिया। इसलिए ये ही चैतन्य-केन्द्रो के सवादी केन्द्र है। अन्त स्रावी तन्त्र का असतुलन मस्तिष्क को प्रभावित करता है और चिंतन-धारा को दूषित या विकृत वनाता है। उदाहरणतः गोनाड्स की अधिक सक्रियता मन को विषयवासना या भय के चिंतन मे लगाए रखेगी। चैतन्य-केन्द्र प्रेक्षा का अभ्यास अन्त.स्रावी तन्त्र के सतुलन को पुन. स्थापित कर

व्यक्ति की विवेक-चेतना के विकास द्वारा चेतन मन की सम्यक् चिंतन-शक्ति को प्रबल बना सकता है और मौलिक मनोवृत्तियो के आवेगो को क्षीण कर सकता है।

अवचेतन मन से सम्पर्क

हमारे शरीर मे जितनी भी ग्रन्थिया हैं, वे सब अर्ध चेतन मन है। यह मस्तिष्क को भी प्रभावित करती है, इसलिए मस्तिष्क से भी अधिक मूल्यवान् हैं। इन्हे हमे जागृत करना है। यदि इन्हे सही साधनो के द्वारा जागृत करते हैं तो भय से मुक्ति मिलती है। भय से मुक्ति होने का अर्थ है सारी बाधाओ से मुक्त होना। हम चैतन्य-केन्द्रो—ग्रन्थियो पर ध्यान करें। वे सतुलित होगे। ज्यो-ज्यो हम उन केन्द्रो पर अधिक केन्द्रित होगे, वे और सतुलित होते जाएगे। उनके सतुलन से भय समाप्त होगा, आवेग समाप्त होगे, सारी बाधाए समाप्त होगी, एक नया आयाम खुलेगा, नया आनन्द, नई स्फूर्ति, नया उल्लास प्राप्त होगा।

मनोविज्ञान मानता है कि जो बात हमारे स्थूल मन तक पहुचती है, वह कारगर नही होती। उससे व्यक्ति का परिवर्तन नही हो सकता, तरगातीत अवस्था प्राप्त नही हो सकती। जब हम दर्शन-केन्द्र पर ध्यान करते हैं, तब हमारा विचार, हमारा सकल्प अन्तर्मन तक पहुच जाता है। वह सकल्प लेश्या-तत्र और अध्यवसाय-तत्र तक पहुच जाता है। तरगातीत अवस्था प्राप्त होती है, परिवर्तन घटित होने लगता है।

८.४ ४. निष्पत्तियां

चैतन्य-केन्द्र प्रेक्षा के तीन परिणाम

चैतन्य-केन्द्र प्रेक्षा के द्वारा ये तीन काम हो सकते हैं। चैतन्य-केन्द्र निर्मल हो सकते हैं, आनन्द केन्द्र जो सोया पडा है, मूर्च्छित है, वह जाग सकता है और शक्ति का सस्थान जो अवरुद्ध हो रहा है, विघ्न और बाधाओ से प्रताडित हो रहा है, वह फिर सक्रिय हो सकता है, उसकी ज्योति प्रज्वलित हो सकती है।

जब हम चैतन्य-केन्द्रो की प्रेक्षा करते हैं, तब विद्युत् की धारा, प्राण की धारा वहा इतनी तेज हो जाती है कि जमा हुआ मैल साफ हो जाता है और वह विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र-शुद्ध बन जाता है। निर्मलता आ जाती है और उस निर्मलता मे से चैतन्य अभिव्यक्त हो सकता है, बाहर प्रकट हो सकता है। चैतन्य-केन्द्रो की प्रेक्षा से और अधिक प्राणधारा वहा इकट्ठी होती

है और वे अधिक निर्मल बन जाते हैं। चैतन्य-केन्द्र प्रेक्षा का महत्त्वपूर्ण परिणाम है—चैतन्य-केन्द्रो की निर्मलता।

चैतन्य-केन्द्र प्रेक्षा का दूसरा परिणाम है—आनन्द-केन्द्र का जागरण। हमारे शरीर मे ऐसे केन्द्र है, जिनके जाग जाने पर व्यक्ति सदा सुख की स्थिति मे रहता है। आनन्द का केन्द्र हमारे भीतर है। यदि विद्युत् का, प्राण-धारा का, ठीक प्रवाह वहा पहुचे, उसे जगा पाए, तो फिर आनन्द ही आनन्द हो जाता है। समता, साम्य, अनुकूल और प्रतिकूल स्थिति मे एक समान भाव रखना सभव है। यह तभी सभव है कि वह आनन्द का केन्द्र जागृत हो जाए। चैतन्य-केन्द्र प्रेक्षा के द्वारा वह केन्द्र जागृत होता है।

चैतन्य-केन्द्र प्रेक्षा का तीसरा परिणाम है—शक्ति का जागरण। हमारे शरीर मे जो शक्ति के केन्द्र हैं, उन्हे चैतन्य-केन्द्र प्रेक्षा द्वारा जागृत करते है। हम चैतन्य-केन्द्रो की प्रेक्षा करे। हम इस सचाई को जान ले कि चित्त को अधिक-से-अधिक हृदय से ऊपर, कठ से ऊपर, सिर तक रखना लाभदायक होता है। बार-बार ऐसा करे तो हमारी वृत्तिया समाप्त हो सकती हैं, स्व-भाव बदल सकता है, व्यवहार बदल सकता है और चरित्र बदल सकता है। यह बहुत बडा रहस्य है, व्यवहार और आचरण को बदलने का, स्वभाव और आदतो को बदलने का।

पदार्थ प्रतिबद्धता से मुक्ति - अनिर्वचनीय आनन्द

इस मूर्च्छा को तोडने के लिए चेतना को जगाए। चेतना को व्यापक बनाने का अर्थ है चेतना की पदार्थ-प्रतिबद्धता को तोड देना। पदार्थ का उपयोग होगा, किन्तु चेतना पदार्थ से प्रतिबद्ध नही होगी। उपयोग करना और प्रतिबद्ध होना—दोनो अलग-अलग बाते हैं। रोटी खाना पदार्थ की उपयोगिता है। रोटी से बध जाना यह उसकी प्रतिबद्धता है। जिसकी चेतना जाग जाती है, वह भी रोटी खाता है। ध्यान करने वाला साधक भी रोटी खाता है, पानी पीता है, पैसा रखता है। ये जीवन के आवश्यक उपकरण है। सबके लिए जरूरी है। ध्यान करने का अर्थ यह नही है कि पदार्थ छूट जाए। ध्यान से पदार्थ नही छूटता। जब तक जीवन है, तब तक पदार्थ को नही छोडा जा सकता। आध्यात्मिक होने का यह अर्थ नही है कि भौतिक पदार्थ छूट जाए। पदार्थ का उपयोग नही छूटता, केवल पदार्थ की प्रतिबद्धता छूट जाती है। वह साधक पदार्थ मे बधा नही रहता, पदार्थ के चगुल मे फसा नही रहता। चेतना के जागरण का यह मुख्य परिणाम है। उसमे पदार्थ की उपयोगिता शेष रहती है, प्रतिबद्धता समाप्त हो जाती है। समस्या का मूल प्रतिबद्धता है, उपयोगिता नही।

जब तैजस लेश्या के स्पन्दन जागते हैं, तब व्यक्ति को अनिर्वचनीय आनन्दानुभूति होती है। उस आनन्द का प्रत्यक्ष अनुभव करने वाला ही उसे जान सकता है, वह उसे बता नही सकता। जिस व्यक्ति ने तैजस लेश्या का कभी प्रयोग नही किया, ध्यान नही किया, वह व्यक्ति इस स्थूल शरीर से परे भी कोई आनन्द होता है, इन विषयो से परे भी कोई सुखानुभूति है, नही समझ पाता, कल्पना भी नही कर पाता। जब तक प्रयोग से नही गुजरता है, तब तक उसे ज्ञात ही नही होता कि ऐसा अनिर्वचनीय सुख भी हो सकता है जिस सुख का अनुभव होता है, वह अपूर्व होता है। व्यक्ति सोचता है—मैंने मान रखा था कि सुख तो पदार्थ से ही मिलता है, किन्तु आज यह स्पष्ट अनुभव हो रहा है कि जैसा सुख तैजस लेश्या के स्पन्दनो के जागने पर होता है, वैसा सुख जीवन मे किसी भी पदार्थ से नही मिल सकता। भ्राति टूट जाती है, धारणाए बदल जाती हैं।

८.१० सारांश

मनोविज्ञान मे चित्त के अर्थ मे मुख्यतया मन का ही प्रयोग होता है। सामान्यतया इससे कोई कठिनाई नही होती। पर मन की व्यग्रता को कम करने, उसे एकाग्र करने एव अमन की अवस्था मे जाने के लिए चित्त को जानना जरूरी है। चित्त सचालक है, मन नौकर है। चित्त चैतन्य धर्मा है, मन जड तत्त्व है। चित्त स्थिर हो सकता है, मन स्थिर नही, एकाग्र हो सकता है। चित्त सभी प्राणियो मे होता है। मन केवल उन पाच इन्द्रिय वाले प्राणियो मे ही होता है। चित्त का सीधा सम्बन्ध हमारी आन्तरिक चेतना से है। मन का सम्बन्ध मात्र स्थूल व्यक्तित्व तक सीमित है। चित्त का कार्य है मात्र अनुभव करना, जानना, देखना। मन का कार्य है मनन करना, स्मृति, चिन्तन, कल्पना करना।

मनोविज्ञान मे चित्त और मन की स्पष्ट भेद रेखा नही मिलती। वहा पर चित्त/चेतना या मन का अध्ययन साथ ही किया जाता है। अत वहा एकाग्रता, शाति, आतरिक आनन्द जैसी चैतसिक अवस्थाओ का स्पष्ट अध्ययन प्राप्त नही होता। मनोविज्ञान के अनुसार चेतना मे तीन बाते पाई जाती है—ज्ञान, क्रिया एव भाव। फ्रायड के अनुसार मन के तीन स्तर हैं चेतन, अग्रचेतन, अचेतन।

हमारी चेतना के तीन स्तर हैं—चित्त, लेश्या एव अध्यवसाय। हमारे व्यक्तित्व के दो प्रकार है— (१) स्थूल/बाह्य व्यक्तित्व, (२) सूक्ष्म/या आन्तरिक व्यक्तित्व। इन दोनो का सचालन चैतन्य के द्वारा होता है। स्थूल व्यक्तित्व के तीन घटक है—शरीर, वाणी और मन। स्थूल व्यक्तित्व का सचालन करने वाली चैतन्य की धारा को चित्त कहा जाता है। आतरिक

व्यक्तित्व को सचालन करने वाली चैतन्य की धारा अध्यवसाय कहलाती है। आतरिक एव बाह्य दोनो को जोडने वाली चैतन्य की धारा लेश्या कहते हैं।

मनोविज्ञान के अज्ञात मन या अचेतन मन को अध्यवसाय कहा जा सकता है एव ज्ञात मन को मन। प्रेक्षाध्यान में जहा अनुभूति करने का प्रसग है वहा चित्त शब्द का ही प्रयोग होना चाहिए, मन शब्द का नही। सस्कार आतरिक व्यक्तित्व मे होते है। वे स्थूल व्यक्तित्व मे चित्त पर प्रकट होते है। स्थूल चित्त की क्रिया का सवहन मन करता है। व्यक्तित्व का रूपान्तरण मन के स्तर पर नही होता। वह आन्तरिक व्यक्तित्व के स्तर पर होता है। जब मन अधिक सक्रिय होता है तब चित्त दब जाता है। आतरिक आनन्द सूख जाता है। जब मन शात होता है, अमन की अवस्था मे जाता है तब चित्त अधिक सक्रिय होता है, दृष्टि मे परिवर्तन प्रारम्भ हो जाता है, चित्त की चचलता कम होती है, शक्ति क्षीण कम होती है, चित्त स्थिर हो जाता है। सत्य का साक्षात्कार होता है। घटना से प्रभावित नही होता। सत्य को सत्य की दृष्टि से देखना, चैतन्य मे प्रतिष्ठित होना ही समाधि को उपलब्ध होना है। इस स्तर पर व्यक्तित्व का रूपान्तरण हो जाता है।

समाधि का महत्त्व

आज स्वस्थ एव पूर्ण जीवन जीने के लिए समाधि की, ध्यान योग की सबको आवश्यकता है। इन्द्रिय और मन की सीमा मे जीने वाले लोग अनेक समस्याओ से ग्रसित हो जाते हैं। इनका समाधान किसी व्यक्ति या सरकार से सभव नही है। सरकार बाह्य व्यवस्था, रोटी, कपडा, मकान की कर सकती है, पर आतरिक समस्याओ का समाधान नही। आतरिक समस्याओ के समाधान के लिए समाधि का अभ्यास आवश्यक है।

पातजल योग दर्शन के अनुसार प्रगाढ एकाग्रता की अवस्था समाधि है। बौद्ध साधना पद्धति मे समाधि का अर्थ चित्त का दृढ स्थिरीकरण है। जैन दर्शन के अनुसार शुद्ध चैतन्य का अनुभव समाधि है। उसका पूर्व रूप ध्यान है। ध्यान नीद नही है। ध्यान मे आतरिक चेतना व जागरूकता अधिक सक्रिय हो जाती है, नीद मे बाह्य चेतना व आतरिक जागरूकता भी नही रहती है।

समाधि की तीन बाधक अवस्थाएं हैं—व्याधि, आधि एव उपाधि। असमाधि का मूल है—कषाय। स्थूल शरीर मे उसकी अभिव्यक्ति होती है —इन्द्रिय और मन की चचलता के रूप मे। वातावरण मे व्याप्त विषय— शब्द, रूप, गन्ध, रस एव स्पर्श निमित्त बनते है। आग मे घी का काम करते हैं। कषाय चैतन्य की ज्ञान शक्ति को सीमित, आनन्द को विकृत एवं शक्ति को तोडते हैं।

समाधि की प्रक्रिया है—प्रतिसंलीनता, समता, शोधन और चैतन्य अनुभव का अभ्यास। प्रतिसंलीनता अर्थात् बाहर से इन्द्रिय विषय भीतर न जाने पाये। जो भीतर से आ रहा है उसको समता भाव से देखना, नया बन्धन न हो, तटस्थ रहे। जो पहले से बन्धा है उसे बाहर निकाल दें। सफाई करें, शोधन करें। शेष जो शुद्ध चैतन्य है, उसका अनुभव करना समाधि है।

समाधि का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू है—चित्त शुद्धि का अभ्यास। प्रेक्षाध्यान मे चित्त शुद्धि पर विशेष ध्यान दिया गया है। साथ-साथ निमित्तो से बचाव, चचलता को दूर करने का अभ्यास भी सम्मिलित है। चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा चित्त की निर्मलता का एक विशेष प्रयोग है। यह चैतसिक प्रशिक्षण का महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

वैज्ञानिक दृष्टि से जो चैतन्य केन्द्र के स्थान है उन्ही स्थानो के मध्य नाड़ी-ग्रंथि तन्त्र के महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। इन्ही स्थानो के माध्यम से सवेग या कषाय बाहर व्यक्तित्व मे अभिव्यक्त होते हैं। ग्रन्थि-नाडी तन्त्र के स्रावो का सतुलन चैतन्य केन्द्र-प्रेक्षा के माध्यम से होता है। आध्यात्मिक दृष्टि से चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा ज्ञान केन्द्रों को जगाने का प्रयोग है। इससे वृत्ति, प्रवृत्ति एव पुनरावृत्ति के चक्र पर प्रहार होता है। इस अभ्यास का मुख्य प्रयोजन है विवेक चेतना का जागरण। इसके जागरण से चित्त निर्मल होता है। आन्तरिक आनन्द जागृत होता है। शक्ति सस्थान सक्रिय हो जाते हैं। चेतसिक प्रशिक्षण का तात्पर्य यही है कि जो चेतना नीचे के केन्द्रो पर अधिक रहती है। वह ऊपर के केन्द्रो पर रहने लग जाये। चित्त निर्मल बने, आन्तरिक शक्ति व आनन्द जागृत हो जाये।

८.१०.० सहायक सामग्री

१. चित्त और मन, आचार्य महाप्रज्ञ,
जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज)
२. अप्पाणं शरणं गच्छामि, आचार्य महाप्रज्ञ,
जैन विश्व भारती, लाडनू (राज)
३ प्रेक्षाध्यान · चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा, आचार्य महाप्रज्ञ,
जैन विश्व भारती, लाडनू (राज.)
४. भारतीय दर्शन मे चेतना का स्वरूप, डॉ श्रीकृष्ण सक्सेना
चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी-१
5. Glands—Our Invisible Guardians, By B.M-W. Kapp, M.D., The Rosicrucian Press, Ltd., Sanjose, California.
6 The mystery of the Ductless glands, The Rosicrucian Fellowship oceanside, California, U.S.A.

7. The mystery of mind, By Wilder penfield, Princeton New Jersey.

८.११.० अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions)

१ चित्त और मन मे क्या अन्तर है ?

२ मनोविज्ञान मे मन या चित्त की क्या अवधारणा है ? उसकी कार्य प्रणाली पर प्रकाश डालें ।

३ जीवन विज्ञान मे चेतना के मुख्य कितने स्तरो का अध्ययन किया जाता है ?

४ जीवन विज्ञान की चित्त की अवधारणाओ का मनोविज्ञान की अवधारणाओ से तुलना करे ?

५ चित्त की महत्ता पर प्रकाश डाले ।

६ समाधि का महत्त्व एव प्रयोजन स्पष्ट करें।

७ समाधि का स्वरूप क्या है ?

८ पातजल योग दर्शन, बौद्ध दर्शन एव जैन दर्शन मे प्राप्त समाधि की अवधारणा का तुलनात्मक विवेचन करे ।

९ समाधि, ध्यान और निद्रा मे क्या अन्तर है ?

१० समाधि के विघ्न क्या हैं ? वे किस प्रकार असमाधि उत्पन्न करते हैं ?

११ समाधि को प्राप्त करने की प्रक्रिया क्या है ?

१२ समाधि और चित्त शुद्धि का क्या सबध है ? चित्त शुद्धि मे प्रेक्षाध्यान की भूमिका का विवेचन करें ?

१३ चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा की वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विवेचना करे ?

१४ चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का आध्यात्मिक स्वरूप क्या है ?

१५ चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा के प्रयोजन एव निष्पत्तियो की चर्चा करें ?

अध्याय-९

भाव और भावात्मक प्रशिक्षण

(भाव, लेश्या एवं आभामण्डल)

१. भाव और मनोविज्ञान
२. लेश्या और भाव
३. लेश्या सिद्धांत : ऐतिहासिक अवलोकन
४. लेश्या और आभामण्डल
५. आभामण्डल : उपयोगिता और शक्तिजागरण
६. लेश्याध्यान :
   - वैज्ञानिक दृष्टिकोण
   - आध्यात्मिक दृष्टिकोण
   - प्रयोजन
   - निष्पत्तियां
७. सारांश
८. सहायक सामग्री
९. अभ्यासार्थ प्रश्न

९. भाव और भावात्मक प्रशिक्षण

९.१.० भाव और मनोविज्ञान

हम अपने जीवन मे प्रायः प्रसन्नता या अप्रसन्नता के भावो का अनुभव करते हैं। जब हम इन्द्रियो द्वारा ऐसी बात सुनते है या देखते हैं जो हमारे लिए सुखदायी प्रतीत होती है तो हम प्रसन्नता से भर जाते हैं। पर जब कोई कष्टदायक अनुभव होता है तो खिन्न हो जाते हैं। प्रसन्नता-अप्रसन्नता के अतिरिक्त हमे कभी-कभी ऐसे शक्तिशाली भावो का भी अनुभव होता है जैसे—क्रोध, भय, घृणा, प्रेम इत्यादि। मार्ग मे जाते समय यदि हमारा सामना सर्प से हो जाये तो प्राय हम भयभीत हो जाएगे। इसी प्रकार यदि कोई कार्य जिसे हम पसन्द न करते हो, बार-बार दोहराया जाए तो हम प्रायः क्रोधित हो जाएंगे। 'क्रोध, भय, प्रेम इत्यादि शक्तिशाली भाव मनोविज्ञान मे 'सवेग' कहलाते हैं।'[1] ये व्यवहार के शक्तिशाली प्रेरक होते हैं। ये अच्छे आचरण और बुरे आचरण के प्रेरक होते हैं। हमारी जीवन की अनेक समस्याए बुरे भाव या सवेगो के कारण पैदा होती है। उन समस्याओ के समाधान के लिए भावात्मक प्रशिक्षण आवश्यक है। अच्छे जीवन के लिए बुरे भावो का, सवेगो का परिष्कार जरूरी है। परिष्कार के लिए आधार और प्रक्रिया को जानना जरूरी है। भावो का आधार है—लेश्या। जैसी लेश्या होती है वैसा आभामण्डल होता है। जैसा आभामण्डल होता है, वैसे भाव एव सवेग होते हैं। सवेग परिष्कार की एक शक्तिशाली प्रक्रिया है—लेश्याध्यान।

हमारे जीवन के तीन पहलू हैं—ज्ञानात्मक, भावात्मक एव क्रियात्मक। हम जानते हैं यह हमारा ज्ञानात्मक पहलू है। हम भावना से जुडे हुए हैं—यह हमारा भावनात्मक पक्ष है। हम आचरण करते हैं—यह हमारा क्रियात्मक पक्ष है। जीवन विज्ञान का लक्ष्य है कि ये तीनो पक्ष परिष्कृत हो। जीवन की सारी समस्या अपरिष्कृत दृष्टिकोण, भाव एव आचरण से पैदा होती है।

सर्वप्रथम इन्द्रियो द्वारा उत्तेजको का ज्ञान या अनुभूति होती है। जिसे सवेदन कहा जाता है। इससे भावात्मक प्रभाव जुडता है। सवेदन के साथ सुखद या दुखद भाव जुडता है। उसके परिणाम स्वरूप क्रिया होती है। अनुभूति की भावात्मक अवस्था के विश्लेषण से यह कहा जा सकता है कि

---

1 सामान्य मनोविज्ञान—डॉ. एस. ए. माथुर

सवेदना से हमारे भीतर भाव उत्पन्न होते हैं। और वे तीव्र हो जाते हैं तो इनका सम्बन्ध सवेग से हो जाता है।

जब हमारी इच्छाओ की पूर्ति होती रहती है तो सुखद भाव उत्पन्न होते रहते हैं और जब बाधा उत्पन्न होती है तो दुःख का भाव अनुभव में आता है। क्रियाए तथा उनसे सम्बन्धित भाव निरन्तर चलते रहते हैं। सामान्यतया कोई भी समय ऐसा नही होता है जब हम सुखद अथवा दु खद भाव का अनुभव न करते हैं। ध्यान की परम्परा मे एक ऐसी भी अवस्था होती है जहा केवल ज्ञानात्मक पक्ष होता है जहा न सुखद भाव, न दुःखद भाव। मात्र तटस्थता का भाव। इसे स्पष्ट करते हुए डॉ एस. एन. शर्मा लिखते है—"कभी-कभी एक ऐसी भी अवस्था आती है जिसमे तटस्थता की स्थिति कही जाती है परन्तु मनोवैज्ञानिको ने इस अवस्था को भावात्मक अवस्था का अग माना है। कुछ विद्वान इस मत के पक्ष मे नही हैं।"[1]

भावात्मक अवस्था अत्यन्त चचल एव क्षणिक होती है। यह भावात्मक चचलता मन को चचल बनाती है। मन की अति चचलता से तनाव उत्पन्न होता है एवं शक्ति का अपव्यय होता है। शक्ति अर्जन के लिए, तनाव मुक्ति के लिए, मन की एकाग्रता के लिए भाव विशुद्धि को जानना आवश्यक है। भाव विशुद्धि के लिए लेश्या, आभामण्डल, रंग एव ध्यान के पारस्परिक सम्बन्धो का ज्ञान अत्यन्त उपयोगी एव सहयोगी है।

६.२.० लेश्या और भाव

हमारी इस दुनिया मे एक भी व्यक्ति ऐसा नही है, जिसे सर्वथा बुरा कहा जा सके। हम जिसको बुरा मानते हैं, वह अच्छा भी है और जिसे अच्छा मानते है, वह बुरा भी है। अच्छाई और बुराई—दोनो साथ-साथ चलती है। अन्तर इतना सा होता है कि अच्छाई जब उभरकर सामने आती है तब बुराई नीचे रह जाती है इसलिए हमे उस बिन्दु की खोज करनी है, जहा व्यक्ति का रूपातरण होता है या जो व्यक्ति को रूपातरित करता है। खोज से यह निष्पत्ति हुई कि वह बिन्दु है लेश्या। लेश्या एक ऐसा चैतन्य स्तर है, जहा पहुंचने पर व्यक्ति का रूपातरण घटित होता है। भावो का परिष्कार होता है।

---

१. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, पृष्ठ १०३, हर प्रसाद भार्गव ४।२३० कचहरी घाट आगरा-४।

६.२.१ चेतना : तीन स्तर
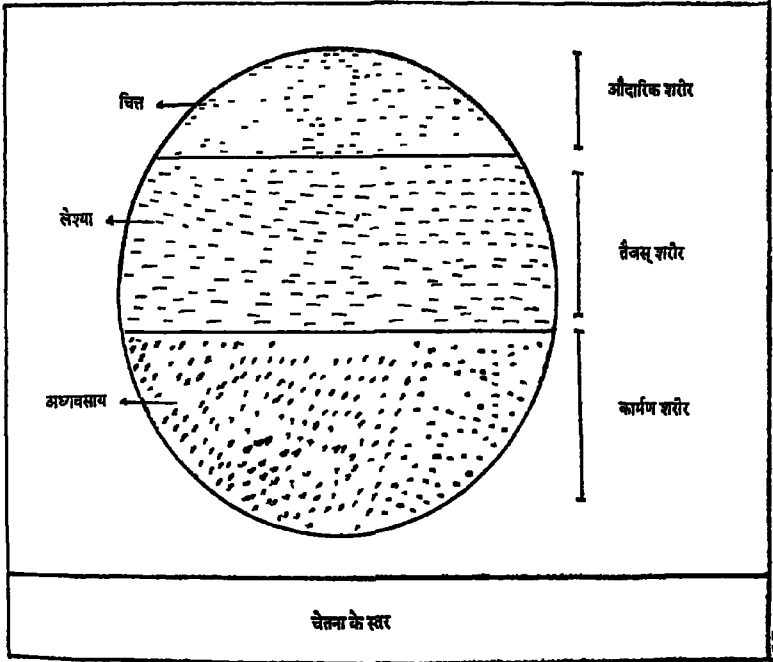
चेतना के स्तर

चेतना के स्तर

चेतना के तीन स्तर हैं—

- स्थूल चेतना का स्तर चित्त—यह स्थूल शरीर (औदारिक शरीर) के साथ कार्यशील रहता है।
- लेश्या का स्तर—यह विद्युत शरीर (तैजस शरीर) के साथ काम करता है।
- अध्यवसाय का स्तर—यह अतिसूक्ष्म शरीर (कर्मशरीर) के साथ काम करता है।

शरीर तीन हैं—स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और अतिसूक्ष्म शरीर। स्थूल शरीर है—औदारिक, सूक्ष्म शरीर है—तैजस और अतिसूक्ष्म शरीर है—कर्म शरीर। इन तीन स्तरो पर चेतना के तीन आयाम सामने आते हैं। एक है—चित्त चेतना। दूसरी है—लेश्या चेतना। तीसरी है—अध्यवसाय चेतना। चित्त का सम्बन्ध हमारे स्थूल शरीर से है। चित्त, मन और इद्रिया—ये सब स्थूल शरीर से सबद्ध है। लेश्या हमारे स्थूल शरीर से सबद्ध नही है। जिनके मस्तिष्क है, सुषुम्ना है, नाडी सस्थान है उनके लेश्या होती है तो जिन जीवो मे ये नही होते, केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय है, जैसे वनस्पति, उनके

भी लेश्या होती है।

यह लेश्या स्तर भावो का निर्माण करने वाला स्तर है। यह चेतना स्तर सबसे अधिक सक्रिय और जागृत होता है। जितनी स्नायविक क्रियाए है, वे सारी स्थूल शरीर से सम्बन्ध रखती हैं। मन का कोई भी विचार, वाणी की कोई भी प्रवृत्ति, शरीर की कोई भी क्रिया और बुद्धि या चित्त की कोई भी क्रिया इस स्थूल शरीर के तन्त्र के बिना, स्नायविक योग के बिना नही होती। ज्ञानवाही स्नायु और क्रियावाही स्नायु—दोनो प्रकार के स्नायु इन सारी क्रियाओ का सपादन करते हैं किंतु लेश्या के लिए इन स्नायुओ की कोई अपेक्षा नही है। यह स्नायु से परे, स्थूल शरीर से परे है। यहा यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आत्म-नियन्त्रण स्नायविक स्तर पर होता है और आत्म-शोधन लेश्या के स्तर पर होता है।

६.२.२ चेतना स्तर का निर्माण
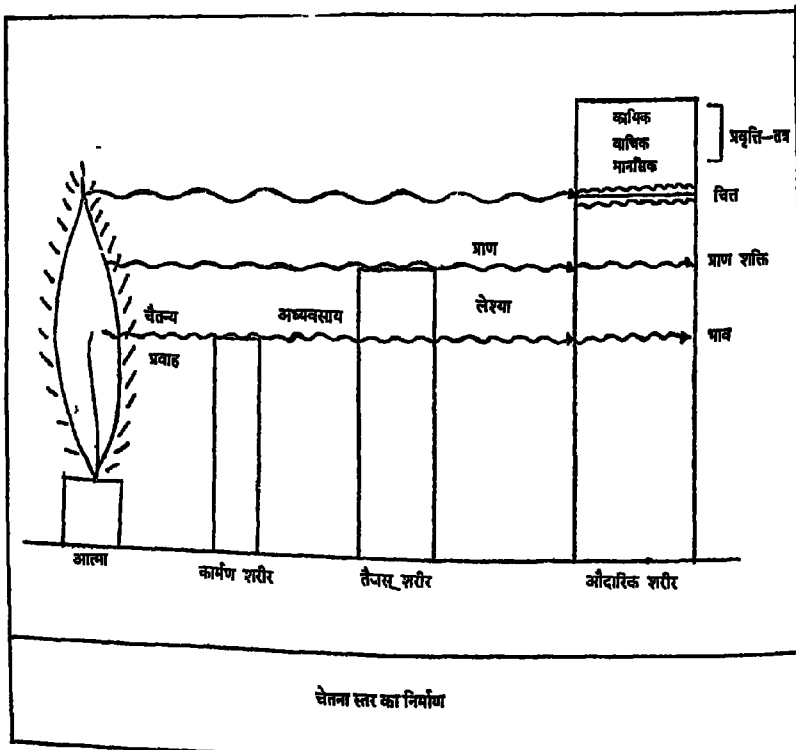
चेतना स्तर का निर्माण

हम चैतन्य और चेतना स्तर के क्रम को समझें। मूल है चैतन्य-आत्मा। चैतन्य की रश्मिया अनेक दिशाओं मे बढ़ती हैं। यह चैतन्य की रश्मिया कर्म शरीर के कषायो के साथ सक्रिय होती है तब अध्यवसाय स्तर का निर्माण होता है। अध्यवसाय के स्पन्दन आगे बढ़ते हैं और तैजस् शरीर

के साथ सक्रिय होते है तब लेश्या स्तर का निर्माण होता है। इसके द्वारा सारे भाव निर्मित होते है। जितने भी अच्छे या बुरे भाव हैं, वे सारे लेश्या-तन्त्र के द्वारा निर्मित होते हैं। लेश्या के स्पन्दन आगे बढते हैं और स्थूल शरीर मे प्रवेश करते हैं। वहा वे प्रभावित करते है ग्रथि तत्र को। ग्रन्थि तत्र के माध्यम से वे भावो के रूप मे प्रकट होते हैं।

स्थूल शरीर के साथ आत्मा का स्पन्दन जुडता है वहा चित का निर्माण होता है। चित्त की अभिव्यक्ति मस्तिष्क अर्थात् नाडी तन्त्र के माध्यम से होती है। इसके द्वारा प्रवृत्ति तत्र का सचालन होता है।

पीछे से आनेवाले भाव चित्त के सम्पर्क मे आते है। चित्त कभी उनसे प्रभावित होता है। कभी वह नही भी होता है। भावो की मदता एव चित्त की जागरुक अवस्था मे प्रभावित नही होता। चित्त की अजागरुकता एव भावो की तीव्रता होने पर प्रभावित होता रहता है। भावो से प्रभावित चित्त अपना स्वतत्र निर्णय नही कर पाता। जिस दिशा मे भाव प्रेरित करते हैं उसी दिशा मे प्रवृत्ति तत्र का सचालन होता है। व्यक्ति का वैसा ही आचरण और व्यवहार होने लगता है।

भावो की मदता मे चित्त अप्रभावित रहने लगता है। अप्रभावित चित्त स्वतत्र निर्णय करता है। आचरण एव व्यवहार को परिष्कृत करने मे सक्षम हो जाता है। भावो की तीव्रता को कम करने, आचरण एव व्यवहार को परिष्कृत करने के लिए लेश्या-परिवर्तन का ज्ञान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

६.३.० लेश्या सिद्धान्त : ऐतिहासिक अवलोकन

लेश्या का सिद्धात पहले दार्शनिक जगत् मे चर्चित था और आज वह ओरा (Awra), आभामण्डल के नाम से वैज्ञानिक चर्चा का विषय बन चुका है। नाम बदल सकता है पर सिद्धात नही है। आज विज्ञान के क्षेत्र मे 'ओरा पर काफी चर्चा हो रही है। दो शब्द हैं--ओरा और हेलो। पूरे शरीर के चारो ओर जो वलय होता है, वह ओरा है, आभामण्डल है। जो सिर के चारो ओर मडलाकार मे होता है, वह हेलो है, भामण्डल है। महापुरुषो के सिर के पीछे जो एक ज्योतिर्मय चक्राकार मण्डल दिखाया जाता है, उसका नाम है, भामण्डल। आभामण्डल और भामण्डल ये दोनो बहुत चर्चित हो गये हैं। इनके फोटो भी लिए गए हैं। किरिलियन फोटोग्राफी इस विषय मे काफी प्रसिद्ध हो चुकी है। इस क्षेत्र मे और भी अनेक लोग काम कर रहे हैं।

लेश्या का सिद्धात आज वैज्ञानिक सिद्धात बन चुका है। कम से कम ढाई हजार वर्ष की यात्रा इस सिद्धात ने की है। यह सिद्धात भगवान महा-वीर के समय था और इसका सबसे बडा प्रमाण है जैन आगम—आचाराग

सूत्र का यह शब्द—'अवहिलेस्से'।[1] सबसे प्राचीन आगम माना जाता है—आचारांग। उसमे लेश्या शब्द का प्रयोग प्राप्त है। महावीर से लेकर आज तक यह लेश्या का सिद्धात बराबर चल रहा है।

भगवान महावीर ने जिस लेश्या सिद्धात का प्रतिपादन किया, वह दो धाराओ मे चलता है—एक धारा है भाव की और दूसरी धारा है रंग की। भाव और रंग—इन दोनो का योग, यह है लेश्या का सिद्धात। यह अध्यात्म का महत्त्वपूर्ण सिद्धात है। लेश्या को छोड़कर अध्यात्म की बात नही कही जा सकती। लेश्या-आभामण्डल हमारा एक दर्पण है, जिसमें व्यक्ति अपने आपको देख सकता है, अपने विचारों और भावनाओ को देख सकता है, अपने आचार और व्यवहार को देख सकता है।

लेश्या का यह सिद्धात भगवान् महावीर की दार्शनिक जगत् को बहुत बडी देन है। दर्शन और अध्यात्म जगत् मे इसका मूल्य सदा रहा है। आज लेश्या का सिद्धात वैज्ञानिक जगत् मे प्रतिष्ठित होता जा रहा है। वह समय आने वाला है—जहा निदान करने के बहुत सारे यंत्र नाकामयाव होगे वहा यह आभामण्डल का सिद्धात और यह निदान का दर्पण अपनी शक्तिशाली भूमिका निभाने के लिए प्रस्तुत रहेगा। तीन महीने या छह महीने पहले यह घोषणा की जा सकेगी—क्या बीमारी होने वाली है? यह भी बताया जा सकेगा—कब मौत होने वाली है? यह विषय आज विकास की दिशा मे गतिशील बना हुआ है और इससे कुछ नई संभावनाएं जन्म लेने वाली हैं। ऐसा विषय ऐतिहासिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक सब दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण और मननीय है।

९.३.१ लेश्या : शब्द मीमांसा

लेश्या हमारी चेतना की एक रश्मि है। शब्द भी बड़ा जटिल खोजा गया—लेश्या। इस शब्द पर भी बहुत उलझने पैदा हुई हैं। लेश्या का अर्थ किया गया है—ज्योति-रश्मि। जैसे सूरज की रश्मियां होती हैं वैसे ही हमारी चेतना की रश्मिया होती हैं। चेतना हमारे भीतर है किंतु उसकी किरणें बाहर तक फैल जाती हैं। जैन आगम शास्त्र—नन्दी सूत्र की चूर्णि मे इस शब्द पर बहुत ध्यान दिया गया। यह शब्द है रस्सी (रश्मि)। रस्सी से बना लस्सी और उससे बन गया—लेस्सा-लेश्या। एक समीकरण बन गया—

रस्सी→लस्सी→लेस्सा=लेश्या।

९.३.२ लेश्या की परिभाषा

लेश्या एक प्रकार का पौद्गलिक पर्यावरण है। जीव के चारो ओर रश्मियो का आवरण है। इसकी खोज जीव और पुद्गल के सम्बन्धो का

1. आयारो ६।१०६।

अध्ययन करते समय हुई। जीव से पुद्गल (matter) प्रभावित होते हैं। और पुद्गल से जीव प्रभावित होते हैं। जीव को प्रभावित करने वाले पुद्गलो के अनेक वर्ग हैं। उनमे से एक वर्ग का नाम लेश्या है। उस पुद्गल वर्ग से प्रभावित होने वाले आत्म-परिणामो को भी लेश्या कहा गया है। प्राचीन शास्त्रो मे लेश्या की अनेक परिभाषाए मिलती हैं, जैसे[1]—

१ योग-परिणाम—योग अर्थात् मन, वचन व काया की प्रवृत्ति के साथ सयुक्त परिणाम अर्थात् भाव।

२ कषायोदय रजित योग प्रवृत्ति—कषाय अर्थात् भाव या सवेग के आने पर उससे रजित योग—मन, वचन व काया की प्रवृत्ति।

३. कर्म-निष्यन्द—अर्थात् कर्मों का प्रवाह। कर्म की एक प्रकृति है—कषाय। उसका प्रवाह।

आचार्य श्री तुलसी के अनुसार लेश्या की परिभाषा इस प्रकार है—

"योगवर्गणान्तर्गतद्रव्यसाचिव्यात् आत्मपरिणामो लेश्या।"[2]

'योगवर्णणा के अन्तर्गत पुद्गलो की सहायता से होने वाले आत्म-परिणाम (भाव) को लेश्या कहते हैं।'

६.३.३ लेश्या के प्रकार

लेश्या के तीन प्रकार हैं—कर्मलेश्या, नोकर्मलेश्या और भाव लेश्या। दूसरी भाषा मे कहे तो लेश्या के दो प्रकार हैं—पौद्गलिक लेश्या और चैतसिक लेश्या अथवा द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या। पौद्गलिक लेश्या के दो प्रकार हैं—कर्म लेश्या और नोकर्म लेश्या। उत्तराध्ययन के लेश्या ध्यान के प्रारम्भ मे ही छह कर्म लेश्याओ का उल्लेख है—

लेसज्झयण पवक्खामि, आणुपुव्वि जहक्कम।
छण्ह हि कम्मलेसाण, अणुभावे सुणेह मे॥

उत्तरज्झयणाणि ३४।१

मैं क्रमानुसार लेश्या अध्ययन का निरूपण करूगा। छहो कर्म-लेश्याओ के अनुभावो (परिणामो) को तुम मुझसे सुनो।

कर्म लेश्या

हमारे भीतर कार्मण शरीर मे कर्म का सचय है। जब वे कर्म प्रवाहित होकर विद्युत शरीर, तेजस् शरीर मे प्रकट होते हैं तब वह कर्म लेश्या

१ "उत्तरज्झयणाणि"—वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, सपादक विवेचक-युवाचार्य महाप्रज्ञ, प्रकाशक जैन विश्व भारती, पृष्ठ-३१८।

१ जैनसिद्धांत दीपिका, ४।२८, आचार्य श्री तुलसी।

कहलाती हैं। कर्म पुद्गल-परमाणुओ से निर्मित होते है, उन पुद्गल-परमाणुओ मे वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श ये चारो होते हैं। उनमे वर्ण मनुष्य के शरीर और मन को अधिक प्रभावित करता है इसलिए वर्ण के आधार पर लेश्याओ के नामकरण प्रस्तुत किये गये है।

वर्ण के आधार पर लेश्या के छः प्रकार है—

कृष्णलेश्या, नीललेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

नोकर्म लेश्या

सूर्य का प्रकाश, विभिन्न रंग की किरणे, रश्मिया या ज्योति नोकर्म लेश्या है। शरीर का वर्ण, रत्नो की रश्मिया आदि भी नोकर्मलेश्या कहलाती है।

भाव लेश्या—

कर्म लेश्या का जैसा प्रवाह भीतर से आता है, वैसी ही हमारी आत्म परिणति हो जाती है। वह भाव लेश्या बन जाती है। आत्मा के परिणामो का अपना कोई रग नही होता। सामने जिस रग के परमाणु आते हैं, आत्मा का परिणाम उस रग मे बदल जाता है। वैसी ही हमारी भाव-लेश्या हो जाती है। जैसे स्फटिक का अपना कोई रग नही होता। उसके सामने काला रग आता है तो वह काला, पीला रग आता है तो वह पीला, लाल रग आता है तो वह लाल बन जाता है।

६. ३. ४. लेश्या : उपयोगिता

एकाग्रता का विकास : एकाग्रता के विकास के लिए लेश्या को समझना बहुत जरूरी है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण का निष्कर्ष है कि ध्यान एक विषय पर चार सेकण्ड से अधिक नही टिकता। जीवनविज्ञान इसे सपूर्ण रूप से स्वीकार नही करता। उसके अनुसार एक ही विषय पर ध्यान ५-१० घटा या उससे अधिक भी स्थिर रह सकता है। किंतु जिसने ध्यान का, एकाग्रता का अभ्यास ही नही किया, उसका ध्यान विचलित हो सकता है, जल्दी-जल्दी बदल सकता है। इस दृष्टि से मनोविज्ञान के ध्यान-विचलन सिद्धात से जीवनविज्ञान की अस्वीकृति नही है। जो ध्यान करने का अभ्यस्त नही होता उसका ध्यान चार-पाच सेकण्ड से अधिक एक स्थान पर टिक नही सकता। सभव है प्रत्येक सेकण्ड मे बदलता रहे। उससे भी कम समय मे वह परिवर्तित हो सकता है। मन की बड़ी तीव्र गति है। न जाने एक सेकण्ड मे वह कितनी बार कहा-कहा चला जाता है? यह अकन गलत नही है किंतु कोई भी अकन या परीक्षण अतिम नही हो सकता। प्रेक्षा करते-करते हमारी ऐसी स्थिति का निर्माण होता है कि हम एक विषय पर लगातार अवधान

करने मे सफल होते हैं। अवधान स्थायी बन जाता है। यह मनोविज्ञान के परीक्षण का विषय नही बन सकता। इसका कारण भी है। जब तक लेश्या का सिद्धात स्पष्ट नही होता तब तक ध्यान-विचलन का सिद्धांत भी आगे नही बढ सकता। अध्यवसाय के आधार पर लेश्या मे परिवर्तन आता है। लेश्या के आधार पर भाव परिवर्तन होता है। भाव परिवर्तन के आधार पर विचार-परिवर्तन होता है। विचार का अकन हो सकता है, भाव परिवर्तन, का अकन नही किया जा सकता। विचार का कोई स्वतत्र अस्तित्व नही है, स्वतत्र मूल्य नही है। सारे विचार भावतंत्र के आधार पर पैदा होते हैं और विलीन होते है।

विचारतत्र, भावतत्र और अध्यवसायतत्र तीनो जुडे हुए हैं। अध्यवसाय से लेश्या और लेश्या से भाव पैदा होते हैं। भाव से विचार पैदा होते हैं। यदि भाव स्थिर बनते है, तेजोलेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या स्थिर होती है तो विचार अपने आप स्थिर हो जाएगे। अवधान स्थायी होगा। एकाग्रता का विकास होगा।

शांति और वैभव का प्रश्न

शाति और वैभव को समझने के लिए लेश्या को अपनाना बहुत उपयोगी है। शाति और अशाति का प्रश्न लेश्याओ से जुडा हुआ है। यह शुक्ललेश्या और कृष्णलेश्या का प्रश्न है। यह पद्मलेश्या और नीललेश्या का प्रश्न है। यह तेजोलेश्या और कापोतलेश्या का प्रश्न है। यदि हम लेश्याओ के मर्म को समझ लेते है तो प्रश्न समाहित हो जाते हैं।

भगवान महावीर से पूछा गया—'भते'! अल्प ऋद्धिवाले जीव कौन हैं ? महान् ऋद्धिवाले जीव कौन है ?' भगवान ने कहा—कृष्णलेश्या के जीव अल्प ऋद्धिवाले होते हैं, दरिद्र होते हैं। नीललेश्या के जीव उनकी अपेक्षा से महर्द्धिक होते हैं, तेजो-लेश्या के जीव अधिक महर्द्धिक होते हैं, पद्म लेश्या के जीव और अधिक ऋद्धिशाली होते हैं और शुक्ल लेश्या के जीव सबसे अधिक ऋद्धिशाली होते है। कृष्णलेश्या के जीव सबसे कम वैभवशाली होते हैं और शुक्ललेश्या के जीव उससे अधिक वैभवशाली होते हैं।' महावीर ने यह नही कहा कि करोडपति होता है, अरबपति होता है, वह महर्द्धिक है और जिसके पास हजार रुपये हैं वह अल्प ऋद्धिवाला है। उनके मूल्याकन का दृष्टिकोण भिन्न है।

यदि वैभवशालिता और सपदा का दृष्टिकोण हमारे पास होता तो मन की अशाति का प्रश्न इतना जटिल नही होता। आज समूचे विश्व में मन की अशाति का प्रश्न बहुत ही जटिल बना हुआ है। उसका यही कारण है कि आदमी सपदा को एक आख से देखता है। बाहर की सपदा को ही सपदा मानता

है। एक आंख से देखे किन्तु उसकी दूसरी आंख बन्द नही होनी चाहिए। वह उस दूसरी आंख से भीतरी सपदा भी देखे। भीतर भी झाके। तीसरी आंख खोलने के लिए लेश्या का सिद्धात बहुत महत्त्वपूर्ण है।

व्यक्तित्व की पहचान—व्यक्ति को पहचानने मे मात्र व्यवहार और मानसिक जगत् की परख पर्याप्त नही। इससे व्यक्ति को पहचानने मे बहुत बडा धोखा हो सकता है। कोई व्यक्ति बहुत क्रूर होता है किन्तु दूसरे से मिलने मे इतना विनम्र व्यवहार करता है कि व्यक्ति धोखे मे आ जाता है। व्यावसायिक जगत् मे न जाने कितने धोखे चलते हैं। मायावी व्यक्ति अपने आपको मिलनसार, विनम्र और स्वार्थ से ऊपर उठा हुआ प्रदर्शित करता है किन्तु जब उसका अन्तरग स्वरूप सामने आता है तो दोनों मे कोई सामञ्ज-स्य ही नजर नही आता। दोनो एक दूसरे से अत्यन्त विपरीत। इसलिए व्यक्तित्व की पहचान की कसौटी मानसजगत् और व्यवहारजगत् नही है किन्तु भावजगत् है, लेश्या-जगत् है, जहा कोई धोखा नही हो सकता। जो जैसा है, वैसा रूप ही वहा मिलेगा।

९. ४. ० लेश्या और आभामण्डल

महावीर ने लेश्या के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। यह महत्त्वपूर्ण सिद्धात है। प्रत्येक व्यक्ति के पास एक आभामण्डल और एक भावमण्डल होता है। हमारी चेतना है। लेश्या है। चेतना के साथ-साथ जो एक पौद्गलिक सस्थान है, उसे आभामण्डल कहते हैं। चेतना हमारे तैजस शरीर को सक्रिय बनाती है। जब यह विद्युत शरीर सक्रिय होता हैं तब वह किरणो का विकिरण करता है। ये विकिरण व्यक्ति के शरीर के चारो ओर वलयाकार घेरा बना लेते है। यह आभामण्डल है। जैसा भावामण्डल होता है वैसा ही आभामण्डल बनता है। भावमण्डल विशुद्ध होगा तो आभामण्डल भी विशुद्ध होगा। भावमण्डल मलिन होगा तो आभामण्डल भी मलिन होगा, धब्बों वाला होगा। हम भावधारा (लेश्या) को बदलकर आभामण्डल को बदल सकते हैं।

लेश्या : आभामण्डल—हमारे अन्तःकरण मे, सूक्ष्म शरीर के भीतर छह लेश्याएं हैं, भाव का मण्डल है और उसका संवादी अंग है—आभामण्डल। वह हमारे शरीर के चारो ओर वलयाकार रूप मे होता है। मनुष्य मे जैसी लेश्या होती है वैसा उसका आभामण्डल बनता है, इस सिद्धांत के अनुसार मनुष्य के आभामण्डल भी छह प्रकार के बन जाते हैं। छ वर्णवाले पुद्गल-परमाणु मनुष्य की विचार धारा को प्रभावित करते हैं। उनके आधार पर मनुष्य की विचारधारा भी छ रंगी बन जाती है।

९.४.१. आभामण्डल : व्यक्तित्व की पहचान

वर्ण अच्छे और बुरे दोनो प्रकार के होते हैं। काला वर्ण अच्छा भी होता है और बुरा भी होता है। प्रशस्त भी होता है, अप्रशस्त भी होता है। मनोज्ञ भी होता है, अमनोज्ञ भी होता है। श्वेत वर्ण भी अच्छा-बुरा, प्रशस्त-अप्रशस्त या मनोज्ञ-अमनोज्ञ होता है। कृष्ण, नील और कापोत लेश्या के आभामण्डल मे होने वाले कृष्ण, नील और कापोत वर्ण अप्रशस्त होते हैं, अच्छे नही होते हैं। तेजस्, पद्म और शुक्ल लेश्या के आभामण्डल मे होने वाले रक्त, पीत और श्वेत वर्ण प्रशस्त होते है।

भावधारा की विचित्रता के आधार पर आभामण्डल के वर्ण भी विचित्र बन जाते हैं। वर्ण की विचित्रता भावधारा की विचित्रता का बोध कराने मे सक्षम होती है। हम भावधारा को साक्षात् नही देख पाते, नही जान पाते, वर्णों की विचित्रता के आधार पर भावधारा का अनुमान कर सकते हैं।

आभामण्डल मे काले रंग की प्रधानता हो तो मानना चाहिए—व्यक्ति का दृष्टिकोण सम्यक् नही है, आकाक्षा प्रबल है, प्रमाद प्रचुर है, कषाय का आवेग प्रबल और प्रवृत्ति (क्रिया) अशुभ है, मन और काया का सयम नही है, इन्द्रियो पर विजय प्राप्त नही है, प्रकृति क्षुद्र है, बिना विचारे काम करता है, क्रूर है और हिंसा मे रस लेता है।

आभामण्डल मे नील वर्ण की प्रधानता हो तो माना जा सकता है—व्यक्ति मे ईर्ष्या, कदाग्रह, माया, निर्लज्जता, आसक्ति, प्रद्वेष, शठता प्रमाद, यशलोलुपता, सुख की गवेषणा, प्रकृति की क्षुद्रता, बिना विचारे काम करना, अतपस्विता, अविद्या, हिंसा मे प्रवृत्ति—इस प्रकार की भावधारा और प्रवृत्ति है।

आभामण्डल मे कापोत वर्ण की प्रधानता हो तो माना जा सकता है—व्यक्ति मे वाणी की वक्रता, आचरण की वक्रता, प्रवचना, अपने दोषो को छिपाने की प्रवृत्ति, मखौल करना, दुष्ट वचन बोलना, चोरी करना, मात्सर्य, मिथ्यादृष्टि—इस प्रकार की भावधारा और प्रवृत्ति है।

आभामण्डल मे रक्त वर्ण की प्रधानता हो तो माना जा सकता है—व्यक्ति नम्र व्यवहार करने वाला, अचपल, ऋजु, कुतूहल न करने वाला, विनम्री, जितेन्द्रिय, मानसिक समाधि वाला, तपस्वी, धर्म मे दृढ आस्था रखने वाला, पाप भीरु और मुक्ति की गवेषणा करने वाला है।

आभामण्डल मे पीत वर्ण की प्रधानता हो तो माना जा सकता है कि वह व्यक्ति अल्प क्रोध, मान, माया और लोभ वाला, प्रशात चित्त वाला, समाधिस्थ, अल्पभाषी, जितेन्द्रिय और आत्म-सयम करने वाला है।

आभामण्डल मे श्वेत वर्ण की प्रधानता हो तो माना जा सकता है—वह व्यक्ति प्रशात चित वाला, जितेन्द्रिय, मन. वचन, और काया का सयम करने वाला शुद्ध आचरण से सम्पन्न, ध्यानलीन और आत्म-सयम करने वाला है।

६. ४. २. आभामण्डल : विज्ञान का मत—

आज आभामण्डल का अस्तित्व वैज्ञानिको द्वारा मान्य हो गया है। उसके फोटो लिये गये हैं। अमेरिकन महिला वैज्ञानिक डा. जे. सी. ट्रस्ट ने सूक्ष्म सवेदनशील केमरे से आभामण्डल के फोटो लिये। उसने वताया—"मैंने देखा कि जो लोग वाहर से साफ सुथरे रहते हैं किन्तु भीतर मे मलिनता को सजोए रहते हैं, उनके आभामण्डल अत्यन्त विकृत और गंदे होते हैं। जो लोग शरीर से साफ-सुथरे नही हैं किन्तु भीतर से पवित्र हैं, उनके आभामण्डल वहुत स्वच्छ और निर्मल होते हैं।

दूसरि महिला लिलियन ने कहा—'मैं एस्ट्रल पोजेक्शन के द्वारा यथार्थ वात को जान लेती हूं। मैं लोगो के आभामण्डल मे प्रविष्ट होकर उनके चरित्र का वर्णन कर सकती हूं किन्तु शरावी आदमी के चरित्र को मैं नही जान सकती क्योकि शरावी आदमी का आभामण्डल अस्त-व्यस्त हो जाता है। वह इतना धुंधला होता है कि उसके रंगो का पता ही नही चलता।'

हमारी भावनाएं, हमारे आचरण आभामण्डल के निर्माता हैं। जब भावना और आचरण पवित्र होता है तब आभामण्डल वहुत सशक्त और निर्मल होता है। जब भावधारा और चरित्र मलिन होता है तब आभामण्डल धूमिल, विकृत और दूषित हो जाता है।

सोवियत रूस के वैज्ञानिक विशेषज्ञ सेमयोन किर्लियान तथा इनकी वैज्ञानिक पत्नी बेलोन्टिवा ने फोटोग्राफी की एक विशेष विधि का आविष्कार किया। उस विधि द्वारा प्राणियो और पौधे के आस-पास होने वाले सूक्ष्म विद्युतीय गतिविधियों का छायाकन किया जा सकता है। जव एक पौधे से तत्काल तोडी गई पत्ती की सूक्ष्म गतिविधियो की फिल्म खीची गई तो आश्चर्यकारी दृश्य सामने आये। पहले चित्र मे पत्ती के चारो ओर स्फुलिगो, झिलमिलाये और स्पंदी ज्योतियो के मंडल दिखाई दिये। अगले दस घण्टो के छाया चित्रो मे आलोक मंडल पूरी तरह क्षीण हो चुके थे। इसका तात्पर्य है कि पत्ती की तब मौत हो चुकी थी।

किर्लियान दम्पति ने रुग्णपत्ती की फिल्म उस विशेष विधि से खीची। उसमे आलोक मंडल प्रारम्भ से ही कम था। वह शीघ्र ही समाप्त हो गया। किर्लियान दम्पति ने उस विशेष विधि द्वारा अत्यन्त निकट से मानव

शरीर के छाया चित्र खीचे। उन छाया-चित्रो मे गर्दन, हृदय, उदर आदि अवयवो पर विभिन्न रग के सूक्ष्म धब्बे दिखाई दिये। वे उन अवयवो से विसर्जित होनेवाली विद्युत ऊर्जाओ के द्योतक थे।

लेश्या वनस्पति के जीवो मे भी होती है। पशु-पक्षी तथा मनुष्य मे भी होती है इसलिए आभामडल भी प्राणी मात्र मे होता है।

आभामडल के प्रकार

ओकल्ट साइन्स के पुरस्कर्ताओ ने ओरा के दो प्रकार बतालाए—

१. भावात्मक आभामडल

२ मानसिक आभामडल

लेश्या का सम्बन्ध दो आतरिक शक्तियो से है—कषाय (सवेग) और योग (प्रवृत्ति) मे है। योग लेश्या मानसिक आभामडल का निर्माण करती है। कषाय-लेश्या भावनात्मक आभामडल का निर्माण करती हैं। इस प्रकार आभामडल मे दो तत्त्व काम करते है मन और भावना। कषाय का स्रोत जितना तीव्र हाता है, हमारी शक्तिया उतनी ही क्षीण होनी है। तैजस् शरीर दुर्बल बनता जाता है। चचलता अधिक होतो है आभामडल क्षीण होता है। मन, वाणी और शरीर जितना अधिक सक्रिय रहेगा उतना ही शारीरिक और मानसिक तनाव होगा। शक्ति का व्यय अधिक होगा। शक्ति सचय के लिए आभामडल को शक्तिशाली बनाना अपेक्षित है।

६.४.३ आभामंडल : उपयोगिता

शक्ति-जागरण – शक्ति-सम्पन्न व्यक्तित्व के निर्माण के लिए शक्ति का जागरण बहुत आवश्यक है। शक्ति-जागरण के बिना चेतना की उर्ध्वयात्रा भी नही हो सकती, आतरिक आनन्द भी उपलब्ध नही हो सकता। इसलिए पहले शक्ति- जागरण जरूरी है, शक्ति का सवर्धन आवश्यक है।

हमारे भीतर दो शक्तिया काम कर रही हैं। एक है आत्मा की शक्ति और दूसरी है तैजस् की शक्ति, विद्युत की शक्ति। हमारे भीतर आत्म-शक्ति के प्रकपन निरन्तर हो रहे हैं। तैजस् के परमाणु समूचे आकाशमडल मे व्याप्त है। हम उन्हे ग्रहण करते हैं, उनका परिणमन (Assimilation) करते हैं, उनका प्रयोग करते हैं। आत्मा की शक्ति तैजस् की शक्ति के साथ मिल जाती है। इन दोनो का योग होता है तब हमारी क्रियाओ का सचालन होता है।

मनोविज्ञान के क्षेत्र मे एक भ्राति उत्पन्न हुई। वह भ्राति मनोवैज्ञानिक के द्वारा उत्पन्न नही भी हुई हो किन्तु मनोविज्ञान के विद्यार्थियो एव मनोविज्ञान की चर्चा करने वाले लोगो द्वारा हुई है। उन्होने मान लिया कि शक्ति एक है और वह है काम की शक्ति। सब कुछ काम-शक्ति ही है और

शेष उसी का विकास है। उसी का सब्लीमेशन है। यह बहुत बड़ी भ्रांति है। इस भ्राति को डा जुग ने बहुत सरल तरिके से निरस्त किया। एनालिटिकल साइकोलोजी के प्रवर्तक डा जुग ने कहा— 'लिबिडो काम-शक्ति का पर्यायवाची शब्द नही है। लिबिडो एक सामान्य शक्ति है। शेष सारी शक्तियां उस लिबिडो की शाखाए हैं।' उन्होने एक बहुत बड़ी भ्राति का निरसन किया। यह सही बात है कि शक्ति केवल है तैजस् की उसे प्राण शक्ति भी कहा गया है। वह शक्ति जिस दिशा मे जाती है, उसे सचालित करती है और सक्रिय बनाती है, उस सचालक के आधार पर उसका नामकरण कर देते हैं। इसी प्रकार स्थूल शरीर मे नामकरण हुए हैं—मनोवल प्राण, वचन-बल प्राण, काय बल प्राण, इन्द्रिय प्राण, आयुष्य प्राण, श्वासोच्छ्वास प्राण।

हमारे व्यक्तित्व को प्रभावित करनेवाला सबसे शक्तिशाली तन्त्र है, लेश्या तंत्र-भाव तन्त्र। हम लेश्या को वदले भावो को बदलें। शक्ति का विकास करें। लेश्या को भी वदलने की प्रक्रिया है। सबसे पहले हम आत्म-निरीक्षण करें कि अमुक भाव हमारे व्यक्तित्व के लिए अहितकर है। उदाहरणार्थ—व्यक्ति के मन मे निराशा का भाव जागता है, शक्ति को क्षय करने का भाव जागता है, अकर्मन्यता का भाव जागता है, वह व्यक्ति को नीचे विठा देता है। व्यक्ति को जीवित ही मृत बना देता है। उस स्थिति मे चेतना का पहला काम है कि व्यक्ति यह भाव करे—'मैं निराशावादी नही वनूंगा। हतोत्साहित नही होऊगा, अपने हाथो और पैरों को निष्क्रिय नही बनाऊंगा। अपनी क्षमता का उपयोग करूंगा। आशा रखूगा, उत्साह रखूगा और अपने लक्ष्य तक पहुंचने का प्रयास करूगा।' जब यह भाव बन जाए तो इस भाव को आकार देने के लिए हम अपनी संकल्प-शक्ति का प्रयोग करें। एक ऐसा स्पष्ट मानसिक चित्र वनाए, जिसमे यह स्पस्ट हो कि हमे क्या बनना है ? फिर मन की पूरी एकाग्रता उस चित्र पर केन्द्रित करें। जब एकाग्रता की शक्ति का योग मिलेगा, संकल्प की शक्ति आकार लेना शुरू कर देगी फिर इच्छा शक्ति का उपयोग करे। हमारा भाव आतरिक शब्दो का, आंतरिक आत्म-सूचनाओ का योग पाकर इच्छा-शक्ति के रूप मे वदल जाता है। सकल्प-शक्ति का प्रयोग, एकाग्रता की शक्ति का प्रयोग, और इच्छा-शक्ति का प्रयोग—जब ये तीनो प्रयोग एक साथ मिलते हैं तब लेश्या का रूपांतरण हो जाता है। जब लेश्या बदलती है तब आभामडल भी वदल जाता है। भाव बदल जाता है। जब भाव अच्छा होता है तब आभामंडल का रग पीला हो जाता है, लाल या सफेद हो जाता है। भावमंडल हमारी शक्ति को विकसित करता है और आभामडल बाहर से आने वाली बाधाओ को रोकता है। जब पद्म लेश्या का आभामडल बनता है तो बूरे विचार अन्दर प्रवेश नही पा सकते। जब शुक्ल लेश्या का आभामंडल बनता है तो बाहर का

सक्रमण बन्द हो जाता है। शक्ति का सचार प्रारम्भ हो जाता है। शक्ति मे बाधा डालने वाले स्पन्दन समाप्त हो जाते हैं।

एक ओर हम भावो को बदलें दूसरी ओर प्राण प्रयोग के द्वारा, प्राण अधिक खीचने के द्वारा भीतर मे प्राण-शक्ति भरें, तैजस् शरीर को शक्तिशाली बनाए। इसके साथ-साथ विद्युत् की, शक्ति की खपत कम करें। इस प्रकार हमारे शक्ति का भडार बढेगा। शक्ति का जागरण होगा और हमारा आभामडल शक्तिशाली बनेगा।

९.४.४. आभामण्डल : स्वभाव-परिवर्तन

आभामडल का भावो के साथ सम्बन्ध है, स्वभाव के साथ सम्बन्ध है। जब तक आभामडल मे कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या के रग काम करते हैं, तब तक व्यक्ति अन्तर्मुखी नही हो सकता। आध्यात्मिक नही हो सकता। अन्तर्जगत् की यात्रा नही कर सकता। आतरिक सुख का अनुभव नही कर सकता। स्वभाव का अच्छा नही बन सकता। अच्छे-स्वभाव के निर्माण मे आभामडल पर ध्यान देना जरूरी है। हम जीवन-विज्ञान मे सूक्ष्म-प्रकपनो का अनुभव करना सीखते हैं। जब मन सूक्ष्म होता है, तब वह सूक्ष्म प्रकपनो को पकडने मे सक्षम हो जाता है। रगो का अनुभव करना सीख जाता है। जब तैजस शरीर के साथ हमारा सम्पर्क होता है, तब रग दीखने लग जाता है। जब हम दर्शन केन्द्र को सक्रिय करते हैं तब बाल-सूर्य का रग दीखने लग जाता है उस समय असीम आनन्दानुभूति होती है। अन्तर्जगत की यात्रा प्रारम्भ हो जाती है। आदतो मे परिवर्तन आना प्रारम्भ हो जाता है। कृष्ण, नील और कापोत-लेश्या के काले रगो से होनेवाली आदतें तेजो-लेश्या के प्रकाशमय लाल रग से समाप्त होने लगती है। अचानक स्वभाव मे परिवर्तन आता है।

९.४.५. आभामण्डल : चेतना का जागरण

सफल जीवन जीने के लिए, मृदु और निश्छल व्यवहार के लिए अध्यात्म चेतना का जागरण जरूरी है। आतरिक विकास और शक्ति के जागरण के लिए ज्ञान के अवरोध को समाप्त करने के लिए और मूर्च्छा की दुर्भेद्य दीवार को गिराने के लिए चेतना का जागरण आवश्यक है। जीवन व्यवहार को सुखमय कलह मुक्त और मृदु बनाने के लिए अध्यात्म चेतना को जगाना जरूरी है। चेतना के जागरण की बात आभामण्डल, लेश्या को समझे बिना नही समझी जा सकती। आभामण्डल (लेश्या) का सिद्धात जागरण की प्रेरणा है। मन दौड रहा है, हमे मन के प्रति, मन की चचलता के प्रति जागना है। इससे भी अधिक मूल्यवान है भाव के प्रति, लेश्या के प्रति, आभामण्डल के प्रति जागना। क्योकि मन को जो शक्ति प्रेरित कर रही है,

चला रही है, वह है—भाव। जब हम भाव के प्रति जागते हैं तब मूर्च्छा टूटती है, चैतन्य का जागरण होता है। हम अपने चैतन्य के प्रति जागरूक रहे, मन को शून्य बनायें। मन मे कोई विकल्प न आने दें। चैतन्य की अनुभूति सतत होती रहे यही है विचार शून्यता, विकल्प शून्यता। इस भूमिका पर पहुंचने पर चैतन्य जागरण होता है। चेतना के जागरण का पहला लाभ है कि व्यवहार सुन्दर और स्वस्थ बनता है अनावश्यक व्यवहार छूट जाते हैं। चेतना के जागरण का दूसरा लाभ है कि व्यक्ति अच्छा जीवन जी सकता है और अच्छी मौत मर सकता है। चेतना के जागरण का तीसरा लाभ है कि व्यक्ति पदार्थ का उपयोग करता है उसकी पदार्थ के प्रति प्रतिबद्धता, मूर्च्छा टूट जाती है। इस प्रकार व्यक्ति का व्यवहार सीधा और सरल बन जाता है, व्यवहार की उलझनें समाप्त हो जाती हैं। व्यवहार निश्छल हो जाता है। कोई भी उस व्यक्ति को खुली पोथी की भांति पढ़ सकता है।

आभामण्डल परिवर्तन और लेश्या ध्यान—लेश्या ध्यान आभामंडल, (लेश्या) परिवर्तन का ध्यान है। हम रगो के आधार पर आभामंडल को बदल सकते हैं। हम सफेद रग का ध्यान करते हैं, इसका अर्थ है यदि कृष्ण लेश्या या अन्य लेश्या के जो परिणाम विद्यमान हैं तो वे शुक्ल लेश्या मे बदल जाएँगे। इस लेश्या ध्यान का आधार क्या है ? उसका आधार है जैन आगम, प्रज्ञापना सूत्र (प्र. १७१४) का यह प्रकरण, जिसमे लेश्या परिवर्तन का सिद्धांत प्रतिपादित है।

गौतम ने भगवान से पूछा—भते ! क्या कृष्ण लेश्या, नील लेश्या के पुद्गलों को प्राप्त कर तद्नुरूप (नीले लेश्या) मे परिणत हो जाती है।

महावीर ने कहा—गौतम ! ऐसा होता है। कृष्ण लेश्या केवल नील लेश्या के रूप मे ही परिणत नही होती किंतु वह कापोत लेश्या, तेजो लेश्या पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या के रूप मे भी परिणत हो जाती है। थोडे अच्छे पुद्गलो का योग मिला, कृष्ण लेश्या के पुगद्ल नील लेश्या मे बदल गये। पद्म लेश्या के पुद्गलो का योग मिला, कृष्ण लेश्या के पुद्गल पद्म लेश्या मे बदल गये। तेजो लेश्या के पुद्गलो का योग मिला, कृष्ण लेश्या तेजो लेश्या के रूप मे परिणत हो गई। शुक्ल लेश्या के पुद्गलों का योग मिला, कृष्ण लेश्या शुक्ल लेश्या मे बदल गई।

तालिका ११—लेश्याध्यान : सिद्धान्त और मूल स्रोत

बिन्दु	तथ्य	प्रमाण
प्रयोजन	१ सत्य की खोज, २. परिवर्तन और रूपान्तरण-लेश्या का परिवर्तन, कर्मतन्त्र और भावतन्त्र का शोधन, निर्विचार ध्यान, चिकित्सा	मूलाराधना ६।१९११
आध्यात्मिक स्वरूप	लेश्या क्या है ? सूक्ष्म विकिरण। लेश्या—रग का सस्थान, वृत्तियो का उद्‌भव-स्थान। भावधारा एव व्यक्तित्व का प्रतिनिधि। लेश्या ध्यान—लेश्या परिवर्तन की प्रक्रिया, व्यक्तित्व रूपान्तरण की प्रक्रिया।	गोम्मटसार, जीवकाड, गाथा ४९०, उत्तराध्ययन वृहद् वृत्ति ६५०, जैन सिद्धात दीपिका ४।२८, उत्तरज्झयणाणि ३४।३, ३४।२१-३२
वैज्ञानिक स्वरूप	रग-विज्ञान, रग और मनोविज्ञान, रग और ग्रन्थि-नाडी तन्त्र, आभामण्डल एव निदान।	
प्रक्रिया	रग की कल्पना, रग का साक्षात्कार।	प्रज्ञापना १७।४
परिणाम	चित्त की प्रसन्नता, धार्मिकता के लक्षणो का प्रगटीकरण, चरित्र की शुद्धि, सकल्प शक्ति का विकास, चैतन्य का जागरण, स्वस्थ और सुन्दर व्यवहार, प्रशान्त जीवन और प्रशस्त मौत। १ तैजस् लेश्या—परिवर्तन का प्रारम्भ अनिवचनीय एव अपूर्व आनन्द, मानसिक दुर्बलता से मुक्ति। २ पद्‌म लेश्या—मस्तिष्क व नाडी तन्त्र को बल, चित्त की प्रसन्नता, जितेन्द्रियता। ३. शुक्ल लेश्या—आत्म साक्षात्कार, अकर्म चेतना, अमूढ चेतना, विवेक चेतना व व्युत्सर्ग चेतना का विकास।	उत्तरज्झयणाणि ३४।५६ भगवती आराधना १९०८ उत्तरज्झयणाणि ३४।५७ भगवती आराधना १९०९

वी० रमन ने रग की प्रक्रिया पर गहन शोध कार्य किया है। उपरोक्त कथन की पुष्टि प्रो० रमन के इस कथन से होती है कि "सूर्य के प्रकाश मे जो प्रदार्थ का रग हमे दिखाई देता है, वह पदार्थ के ऊपर पडने वाली सूर्य-रश्मियों मे विद्यमान समस्त प्रकाश-तरगो मे से जिस द्रव्य का पदार्थ बना हुआ है, उस द्रव्य द्वारा विसरण (diffusion) और छितराव (scattering) के पश्चात् जो तरगें आख तक पहुचती है तथा आख द्वारा उनका सश्लेषण होता है, उनसे उत्पन्न होता है।"

किसी भी पदार्थ का रग तीन बातो पर निर्भर होता है—आपतित प्रकाश की प्रकृति, पदार्थ द्वारा शोषित प्रकाश और विभिन्न रगो की अनवशोषित प्रकाश किरणें। इन तीनो के कारण से आख पर उत्पन्न अनुभूति ही पदार्थ का रग है।

पारदर्शक और अपारदर्शक वस्तुएं

जब सफेद प्रकाश किसी पारदर्शी वस्तु पर आपतित होता है, तो उसका कुछ भाग वस्तु द्वारा अवशोषित हो जाता है, थोड़ी मात्रा मे परावर्तित होता है, पर अधिकाश भाग सचरित (पार) हो जाता है। अपारदर्शक वस्तु पर आपतित प्रकाश का कुछ हिस्सा परावर्तित हो जाता है, कुछ उसमे प्रवेश करता है, जिसका कुछ भाग वापस लौटता है और शेष भाग अवशोषित हो जाता है। अपारदर्शक वस्तु का रग आपतित प्रकाश की प्रकृति और अवशोषित प्रकाश पर निर्भर करता है क्योकि सभी वस्तुए अपने रग के प्रकाश को छोडकर शेष सब रगो की प्रकाश-किरणो को अवशोषित कर लेती हैं।

प्राथमिक और पूरक रंग

नीला, पीला और लाल—ये तीनो प्राथमिक रग कहलाते हैं। इन रगो को उचित अनुपात मे मिलाने पर दूसरे रग प्राप्त किए जा सकते हैं। जबकि अन्य रगो को मिलाने से ये प्राथमिक रग प्राप्त नही हो सकते। जब दो रगो को मिलाने से तीसरा रग प्राप्त होता है, तो उन दो रगो को एक-दूसरे का "पूरक" रग कहते हैं।

प्रकृति के रहस्य अधिकाशत प्रकाश की भाषा मे अकित हैं। उनका उद्घाटन प्रकाश की साकेतिक भाषा को समझने से हो सकता है। अणु-सिद्धात और प्रकाश के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान के आधार पर अब यह बात सिद्ध हो चुकी है कि प्रत्येक द्रव्य या प्रत्येक प्रकार का अणु अपनी आण्विक सरचना के आधार पर एक विशेष तरग-दैर्घ्य को ही ऊर्जा के रूप मे उत्सर्जित या गृहीत करता है। इसी के आधार पर प्रत्येक द्रव्य का वर्णपट मे एक निश्चित स्थान होता है, जो दूसरे किसी द्रव्य का नही होता। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रत्येक प्रकार का अणु अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व को अपने

विशिष्ट हस्ताक्षर द्वारा अभिव्यक्ति करने की क्षमता रखता है और यह हस्ताक्षर उसके अपने अनन्य वर्ण के रूप मे होता है। दूसरे शब्दो मे, यह अभिव्यक्ति उस द्रव्य विशेष या अणुविशेष की "अगुलियो की छाप" बन जाती है जो केवल उसके अपने व्यक्तित्व (सरचना-विशेष) को ही व्यक्त करती है। इसके आधार पर ज्योतिर्वैज्ञानिक अन्तरिक्ष मे सुदूर आकाश-पिण्डो तक विद्यमान द्रव्यो की पहचान करते हैं। लाखो प्रकाश प्रकाश-वर्ष दूर रहे हुए नीहारिकाओ तथा ताराओ का अध्ययन करने मे इससे बडी सहायता मिलती है। वर्णक्रम विज्ञान [स्पेक्ट्रोस्कोपी] के द्वारा प्राप्त तथ्यो के आधार पर समग्र विश्व के निर्माण एव सरचना के सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण सिद्धातो की स्थापना हुई है। सर जोसेफ नोर्मन लोक्यर नामक वैज्ञानिक ने सूर्य-रश्मियो के वर्णक्रम के अध्ययन से ही इस बात की खोज की थी कि सूर्य मे 'हिलियम' नामक द्रव्य विद्यमान है।

रंग और मनोविज्ञान

वैज्ञानिको के अनुसार हमारा सारा जीवन-तत्र रंगो के आधार पर चलता है। आज के मनोवैज्ञानिको और वैज्ञानिको ने यह खोज की है कि व्यक्ति के अतर-मन को, अवचेतन मन को और मस्तिष्क को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला है—रग। रग हमारे समूचे व्यक्तित्व को प्रभावित करता है।

सभी प्राणियो के स्वास्थ्य और व्यवहार पर प्रकाश और रगो का गहरा प्रभाव है। वनस्पति-जगत् के लिए सूर्य का प्रकाश जीवनदाता है। मनुष्य एवं अन्य प्राणियो की शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक दशाओ तथा आचार-व्यवहार पर विभिन्न रंगो का क्या-क्या प्रभाव पडता है—इस विषय में प्राचीन एव आधुनिक दोनो विज्ञानो मे काफी गवेषणा की गई है। उन्नसवी शताब्दी के रग-चिकित्सको का यह दावा था कि विभिन्न रगो के काच या बोतलो के माध्यम से तैयार की गई औषधियो द्वारा वे सामान्य कब्जी से लेकर तत्रिकाशोथ (नाडी-तत्र की कोशिकाओ पर आई हुई सोजिश (meningitis) जैसी घातक बीमारियो तक को ठीक कर सकते हैं। उस युग मे इस प्रकार के दावे चिरकाल तक प्रतिष्ठित नही हो सके और अन्त मे बदनाम भी हुए, किन्तु आधुनिक युग मे इन्हे रग-चिकित्सा या "प्रकाश-जैविकी" (फोटोबायोलोजी) के नाम से पुनरुज्जीवित किया गया है। अमरीका की "मासाच्यूसेट्स इंस्टीच्यूट ऑफ टेक्नोलोजी" के सुप्रसिद्ध पोषण वैज्ञानिक डा० रिचर्ड जे० वुर्टमैन के अनुसार—"शारीरिक क्रियाकलापो पर सबसे अधिक प्रभाव डालने वाले तत्त्वो मे आहार के अतिरिक्त यदि किसी का हाथ है, तो यह है प्रकाश का।"

अनेक प्रयोगो द्वारा यह ज्ञात किया जा चुका है कि विभिन्न रंगो का व्यक्ति के रक्तचाप, नाडी और श्वसन की गति एव मस्तिष्क के क्रियाकलापो पर तथा अन्य जैविकी क्रियाओ पर विभिन्न प्रकार का प्रभाव पडता है। इसी परिणामस्वरूप आज अनेक प्रकार की बीमारियो की चिकित्सा मे विभिन्न रगो का उपयोग किया जाने लगा है।

नीला और पराबैंगनी रग

प्रतिवर्ष हजारो की सख्या मे बच्चो का निर्धारित समय से पहले प्रसव हो जाता है। ऐसे बालक प्राय घातक पीलिया की बीमारी के शिकार हो जाते है। ऐसे बालको का उपचार पहले प्राय बाहर से रक्त चढाकर किया जाता था। अब उनका उपचार रक्त-आधान के बदले नीले प्रकाश की किरणो के स्नान से किया जाने लगा है।

रूस को प्रकाश-जैविकी के क्षेत्र मे अग्रगण्य माना जाता है। वहा के वैज्ञानिको के अनुसार कोयला की खानो के मजदूर को यदि पराबैंगनी किरणो का स्नान कराया जाता है, तो वे "श्याम फुफ्फुस"(black lungs) नामक बीमारी से बच सकते हैं। श्री फावेर विरेन नामक एक रग-विशेषज्ञ हैं, जिन्होने रग के विषय मे सैकडो लेख एव अनेक पुस्तकें लिखी है तथा जो इस विषय के अधिकृत व्यक्ति माने जाते हैं। श्री विरेन के मतानुसार स्कूल के कमरो मे बत्तियो के साथ पराबैंगनी प्रकाश वाली बत्तियो को लगाने पर विद्यार्थियो का विकास तेजी के साथ होता है, उनकी कार्य-क्षमता और प्राप्ताको मे वृद्धि होती है तथा जुकाम, नजले आदि की बीमारियो की घटनाओ मे कमी होती है।

शांति-दायक गुलाबी रंग

केलिफोर्निया (अमरीका) के सान बरमार्डिनो काउण्टी के "प्रोबेशन विभाग" (अपराध-सुधार-विभाग) की स्वास्थ्य सेवा के निर्देशक श्री पौल ई. बोकुनिनी कहते हैं—"हमारे यहा कैद बाल अपराधी जब कभी उन्मत्त होकर हिंसा पर उतारू हो जाते थे, तब पहले हम यातनाओ द्वारा उन पर नियत्रण प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे। अब हम उन्हे ऐसे कमरे मे रखते हैं जिसकी दीवारें एक विशेष गुलाबी रग से रंगी हुई होती हैं। हमने पाया कि वे उद्दड बच्चे चिल्लाना छोड कर शिथिल और शात होकर केवल १० मिनट मे ही निंद्राधीन हो जाते हैं।" समूचे अमरीका मे लगभग १५०० से अधिक अस्पतालो एव सुधार-गृहो मे कम से कम एक कमरा गुलाबी रग की दीवारो वाला होता ही है। यह गुलाबी रग "शाति दायक गुलाबी रग" के नाम से प्रसिद्ध है। यह मनुष्य की भावनाओ पर होने वाले रग के प्रभाव का ज्वलत उदाहरण है।

मनःकायिक बीमारियां पर रंगों का प्रभाव

रंग व्यक्ति की बीमारियो को कैसे और क्यों प्रभावित करते हैं— इस विषय मे सभी चिकित्सक एकमत नही हैं। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि रगो का प्रभाव सीधे शरीर पर न होकर, मानस पर होता है। उसके मतानुसार रगो द्वारा ऐसी मनोदशाओ का निर्माण होता है जो शरीर को स्वस्थ कर देती है; किन्तु यह नही भूलना चाहिए कि आधे से अधिक बीमारिया मनःकायिक ही होती हैं।

इस बात को तो सभी चिकित्सक और शोधकर्त्ता स्वीकार करते हैं कि विद्युत्-चुम्बकीय तरग-क्रम का अमुक हिस्सा, जैसे कि "एक्स" किरणें, सूक्ष्म तरंगें एव परा-बैंगनी किरणे, व्यक्ति के स्वास्थ्य पर उल्लेखनीय प्रभाव डालती हैं; किंतु पूरे दृश्य प्रकाश के प्रभाव के विषय मे उनमे मतभेद है। फिर भी अनेक प्रयोगो द्वारा यह स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध हुए हैं कि प्रकाश हमारे अन्त.स्रावी ग्रन्थि-तन्त्र एवं नाड़ी-तन्त्र को निश्चित रूप से प्रभावित करता है।

नाड़ी-ग्रन्थि-तंत्र पर रंगों का प्रभाव

अमरीकन इस्टीच्यूट आफ बायो-सोसल रीसर्च के निदेशक प्रो० एलेक्झाडर सोस की मान्यता है कि रग की विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा किसी अज्ञात रूप मे हमारी पिच्यूटरी और पिनियल ग्रन्थियो एव मस्तिष्क की गहराई मे विद्यमान हाइपोथेलेमस को प्रभावित करती है। वैज्ञानिको के अनुसार हमारे शरीर के ये अवयव अन्त स्रावी ग्रन्थि तंत्र[1] का नियमन करते हैं, जो स्वय शरीर के अनेक मूलभूत क्रियाकलापो और आक्रमण, भय आदि भावनात्मक प्रतिक्रियाओ का नियन्त्रण करता है।

हेरोल्ड वोल्फार्थ नामक प्रकाश-जीव विज्ञान-शास्त्री (फोटोबायोलोजिस्ट) और "जर्मन अकादमी ऑफ कलर साइन्स" के अध्यक्ष ने एक विद्यालय के बच्चो पर कुछ प्रयोग करने के पश्चात् यह रिपोर्ट दी है कि दो अधे बच्चो के रक्त-चाप, नाड़ी की गति और श्वास की गति पर प्रकाश का वही प्रभाव देखा गया, जो कि अन्य सात सामान्य दृष्टिवाले बच्चो पर देखा गया था। बायो-सोसल रीसर्च की एक पत्रिका मे उपर्युक्त प्रयोग की जो रिपोर्ट छपी है, उसमें बताया गया है कि जब विद्यालय के कमरो की दीवारो के रंगो को नारगी और सफेद से बदलकर रोयल ब्लू और हल्का ब्लू कर दिया गया

---

१. प्रेक्षाध्यान साधना पद्धति मे एण्डोक्राइन ग्रंथियां, चैतन्य केन्द्रो के सम्वादी स्थान हैं। प्रत्येक एण्डोक्राइन ग्रन्थि का अपना रंग है। रग के आधार पर उसे प्रभावित किया जा सकता है।

सामान्य बत्तियो के स्थान पर इन्द्रधनुषी बत्तियो को लगा दिया तो बच्चो का प्रकुचन (ऊपर का) रक्तचाप १२० से घटकर १०० तक आ गया। उनका व्यवहार पहले से अधिक अच्छा और अनुशासनबद्ध हुआ तथा उनकी एकाग्रता बढ गई। आगे श्री बोह्लफार्थ कहते हैं—प्रकाश से प्राप्त विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा की अल्पमात्राए हमारे एक या एक से अधिक तन्त्रिका सचारी (neuro-transmitter) को—जो एक तन्त्रिका से दूसरी तन्त्रिका तक या तन्त्रिका से मासपेशी तक सदेश पहुचाने वाले रासायनिक सदेशवाहक हैं—प्रभावित करती हैं। प्रयोगो के द्वारा ऐसे प्रमाण भी उपलब्ध हुए है कि जो प्रकाश हमारी आखो के दृष्टिपटल पर टकराता है, वह हमारी पाइनियल ग्रथि मे से निकलने वाले मेलाटोनिन नामक महत्त्वपूर्ण स्राव के सश्लेषण को प्रभावित करता है। यह मेलाटोनिन नामक हार्मोन एक अन्य सेरोटोनिन नामक तन्त्रिका-सचारी के उत्पादन-मात्रा का निर्णय करने मे सहायक होता है।

आभामडल

आभामंडल क्या है ?

दो शब्द है—एक है भामडल और दूसरा है आभामडल। बहुत प्राचीनकाल मे ससार के सभी धर्मों मे देवी, देवता, सत और अवतारी पुरुषो के चित्रो मे उनके मस्तक के चारो ओर एक प्रकाश का वृत, जिसे भामडल (Hallow) कहा जाता है, दिखाने की परम्परा रही है। चित्रो मे उन महापुरुषो के सिर के पीछे गोलाकार पीले रग का एक चक्र-सा दिखाई देता है। वह प्रत्येक व्यक्ति मे नही होता, केवल विशिष्ट व्यक्तियो मे ही होता है। दूसरा है—आभामडल (aura)। ससार के प्रत्येक पदार्थ के चारो ओर एक आभामडल होता है, चाहे वह मनुष्य हो, पशु हो, पान हो या पत्थर। प्रत्येक पदार्थ के चारो ओर रश्मियो का एक वलय होता है। यह कवच जैसा सूक्ष्म तरगो के जाल जैसा या रूई के सूक्ष्म ततुओ के व्यूह जैसा होता है। ऊपर-नीचे दाए-बाए—पूरे शरीर के बाहर चारो ओर फैला हुआ होता है। किसी का तीन फुट का, किसी का पाच फुट का और किसी का सात फुट का। किसी का बहुत सुन्दर और बडा आकर्षक होता है। किसी का भद्दा और ग्लानि पैदा करने वाला होता है। किसी का आभामडल पास मे आने वाले व्यक्ति को शाति देता है, और किसी का आभामडल चिंता या दुर्मनस्कता से भर देता है।

दुनिया का हर पदार्थ—चेतन और अचेतन अपने आकार मे रश्मियो का विकिरण करता है। ये रश्मिया विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा या तरग के रूप मे होती हैं। इस तरह निकलने वाली ऊर्जा से आभामडल निर्मित होता है।
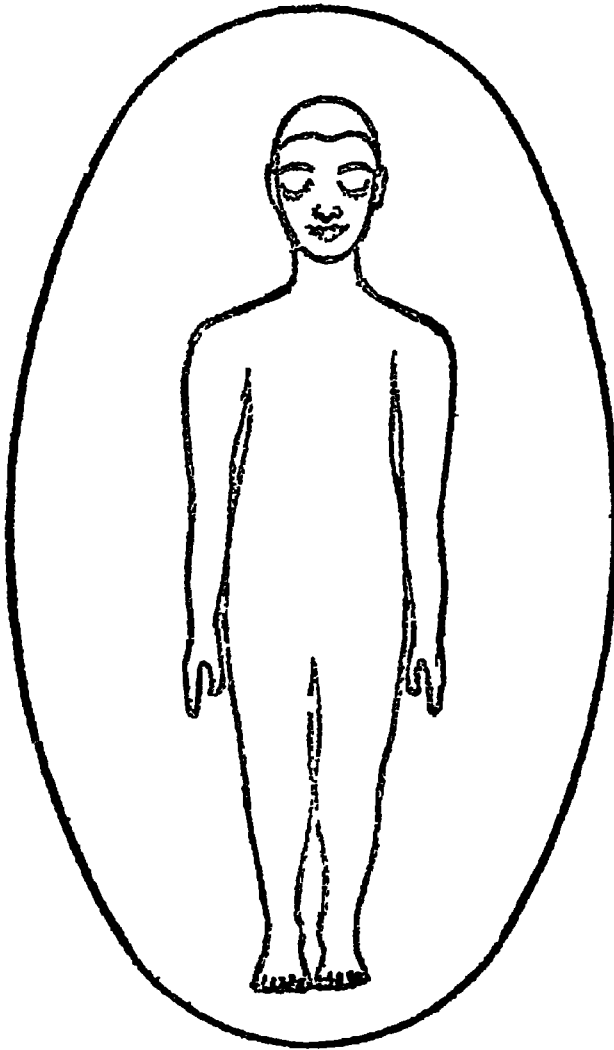
कोई भी पदार्थ, कोई भी अस्तित्व दुनिया मे ऐसा नही है, जिससे यह विकिरण न होता हो।

जीवन्त प्राणी का आभामंडल तैजस शरीर -सूक्ष्म शरीर का विकिरण है। जीवन्त प्राणी मे विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा के साथ प्राण-ऊर्जा भी निकलती रहती है; अत. उनके आभामंडल तेजस्वी, गतिशील और ज्योतिर्मय होते हैं, जबकि निर्जीव पदार्थ मे यह फिक्का और स्थिर प्रकाश वाला होता है। जीवन्त प्राणी का आभामंडल एकरूप नही रहता—बदलता रहता है। निर्मलता, मलिनता, संकोच और विस्तार—ये सारी अवस्थाएं उसमें घटित होती रहती हैं। ऐसा इसलिए होता है कि उसको बदलने वाला

लेश्या-तंत्र, भाव-तंत्र भीतर विद्यमान है । प्राणी और पदार्थ मे यह मौलिक अन्तर है कि पदार्थ मे परिवर्तन करने वाला नियामक तत्त्व नही होता । अन्य ऊर्जाओ की तरह यह प्राण-ऊर्जा भी हमारे चर्म-चक्षुओ द्वारा देखी नही जा सकती । केवल अतीन्द्रिय ज्ञानी (अवधिज्ञानी) ही देख सकता है । फिर भी वैज्ञानिक, चिकित्सक और योगी—सभी लोग इस विषय मे एकमत हैं कि आभामडल का वास्तविक अस्तित्व है और इसके माध्यम से व्यक्ति के भौतिक प्राणिक और चैतसिक अवस्था का चित्र प्रकट होता है ।

क्या आभामंडल दीखता है ?

क्या आभामडल देखा जा सकता है ? हा, बहुत अच्छी तरह से देखा जा सकता है, किन्तु आभामडल का दर्शन हर किसी को नही होता । शरीर की स्थिरता की साधना करने वाले व्यक्ति को हो सकता है, कायोत्सर्ग की प्रगाढ अवस्था मे आभामडल दिखाई देता है । अचानक गहरी ध्यान की स्थिति मे भी आभामडल का दर्शन होने लगता है । कभी-कभी ऐसा लगता है कि ध्यान करते-करते शरीर तो नही है, किन्तु पूरे शरीर के आकार की कोई प्रतिमा सामने आकर बैठ गई हैं । कभी-कभी गहरे अधेरे मे हाथ को देखें । हाथ दिखाई नही देगा, किन्तु हाथ के आकार की एक आभा दीखने लग जाएगी, पूरा-का-पूरा विद्युत्मय हाथ दीखने लग जाएगा, बशर्ते कि अधकार सघन हो ।

पिछली कुछ शताब्दियो के दौरान अनेक लोगो ने आभामडल के अध्ययन से रोगो के निदान के लिए या स्वास्थ्य और प्राणशक्ति को नापने के लिए नाना प्रकार के उपकरणो को काम मे लिया है, जिसमे सीधे-सादे पर चमत्कारी डडो और केवल हस्त-स्पर्श से लेकर बहुमूल्य मशीनो तक की सामग्री शामिल है । पिछले कुछ वर्षो मे मद्रास के गवर्नमेंट जनरल अस्पताल के "इस्टीच्यूट ऑफ न्यूरोलाजी" (स्नायु-विज्ञान सस्थान) मे डॉक्टरो के एक दल ने जिसके नेता डॉ० पी० नरेन्द्रम् है, किलियन फोटोग्राफी की तकनीक को विकसित कर आभामडल के फोटो लेने के उपकरण का विकास किया है । और इसके माध्यम से अनेक खोजें की है और कर रहे हैं । अन्य देशो मे भी इस प्रकार का कार्य चल रहा है ।

उन्नीसवी शताब्दी मे बेरोन फान राइशनबाख नामक वैज्ञानिक ने यह दावा किया था कि उसने मनुष्य, प्राणी, वनस्पति, चुम्बक आदि से निकलने वाले विकिरणो का पता लिया है तथा इन्हे सवेदनशील व्यक्ति देख सकते हैं ।

लगभग १९४५ मे लदन मे सेंट थामस अस्पताल के एक कर्मचारी डब्ल्यू जे० किल्नर ने एक ऐसे ही उपकरण को विकसित किया था । इस

उपकरण का नाम " डाईस्थानीनस्क्रीन" था । किल्नर ने अपनी पुस्तक 'मानव वातावरण' (Human Atmosphere) मे यह बताया है कि जीवित प्राणियो के चारो ओर आभामडल होता है । वह चर्मचक्षुओ द्वारा दृश्य नही होता स्वस्थता की दशा मे और रुग्णावस्था मे भिन्न-भिन्न प्रकार का हो जाता है । आगे चलकर कुछ रासायनिक पदार्थों के माध्यम से यह सभव किया जा सका कि सामान्य व्यक्ति भी अपनी आंखो से आभामंडल को देख सके ।

एक अमेरिकन महिला वैज्ञानिक जे० सी० ट्रस्ट ने एक पुस्तक लिखी है—अणु और आभामडल (Atom and Aura) । इस पुस्तक मे काल्पनिक तथ्यो का सकलन नही है । आभामडल के चित्र लिए हैं और छापे हैं ।

इसी प्रकार का कार्य सोवियत सघ मे किर्लियन दम्पति द्वारा किया गया । किर्लियन फोटोग्राफी आभामंडल के फोटो खीचने की पद्धति है । उन्होने ऐसे व्यक्तियो के पूरे आभामडल के फोटो खीचे थे, जिनके हाथ या पैर काट दिए गए थे । आभामंडल मे कटे हुए अंग का भी फोटो आ गया १९५० मे उन्होने पौधो और प्राणियो मे भविष्य मे होने वाली बीमारी, जिसका कोई लक्षण वर्तमान मे नही दिखाई देता था, के विषय में आभामडल के फोटो से निदान कर बता दिया ।

कीर्लियन दम्पति के कार्यों की रिपोर्ट ने डा० नरेन्द्रन् को १९३४ मे ही इस क्षेत्र मे कार्य करने के लिए प्रेरित कर दिया था । डा० नरेन्द्रन् और उनके साथी डाक्टरों व तकनिशियनो ने मिलकर उपरोक्त उपकरण का विकास किया । इससे रुग्ण व्यक्ति की अगुली के आभामडल की फोटो अगुली को एक प्लेट पर रखकर लिया जाता है, जिसे एक विद्युत्-पथ के साथ जोड़ा जाता है और इस माध्यम से आभामडल को पकडा जा सकता है, जिसे कोई भी आदमी अपनी आखो से देख सकता है । उस आभामंडल को प्रकाश-तरंग मे बदल कर एक कैमरे सदृश उपकरण के द्वारा फोटोग्राफिक कागज पर उतारा जा सकता है । इसके लिए बीमार को किसी भी प्रकार की पूर्व तैयारी की आवश्यकता नही होती और न ही रिकार्डिंग के दौरान किसी प्रकार के विकिरणो का प्रसारण होता है ।

आभामंडल के रंग और रोग

डा० नरेन्द्रन् कहते हैं कि "जीवित प्राणी मे से निकलने वाला आभामडल न तो उष्मा है, न ध्वनि । वह एक प्रकार की तरंगो के रूप मे होता है; किन्तु स्वस्थ और अस्वस्थ, मृत और जीवित, जीवन्त और निर्जीव वस्तुओ के आभामडल मे निश्चित ही भिन्नताएं होती हैं ।"

आभामंडल मे विविध रंग पाए जाते हैं—लाल, हरा, पीला, जामनी और नीला । सफेद और श्याम रंग नही पाए गए । वर्तमान मे तो केवल

अगुलियो के अग्रभाग के आभामडलो तक अध्ययन सीमित है। पिछले तीन वर्षों (१९८१-१९८४) मे डा० नरेन्द्रन् के दल ने ९३२ बीमार व्यक्तियो का अध्ययन किया है जिनमें स्नायविक गडबडी, उदररोग, स्त्रीरोग आदि के रुग्ण थे। स्नायविक (नाडीतत्रीय) गडबडी के भिन्न-भिन्न प्रकार के मरीजो के आभामडल निश्चित ढांचे के पाए गए। इन रोगो मे मिर्गी, सूत्रण रोग, मस्तिष्क की गाठ, चेहरे का पक्षाघात जैसी बीमारिया शामिल हैं। इस मशीन के द्वारा बीमारी होने से पूर्व ही उसकी भविष्यवाणी की जा सकती है। इस दृष्टि से यह उपकरण बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। विशेषतः कैंसर जैसे रोगो के बारे मे पहले से ही उसका पता लगाया जा सकेगा और उसका उपचार कर लेना सभव हो जाएगा।

मृत्यु के बाद आभामंडल

मृत व्यक्ति के आभामडल के विषय मे डा० नरेन्द्रन् का कहना है कि मृत्यु ने बाद तुरन्त ही आभामडल समाप्त नही हो जाता, परन्तु जैसे बिजली का हीटर स्वीच बन्द कर देने पर धीरे-धीरे दीप्ति-रहित होता जाता है, वैसे ही प्राणी की मृत्यु के बाद आभामडल की दीप्ति मद होती-होती न्यूनतम स्थिति तक पहुच जाती है। जब व्यक्ति की हृदय और श्वास की गति बन्द हो जाती है, तब शरीर से बाहर 'धारियो' के रूप मे आभामडल निकलने लगता है। छह घटे तक वह चलता रहता है, इसके बाद अवशिष्ट आभा ठीक वैसी हो जाती है, जैसे की पत्थर जैसे निर्जीव पदार्थो के आभा-मडल मे पाई जाती है।

विदेशों में आभामंडल पर शोध

डॉ० नरेन्द्रन् ने बताया है कि सोवियत सघ मे आभामडल के ज्ञान का उपयोग कृषि-कार्य मे किया जा रहा है वैज्ञानिको ने पत्तियो की रुग्णता का अध्ययन आभामडल के आधार पर किया तथा उनके रोगो के विषय मे भविष्यवाणिया की।

दूसरी ओर अमरीका मे उसका उपयोग अतीन्द्रिय ज्ञान के अध्ययन मे किया जा रहा है। उदाहरणार्थ, वह क्या शक्ति है, जो कभी-कभी किसी व्यक्ति को उस ट्रेन से यात्रा करने से रोक देती है जो आगे चलकर दुर्घटना ग्रस्त हो जाता है? डॉ० नरेन्द्रन् के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति के पास अन्तः-दर्शन (intuition) की शक्ति है और यदि उसे विकसित किया जा सके तो मनुष्य-जाति के लिए वह अनेक प्रकार से बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है। जैसे दुर्घटना या दुर्घटना से होने वाली मृत्यु के विषय मे भविष्य वाणी की जा सकती है।

आभामडल मे दिखाई देने वाले विभिन्न रगो की व्याख्या इस प्रकार

की गई है—

१. सुनहला रंग	—आध्यात्मिकता
२. हल्का नीला या नील-लोहित	—रोग हरने की शक्ति
३. गुलाबी	—प्रेम, स्नेह
४. लाल	—तृष्णा, क्रोध
५. हरा	— बौद्धिकता
६. भूरे या गहरे मटियाले रंग	—रोगग्रस्तता
७. मुर्झाया या निस्तेज	—मृत्यु की सन्निकटता

९.५.२. आध्यात्मिक दृष्टिकोण

लेश्या

लेश्या शब्द का अर्थ आणविक आभा कांति, प्रभा या छाया है। छाया-पुद्गलो से प्रभावित होने वाले जीव परिणामो को भी लेश्या कहा गया है प्राचीन साहित्य मे शरीर के वर्ण, आणविक आभा उससे प्रभावित होने वाले आत्म-परिणाम—इन तीनो अर्थों मे लेश्या का उल्लेख मिलता है। शरीर, वर्ण और आणविक आभा को 'द्रव्य लेश्या' और आत्म-परिणाम को 'भाव लेश्या' कहा गया है।

आणविक आभा कर्म-लेश्या का ही नामातर है और कर्मो मे छठा कर्म नाम है। उसका सम्बन्ध शरीर रचना सम्बन्धी पुद्गलो से है। उसकी एक प्रकृति 'शरीर-नामकर्म' है। 'शरीर-नामकर्म' के पुद्गलो का ही एक वर्ग कर्म-लेश्या कहलाता है।

लेश्या की अनेक परिभाषाएं मिलती हैं, जैसे—

१ योग-परिणाम २. कषायोदय रंजित योग-प्रवृत्ति ३. कर्म-निष्यन्द ४. कार्मण शरीर की भांति कार्मण वर्गणा-निष्पन्न कर्म-द्रव्य।

इन शास्त्रीय परिभाषाओ के अनुसार लेश्या से जीव और कर्म पुद्गलों का संबंध होता है, कर्म की स्थिति निष्पन्न होती है और कर्म का उदय होता है। इस प्रकार आत्मा की शुद्धि और अशुद्धि के साथ लेश्या जुडी हुई है।

प्रभाववाद की दृष्टि से दोनों परम्पराएं प्राप्त होती हैं—

१ पौद्गलिक लेश्या का आत्मिक परिणामो पर प्रभाव।

२. आत्म-परिणाम का लेश्या पर प्रभाव।

> कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात्, परिणामोऽयमात्मनः।
> स्फटिकस्यैव तंत्रायं लेश्या-शब्दः प्रवर्तते॥

इस प्रसिद्ध श्लोक की ध्वनि यही है—कृष्ण आदि लेश्या पुद्गल जैसे होते हैं वैसी ही मानसिक परिणति होती है। आत्मिक परिणति होती है।

दूसरी धारा यह है - कषाय की मदता से अध्यवसाय की शुद्धि होती है और अध्यवसाय की शुद्धि से लेश्या की शुद्धि होती है ।

पाच आस्रवो मे प्रवृत्त मनुष्य कृष्ण लेश्या मे परिणत होता हैं। अर्थात् उसकी आणविक आभा (पर्यावरण) कृष्ण होती है । मनुस्मृति में सत्त्व रजस् और तमस् के जो लक्षण और कार्य बतलाए गए हैं, वे लेश्या के लक्षण से तुलनीय हैं ।

लेश्या के क्रियाकलाप

यह लेश्या एक बहुत बडा कारखाना है । कषाय की तरगे और कषाय की शुद्धि होने पर आने वाली चैतन्य तरगे—इन सब तरगो का भाव के साचे मे ढालना, भाव के रूप मे इनका निर्माण करना, और उन्हे विचार तक, वाणी तक, क्रिया तक पहुचा देना, यह इसका काम है। सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर के बीच मे सपर्क-सूत्र का कार्य लेश्या करती है। मन, वचन और काया की प्रवृत्ति के द्वारा जो कुछ बाहर से आता है, वह कच्चा माल होता है। लेश्या उसे लेती है और उसे कषाय तक पहुचा देती है, फिर भीतर से वह कच्चा माल पक्का बनकर आता है। जो कर्म भीतर जाता है, वह फिर विपाक होकर आता है। भीतरी स्राव जो रसायन बनकर आता है, उसे लेश्या फिर अध्यवसाय से लेकर हमारे सारे स्थूल तत्र तक अन्त स्रावी ग्रथिया और मस्तिष्क तक पहुचा देती है इसलिए यदि हमारे स्थूल शरीर मे लेश्या के प्रतिनिधि-सस्थानो को खोजें, उनके बिक्री-सस्थानो को खोजे, तो जितनी अत स्रावी ग्रन्थि हैं, ये सारी लेश्या की प्रतिनिधि-सस्थाए हैं, बिक्री-सस्थान हैं उनके सेल्स-मैनेजर वहा बैठे हैं। अच्छे ढग से उनके माल की सप्लाई कर रहे हैं।

अत स्रावी ग्रन्थियो के जो स्राव हैं, वे कर्मों के स्राव से प्रभावित होकर निकलते हैं । कर्मों के स्राव भीतर से आते हैं और लेश्या के द्वारा ग्रन्थियो मे आकर वे सारे व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। सारा व्यक्तित्व उससे निर्मित होता है।

लेश्या—रंग का संस्थान

भीतर कषाय[1] का तत्र है। वहा जो कुछ भी जाता है, वह रगीन हो जाता है। जो भी माल बाहर आता है, वह रगीन आता है।

हिंसा, असत्य, क्रोध, अहकार, कपट आदि का आचरण करने वाला

---

१ कषाय शब्द का चुनाव भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। कषाय का अर्थ होता है रंगा हुआ। रगे हुए या लाल रगे हुए कपडे को 'काषायिक' कपडा कहा जाता है।

व्यक्ति बाहर से काले, नीले आदि मलिन रंगों के परमाणु आकर्षित करता है। लेश्या-तंत्र उन्हें कषाय तक पहुंचाता है। जब विपाक होता है, तब कषाय से रंगीन होकर लेश्या के माध्यम से वे बाहर आते हैं और भिन्न-भिन्न अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में आकर भिन्न-भिन्न प्रकार की वृत्तियों और वासनाओं को प्रकट करते हैं। इस प्रकार सम्पर्क-सूत्र का सारा कार्य लेश्या-तंत्र के हाथ में है।

जैसे रंग हम ग्रहण करते हैं वैसे ही हमारे भाव, आचार और व्यवहार बन जाते हैं। स्फटिक के सामने जैसा रंग आता है, वह वैसा ही दीखने लग जाता है। स्फटिक का अपना कोई रंग नहीं होता। आत्मा के परिणामों का भी अपना कोई रंग नहीं होता। सामने जिस रंग के परमाणु आते हैं, परिणाम भी वैसे हो जाते हैं। ये परिणाम ही हमारी भाव-लेश्या है।

द्रव्य लेश्या, भाव लेश्या

लेश्या दो प्रकार की है—द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या। द्रव्य लेश्या भौतिक (पौद्गलिक) है और भाव लेश्या चैतन्य का एक स्तर है। पुद्गल का लक्षण है—वर्ण, गंध, रस और स्पर्श-युक्त होना। द्रव्य लेश्या में भी ये चारों गुण पाए जाते हैं। भाव लेश्या अपौद्गलिक है, इसलिए उसमें कोई वर्ण, गंध, रस, स्पर्श नहीं होते। कृष्ण लेश्या का वर्ण काला, नील लेश्या का नीला और कापोत लेश्या का वर्ण कबूतर या राख जैसा होता है। ये तीन अप्रशस्त लेश्याएं हैं। तेजो लेश्या का वर्ण लाल, पद्म लेश्या का पीला और शुक्ल लेश्या का सफेद होता है। ये तीन प्रशस्त लेश्याएं हैं। तीनों अप्रशस्त लेश्याओं के गंध, रस और स्पर्श भी अमनोज्ञ तथा प्रशस्त लेश्याओं के गंध, रस और स्पर्श मनोज्ञ हैं।

इन चार गुणों में से रंग चित्त को सबसे अधिक प्रभावित करता है। हमारा सारा जीवन-तंत्र रंगों के आधार पर चलता है। आज मनोवैज्ञानिकों और वैज्ञानिकों ने यह खोज की है कि व्यक्ति के अन्तर्मन को—अवचेतन मन को और मस्तिष्क को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला है—रंग। हमारे जीवन का ही नहीं, मृत्यु का सम्बन्ध भी रंग से है। हमारे पुनर्जन्म का संबंध भी रंग से है।[1]

तीन अप्रशस्त लेश्याएं रूखी और ठंडी हैं। तीन प्रशस्त लेश्याएं

---

१. एक व्यक्ति मरता है, वह अगले जन्म में पैदा होता है। प्रश्न पूछा गया—"वह अगले जन्म में क्या होगा ? कैसा होगा ? उत्तर मिला—"जिस लेश्या में मरेगा, उसी लेश्या मे उत्पन्न होगा—जिस रंग में मरेगा, उसी रंग में पैदा होगा।"

चिकनी और गरम हैं। यह प्रशस्तता और अप्रशस्तता की व्याख्या सक्लेश और असक्लेश के आधार पर की गई है, इसलिए सापेक्ष है। असक्लेश का अर्थ है—विशुद्धि। सक्लेश का अर्थ है— अविशुद्धि। कृष्ण लेश्या की अपेक्षा नील लेश्या विशुद्ध है और नील लेश्या की अपेक्षा कापोत लेश्या विशुद्ध है। कृष्ण लेश्या सक्लेश का चरम बिंदु है, नील लेश्या मध्य है और कापोत लेश्या न्यूनतम है। दूसरी ओर असक्लेश की न्यूनतम अवस्था है तैजस् लेश्या, मध्य है पद्म लेश्या और उत्कृष्ट है शुक्ल लेश्या।

तीन अप्रशस्त लेश्याओ ने जिस व्यक्तित्व का निर्माण किया है, उसे विघटित करने के लिए प्रशस्त लेश्याए सक्षम हैं। वे नया व्यक्तित्व उभार देती हैं।

वृत्तियो का उद्भव-स्थान

हमारी वृत्तिया, भाव या आदतें - इन सबको उत्पन्न करने वाला सशक्त तंत्र है—लेश्या-तंत्र। जब तक लेश्या तंत्र शुद्ध नही होता, तब तक आदतो मे परिवर्तन नही हो सकता। लेश्या-तंत्र को शुद्ध करना आवश्यक है। उसके शुद्ध करने की प्रक्रिया को समझने से पहले यह समझना जरूरी है कि अशुद्धि कहा जन्म लेती है और कहा प्रकट होती है यदि हम उस तंत्र को ठीक समझ लेते हैं, तो उसे शुद्ध करने की बात को समझने मे बडी सुविधा हो जाती है।

बुरी आदतो को उत्पन्न करने वाली तीन लेश्याए हैं—कृष्ण लेश्या, नील-लेश्या और कापोत लेश्या। क्रूरता, हत्या की भावना, कपट, असत्य बोलने की भावना, प्रवचना धोखाधडी, विषय की लोलुपता, प्रमाद, आलस्य आदि जितने दोष हैं, ये सब इन तीन लेश्याओ से उत्पन्न होते हैं। हमारे इस स्थूल शरीर मे इन लेश्याओ के सवादी स्थान हैं जिनमे ये वृत्तिया उत्पन्न होती हैं। अधिवृक्क ग्रथिया (एड्रीनल ग्लैण्ड्स) और काम-ग्रन्थिया (गोनाड्स)—ये दो ग्रन्थिया इन लेश्याओ के प्रतिनिधि या सवादी स्थान हैं। इन तीन लेश्याओ के भाव यहा जन्म लेते हैं।

हम वर्तमान विज्ञान की दृष्टि, योग-शास्त्र की दृष्टि और लेश्या के सिद्धात की दृष्टि, इन तीनो दृष्टियो से इन पर विचार करें और इसकी तुलना करे।

वर्तमान विज्ञान की दृष्टि के अनुसार काम-वासना का स्थान है—जनन-ग्रथिया (गोनाड्स) वहा काम-वासना उत्पन्न होती है। अन्य वृत्तियो का स्थान है—अधिवृक्क ग्रथिया (एड्रीनल ग्लैण्ड्स) वहा, भय आवेग, बुरे भाव जन्म लेते हैं।

योग-शास्त्र की भाषा मे तीन चक्र हैं स्वाधिष्ठान-चक्र, मणिपुर-

चक्र और अनाहत-चक्र, जहा हमारी वृत्तिया जन्म लेती हैं। "एड्रीनल और गोनाड्स" को योग-शास्त्र की भाषा मे स्वाधिष्ठान-चक्र और मणिपुर चक्र कहा जाता है।

लेश्या-सिद्धांत की दृष्टि से अविरति, क्षुद्रता, निर्दयता, नृशसता, माया, निर्लज्जता, विषय-वासना, क्लेश, रस-लोलुपता—ये नील-लेश्या के परिणमन है। वक्रता—वक्र आचरण, अपने दोषो को ढाकने की मनोवृत्ति, परिग्रह का भाव, मिथ्या दृष्टिकोण, दूसरे के मर्म को भेदने की वृत्ति, अप्रिय कथन—ये कापोत-लेश्या के परिणमन हैं।

विज्ञान की दृष्टि, योग-शास्त्रीय दृष्टिकोण, लेश्या सिद्धात की दृष्टि इन तीनो की तुलनात्मक दृष्टि से लेश्या के सिद्धात मे जो तीन लेश्याए हैं, योग शास्त्र की दृष्टि मे जो तीन चक्र हैं और विज्ञान की दृष्टि मे जो एड्रीनल और गोनाड्स् ग्रन्थिया हैं—इन सबका काम समान-सा है। लेश्या का सिद्धात मानता है कि सारी आदते तीन लेश्याओ मे जन्म लेती हैं। योग शास्त्र मानता है कि सारी आदतें तीन चक्रो मे जन्म लेती है और विज्ञान के अनुसार ये सारी आदते दो ग्रन्थियो मे जन्म लेती हैं, अद्भुत समानता हैं तीनो प्रतिपादनो मे। यह सत्य स्पष्ट हो गया कि सारी बुरी वृत्तिया पेडू के पास वाले स्थान से लेकर नाभि के स्थान तक या हृदय के स्थान तक जन्म लेती हैं। इतना ही स्थान है इनका। इस सत्य को समझ लेने पर बदलने की भावना को समझने मे बहुत सरलता हो जाती है।

भावधारा, लेश्या और आभामंडल

प्राणी न शुद्ध अर्थ मे आत्मा है और न शुद्ध अर्थ मे जड पदार्थ है। वह एक यौगिक पदार्थ है। चैतन्य और पदार्थ का योग है। आत्मा का लक्षण है चैतन्य। पदार्थ का लक्षण है—वर्ण,गध, रस और स्पर्श। प्राणी का आभामडल दो प्रकार की ऊर्जाओ के सयुक्त विकिरण से बनता है—एक चैतन्य द्वारा प्राण-ऊर्जा का विकिरण और दूसरा भौतिक शरीर द्वारा विद्युत् चुम्बकीय ऊर्जा का विकिरण। प्राण-ऊर्जा के विकिरण का आधार है—व्यक्ति की भावधारा। भाव चैतसिक है और आभामडल पौद्गलिक (भौतिक) है, फिर भी भाव और आभामण्डल दोनो परस्पर प्रगाढ़ सम्बन्ध रखते हैं। आभामडल हमारी भावना का प्रतिनिधित्व करता है। इस दृष्टि से भाव के द्वारा आभामडल की और आभामडल के द्वारा भाव की व्याख्या की जा सकती है। आभामडल किसी एक रंग का नही होता। उसमे अनेक रगो का मिश्रण होता है, क्योकि उसका निर्माण लेश्याओ के आधार पर होता है। लेश्या के रंग व्यक्ति के भाव पर निर्भर रहते है। जिस व्यक्ति मे जिन भावो की प्रधानता होती है, वैसे ही लेश्या के रंग हो जाते हैं। लेश्या मे जितने रग

होते हैं, उतने ही रग आभामडल मे विम्बित हो जाते हैं। अच्छे भाव दीप्ति मय होते हैं और बुरे भाव मलिन। आभामडल के चित्र लिए जाते हैं, उनमे जो रग प्रतिबिम्बित होते हैं, उनके आधार पर क्षण-क्षण मे बदलते हुए भाव भी पकड मे आ सकते है। आभामडल के माध्यम से चेतना के परिवर्तन जाने जा सकते हैं, शरीर और मन के स्तर पर घटित होने वाली घटनाए जानी जा सकती हैं। स्थूल शरीर की घटनाए पहले सूक्ष्म शरीर मे घटित होती हैं। उनका प्रतिबिम्ब आभामडल पर अकित होता है। इसके अध्ययन से भविष्य मे घटित होने वाली घटनाओ का भी पता लगाया जा सकता है।

हमारा चित्त नाडी-सस्थान मे क्रियाशील रहता है और उसका मुख्य केन्द्र है—मस्तिष्क। वह अन्तर्जगत् मे सूक्ष्म चेतन से जुडा हुआ हैं। वहीं से उसे गतिशीलता के आदेश-निर्देश प्राप्त होते रहते हैं। और बाह्य-जगत् मे वह अपने प्रतिबिम्वभूत आभामडल से जुडा हुआ होता है। जैसा चित्त होता है, वैसा आभामडल होता है और जैसा आभामडल होता है, वैसा चित्त होता है। चित्त को देखकर आभामडल को जाना जा सकता है और आभामडल को देखकर चित्त को जाना जा सकता है। चित्त निर्मल, तो आभामडल निर्मल और चित्त मलिन, तो आभामडल मलिन है।

हमारी भावधारा जैसी होती है उसी के अनुरूप मानसिक चिंतन तथा शारीरिक मुद्राए और इगित तथा अग-सचालन होता है। क्रोध की मुद्रा मे रहने वाले व्यक्ति मे क्रोध के अवतरण की सभावना बढ जाती है। क्षमा की मुद्रा मे रहने वाले व्यक्ति के लिए क्षमा की चेतना मे जाना सहज हो जाता है।

योगियों के आभामंडल

सामान्य और स्वस्थ मनुष्यो के आभामडलो मे आयु, लिंग या जाति की भिन्नता का कोई प्रभाव नही देखा जाता, किंतु योगियो—उच्च चरित्र वाले व्यक्तियो के आभामडल सामान्य व्यक्तियो से बिलकुल भिन्न पाए जाते है। उनमे दीप्ति अधिक होती है। आभामडल को देखकर व्यक्ति के चरित्र को जाना सकता है।

६.५.३. प्रयोजन

सत्य को खोज

साधक के मन मे यह प्रश्न सहज उभर सकता है कि ध्यान क्यो ? प्रवृत्ति को छोडकर निवृत्ति क्यो ? प्रश्न स्वाभाविक है। हम यदि प्रवृत्ति और निवृत्ति को ठीक से समझ लें, तो प्रश्न समाहित हो सकता है यदि तनिक भी भ्राति हुई, तो ध्यान के प्रति भी हम भ्रात हो जाएगे।

प्रवृत्ति है जीवन की नैया को खेने के लिए, जीवन की यात्रा को चलाने के लिए, और निवृत्ति है जीवन की सचाई और सत्य को पाने के लिए। जो लोग केवल प्रवृत्ति करते हैं; वे जीवन की यात्रा को चला सकते हैं, किंतु जीवन की सचाई को प्राप्त नही कर सकते। प्रवृत्ति हमारी जीवन-यात्रा का साधन है, साध्य नही। यदि जीवन मे प्रवृत्ति और निवृत्ति का सम्यक् सतुलन नही होता है तो व्यक्ति प्रवृत्ति को साध्य मानने लग जाता है और जीवन मे एक बहुत बडी भ्राति आ जाती हैं। इस भ्राति को मिटाने के लिए सचाई को पाने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति ध्यान का अभ्यास करे।

चैतन्य की स्वतंत्र सत्ता का अनुभव

विज्ञान का लक्ष्य भी सत्य को पाना है, जिसके लिए वह निरन्तर प्रयत्नशील है। पर वैज्ञानिक खोजो के विषय केवल पदार्थ हैं, परमाणु हैं, चेतना की स्वतत्र सत्ता उसका विषय नही है। विज्ञान ने पदार्थ पर बहुत खोजें की हैं और आज भी उसकी खोज चालू है। पदार्थ के अस्तित्व के कण-कण को छाना जा रहा है। विज्ञान की खोज उपकरणो, यन्त्रो और अन्य भौतिक साधनो के माध्यम से हो रही है, इसलिए पदार्थ तक ही पहुच पाएगी। आत्मा तक उसकी पहुच नही हो सकती। चेतन सत्ता उसका विषय भी नही बनता। इसलिए वैज्ञानिक जगत् ने चेतन की स्वतत्र सत्ता को अब तक स्वीकार नही किया है। उस अस्वीकार के कारण आज हमें ध्यान की उपयोगिता इतनी ही लगती है कि उससे तनाव कम होता है, शारीरिक स्वास्थ्य बना रहता है आदि। बस, ध्यान की उपयोगिता समाप्त। यह सच है कि ध्यान से स्नायविक, मानसिक और भावनात्मक तनाव कम होते हैं, स्वास्थ्य सुधरता है, रक्तचाप संतुलित होता है, किन्तु ध्यान का उद्देश्य केवल शरीर को पुष्ट और स्वस्थ करने का नही है। यद्यपि शारीरिक स्वास्थ्य भी कम मूल्यवान् नही है और ध्यान का एक उद्देश्य शारीरिक स्वास्थ्य भी है,पर सबसे मूल्यवान् उद्देश्य है—अपने अस्तित्व का बोध। जब तक व्यक्ति अपने अस्तित्व का बोध नही कर लेता, तब तक दु:ख को समाप्त नही कर सकता दु:खो को समाप्त करने का एकमात्र साधन है—सत्य की उपलब्धि, अस्तित्व की उपलब्धि।

अन्तर्दृष्टि की जागृति

अन्तर्दृष्टि का अर्थ है प्रियता और अप्रियता की अनुभूति से मुक्ति। जब तक हम प्रियता-अप्रिता से मुक्त नही होते, तब तक हमे सत्य उपलब्ध नही होता। हम बडे-बडे शास्त्रो को रट ले, तत्त्वो का पारायण कर लें,फिर भी हमे अन्तर्दृष्टि प्राप्त नही हो सकती। अन्तर्दृष्टि, सम्यग्दृष्टि, सम्यक्त्व,

सत्य, सब एक ही है। ध्यान हम इसलिए कर रहे हैं कि हम अपने अस्तित्व को जाने, ज्ञाता को जानें, द्रष्टा को जानें, ज्ञाता-द्रष्टा, जो पर्दे के पीछे चला गया, हम उसका अनुभव करें। एक वैज्ञानिक उसे नही जान सकता, एक ध्यान-साधक उसे जान सकता है। ध्यान के सारे नियम ज्ञाता तक पहुचाने के लिए हैं। साधक अपने सवेदनो को शुद्ध करता चलता है, भोक्ता-स्वरूप को छोडता है और ज्ञाता-स्वरूप को प्राप्त करता है। जहा केवल जानने की बात आती है, वहा सवेदन शुद्ध हो जाता है, दृष्टि शुद्ध हो जाती और ज्ञान शुद्ध हो जाता है।

अनुभव की सच्चाई

डॉ० इर्विन श्रोडिंजर (Erwin Shrodinger) जैसे सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक कहते हैं कि "आज वैज्ञानिक इस बात मे उलझे हुए हैं कि पदार्थ का मूल कण क्या है ? किन्तु यह कोई बहुत महत्त्व का प्रश्न नही है। विज्ञान के सामने सबसे बडी चुनौती यह होनी चाहिए कि क्या चेतन सत्ता है या नही ? और पदार्थ का मूल चेतन है या अचेतन ?" वर्तमान मे पदार्थ के विषय मे अनेक दृष्टिया स्पष्ट हुई हैं, किन्तु चैतन्य के विषय मे अब भी केवल वैज्ञानिको को ही नही, धार्मिक लोगो मे भी अनेक उलझने हैं। आज धार्मिक लोग आत्मा के प्रश्न को शास्त्रो के माध्यम से हल करना चाहते है, तर्क के द्वारा समाहित करना चाहते हैं, आत्मा को वाड्मय द्वारा जानना चाहते हैं। यह कितना विरोधाभास है कि एक ओर यह कहा जाता है कि आत्मा तर्कातीत, पदातीत और शब्दातीत सत्य है। दूसरी ओर हम उसे तर्क, पद और शब्द के द्वारा पाना चाहते हैं।

चैतन्य को जानने का एक मात्र उपाय है—स्वय का अनुभव, अपने सवेदनो का निर्मलीकरण और ऊर्ध्वीकरण। ध्यान के साधक के लिए यह इष्ट है कि वह "स्वय" आत्मा को खोजे। वह केवल शास्त्रो पर या मान्यताओ पर निर्भर न रहे, किन्तु स्वय खोजे। शास्त्रो मे लिखा है कि आत्मा है, किन्तु यह एक शाब्दिक सचाई है, मान्यता है। ध्यान का प्रयोग किया, अपनी अन्तश्चेतना को जगाया, साक्षात्कार किया और जाना कि आत्मा है। तब वह साधक की "अपनी" सच्चाई बन जाती है, अनुभव की सच्चाई बन जाती है। ध्यान के द्वारा ही हम अनुभव की सच्चाई तक पहुच सकते हैं। ध्यान के अतिरिक्त ऐसा कोई माध्यम नही है, जो हमे शाब्दिक सच्चाई से हटाकर अनुभव की सच्चाई तक पहुंचा दे।

व्यक्तित्व का रूपांतरण

अध्यात्म के आचार्यों ने आत्म-शोधन की प्रक्रिया को इतने सुन्दर ढग

से प्ररूपित किया है कि उसे ठीक समझकर यदि हम उसका प्रयोग करें, तो व्यक्तित्व के रूपातरण मे कोई कठिनाई नही होगी।

लेश्या के शोधन के द्वारा जीवन मे धर्म सिद्ध हो सकता है। जब कृष्ण नील और कापोत—ये तीन लेश्याए बदल जाती हैं और तैजस्, पद्म और शुक्ल—ये तीन लेश्याए अवतरित होती है, तब परिवर्तन घटित होता है। लेश्याओ के शोधन के बिना जीवन नही बदल सकता।

धार्मिक होने का अर्थ ही है कि परिवर्तन की यात्रा पर चल पड़ना, रूपातरण की ओर प्रस्थान कर देना। यहा से तैजस् लेश्या की यात्रा शुरू हो जाती है, अध्यात्म की यात्रा शुरू हो जाती है। जब तैजस् लेश्या की यात्रा प्रारम्भ होती है, तब अध्यात्म के स्पन्दन जाग जाते हैं। जब अध्यात्म के स्पन्दन जागते हैं, तब परिवर्तन अपने आप शुरू हो जाता है।

अध्यात्म का समूचा मार्ग रूपातरण की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया का एक अभ्यास-क्रम है जो व्यक्ति इस अभ्यास-क्रम को स्वीकार कर लेता है, वह निश्चित ही अपनी लेश्याओ को बदल देता है। वह कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओ का अतिक्रमण कर या उन्हे बदलकर तैजस् पद्म और शुक्ल लेश्याओ के स्पन्दनो के अनुभवो मे चला जाता है। वहा जाने पर स्वभाव मे अपने आप परिवर्तन प्रारम्भ हो जाता है। यह है हमारे स्वभाव-परिवर्तन की प्रक्रिया और इसका साधन है लेश्या-ध्यान।

रासायनिक परिवर्तन

तप की समूची प्रक्रिया, योग की समूची प्रक्रिया और ध्यान की समूची प्रक्रिया आतरिक रसायन-परिवर्तन की प्रक्रिया है। शक्तिशाली और गरिष्ठ भोजन के द्वारा शरीर मे विषैले (toxic) रसायन पैदा होते हैं, संचित होते हैं और मन मे वासना व विकृति पैदा करते हैं। आयम्बिल, उपवास, एकातर उपवास, पाच दिन का उपवास, आठ दिन का उपवास—ये सारे बाह्य तप के प्रयोग शरीर के भीतरी रसायनो मे परिवर्तन लाते हैं। आसन-प्राणायाम और अन्य यौगिक क्रियाओ के द्वारा रासायनिक परिवर्तन घटित होता है। प्रायश्चित्त, विनय, स्वाध्याय आदि आभ्यन्तर तपश्चर्या के प्रयोग के द्वारा भी रसायनो मे परिवर्तन आता है। प्राचीन भाषा के प्रायश्चित्त को आज की भाषा मे मनोविश्लेषण या आत्मविश्लेषण कह सकते हैं प्रायश्चित्त की निर्मल भावना पुरानी ग्रथियो को खोल देती है। विनय, अहकार-शून्यता की प्रक्रिया सब प्रकार की तपश्चर्या मे रासायनिक परिवर्तन अपने आप घटित होता है।

लेश्याओं का रूपातरण

किंतु रासायनिक परिवर्तन का सबसे बड़ा सूत्र है—ध्यान। चैतन्य-केन्द्रो के ध्यान और लेश्या-ध्यान के द्वारा भीतरी रसायनों मे आश्चर्यजनक

परिवर्तन होता है, भाव-सस्थान मे परिवर्तन होता है और लेश्याओ मे परिवर्तन होता है। जैसा पहले वताया जा चुका है, दुष्प्रवृत्तियो के द्वारा सचित होने वाले कर्म कपायवलय को प्रवल करते हैं। जब सचित कर्म का विपाक होता है—वे फल देने के लिए तैयार होते है तव वे तरगो और रसायनो के रूप मे कपाय-वलय से वा:र आते है और ग्रथि-तत्र के माध्यम से वृत्तियो और वासनाओ को पैदा करते हैं। जव तरगें और रसायन तीव्र विपाक लेकर वाहर आ रहे होते है, तव लेश्या-ध्यान (चैतन्य-केन्द्रो पर रगो के ध्यान) के द्वारा ऐसी तरग और ऐसे रसायनो का निर्माण होता है कि तीव्र विपाक वाली तरगे नष्ट हो जाती है, रसायन मन्द हो जाते है, उनका सामर्थ्य क्षीण हो जाता है और उनका आक्रमण विफल हो जाता है।

भीतर से तीव्र विपाक का जो परिस्राव आता है, उस स्राव को ग्रथिया वाहर लाती हैं। लेश्या-ध्यान से ग्रन्थिया शुद्ध होने लगती है, लेश्याए शुद्ध होने लगती हैं, तव अध्यवसाय शुद्ध होने लगते हैं। जव अध्यवसाय शुद्ध होते हैं, तब कषाय के तीव्र विपाक नही आ सकते—वे मन्द हो जाते है। मन्द विपाक तीव्र वृत्ति, वासना या बुरी आदत का निर्माण नही कर सकता।

भावधारा का निर्मलीकरण

लेश्या की परिभाषा करते समय यह बताया गया था कि केन्द्र मे मूल आत्मा (चैतन्य) है और उसके चारो ओर अति सूक्ष्म शरीर द्वारा निर्मित कषाय का वलय है। चैतन्य तो मलिन नही है, वह तो शुद्ध है, फिर यह अशुद्धता क्यो ? कारण स्पष्ट है। उस चैतन्य महासागर के चारो ओर एक वलय है—कषाय के महासागर का, एक प्रश्न और होता है कि कषाय का महासागर जब चैतन्य के महासागर को घेरे हुए है तो फिर शुद्धि का प्रश्न ही कहा उठता है ? जो कुछ बाहर आएगा वह सारा अशुद्ध ही होगा। शुद्ध लेश्या कैसे होगी ? शुद्ध भाव कैसे होगा ? शुद्ध अध्यवसाय कैसे होगा ? कषाय से छनकर और कषाय के रस के साथ मिलकर जो कुछ भी बाहर आएगा वह मलिन, अपवित्र और अशुद्ध ही आएगा। शुद्ध कैसे होगा ?

भाव की शुद्धि अध्यवसाय से होती है और अध्यवसाय की शुद्धि भाव के मदीकरण से होती है। कषाय का मदीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है। एक तो केवल ज्ञेय के प्रति जब चैतन्य के स्पन्दन जाते हैं, तब उनके साथ कषाय की मलिनता नही जुडती, उनसे जो अध्यवसाय निर्मित होगे, वे शुद्ध बने रहेगे, उनसे जो लेश्या बनेगी, वह शुद्ध बनेगी। केवल ज्ञेय के प्रति चैतन्य के स्पन्दन तभी जाते हैं, जब रागात्मक या द्वेषात्मक भाव उनके साथ नही जुडते। यह घटित होता है—केवल ज्ञाता-द्रष्टा भाव के द्वारा जो प्रेक्षा-ध्यान का ही एक रूप है।

कषाय के मदीकरण का दूसरा रास्ता भी है—ध्यान-साधना के द्वारा मोह के विलय के स्पन्दनो को उत्पन्न करना। जब हम ध्यान का प्रयोग करते हैं, तब हमारे सूक्ष्म-शरीर के अन्दर दो प्रकार के स्पन्दन समानान्तर रेखा मे चलते है—एक है मोह के स्पन्दन और दूसरा है मोह के विलय का स्पन्दन। दोनो स्पन्दन चलते हैं और वे भाव बनते हैं। कषाय जितना क्षीण होगा, मोह के स्पन्दन उतने ही निर्वीर्य बन जाएगे, शक्ति-शून्य बन जाएगे। वे समाप्त नही होगे; किन्तु उनकी सक्रियता कम हो जाएगी, उनका प्रभाव क्षीण हो जाएगा। जब मोह के विलय के स्पन्दन शक्तिशाली होगे, तब भाव मगलमय और कल्याणकारी होगे। जब-जब मोह के स्पन्दन शक्तिशाली होते हैं—नील और कापोत-लेश्या के स्पदन शक्तिशाली होते है, तब-तब तैजस् लेश्या और पद्म लेश्या के स्पदन क्षीण हो जाते हैं जब-जब कषाय के स्पदन कम होते है, तब-तब तैजस् लेश्या पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या के स्पंदन तथा भाव शक्तिशाली बनते जायेगे। इस प्रकार जो तरगे कषाय का वलय पार कर बाहर आ रही है, उन्हे तरगावस्था मे तैजस् शरीर के स्तर पर प्रशस्त लेश्या के स्पदनो को उत्पन्न कर मंद कर दिया जाता है। लेश्या-ध्यान के द्वारा किया जा सकता है। लेश्या-ध्यान मे प्रशस्त रगो के ध्यान द्वारा प्रशस्त लेश्या के स्पदन पैदा करने से अप्रशस्त लेश्या के स्पंदन जो भीतर से आ रहे हैं, उनकी तीव्रता मन्द हो जाती है।

कषाय या अतिसूक्ष्म (कर्मण) शरीर मे केवल स्पदन हैं, केवल तरगें हैं। वहा भाव नही है वहा चेतना के स्पदन भी हैं और कषाय के स्पन्दन भी हैं। दोनो मे स्पन्दन ही स्पन्दन हैं, तरगें ही तरगे है। उदाहरणार्थ, क्रोध कषाय का एक रूप है। अति सूक्ष्म शरीर मे क्रोध की केवल तरगें होती हैं। चैतन्य की तरगो के साथ जब क्रोध की तरगे मिलती हैं, तो क्रोध के अध्यवसाय बनते है। वहा तक कोरी तरगें हैं, भाव नही। बाद मे जो तरगे तैजस् शरीर के साथ सघन होकर भाव का रूप लेती हैं, वे लेश्या बन जाती हैं। लेश्या मे पहुचकर भाव बनता है और तरगें ठोस रूप ले लेती है। शक्ति या ऊर्जा पदार्थ मे बदल जाती है। तरग का सघन रूप है भाव और भाव का सघन रूप है क्रिया। जब भाव सघन होकर क्रिया बन जाती है, तब वह स्थूल शरीर मे प्रकट होती है।

लेश्या-ध्यान के द्वारा कषाय के मदीकरण की प्रक्रिया का फिर क्रोध के उदाहरण से समझे। क्रोध स्थूल शरीर मे प्रकट होने से पहले तक तरंगावस्था मे होता है; तब ही उसकी शक्ति को क्षीण करना होगा। रगो के ध्यान के द्वारा—शुभ लेश्या के द्वारा ऐसी तरगो को उत्पन्न करना होगा जो क्रोध को तरगावस्था मे ही समाप्त कर सके या उनकी शक्ति, प्रभाव और सक्रियता को क्षीण कर सके। क्रोध की तरगें भी ऊर्जा के रूप मे हैं और

उनको समाप्त करने वाली तरगें भी ऊर्जा के रूप मे है ।

निस्तरंग की दिशा में प्रस्थान

तीन स्थितिया है—१ बुरे विचार २ अच्छे विचार ३ निर्विचार । "बुरे विचार" भी एक तरग है और "अच्छे विचार" भी एक तरग है । दोनो तरग हैं । दोनो मे तरग की दृष्टि से कोई अन्तर नही है, किन्तु एक तरग और दूसरी तरग मे बहुत बडा अन्तर होता है. सामान्य आदमी यह मानता है कि इस ससार मे रग है, रूप है, ध्वनिया है, ताप हैं, सब-कुछ हैं, किन्तु एक वैज्ञानिक इस भाषा मे नही सोचेगा । वैज्ञानिक के लिए यह दुनिया न रगमय है, न रूपमय है, न ध्वनिमय है, न तापमय है । उसके लिए यह जगत् काल और विद्युत् का प्रवाह मात्र है । सब कुछ विद्युतमय है । ऐसी स्थिति मे अच्छा सोचना भी विद्युत् की तरग है और बुरा सोचना भी विद्युत् की तरग है । सोचना, चिंतन करना, प्रवृत्ति करना, सब कुछ विद्युत् की तरग है । यदि हम निस्तरग की ओर बढना चाहते है, तरगातीत स्थिति मे जाना चाहते हैं, तो इसकी यही प्रक्रिया होगी कि सबसे पहले बुरी तरग को समाप्त कर अच्छी तरग का निर्माण करे । अच्छी तरग का निर्माण किए बिना बुरी तरंग को समाप्त नही किया जा सकता । जिस बुरे चिंतन से व्यक्ति तरगातीत स्थिति से दूर चला गया था, वह अच्छे चिंतन से उस दिशा मे कदम बढ़ा सकता है । यद्यपि अच्छे चिंतन से व्यक्ति तरगातीत अवस्था मे नही पहुच सकता, किन्तु जहा बुरा चिंतन तरगातीत दिशा से हमे विमुख कर देता है, वहा अच्छा चिंतन उस दिशा मे गति कराता है ।

बुरे चिंतन से अच्छे मे आने का सबसे सरल उपाय है—लेश्या-ध्यान । इस ध्यान का अभ्यास किए बिना चिंतन को नही मोड़ा जा सकता । सामाजिक सम्बन्धो के कारण व्यक्ति मे शत्रुता के भाव आते रहते हैं । दूसरे का अनिष्ट करने की भावना उसमे पनपती है । अप्रिय व्यक्ति के सामने आते ही आखें तमतमा जाती हैं । विरोधी व्यक्ति की स्मृति होते ही सारी चिंतन-धारा प्रकपित हो जाती है । इन प्रतिक्रियाओ को तब तक नही रोका जा सकता, जब तक शुद्ध लेश्याओ का ध्यान नही किया जाता । प्रशस्त लाल प्रशस्त पीत और प्रशस्त श्वेत वर्णों का ध्यान कर हम आतरिक प्रक्रिया को बदल सकते है और मन की आतरिक प्रक्रिया के द्वारा फिर उन वर्णों मे परि-वर्तन शुरू हो जाता है । तब हम बाहर से भीतर को प्रभावित करते हैं और भीतर से बाहर को प्रभावित करते हैं ।

अन्तर्वृत्तियो के शोधन के लिए तैजस् और पद्म लेश्या का ध्यान किया जाए । बुरे विचार न उठें बुरे विचार हमे आक्रात न करें, हमारे मस्तिष्क को प्रभ वित न करें, इसलिए हमे शुक्ल लेश्या का ध्यान करना होगा । हम एक ऐसे कवच का निर्माण करें जिसको भेद कर बुरे विचार न आ पाए । वे

बाहर ही रह जाए। हमारे मस्तिष्क मे न आए। यदि शुक्ल लेश्या के द्वारा हम एक शक्तिशाली कवच बना लेते है तो बाहर के खतरे से बच जाते हैं। यदि हम तैजस् और पद्म लेश्या का कवच बना लेते है, तो भीतर से उठने वाले बुरे विचारो के आक्रमण से बच जाते हैं। इसके बाद अच्छे विचारो की तरगें पैदा होने लग जाती हैं और ये तरगे बहुत सहयोगी बनती हैं। ये हमारी अध्यात्म-यात्रा मे आगे बढने मे सहयोग करती हैं। यद्यपि लेश्या स्वय तरग है, किन्तु निस्तरग की दिशा मे प्रस्थान के लिए लेश्या-ध्यान बहुत सहयोग करता है।

चिकित्सा-पद्धति

हमारे समूचे भाव-तंत्र पर रगो का प्रभुत्व है। रगो के द्वारा शारीरिक बीमारिया मिटाई जा सकती है, मानसिक दुर्बलताओ को मिटाया जा सकता है और आध्यात्मिक मूर्च्छा को तोडा जा सकता है। लेश्या-पद्धति आध्यात्मिक मूर्च्छा को मिटाने की महत्त्वपूर्ण चिकित्सा-पद्धति है। दूषित भावो और विकृत विचारो द्वारा जो जहर शरीर मे पैदा होता है, उसे बाहर निकालने की यह अभूतपूर्व पद्धति है। रगो के ध्यान से या रग-चिकित्सा से सचित विष बाहर निकलते है और भाव तथा विचार निर्मल बनते है। जब भाव पवित्र होते है, निर्मल होते है, तब विचार भी निर्मल होते हैं। विचारो का सम्बन्ध कषाय से नही है। विचारो का सम्बन्ध है मस्तिष्क से और ज्ञान से। विचार, स्मृति, चिंतन, विश्लेषण, चयन, निर्धारण—ये ज्ञान की जितनी शाखाए है, इन सबका सबध मस्तिष्क से है। जितने भाव है, उन सबका सबध हमारी अन्त.स्रावी ग्रथियो से है। शरीर मे दो तत्र उनकी अभिव्यक्ति के है—एक है ग्रन्थि-तत्र और दूसरा है—नाडी-तत्र। हमारे भावो को व्यक्त करता है ग्रन्थि-तत्र और विचारो का निर्माण करता है नाड़ी-तत्र। पहला है भाव, दूसरा है विचार। विचार से भाव नही बनता, किंतु भाव से विचार बनता है। जिस लेश्या का भाव होता है, वैसा ही विचार बन जाता है—भाव अन्तरग-तत्र है और विचार प्रवृत्ति-तत्र है। यह करने वाला तत्र है भाव, इसलिए हमे विचारो पर अधिक ध्यान देने की जरूरत नही है। विचारों पर वे लोग ध्यान दें, जो बाहर ही बाहर घूमते है। जो भीतर की यात्रा कर रहे है, उन्हे विचार पर ध्यान देने की जरूरत नही है। वे भाव पर ध्यान दें, भाव को निर्मल करें।

भावो को निर्मल बनाने का सबसे सरल उपाय है—रगो का ध्यान करना। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपाय है। प्रशस्त रंगो का ध्यान भावो को निर्मल बनाने मे उपयोगी होता है। लाल, पीला और सफेद—ये तीन रग भाव-शुद्धि के कारण हैं।

जब हम इन प्रशस्त रगो का ध्यान करते है और उनसे तन्मयता प्राप्त करते है, तब हमारे भाव परिवर्तित हो जाते है। विचारने और साधने की जरूरत नही, सहज बदल जाते हैं। सारे स्पन्दन बदल जाते हैं। विचारो के, विकल्पो के और मोह के स्पन्दन इन प्रशस्त रगो के स्पन्दनो से रुक जाते हैं, निर्वीर्य हो जाते हैं। साथ-साथ कषाय-विलय और मूर्च्छा-विलय के जो स्पन्दन होते है, उन्हे शक्ति मिलती है और वे सक्रिय हो जाते हैं।

हम भावो को परिवर्तन कर, लेश्याओ को शुद्ध कर, भाव-सस्थान को गगाजल जैसा निर्मल बनाए गगोत्री जैसा निर्मल बनाए और शरीर, मन तथा अध्यात्म की चिकित्सा करे। हम शरीर के दोष और अपाय, मन के दोष और अपाय तथा अध्यात्म के दोष अर्थात् मूर्च्छा के दोष और अपाय—इन सब अपायो को समाप्त करे और उपायो का प्रयोग करे।

९.५.४. निष्पत्तियां

परिवर्तन का प्रारंभ

तैजस् लेश्या का बाल-सूर्य जैसा लाल रग है। लाल रग निर्माण का रग है। लाल रग का तत्त्व है—अग्नि। हमारी सक्रियता, शक्ति, तेजस्विता, दीप्ति, प्रवृत्ति सबका स्रोत है—लाल रग। लाल रग हमारा स्वास्थ्य है। डाक्टर सबसे पहले देखता है कि रक्त मे श्वेत कण कितने हैं और लाल कण कितने हैं ? लाल कण कम होते हैं, तो वह अस्वास्थ्य का द्योतक है। लाल रग मे यह क्षमता है कि वह व्यक्ति को बाह्य जगत् से अन्तर्जगत् मे ले जा सकता है।

जब हम दर्शन-केन्द्र पर बाल-सूर्य के अरुण रग का ध्यान करते है और जब वह ध्यान सधता है, अरुण रग प्रगट होता है, दीखने लग जाता है, तब इस लाल रग के अनुभव से, तैजस् लेश्या के स्पन्दनो की अनुभूति से अन्तर्जगत् की यात्रा प्रारम्भ होती है आदतो मे परिवर्तन आना प्रारम्भ हो जाता है।

अनिर्वचनीय एवं अपूर्व आनन्द

जब तैजस् लेश्या के स्पदन जागते है, तब व्यक्ति को अनिर्वचनीय आनन्दानुभूति होती है। उस आनन्द का प्रत्यक्ष अनुभव करने वाला ही उसे जान सकता है, वह उसे बता नही सकता। जिस व्यक्ति ने तेजोलेश्या का कभी प्रयोग नही किया, ध्यान नही किया, वह व्यक्ति इस स्थूल शरीर से परे भी कोई आनन्द होता है, इन विषयो से परे भी कोई सुखानुभूति है, नही समझ पाता, कल्पना भी नही कर पाता। जब तक वह प्रयोग से नही गुजरता, तब तक उसे ज्ञात ही नही होता कि ऐसा अनिर्वचनीय सुख भी हो सकता है। जो सुख का अनुभव होता है, वह अपूर्व होता है। व्यक्ति सोचता है—मैंने

मान रखा था कि सुख तो पदार्थ से मिलता है, किन्तु आज यह स्पष्ट अनुभव हो रहा है कि जैसा सुख तैजस् लेश्या के स्पन्दनों के जागने पर होता है, वैसा सुख जीवन मे किसी भी पदार्थ से नही मिल सकता। भ्रांति टूट जाती है, धारणाएं बदल जाती हैं।

वास्तविकता यह है कि पदार्थों मे सुख है ही नही। हमारे भीतर एक विद्युत्धारा है। वह सुख का निमित्त बनती है। वैज्ञानिक प्रयोगो से यह सिद्ध हो चुका है कि विद्युत् के प्रकम्पनो के बिना कोई सुख का सवेदन नही हो सकता। जो सुख इन्द्रिय-विषयो के उपभोग से उपलब्ध किया जाता है, वही सुख इन्द्रिय-विषयों के बिना, कल्पना से भी किया जाता है और वही सुख केवल विद्युत् के प्रकंपन पैदा करके भी किया जा सकता है। कान के बिन्दु पर या स्वाद के बिन्दु पर इलेक्ट्रोड लगाकर प्रकंपन पैदा किए जाए तो पदार्थ के बिना भी उनके उपभोग की-सी सुख-सवेदन का अनुभव होता है। वस्तु के सयोग से जो प्रतिक्रियाए पैदा होती हैं, वे प्रतिक्रियाए वस्तु के बिना भी विद्युत् के प्रकपनो से पैदा की जा सकती हैं, इसलिए यह तथ्य प्रमाणित हो गया कि सुख का सवेदन विद्युत्-प्रकंपन-सापेक्ष है।

जब तैजस् लेश्या जागती है, तब विद्युत् के प्रकंपन बहुत बढ जाते हैं, तीव्रतम हो जाते हैं। प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करने वाले को अनुभव होता है

पद्मलेश्या

पीत-लेश्या से चित्त प्रशांत होता है, शांति बढ़ती है और आनन्द बढ़ता है। दर्शन की शक्ति पीले रग से विकसित होती है। दर्शन का अर्थ है—साक्षात्कार, अनुभव। इससे तर्क की शक्ति नही बढती, साक्षात्कार की शक्ति बढ़ती है, अनुभव की शक्ति का विकास होता है।

पीले रग की क्षमता है—मन को प्रसन्न करना, बुद्धि का विकास करना, दर्शन की शक्ति को बढाना, मस्तिष्क और नाड़ी-सस्थान को सुदृढ़ करना, सक्रिय बनाना। यदि हम मस्तिष्क तथा चाक्षुप-केंद्र पर पीले रग का ध्यान करते हैं, तो ज्ञानतन्तु विकसित होते हैं।

जितेन्द्रियता

जब हम चमकते हुए पीले रग के परमाणुओ को आकर्षित करते हैं, तो जितेन्द्रिय होने की स्थिति निर्मित हो जाती है। हम जितेन्द्रिय हो सकते हैं। पद्म लेश्या का अभ्यास करने वाला व्यक्ति जितेन्द्रिय हो जाता है। कृष्ण और नील लेश्या मे रहने वाला व्यक्ति अजितेन्द्रिय होता है। ये दोनो प्रकार के परमाणु एक दूसरे से विरोधी हैं। जब तक काले रंग के परमाणुओ का प्रभाव बना रहता है, तब तक हम जितेन्द्रिय नही हो सकते। जब पीले रग के परमाणुओ से हमारा लेश्या-तत्र और आभामण्डल सक्रिय होता है, तब

हमे जितेन्द्रिय होने की सुविधा मिल जाती है।

शुक्ल-लेश्या

शुक्ल लेश्या का रग पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसा श्वेत है। श्वेत रग पवित्रता, शाति, शुद्धता और निर्वाण का द्योतक है। तेजोलेश्या और पद्म लेश्या के द्वारा बढी हुई गर्मी को शुक्ल लेश्या उपशात कर देती है और निर्वाण घटित हो जाता है। शुक्ल लेश्या उत्तेजना, आवेग, आवेश, चिन्ता, तनाव, वासना, कषाय, क्रोध आदि को शात कर पूर्ण शाति का अनुभव कराती है।

आत्म-साक्षात्कार

साधक ऐसा न माने कि तैजस् लेश्या और पद्म लेश्या के स्पन्दन पकड मे आ गए, तो यात्रा सम्पन्न हो गई। इससे आगे की यात्रा अभी शेष है। इन्द्रिय-चेतना, मन स्थ चेतना और चित्त की चेतना वाले शरीर मे एक ऐसा तत्त्व भी है जो इन चेतनाओ से परे है। उसका साक्षात्कार हमे इष्ट है। आत्म-साक्षात्कार ही लेश्या-ध्यान का लक्ष्य है, जो शुक्ल लेश्या के ध्यान से प्राप्त होता है। इस विन्दु पर पहुचकर ही हम भौतिक और आध्यात्मिक जगत् के अन्तर को समझ सकते हैं।

आत्म-साक्षात्कार की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है—निर्विकल्प चेतना का निर्माण।

अव्यथ चेतना

जिस दुनिया मे निर्विकल्प चेतना का महत्त्व है, सचमुच वह कोई दूसरे प्रकार की दुनिया है। यह काल्पनिक बात नही है। यह यथार्थ है। जब यह चेतना जागती है, तब सारी असमाधिया दूर हो जाती है। सबसे पहला सुफल होता है—अव्यथ चेतना की जागृति। निर्विकल्प चेतना मे जीने वाला व्यक्ति निर्व्यथ जीवन जीता है। उसकी चेतना मे व्यथा नही होती। उसके सामने कितना ही प्रतिकूल वातावरण उपस्थित हो, भयकर परिस्थितिया और समस्याए हो, वह कभी व्यथित नही होता। जैसे सोए हुए व्यक्ति के सामने घटने वाली घटना का उस पर कोई असर नही होता, वैसे ही निर्विकल्प चेतना मे जीने वाले व्यक्ति पर घटनाओ का कोई असर नही होता। कोई भी घटना उसे क्षुब्ध नही कर पाती। वह घटना को जान लेता है, भोगता नही। वह केवल ज्ञाता रहता है, भोक्ता नही।

अमूढ़ चेतना

दूसरा सुफल यह होता है कि चेतना असम्मोह की स्थिति मे चली जाती है। उसमे फिर मूढता पैदा नही होती। इस दुनिया मे मूढ़ता पैदा

करने वाले अनेक तत्त्व हैं। व्यक्ति एक शब्द सुनता है, एक रूप देखता है और सम्मोहित हो जाता है। उसकी चेतना संमूढ बन जाती है। एक विचार सामने आता है और वह समूढ बन जाता है। पग-पग पर समूढता के कारण बिखरे पडे हैं। वह इनमे फस जाता है। सारे सम्मोहन विकल्प-चेतना मे जागते रहते हैं। विकल्प उभरता है, साथ-साथ मूढता उभरती है। निर्विकल्प चेतना के उपलब्ध होने पर चित्त मूढ़ नही बनता, सम्मोहन समाप्त हो जाता है।

विवेक-चेतना

तीसरा सुफल यह होता है कि उससे विवेक-चेतना जाग जाती है। विवेक-चेतना के जागने पर साधक मे पार्थक्य-शक्ति विकसित हो जाती है। आत्मा और पुद्गल का स्पष्ट भेद उसे साक्षात् हो जाता है।

व्युत्सर्ग-चेतना

चौथा सुफल यह होता है कि जब विवेक-चेतना पुष्ट होती है, तब व्युत्सर्ग की क्षमता बढती है, त्याग और विसर्जन की शक्ति का विकास होता है। व्युत्सर्ग चेतना से त्याग की शक्ति प्रबल होती है।

यही हमारा गन्तव्य है, यही हमारी मजिल है। जैसे-जैसे चेतना का विकास होगा, जैसे-जैसे विकल्पो को कम करते हुए निर्विकल्प चेतना के क्षणो मे जीने का अभ्यास होगा, वैसे-वैसे वह चेतना पुष्ट होगी और चेतना का वह अनन्त सागर एक दिन निस्तरग और ऊर्मि-विहीन बन जाएगा। उस स्थिति मे, उस परम सत्य का साक्षात्कार होगा, जिसके लिए हजारो-हजारो लोग सदा उत्सुक रहते हैं।

९.६.०. सारांश

भाव और मनोविज्ञान

जीवन की अनेक समस्याएं बुरे भाव या सवेगो के कारण पैदा होती हैं अच्छे जीवन के लिए उन भावो एवं सवेगो का शोधन आवश्यक है। यह शोधन ही भावात्मक प्रशिक्षण है।

सामान्यतया किसी भी घटना के सवेदन के पश्चात् उसके साथ भाव जुड़ते हैं, ये जब तीव्र होते हैं तब उन्हे सवेग कहा जाता है। भावात्मक अवस्था क्षणिक एवं चचल होती है। इससे मन की चंचलता एव व्यग्रता बढती है। शक्ति का अपव्यय होता है। मन की एकाग्रता एवं शक्ति विकास के लिए भाव विशुद्धि को जानना आवश्यक है। भाव, सवेग, लेश्या, आभामण्डल, रंग एवं ध्यान के पारस्परिक सबंधो का ज्ञान भाव-परिष्कार मे बहुत सहयोगी बनता है।

भाव और लेश्या

हमारी चेतना के तीन स्तर हैं— अध्यवसाय, लेश्या एव चित्त। यह लेश्या स्तर भावो का निर्माण करनेवाला स्तर है। लेश्या स्तर पर पहुचने पर व्यक्तित्व बदल जाता है, जीवन मे रूपान्तरण घटित हो जाता है। लेश्या का सिद्धान्त पहले दार्शनिक जगत् मे चर्चित था आज वह आभामण्डल के नाम से वैज्ञानिक जगत् मे चर्चा का विषय बन गया है।

लेश्या : ऐतिहासिक अवलोकन

लेश्या शब्द का मूल शब्द 'प्राकृत' भाषा से है। यह 'रश्मि' शब्द का वाचक है। जीव के चारो ओर जो विकिरित किरणें या रश्मिया हैं उन्हे कर्म लेश्या कहा जाता है। ये कर्म प्रवाह से अभिव्यक्त होती हैं। उस समय जीव के जो आत्म-परिणाम बनते हैं उन्हे भाव लेश्या कहा जाता है। विश्व मे जो रश्मिया या रग दिखाई देते हैं उन्हे नोकर्म लेश्या के रूप मे जाना जाता है। कर्म-लेश्या के छ प्रकार हैं—कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म एव शुक्ल लेश्या। मानसिक एकाग्रता, शाति की प्राप्ति एव व्यक्तित्व की पहचान मे लेश्या सिद्धान्त बहुत उपयोगी है।

लेश्या-आभामण्डल-भाव

यह लेश्या हमारे शरीर के चारो ओर रश्मियो के रूप मे विकिरित होती है। इससे शरीर के चारो ओर वलयाकार घेरा बन जाता है, उसे आभामण्डल कहा जाता है। लेश्या के रगो के अनुसार आभामण्डल के रग होते हैं। उसी के अनुरूप व्यक्ति की भावधारा व विचारधारा बन जाती है। आभामण्डल मे काले रग की प्रधानता क्रूर, मैले नीले रग की प्रधानता क्षुद्र, कापोत रग की प्रधानता कुटिल व्यक्तित्व का द्योतक होती है।

वैज्ञानिको ने आभामण्डल के फोटो लिये हैं। किर्लियन दपती ने विशेष केमरे से पत्तियो एव मनुष्यो के आभामण्डल के छाया चित्र लिये। उसमे उन्हे इनके चारो ओर आलोक मण्डल दिखाई दिया। इस आभामण्डल के रगो को बदला जा सकता है। सकल्प-शक्ति, एकाग्रता और इच्छा-शक्ति के द्वारा रगो को बदलकर, शक्ति का विकास, स्वभाव-परिवर्तन तथा चेतना को जगाया जा सकता है। रगो का ध्यान लेश्या और आभामण्डल मे रगो को बदलने का सशक्त प्रयोग है। रगो के ध्यान को लेश्या ध्यान कहते हैं।

लेश्या ध्यान वैज्ञानिक दृष्टिकोण

लेश्या ध्यान रगो का ध्यान है। पदार्थ के द्वारा अनवशोषित प्रकाश किरणो से आख पर उत्पन्न अनुभूति रग है। प्रकाश का रग उसके तरग दैर्घ्य पर आधारित है। आज के मनोवैज्ञानिको और वैज्ञानिको ने यह खोज की है कि व्यक्ति के अन्तर-मन को, अवचेतन मन को और मस्तिष्क को

सबसे अधिक प्रभावित करने वाला है—रग। रग हमारे समूचे व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। यह नाडी-ग्रथि तत्र को प्रभावित करता है।

दुनिया का हर पदार्थ-चेतना या जड अपने आकार मे रश्मियो का विकिरण करता है। ये रश्मिया विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा या तरंग के रूप मे होती है। इस निकलनेवाली ऊर्जा से आभामण्डल निर्मित होता है। इस आभामण्डल को विशेष यत्रो द्वारा देखा जा सकता है। आभामण्डल के रग और स्वास्थ्य का गहरा सबध है। इस विषय पर देश-विदेशो मे गहन अनुसधान हो रहे हैं।

लेश्या ध्यान : आध्यात्मिक दृष्टिकोण

पौद्गलिक लेश्या (रग) का आत्मिक परिणामो (भाव लेश्या) पर प्रभाव पडता है और भाव लेश्या का पौद्गलिक लेश्या (रग) पर। कषाय (सवेग) की मदता से अध्यवसाय की शुद्धि होती है और अध्यवसाय की शुद्धि से लेश्या की शुद्धि होती है। लेश्या से विशुद्ध भावधारा हमारे ग्रथि तन्त्र को प्रभावित करती है। ग्रथि तत्र के हार्मोन रक्त संचार तत्र के द्वारा नाडी तत्र और मस्तिष्क के सहयोग से हमारे अन्तर्भाव, चिन्तन, वाणी, आचार और व्यवहार को सचालित और नियत्रित करते है। पौद्गलिक (लेश्या) रगो के ध्यान द्वारा आभामण्डल को बदला जा सकता है। इससे भावो को बदलकर व्यक्तित्व का रूपान्तरण किया जा सकता है।

लेश्या ध्यान का प्रयोजन है—सत्य की खोज, चैतन्य की स्वतन्त्र सत्ता का अनुभव, अन्तर्दृष्टि की जागृति, व्यक्तित्व का रूपान्तरण, भावधारा का निर्मलीकरण आदि। इसके मुख्य परिणाम हैं—जीवन मे परिवर्तन, अनिर्वचनीय एव अपूर्व आनन्द, जितेन्द्रियता, आत्म-साक्षात्कार।

९.७.०. सहायक सामग्री

१ आभामण्डल, आचार्य महाप्रज्ञ,
प्रकाशक आदर्श साहित्य सघ चूरू (राज०)

२ अपना दर्पण अपना बिम्ब, आचार्य महाप्रज्ञ
जैन विश्व भारती, लाडनू (राज०)

३. चित्त और मन, आचार्य महाप्रज्ञ
जैन विश्व भारती, लाडनू (राज०)

४. प्रेक्षा ध्यान लेश्या ध्यान, आचार्य महाप्रज्ञ
जैन विश्व भारती, लाडनू (राज०)

५ लेश्या और मनोविज्ञान, मुमुक्षु डा शाता जैन, १९९६
जैन विश्व भारती, लाडनू (राज०)

6. Color and human response, Faber Birren
Van Nastrand reinhold company, New york
7. Color psychology and color therapy, by Faber Birren
Published by citadel press Secaucus, N J,
8 The human aura, by Walter J Kilner
Published by citadel press Secaucus, New Jersey.
9 Hands of light, (1988) By Barbara Ann Brennan, Bantam Book, New York
10 Emotional Intelligence, 1995, By Daniel Goleman, Bantam Books, New York.

अभ्यासार्थ प्रश्न

१ भाव और सवेग से क्या तात्पर्य है ?
२ लेश्या स्तर का निर्माण कैसे होता है ? और उसका प्रभाव हमारे जीवन पर किस प्रकार पडता है ?
३ लेश्या सिद्धान्त की ऐतिहासिक दृष्टि से समीक्षा करे ?
४ लेश्या शब्द की मीमासा, परिभाषा एव प्रकारो का विवेचन करें ?
५ लेश्या सिद्धान्त की जीवन मे उपयोगिता क्या है ?
६ लेश्या और आभामण्डल को स्पष्ट करते हुए उसके सम्बन्धो पर प्रकाश डालें ।
७ व्यक्ति के मन पर होने वाले रगो के प्रभाव को समझाए ।
८ रग व्यक्ति के मन कायिक बीमारियो पर क्या प्रभाव डालते हैं ? स्पष्ट करें ।
९ आभामण्डल का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए आभामण्डल के रग और रोगो के सम्बन्ध का विश्लेषण करे ।
१० वैज्ञानिक दृष्टिकोण से लेश्या की व्याख्या कीजिए ।
११ द्रव्यलेश्या और भावलेश्या का अन्तर स्पष्ट करते हुए व्यक्ति की वृत्तियो के सदर्भ मे लेश्यातन्त्र का महत्व बताए ।
१२ लेश्या-ध्यान की आवश्यकता को स्पष्ट कीजिए ।
१३ व्यक्तित्व के परिवर्तन और रूपान्तरण मे लेश्या के शोधन की महत्ता पर प्रकाश डाले ।
१४ भावधारा का निर्मलीकरण क्या है और यह कैसे प्राप्त होता है ?
१५ लेश्या-ध्यान की निष्पत्तियो को स्पष्ट कीजिए ।

चतुर्थ खण्ड

जीवन विज्ञान का अनुप्रयोग
(Application of Science of living)

अध्याय १०

शिक्षा में जीवन विज्ञान

(Jeevan Vigyan in Education)

१. आवश्यकता एवं महत्त्व (Necessity and Importance)

२. जीवन विज्ञान : एक समाहारक और गतिशील दर्शन
(Jeevan vigyan : an Eclectic and Dynamic Philosophy)

३. जीवन विज्ञान : शिक्षा दर्शन
(Jeevan Vigyan : Educationl Philosophy)

४. जीवन विज्ञान : शिक्षा के तत्त्व (Elements of Education)

५. सारांश (Summary)

६. सहायक सामग्री (Related Readings)

७. अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions)

१०. शिक्षा में जीवन विज्ञान

जीवन मूल्यो का ह्रास जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे हो रहा है। शिक्षा चिकित्सा, प्रशासन, राजनीति, व्यवसाय एव उद्योग, न्याय एव विधि आदि सभी क्षेत्र इस समस्या से आक्रात हो रहे है। इसका प्रभाव व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एव भावात्मक विकास पर पड रहा है। व्यक्तित्व असतुलित बनता जा रहा है। परिवार टूट रहे है, समाज मे अलगाववाद, अपराध, व्यसन आदि बढते जा रहे है। राष्ट्र मे आतकवाद, भ्रष्टाचार, आदि तेजी से पैर फैला रहे हैं | और व्यक्ति की भौतिक आकाक्षाओ की अत्यधिकता से पर्यावरण भी प्रदूषित हो रहा है। मूल्यो के ह्रास का प्रमुख कारण है शिक्षा जगत् मे मूल्यो के प्रशिक्षण का अभाव। आज अपेक्षा है शिक्षण के प्रत्येक स्तर पर - प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक, स्नातक, एव स्नातकोत्तर—मूल्यो के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय।

आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र हेतु विशेषज्ञ तैयार करने वाली सस्थाए हैं। वे सस्थान उन विशेषज्ञो के लिए आचार सहिता को प्रस्तुत करते है। समाज के हित मे उनसे कुछ विशिष्ट मूल्यो की अपेक्षा भी की जाती है। जैसे—चिकित्सक से सेवा भावना, प्रशासक से सवेदनशीलता, अध्यापक से अध्यापन व आचरण की एकरूपता आदि-आदि। पर उन सस्थानो के पास इन मूल्यो के विकास हेतु कोई ठोस कार्यक्रम नही है। आज उन सभी के लिए ठोस कार्यक्रम अपनाने की आवश्यकता है। जीवन विज्ञान का प्रशिक्षण समय-समय पर इन क्षेत्रो मे किया गया। प्रशिक्षणार्थियो के व्यक्ति-निष्ठ अनुभव एव वस्तु-निष्ठ परिणाम मूल्य-विकास मे जीवन विज्ञान की उपयोगिता को अभिव्यक्त करते हैं।[1]

आज व्यावसायिक पाठ्यक्रमो मे भी मूल्यो के प्रशिक्षण को समुचित स्थान दिया जाना आवश्यक है। इन पाठ्यक्रमो मे मूल रूप से चिकित्सा, प्रबन्धन एव इजिनियरिंग प्रमुख है। इसके साथ साथ अन्यान्य प्रशासनिक पाठयक्रमो मे भी मूल्यो के प्रशिक्षण को स्थान देना अपेक्षित है। शिक्षा के बाद जीवन क्षेत्र से जुडे हुए लोगो को अनौपचारिक रूप से समय-समय पर मूल्यो के प्रशिक्षण का पुनरावर्तन आवश्यक है।

---

१ देखे पृष्ठ—११ से २९

तालिका १२—जीवन-क्षेत्र एवं मूल्य

जीवन-क्षेत्र	अपेक्षित मूल्य/आचार संहिता	जीवन विज्ञान से अनुभूत एवं विकसित जीवन मूल्य
अध्यापन	अध्यापन व आचरण मे दूरी न रहे, शात धैर्यवान, प्रवक्ता, मैत्रीपूर्ण व्यवहार, अध्ययन एव अनुसधान-रूचि, स्वतत्र एव निर्भीक सम्मति, अध्यापन मे जागरूकता एव समर्पण, विद्यार्थियो के साथ समभाव एव सहयोग, चुगली न करना, अध्यापन मे बाधक व्यवसाय का निषेध ।[1]	चित्त की एकाग्रता, सवेग नियत्रण की क्षमता, कार्य रूचि, स्मरण शक्ति, सकारात्मक दृष्टिकोण, विधायक भाव आदि । नाडी - गति, श्वास गति, भूख, पाचन क्रिया, उत्सर्जन क्रिया मे सकारात्मक प्रभाव ।
प्रशासन	सवेदनशीलता, सेवा परायणता, नैतिकता, कुशलता, तटस्थता, सवेग नियत्रण, जनतत्रीय पद्धतियो के प्रति जागरूकता, समाज के प्रति समर्पित, निर्णय लेने मे सक्षमता ।	एकाग्रता, उत्साह, कर्त्तव्य परायणता, आत्म-विश्वास, शाति, मानसिक स्थिरता, निर्णय की प्रक्रिया, निष्पक्षता आदि ।
चिकित्सा	सेवा, ज्ञान का सदुपयोग, मानव जीवन के प्रति सम्मान, सबके प्रति समान व्यवहार, व्यवसाय के प्रति आदर एव सम्मान, रोगी के स्वास्थ्य को प्राथमिकता, गोपनीयता, साथी चिकित्सको के प्रति भ्रातृत्व, मृदुता, गभीरता, धैर्य, निश्चितता, पवित्रता ।[2]	मानसिक शाति, एकाग्रता, उत्साह, स्फूर्ति, कार्यक्षमता, विचार-शुद्धि, वृत्ति-शोधन, आत्म-विश्वास, स्वास्थ्य लाभ, मृदुता, उत्तेजना मे कमी, मानसिक सतुलन आदि ।

1 Code of Professional Ethics for University and College Teachers.
2. Medical Council of India, Code of Medical Ethics, Declaration.

जीवन विज्ञान जीवन के इन सभी क्षेत्रो मे मूल्यो के विकास की प्रक्रिया को प्रस्तुत करता है अत इसका अनुप्रयोग (Application) इन सभी क्षेत्रो मे सभव है।

१. शिक्षा (सामान्य) मे मूल्यो का विकास (Non-Professional education)
२ चिकित्सा शिक्षा मे मूल्यो का विकास (Medical education)
३ व्यवसाय एव उद्योग (प्रबन्धन) शिक्षा मे मूल्यो का विकास (Management education)
४ न्याय एव विधि शिक्षा मे मूल्यो का विकास (Law education)
५ प्रशासन शिक्षा मे मूल्यो का विकास (Administrative education)
६ सेना, अर्द्धसेना, सुरक्षा बलो की शिक्षा मे मूल्यो का विकास (Defence education)।

प्रस्तुत अध्याय मे शिक्षा जगत् (Non-Professional education) मे मूल्यो का विकास कैसे हो ? इस पर विचार किया गया है।

१०.१.० आवश्यकता और महत्त्व

स्वस्थ सामाजिक एव सास्कृतिक मूल्यो के अभाव मे कोई भी व्यक्ति समाज मे स्वस्थ व निश्चित नही रह सकता। इन मूल्यो के विकास के बिना सामाजिक समस्याओ का समाधान आसानी से नही पाया जा सकता। हिन्दुस्तान लोकतन्त्रीय समाजवादी समाज व्यवस्था का सकल्प लिये चल रहा है। लोकतत्र का आधार है—जनमत का सम्मान और समाजवादी व्यवस्था का आधार है—सामाजिक न्याय। इनकी सम्पूर्ति के लिए आर्थिक सतुलन और तकनीकी विकास जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है—नैतिक या चारित्रिक विकास। समाजवाद की दुहाई के अनेक दशक बीत जाने पर भी जातिवाद, सम्प्रदायवाद, प्रातीय और भाषाई अलगाववाद का दृष्टिकोण नही बदला है। आर्थिक विषमता मे अन्तर नही आया है। क्या इसमे शिक्षा प्रणाली का कोई दोष नही है ? यदि शिक्षा द्वारा लोकतन्त्रीय मूल्यो का विकास नही होता है तो उसकी सार्थकता मे सदेह किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र मे आज सदेह का वातावरण बना हुआ है। विद्यार्थी का भविष्य क्या है ? यह प्रश्न आर्थिक परिप्रेक्ष्य मे भी उभरता है और वैयक्तिक जीवन के सदर्भ मे भी।

१०.१.१ आधुनिक जीवन शैली की समस्याएं

असीमित आकांक्षाए, अत्यधिक भाग-दौड, अत्यधिक कार्यभार एव

समय की कमी ने व्यक्ति के जीवन को अस्त-व्यस्त कर दिया है। जीवन की सारी दिनचर्या अव्यवस्थित हो गई है। खाने-पीने व सोने का समय भी व्यक्ति के लिए दुर्लभ हो रहा है। महगाई, दैनिक आवश्यक पदार्थों की कठिन उपलब्धि, जल और वातावरण प्रदूषण आदि समस्याओ के कारण भी व्यक्ति का जीवन निरन्तर तनावपूर्ण रहने लगा है। यह सार्वभौम तथ्य है कि मानसिक तनाव आधुनिक जीवन पद्धति का अभिन्न अग बन चुका है। कुछ व्यक्ति तो निराश होकर शराब, एल एस. डी. आदि मादक (द्रव्यो) पदार्थों मे इन सबका समाधान खोजने का प्रयत्न करते है। इससे समस्या की आग और अधिक प्रज्वलित होती है। उसी के फलस्वरुप मनुष्य के शरीर मे अनेक प्रकार के रोग, पागलपन और आत्महत्या की बढ़ती हुई सख्या समाज और विश्व के लिए एक चिंता का विषय बनी हुई है और इन्होने अनेक नई समस्याओ को जन्म दिया है।

वर्तमान समाज की मुख्य समस्याए—

१. तनाव—शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक।
२. स्वास्थ्य—शारीरिक, मानसिक और भावात्मक बीमारिया (मनोकायिक)।
३. पर्यावरण प्रदूषण—ओजोन छतरी मे छेद आदि।
४. अशात विक्षुब्ध पारिवारिक सबध।
५. हिंसा और क्रूरता।
६. भ्रष्टाचार, बेईमानी और अनैतिकता।
७. नशीले पदार्थों का प्रयोग।
७. कानून और व्यवस्था मे नैतिक व सामाजिक अनुशासन की अवहेलना। अपराध-वृद्धि।
९. शस्त्रीकरण/आणविक अस्त्र।
१०. शोषण।

१०.१.२ समस्याओं के कारण

कुछ मुख्य समस्याओ तक सीमित रखते हुए उनके कारणो पर विचार करें। इन समस्याओ की जड मे मुख्य रूप से प्राय: निम्नलिखित कारण देखने मे आते हैं।

१. जीवन के आधारभूत मूल्यो मे आस्था की कमी।
२. नितांत पदार्थवादी दृष्टिकोण।
३. सुविधावादी दृष्टिकोण।
४ सुखवादी वृत्ति/इन्द्रिय सुख।
५. असीमित इच्छाऐ।

६ करूणा और सेवाभाव का अभाव।
७ आत्मानुशासन की कमी।
८ लालच, परिग्रह, अधिकार व अर्थ प्रधान मनोवृत्ति।
९ अति स्वार्थीपन।
१० अति औद्योगीकरण।
११ अति शहरीकरण।
१२ अति जनसख्या।
१३ अति व्यस्त जीवन-शैली।

इन कारणो के मूल मे देखा जाए तो मुख्य जिम्मेदार कारण निम्नलिखित है जिन पर अविलम्ब ध्यान दिया जाना चाहिए—

१ स्नायु-अन्त स्रावी ग्रन्थि-तत्र की विकृति।
२ मूल्यपरक शिक्षा का अभाव।
३. असतुलित शिक्षा प्रणाली—वृत्तियो एव व्यवहारो के रूपान्तरण के लिए प्रायोगिक प्रशिक्षण का अभाव।
४ प्राणशक्ति मे आस्था की कमी, इसके फलस्वरुप सकल्प-शक्ति व सहनशीलता मे कमी।

१०.१.३ वर्तमान शिक्षा प्रणाली : असतुलन की समस्या

समस्याओ का समाधान व सारे समाज का निर्माण शिक्षा से होता है। शिक्षा प्रत्येक विकास का आधार है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली गलत नही है पर अधूरी है, सतुलित नही है। सतुलित शिक्षा प्रणाली वह होती है जिसमे व्यक्तित्व के चारो आयाम—शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और भावनात्मक—सतुलित रूप से विकसित हो। शरीर का विकास भी अपेक्षित है। मन का विकास भी अपेक्षित है। बुद्धि और भावना का विकास भी अपेक्षित है। आज की शिक्षा में इन चार आयामो मे से दो पर ध्यान अधिक दिया जा रहा है। वे दो आयाम हैं—शारीरिक विकास और बौद्धिक विकास। शेष दो आयाम—उपेक्षित पडे है। आज शारीरिक विकास बहुत हुआ है और बौद्धिक विकास भी प्रतिदिन बढ रहा है किन्तु मानसिक और भावनात्मक विकास नही हो रहा है। शिक्षा प्रणाली का यह असतुलन है।

शिक्षा तत्र एकागी विकास की परिक्रमा कर रहा है। वह सर्वांगीण विकास की धूरी पर नही चल रहा है। इसलिए वह अपना सतुलन खो बैठा है। बौद्धिक विकास से व्यक्ति इजिनीयर, वैज्ञानिक, डॉक्टर आदि बन जाने पर भी अनुकूल-प्रतिकूल स्थिति मे अपना मानसिक सतुलन नही रख पाता है। वह भावावेश मे आकर बहुत बार गलत व्यवहार कर लेता है। ईर्ष्या,

निराशा या आवेश की ज्वाला मे जल उठता है और कभी-कभी आत्महत्या करने पर भी उतारू हो जाता है।

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी दिल्ली मे थे। वहा डॉक्टर डी. एस. कोठारी, केन्द्रीय विज्ञान समिति के अध्यक्ष आदि पाच-सात व्यक्ति आये। चर्चा चली कि वैज्ञानिकता और बौद्धिकता का इतना विकास होने पर भी नैतिकता और चरित्र की समस्या क्यो है? आज का वैज्ञानिक छोटी मोटी बात मे उलझ जाता हे और आत्महत्या जैसे 'जघन्य' कार्य कर लेता है। यह शिक्षा के सामने बहुत बडा प्रश्न है आखिर शिक्षा की निष्पत्ति क्या है? क्या आत्महत्या ही शिक्षा की निष्पत्ति है? समझने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि बौद्धिक विकास के हो जाने पर भी भावनात्मक विकास (Emotional development) के अभाव मे जघन्यतम अपराध घटित हो सकते हैं। भावनात्मक विकास का ज्वलत प्रश्न सबके सामने है।

१०. १. ४ वर्तमान शिक्षा : अधूरी प्रक्रिया

आज शिक्षा का जीवन में प्रभाव नही हो रहा है क्योकि उसकी प्रक्रिया पूरी नही हो रही है। शिक्षा की पूरी प्रक्रिया है—ग्रहण करो फिर उसका आसेवन करो, जीवन मे उतारो। जानो और प्रयोग करो। आज यह आसेवन की बात छूट गई।

पातजली से पूछा गया—'चित्त का निरोध कैसे होता है?'

उन्होने कहा—'चित्त निरोध के दो उपाय हैं—अभ्यास और वैराग्य।'

अर्जुन ने कृष्ण से पूछा—'मन का निरोध कैसे होता है?'

श्रीकृष्ण ने कहा—'पार्थ! अभ्यास और वैराग्य द्वारा मनोनिग्रह साधा जा सकता है।'

आज अभ्यासात्मक शिक्षा छूट गई, ज्ञानात्मक शिक्षा वच गई। शिक्षा का एक चरण टूट गया। वह लगड़ी हो गई है। इसलिए शिक्षा का परिणाम आना चाहिए वह नही आ रहा है।

१०. १. ५. शिक्षा की समस्याएं : जीवन विज्ञान का दृष्टिकोण

यह स्वर अधिकतर सुनने मे आता है कि आज की शिक्षा प्रणाली गलत है। जीवन विज्ञान की दृष्टि मे वर्तमान की शिक्षा प्रणाली गलत नही है, किन्तु यह अपर्याप्त है। इस अपर्याप्तता को शिक्षा के छ अगो—उद्देश्य, विषय-वस्तु, पाठ्यक्रम, विधि, सस्थान और अनुशासन के संदर्भ मे समझ सकते हैं।

(१) शिक्षा का उद्देश्य—शिक्षा का उद्देश्य मानव व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास है। यह तथ्य शिक्षा-जगत् में सर्वत्र सम्मत एव मान्य रहा है किन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ध्यान कम दिया जाता है।

(२) शिक्षा की केन्द्रीय विषय-वस्तु—

- शिक्षा जगत् मे विद्यार्थी को ज्ञेय (जानने योग्य) के बारे मे बताने वाली सामग्री का समावेश बहुत है किंतु ज्ञाता (जाननेवाला), स्वय के बारे मे बताने वाली सामग्री नही के बराबर है। बाह्य जगत् की सामग्री बहुत है किन्तु आतरिक जगत् की सामग्री नगण्य है।
- स्वय की शक्तियो से परिचय कराने वाली सामग्री का अभाव है।
- मन की समग्र शक्तियो के विकास एव तनाव मुक्ति से सम्बन्धित सामग्री का अभाव है।
- अपने सवेगो पर नियत्रण, सस्कार निर्माण व चरित्र निर्माण के प्रशिक्षण की सामग्री का अभाव है।
- सहिष्णुता के विकास से सम्बन्धित सामग्री का अभाव है।

(३) शिक्षा का पाठ्यक्रम—पाठ्यक्रम में सर्वांगीणता के अभाव के कारण मूल्य बोध, चरित्र निर्माण, नैतिक विकास, भावनात्मक विकास आदि के लिए समय का समुचित नियोजन नही है। ये सारे तत्त्व जीवन के लिए आवश्यक हैं। समयाभाव के कारण अछूते रह जाते है।

(४) शिक्षण प्रविधि—अध्ययन, पुस्तकीय ज्ञान का बोलबाला आधिक है। जीवन विकास व निर्माण के लिए प्रायोगिक अभ्यास का अभाव है।

(५) शिक्षा सस्थान—शिक्षा सस्थान मात्र शारीरिक विकास एव बौद्धिक विकास के मायध्म बन कर रह गये हैं। मानसिक शक्तियो एव भावनात्मक विकास के माध्यम नही बन पा रहे हैं।

(६) अनुशासन—आज शिक्षा-जगत् मे उच्छृखलता, स्वेच्छाचार व उदण्डता का भाव अधिक बढ रहा है। आत्मानुशासन का अभाव खटकता है।

१०. १. ६. शिक्षा के पूरक की खोज

शिक्षा प्रणाली मे सुधार के लिए डॉ राधाकृष्णन कमीशन, मुदलियार कमीशन, श्री प्रकाश कमीशन, श्री कोठारी कमीशन एव आचार्य राममूर्ति आदि ने अपने प्रतिवेदनो मे विभिन्न प्रस्तुतियां प्रकाशित की।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग—(१९४८—१९४९)—यह आयोग डॉ राधाकृष्णन की अध्यक्षता मे गठित हुआ। इस आयोग की रिपोर्ट मे धार्मिक शिक्षा पर बल दिया गया—धर्म के बिना नैतिकता पर्याप्त नही है। स्वामी भक्ति, साहस, अनुशासन और आत्मबलिदान जैसे विशिष्ट गुणो का

उपयोग अच्छाई एव बुराई दोनो के लिए सम्भव है। ये गुण जितने सफल नागरिक या सज्जन व्यक्ति के लिए आवश्यक हैं तो दुर्जन व्यक्ति की सफलता के लिए भी उतने ही आवश्यक हैं। धर्म निरपेक्षता का अर्थ धर्म के बारे मे अशिक्षित या अज्ञानी रहना नही है। धार्मिक शिक्षा के लिए आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिए :—

१ कुछ मिनटो के लिए मौन-ध्यान करवाया जाए।

२ प्रथम वर्ष के डिग्री पाठ्यक्रम मे धर्म के महान शिक्षको की जीवनियो को पढाया जाए।

३. द्वितीय वर्ष मे शास्त्रो मे से सार्वभौम चरित्र को पढाया जाए।

४ तृतीय वर्ष मे धर्म एव दशन की मूल समस्याओ का अध्ययन कराया जाए।

आयोग ने इस बात को स्वीकार किया कि नैतिक और धार्मिक पाठ्य पुस्तको के माध्यम से विद्यार्थी को नैतिक और धार्मिक बनाने का प्रयास अपर्याप्त है। मात्र बौद्धिक विकास से हृदय विकास सम्भव नही है। नैतिक विकास के लिए सर्वोत्तम प्रक्रिया है—व्यक्ति का अपना उदाहरण, दैनिक जीवन और कार्य, रोजमर्रा की पुस्तकें आदि। लेकिन हमे ऐसी पाठयपुस्तको का निर्माण नही करना है जो यह सिद्ध करें कि उनका धर्म ही सत्य है। एक मात्र सत्य है। धार्मिक शिक्षण का अर्थ—उन ऐतिहासिक महापुरुषो की अन्तरदृष्टि के प्रति जागरूकता का विकास।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (१९५२—१९५३) :—यह आयोग श्री मुदलियर की अध्यक्षता मे गठित हुआ। इस रिपोर्ट ने स्वीकार किया है कि शिक्षा का उद्देश्य तब तक पूरा नही होता जब तक देश की युवापीढी मे नैतिक मूल्यो का विकास नही हो जाता। आयोग के अनुसार सविधान के धर्म निरपेक्ष राज्य के प्रावधान को देखते हुए नियमित कालाशो मे धार्मिक शिक्षा नही दी जा सकती। किन्तु विद्यालय के अतिरिक्त समय मे विद्यार्थी को स्वैच्छानुसार दी जा सकती है।

धार्मिक नैतिक शिक्षा आयोग (१९५९) —शिक्षा की केन्द्रीय सलाहकार समिति द्वारा यह आयोग श्री प्रकाश की अध्यक्षता मे गठित किया गया। इनके अनुसार नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो का प्रशिक्षण शिक्षा मे अत्यन्त अपेक्षित है। इसका प्रशिक्षण प्राथमिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक व्यवहार्य एव ग्राह्य भी है। इनके सुझाव भी लगभग विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (१९४७) के समान ही थे।

शिक्षा आयोग (१९६४-६६) .—यह आयोग डॉ. दौलत सिंह कोठारी

की अध्यक्षता मे गठित हुआ। इसमे नैतिक एव आध्यात्मिक मूल्यो की तीव्र अपेक्षा को रेखाकित किया गया। इस आयोग ने अनुशसा की कि शिक्षा को मूल्य परक बनाने के लिए सक्रिय उपायो को काम मे लेना चाहिए। इसने प्रत्यक्ष एव परोक्ष दोनो प्रकार के उपायो को काम मे लेने पर बल दिया।

इसके अनुसार आधुनिक समाज के समक्ष ज्ञान के विस्तार एव शक्ति विकास के प्रसग बहुत अधिक हैं अत यह अपेक्षित हो गया है कि इनके साथ सामाजिक दायित्व की अनुभूति, आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यो के गहरे मूल्याकन की दृष्टि को भी सयोजित किया जाए। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि धार्मिक शिक्षा एव धर्मों की शिक्षा मे अन्तर है। बहुधर्म लोकतान्त्रिक राष्ट्र मे सभी धर्मों के सहिष्णुता पूर्वक अध्ययन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इससे नागरिक एक दूसरे को अच्छी तरह समझ सकेंगे एव मैत्री और प्रेमपूर्वक रह सकेंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (१९६७) —इस दस्तावेज मे नैतिक एव राष्ट्रीय मूल्यो के विकास पर बल दिया। शिक्षा पद्धति को चरित्रवान और राष्ट्रीय सेवा एव विकास के प्रति युवक-युवतियो को अवश्य तैयार करना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (१९६७) .—"ससद सदस्य समिति"—उसने अपनी रिर्पोट मे राष्ट्रीय एकता की मजबूती, सामाजिक सद्भाव और आध्यामिक मूल्यो पर बल दिया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (१९८६) —इसने मूल्य परक शिक्षा पर बहुत बल दिया। इसका कारण यह है कि जीवन के आवश्यक मूल्यो मे भारी गिरावट आ रही है। दूसरा कारण यह है कि शिक्षा के द्वारा हमारे बहुसस्कृति प्रधान समाज मे सार्वभौम व शाश्वत मूल्यो का विकास होना चाहिए। मूल्य परक शिक्षा को हमारी सास्कृतिक धरोधर, राष्ट्रीय लक्ष्य और सार्वभौम दृष्टि पर बल देना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर गठित "समीक्षा समिति" (१९८६) .—यह समिति आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता मे गठित हुई। इसके अन्तिम दस्तावेज मे सामाजिक और अध्यात्मिक मूल्यो मे भारी गिरावट के प्रति चिंता प्रकट की गई और इन मूल्यो की रक्षा पर बल दिया गया। यह धरोहर हमे विरासत मे मिली है। इसको वास्तविक जीवन पर लागू करके देखते हैं तब आधुनिक विज्ञान और लोकतन्त्र के मूल्यो के अत्यन्त निकट लगते हैं। अत. भारत के उज्ज्वल भविष्य के लिए ऐसी नई सस्कृति की जरूरत है जिसमे अध्यात्म और विज्ञान दोनो का समन्वय हो। समावेश हो।

इन प्रस्तुतियो मे नैतिक शिक्षा को शिक्षा के एक आवश्यक अंग के रूप मे स्वीकृत किया गया। नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत मूल्य परक शिक्षा

का प्रावधान रखा गया। इस मूल्य परक प्रावधान मे नैतिक कहानियो घटनाओ, कविताओ, गीतो, प्रगीतो तथा महापुरुषो की जीवनियो द्वारा अन्य शैक्षिक विषयो के साथ पढ़ाने का निर्देशन किया गया । जिससे शिक्षा के सर्वांगीण उद्देश्य की पूर्ति हो सके। इन विषयो से सम्बन्धित पुस्तको मे पाठ यत्र-यत्र प्रासगिक रूप मे पढ़ने को मिलते हैं। समस्या यह है कि केवल सैद्धातिक शिक्षा का जीवन मे आस्था-सूचक प्रभाव व्यक्त नही होता। इसका एक कारण यह है कि ब्रिटिश परम्परागत यह वर्तमान शिक्षा प्रणाली एकांगी बौद्धिक विकास करने वाली है। इसमे विभिन्न व्यवसायो से सम्बन्धित शिक्षा का प्रावधान है। परन्तु अपने कार्यों के प्रति नैतिक कर्त्तव्य निभाने की प्रेरणा कम दिखाई देती है यही कारण हैं कि आज डाक्टर, वकील, अर्थ-शास्त्री, समाज शास्त्री, मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक, तर्क शास्त्री आदि उपलब्ध हैं परन्तु अपने द्वारा ग्रहीत कार्यों के प्रति वास्तविक उत्तरदायित्व का अनुभव करने वाले व्यक्ति नगण्य है।

शिक्षा जीवन मे अवतरित कैसे हो ? यह आज का अह प्रश्न है। इस प्रश्न का समाधान देने के लिए नई शिक्षा नीति के नाम से पूरे राष्ट्र मे सगोष्ठियो, सेमिनार, वार्ताए और सयोजनो के माध्यम से भरपूर चर्चा की गई। विधान सभाओ एव ससद मे यह प्रश्न गूजा और निष्कर्ष के रूप मे यह दृश्य उजागर हुआ कि हमारे सास्कृतिक एव राष्ट्रीय आदर्शों की धरोहर को शिक्षा के माध्यम से सुरक्षित रखा जाए, बालक-बालिकाओ में जीवन-मूल्यो के प्रति आस्था पैदा की जा सके एव उनका आचरण इसके अनुरूप बन सके।

१०. १. ७. जीवन विज्ञान : एक समाधान

भारत सरकार के तत्कालिन शिक्षा मंत्री के सी. पत अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी से मिले। शिक्षा विषय मे लम्बी चर्चा चली। वे बोले शिक्षा की समस्या बहुत बडी समस्या है ।

हम शिक्षा की प्रणाली को परिवर्तित करना चाहते हैं। लेकिन कोई मार्ग नही मिल रहा है हमारे सामने स्पष्टता नही है । हम अनेक कोणो सोच रहे हैं। बात-चीत लम्बी चली। आचार्य प्रवर ने उन्हे जीवन-विज्ञान की पद्धति से परिचित कराया। वे बोले यह तो बिल्कुल नई बात है। अभी तक हमारे सामने कोई नई बात आई ही नही। आपने जीवन विज्ञान की नई बात सुझाई है। मैं भी विज्ञान का विद्यार्थी रहा हूं। मैं इस बात को गहराई से पकड रहा हूं। यह पद्धति हमारे लिए कार्यकर हो सकती है।

शिक्षा शास्त्रियो की अनुशसा :—२३ अक्टूबर १९८५ को अखिल भारतीय अणुव्रत समिति द्वारा नई शिक्षा नीति और जीवन विज्ञान पर एक सगोष्ठी आयोजित की गई। उसमे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् ईश्वर भाई पटेल,

-यशवत भाई शुक्ल, चिनुभाई नायक, डॉ० रामजीसिंह, डॉ० दयानन्द भार्गव आदि ने भाग लिया। नई शिक्षानीति के निर्धारण के समय एक अनुशसा-पत्र तैयार किया गया। जिसमे 'जीवन विज्ञान' की अपेक्षा पर बल दिया गया—

"शिक्षा और समाज-व्यवस्था के बीच गहरा सबध है। दुर्भाग्य से हमारी शिक्षा-समाज व्यवस्था से कटी हुई है। इसलिए इसकी प्रासगिकता दिनोदिन क्षीण होती जा रही है। शिक्षा समाज-व्यवस्था के अनुरूप होकर ही प्रासगिक होती है। इसलिए न केवल व्यक्ति निर्माण के लिए बल्कि समाज व्यवस्था को गुणानुरूप और गतिशील बनाने के लिए शिक्षा अत्यन्त सशक्त उपकरण है। जीर्ण-शीर्ण सामाजिक सास्कृतिक मूल्यो के परिवर्तन, लोकतान्त्रिक, समाजवाद, सर्वधर्म समभाव एव अहिंसा आदि जीवन-मूल्यो के प्रति निष्ठा जागृत करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है यदि हमारी शिक्षा-व्यवस्था समाज की धर्मान्धता, अधविश्वास, आर्थिक विषमता, हिंसा और आतकवाद की चुनौतियो का उत्तर नही दे सकती, तो वह अप्रासगिक है।

नैतिक और चारित्रिक शिक्षा पर विभिन्न शिक्षा आयोगो एव विशेषज्ञ समितियो ने समय-समय पर अपनी महत्वपूर्ण अनुशसाए दी हैं। किंतु उनका ठोस कार्यान्वयन सामने नही आया। आज मूल्यो की इस सकट ग्रस्त स्थिति को अत्यन्त खतरनाक माना जा रहा है। शिक्षा की प्रक्रिया को सुसगत और व्यवहार्य मूल्य-प्रणाली तथा तर्कसगत वैज्ञानिक एव नैतिक दृष्टिकोण पर आधारित करने की आवश्यकता को महसूस किया जा रहा है। यह एक शुभ लक्षण है।

मूल्यो के उत्तरोत्तर ह्रास को रोकने के लिए बौद्धिक पाठ्यक्रम मे भी बच्चे से लेकर विश्वविद्यालय के स्तर तक यथायोग महापुरुषो की जीवनियो, महाकाव्यो से त्यागमय जीवन घटनाए, कला-साहित्य का ज्ञान, स्वतन्त्रता सग्राम के इतिहास के साथ-साथ मानवीय सस्कृति के विकास की गाथा, धर्म के मूल तत्वो की जानकारी, विज्ञान और अध्यात्म का सामजस्य तुलनात्मक धर्म दर्शन के अध्ययन आदि का समावेश अपेक्षित है किंतु केवल बौद्धिकता एव विचार वादिता से भावना का विकास सम्भव नही। इसलिए हमे इसका अनुसधान करना होगा कि हम किस प्रकार शिक्षार्थियो मे नैतिकता एव चरित्र विकसित कर सकते हैं।

सौभाग्य से आचार्य श्री तुलसी के मार्ग-दर्शन मे इस सदर्भ मे जीवन विज्ञान की कल्पना और योजना रखी गई है जो वैज्ञानिक एव तर्क-सगत तो है ही अब प्रयोग सिद्ध भी हो चुकी है। केवल सिद्धात बोध के द्वारा विद्यार्थी अपनी अस्मिता को पहचान सके और सामाजिक न्याय के प्रति समर्पित हो सके, यह कम सम्भव है। इसके लिए सिद्धात एव प्रयोग दोनो का समन्वय आवश्यक है। जीवन विज्ञान मे अध्यात्म और विज्ञान, तत्व-

मीमांसा और योग, मानविकी और भौतिक विज्ञान, रसायन-विज्ञान, मनोविज्ञान और समाज विज्ञान तथा सृष्टि सतुलन शास्त्र का समन्वय है। सक्षेप मे जीवन विज्ञान यह मानता है कि मस्तिष्क मे असीम शक्ति है। इस शक्ति की जागृति तनाव और थकान को आसानी से कम करके की जा सकती है।

अत सगोष्ठी की यह सशक्त अनुशसा है कि जीवन विज्ञान के अध्ययन और प्रयोग को नयी शिक्षा नीति मे प्रारम्भिक स्तर से ही यथा-योग्य अनिवार्य स्थान दिया जाए। इससे परम्परागत धार्मिक शिक्षा को लागू करने के विवाद भी नही खडे होगे एव भारतीय सविधान की धारा २८ का भी किंचित् उल्लघन नही होगा। जीवन विज्ञान वास्तव मे केवल नैतिक शिक्षा का ही विकल्प नही, यह शिक्षा का ही विकल्प नही, यह शिक्षा को सार्थक, समयोपयुक्त एवं समग्र बनाने का एक विज्ञान है। इसमे न धर्म या अध्यात्म की एकागिता है, न विज्ञान की। यह अन्तर्विषयानुबधी होने के कारण इसके अन्तर्गत एक साथ सामान्यीकरण एव विशिष्टीकरण होने का समन्वय है।'

७ सितम्बर १९८५ को प्रथामिक एव अनौपचारिक शिक्षा पर सगोष्ठी हुई। ग्रामीण विकास एव पचायत राज्य मंत्रालय के मत्री सचिव, निदेशक, शिक्षा-अनुसधान के अधिकारी, शिक्षाविद् तथा प्राथमिकशाला के अध्यापको ने भाग लिया। जीवन विज्ञान पर काफी विचार-विमर्श किया गया। २.१०.८६ मे राजस्थान विद्यापीठ एव राष्ट्रीय अमृत महोत्सव समिति द्वारा द्वि दिवसीय जीवन विज्ञान सम्मेलन की आयोजना की गई। उसमे जीवन-विज्ञान के विविध पहलुओ पर विचार-विमर्श किया गया, शोध पत्र पढे गए।

८ अप्रैल १९९४ को जयपुर मे जीवन-विज्ञान पर एक सगोष्ठी आयोजित की गई। इसमे राजस्थान के शिक्षा-मत्री, शिक्षा निदेशक, शिक्षा सचिव जैन विश्व भारती के अध्यक्ष, जैन विश्व भारती सस्थान, मान्य विश्वविद्यालय के कुलपति एव जीवन विज्ञान अकादमी के निदेशक तथा ३१ जिलो के शिक्षा अधिकारी उपस्थित थे। अणुव्रत अनुशास्ता श्री तुलसी एव आचार्य महाप्रज्ञ का सान्निध्य व उद्बोधन प्राप्त हुआ। इस गोष्ठी मे जीवन विज्ञान के महत्त्व पर गभीर चिंतन हुआ। इसे पूरे प्रात मे नैतिक एव चारित्रिक विकास हेतु पाठ्यक्रम मे सम्मिलित करने हेतु विचार व्यक्त किए गए।

१०.१.८. जीवन विज्ञान का योगदान

जीवन विज्ञान शिक्षा की पूरक कार्य पद्धति है। यह पद्धति मूल्यपरक शिक्षा को पूरा करती है। शिक्षा मे जो भावनात्मक परिवर्तन तथा चरित्र निर्माण का पक्ष गौण है, उसकी यह पूर्ति करती है।

जीवन विज्ञान का आधार प्रायोगिक अभ्यास का प्रशिक्षण है। मस्तिष्क के मूल स्रोतो को प्रशिक्षित करना प्रयोगात्मक पक्ष है। जो निष्क्रिय है, उन्हे सक्रिय करना। जो सुप्त पडे हैं उन्हे जाग्रत करना यह प्रयोग से सम्बन्धित हैं। प्रायोगिक अभ्यास प्रथम कक्षा से स्नातकोत्तर अध्ययन तक चलता है। सिद्धात केवल उतना ही है जितना की उन प्रयोगो को समझने के लिए जरूरी है। जीवन विज्ञान के सैद्धातिक पक्ष की व्याख्या के लिए प्राचीन एव अर्वाचीन सभी विद्याओ का समावेश किया गया हैं।

पदार्थ विकास के लिए विज्ञान को अस्वीकार नही किया जा सकता तो मानसिक शक्ति के विकास के लिए अध्यात्म को भी अस्वीकार नही किया जा सकता हमारा जीवन न तो केवल विज्ञान के आधार पर चल सकता है और न केवल अध्यात्म के अधार पर ही चल सकता है। इसमे तो विज्ञान और अध्यात्म दोनो के लिए अवकाश है। जीवन विज्ञान के पाठ्यक्रम मे इन दोनो का समावेश किया गया है दर्शन, अध्यात्म, योग-विद्या और कर्मशास्त्र के साथ-साथ शरीर-रचना-विज्ञान, शरीर-क्रिया-विज्ञान, मनोविज्ञान आदि अर्वाचीन विद्याशाखाओ का सतुलन स्थापित किया है।

जीवन विज्ञान के पाठ्यक्रम मे सैद्धातिक और प्रायोगिक प्रक्रियाओ का समावेश है। अत इससे नैतिक मूल्यो के विकास की सम्भावना की जा सकती है। प्रयोग एव अभ्यास शून्य सिद्धात के द्वारा उनके विकास की कल्पना नही की जा सकती। स्वभाव निर्माण और चरित्र निर्माण के लिए अभ्यास नितान्त आवश्यक हैं। अभ्यास के अभाव मे व्यक्ति जानता हुआ भी अनजान-सा बना रहता है। जीवन विज्ञान मे प्रयोग की अनिवार्यता स्वीकार की गई है। इस दृष्टि से यह मूल्य परक शिक्षा की प्रेरणा एव विकास का महत्त्वपूर्ण उपाय हो सकता है। यह जीवन विज्ञान मूल्य परक शिक्षा के सैद्धान्तिक और प्रायोगिक प्रक्रिया को पूरा करता है।

६.२०. जीवन विज्ञान : एक समाहारक और गतिशील दर्शन (Science of living : an eclectic and dynamic philosophy)

जीवन विज्ञान एक गतिशील दर्शन है। यह समय व क्षेत्र की समस्याओ एव नवीनताओ को ग्रहण करते हुए आगे बढता है। यह अनेकात दर्शन पर आधारित है। इसका एकागिता मे विश्वास नही है। गतिशील दर्शन वह दर्शन है जो समाज मे नए परिवर्तनो के साथ उन तथ्यो को अपने दर्शन मे समायोजन करता रहे एव अपनी मौलिकता को भी सुरक्षित रखे। वही अच्छा दर्शन है। वह गतिशील दर्शन नही है जो रूढ बन जाए, जिसमे परिवर्तन की क्षमता न हो। जीवन विज्ञान इन सबके प्रति जागरूक है।

(१) समाहार का तात्पर्य है—सम्यक् प्रकार से आहरण, ग्रहण एव सम्मिश्रण।

(२) प्राचीन धरोहर एव नवीन आविष्कारो से प्राप्त तथ्यो का सम्यक् ग्रहण एव सम्मिश्रण।

(३) जो दर्शन देश, काल व व्यक्ति की आवश्यकताओ के अनुरूप परिवर्तन मे सक्षम है वही गतिशील दर्शन है। तथ्यो का स्वीकरण, ग्रहण, आधुनिकतम बनाना, सर्वांगीण करना, खुलापन रखना, समन्वित चिंतन करना—समाहार दर्शन की कार्यशैली है।

तालिका १३ : जीवन विज्ञान का समन्वित दर्शन

क्र.स	एकागी विचारधाराए	जीवन विज्ञान का समन्वित चिंतन
१.	व्यक्ति या समाज	व्यक्ति और समाज की सापेक्षता
२.	सस्कार या वातावरण	सस्कार और वातावरण ,, ,,
३.	अध्यात्म या विज्ञान	अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय
४.	अनुशासन या स्वतन्त्रता	आत्मानुशासन का विकास
५.	धार्मिक शिक्षा या धर्म निरपेक्ष शिक्षा	मानवीय मूल्यो की शिक्षा, अध्यात्म-विकास की शिक्षा
६.	ज्ञान या आचार	ज्ञान और आचार का समन्वय
७.	प्रकृति या पर्यावरण	प्रकृति (मानव स्वभाव) और पर्यावरण का समन्वय
८.	उपादान या निमित्त	उपादान और निमित्त की सापेक्षता
९.	आस्था या तर्क	आस्था और तर्क की सापेक्षता
१०	अनुभव या बुद्धि	अनुभव और बुद्धि की सापेक्षता

अनेकान्त दर्शन

जीवन विज्ञान की पृष्ठभूमि मे अनेकान्त दर्शन है। अनेकात दर्शन घटना को अनेक दृष्टियो से समझने की दृष्टि देता है। किसी एक दृष्टिकोण से किया गया विचार सम्यक् व समुचित नही हो सकता। कोई भी विचार समग्र सत्य नही होता। वह सत्याश होता है। जैसे अपने विचार को सत्य मानते हैं वैसे दूसरों के विचारो मे भी सत्य की खोज करना। अपने विचार को सत्य ही मानना और दूसरे के विचार को असत्य ही मानना—एकागी आग्रह हैं। यह एकागी आग्रह मनुष्य को असत्य की ओर ले जाता है। सत्य की खोज का मार्ग है अनाग्रह। अनाग्रही मनुष्य दो भिन्न विचारो मे समन्वय साध सकता है। इस चिंतन के धरातल पर विरोधी लगने वाले तथ्यो मे भी जीवन विज्ञान समन्वय देखता है। सामजस्य खोजता है। इसमे खुलापन है। नये दृष्टिकोणो को समाहित करने की असीम शक्ति है। यह प्रवृत्ति इसकी गतिशीलता का सूचक है।

१०.२.१. समाहारक दर्शन

समाहारक प्रवृत्ति शिक्षा मे समाहारक प्रवृत्ति से अभिप्राय पूर्ववर्ती विचारधाराओ एव प्रवृत्तियो मे समन्वय या सामञ्जस्य स्थापित करने की प्रवृत्ति से है। दूसरे शब्दो मे कह सकते है कि पूर्ववर्ती विचारधाराओ तथा प्रवृत्तियो की अच्छाइयो से समन्वय स्थापित करना समाहारक प्रवृत्ति है।[1]

शिक्षा के क्षेत्र मे यह प्रवृत्ति मान्य है और लगातार अपनाई जाती रही है। इसमे पूर्व प्रवृत्ति और नई प्रवृत्तियो का सम्मिश्रण होता है। इस प्रकार की प्रवृत्तियो मे देश, काल और व्यक्ति का स्वतत्र रूप से कोई विशेष प्रभाव नही रहता। जबकि सामूहिक रूप मे इन सबका प्रभाव सम्मिश्रित होता है। जीवन विज्ञान को हम समाहारक प्रवृत्ति के रूप मे देख सकते हैं या नही ?

व्यक्ति और समाज

कुछ शिक्षाशास्त्री व्यक्ति को तथा कुछ समाज को प्रधानता देते रहे हैं। व्यक्तिवादि विचारधारा ने व्यक्ति को तथा समाजवादी विचारधारा ने समाज को प्रधानता दी। यह प्रश्न सदैव ही उठता रहा कि शिक्षा का उद्देश्य बालक को समाज के लिए शिक्षा देना है अथवा व्यक्तिगत उन्नति के लिए शिक्षा देना है। आज की शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तिगत उन्नति और सामाजिक सेवा दोनो है। आधुनिक शिक्षा व्यक्तित्व विकास के साथ-साथ नागरिकता के गुणो के विकास पर भी बल देती है। आधुनिक शिक्षा ने इस तथ्य को भी स्वीकार किया है कि व्यक्ति का विकास शून्य मे न होकर सामाजिक वातावरण मे ही होता है। इस कारण व्यक्ति और समाज दोनो मे सामजस्य होना अनिवार्य है।

जीवन विज्ञान का यह दर्शन रहा है कि समाज और व्यक्ति को विभक्त नही किया जा सकता। व्यक्ति समाज से प्रभावित होता है और समाज व्यक्ति से। दोनो मे अन्योन्याश्रय सबध है। व्यक्ति का अन्तर्जगत् उसकी वैयक्तिकता है, उसका विस्तार है समाज। जीवन विज्ञान का समन्वित चिन्तन यह है कि व्यक्ति के सर्वांगीण विकास से सामाजिक स्वास्थ्य का भी विकास हो सकेगा।

व्यक्तित्व का विकास सामाजिक वातावरण मे होता है। जीवन विज्ञान मे भी सामाजिकता को व्यक्तित्व-विकास से जोडा गया है। व्यवहार परिवर्तन पर बहुत महत्त्व दिया गया है। समाज मे व्यक्ति का व्यवहार सम्पूर्ण मानव-जाति के अनुकूल कैसे बन सके, इस बात पर बल दिया जाता है।

---

१. शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त, त्यागी एव पाठक, पृष्ठ—७२६।

शिक्षा व्यक्ति को सामाजिक समूह के अन्तर्गत रखकर ही उसका विकास कराती है और सामाजिक चेतना का विकास भी। समाज व्यक्ति को अपनी दृष्टि से ओझल नही छोड देता। जीवन-विज्ञान मे कुछ प्रयोग हैं—सह-अस्तित्व, करुणा, धार्मिक-समन्वय की अनुप्रेक्षा आदि। इनका लक्ष्य है सामाजिक चेतना के विकास को प्राप्त करना। जहा करुणा का स्रोत सूख जाता है वहां सामाजिक चेतना सूख जाती है और सामाजिक चेतना के अभाव मे ही समाज मे शोषण, अनैतिकता आदि पनपते है। इसलिए जीवन विज्ञान के प्रयोग सामाजिक चेतना को विकसित करने की दृष्टि से वहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय

इसी प्रकार एक विवाद चलता है—अध्यात्म और विज्ञान के रूप मे। १९वी शताब्दी के अन्त तक विज्ञान का जो स्वरूप वना उससे यह धारणा पुष्ट हो गई कि विज्ञान और अध्यात्म मे किसी भी प्रकार का समन्वय सभव नही है। अर्थात् विज्ञान और अध्यात्म को दो ध्रुव की तरह नितात विरोधी समझा गया। उसका मूल कारण यह था कि न्यूटन द्वारा प्रतिपादित विज्ञान के मौलिक सिद्धात समस्त ब्रह्माण्ड को एक यत्र के रूप मे व्याख्यायित करते है। इस यान्त्रिक भौतिकवाद के कारण विज्ञान और अध्यात्म के बीच एक खाई पैदा हो गई किन्तु वीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे आइन्स्टीन द्वारा आधुनिक विज्ञान के नए सिद्धात प्रस्तुत किए गए जिनका समर्थन आगे से आगे अनेक वैज्ञानिको द्वारा होता गया। इससे विज्ञान अध्यात्मवाद के कुछ निकट हो गया। जीवन विज्ञान मे आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व के निर्माण की परिकल्पना इस आधुनिक विचारधारा के साथ सामजस्य रखती है। इस माने मे एक अत्यन्त नई अवधारणा शिक्षा के क्षेत्र मे स्थापित हुई है। स्पष्ट रूप से जीवन विज्ञान का यह समाहारक दर्शन है। और इसी दर्शन के आधार पर जीवन विज्ञान के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र मे एक नई क्रांति घटित करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

अनुशासन और स्वतंत्रता

शिक्षा के क्षेत्र मे एक अन्य विवाद है—अनुशासन और स्वतन्त्रता को लेकर। प्राचीन शिक्षा पद्धति मे कठोर अनुशासन पर वल दिया जाता था और नई शिक्षा पद्धति में स्वतन्त्रता पर वल दिया जा रहा है, किंतु कोरी स्वतन्त्रता से अनुशासनहीनता की समस्या पैदा हो गई है। इसलिए अनुशासन और स्वतन्त्रता के बीच सामजस्य की अपेक्षा है। जीवन विज्ञान विद्यार्थी को आत्मानुशासन के लिए प्रेरित करता है। इतना ही नही वल्कि जीवन विज्ञान के प्रयोगो से विद्यार्थी की अपनी आत्मनियन्त्रण की शक्ति जागृत हो जाती है,

विवेक चेतना जागृत हो जाती है जिससे वह स्वय अपना आत्मनियन्त्रण करने मे दक्ष हो जाता है। वर्तमान शिक्षा की अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान न कठोर अनुशासन मे है और न ही स्वतन्त्रता मे। इसका समाधान है—आत्मानुशासन के विकास मे। आत्मानुशासन को विकसित करने मे जीवन विज्ञान की ही पद्धति सफल हो सकती है। इस दृष्टि से जीवन विज्ञान स्पष्ट रूप से समाहारक प्रवृत्ति को स्थान देता है।

धार्मिक शिक्षा और धर्म-निरपेक्ष शिक्षा

आज धार्मिक शिक्षा और धर्म निरपेक्ष शिक्षा को लेकर बहुत बडा विवाद चल रहा है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली स्पष्ट रूप से किसी भी धार्मिक शिक्षा को स्वीकार नही करती। दूसरी ओर धर्म की शिक्षा के अभाव मे राष्ट्रीय चरित्र मे निरन्तर गिरावट आ रही है इसलिए शिक्षाविदो के सामने एक बहुत बड़ा द्वन्द्व है कि किस प्रकार धर्म निरपेक्षता को कायम रखते हुए धर्म की शिक्षा दी जाए। जीवन विज्ञान इस समस्या का एक सटीक समाधान है। मानवीय मूल्यो का विकास, नैतिक और चरित्र निर्माण का विकास बिना किसी साम्प्रदायिक आधार के किस प्रकार किया जा सकता है ? इसका मूर्त्त रूप जीवन विज्ञान की पद्धति मे साकार होता है। यह स्पष्ट है कि अध्यात्म के प्रयोग किसी भी रूप मे धर्म निरपेक्षता को खडित नही करते। इसी प्रकार विशुद्ध वैज्ञानिक आधारो पर किए जाने वाले प्रयोग भी स्पष्टतया धर्म के अनुरूप हैं। जीवन विज्ञान मे अध्यात्म और विज्ञान के प्रयोगो का सुन्दर समायोजन हुआ है जिससे धर्म को कायम रखते हुए धार्मिक एव नैतिक मूल्यो को विकसित किया जा सकता है। इन उदाहरणो से यह ज्ञात होता है कि जीवन विज्ञान समाहारक प्रवृत्ति को पूर्ण रूप से स्थान देता है।

१०.२.२. पाठ्यक्रम और समाहारक दर्शन

जहा तक जीवन विज्ञान के पाठ्यक्रम का सबध है उसमे भी प्रचलित विद्या शाखाओ मे से अनेक विद्या शाखाओ का समाहार किया गया है। एक ओर विज्ञान सकाय की विद्या शाखाएं, जैसे—शरीर रचना-विज्ञान, शरीर-क्रिया-विज्ञान, रसायन विज्ञान आदि शुद्ध विज्ञान की विद्या शाखाओ का सैद्धातिक एव प्रायोगिक रूप से शिक्षण-प्रशिक्षण जीवन विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। दूसरी ओर अध्यात्म, दर्शन, आचार-शास्त्र और योग विद्या आदि प्राच्य विद्या शाखाओ को भी सैद्धातिक व प्रायोगिक स्तर पर पाठ्यक्रम मे सम्मिलित किया गया है। यह समाहार एकदम मौलिक एव व्यावहारिक है। अब तक शिक्षा के क्षेत्र मे इस प्रकार का प्रयत्न कभी भी नही हुआ है। इस दृष्टि से

जीवन विज्ञान समाहारक दर्शन के क्षेत्र मे एक नया विचार कहा जा जा सकता है। अतः आशा की जा सकती है कि इस समाहारक प्रवृत्ति के कारण ही जीवन विज्ञान समूचे शिक्षा के क्षेत्र मे सरलता के साथ स्वीकार्य हो सकेगा। इसके साथ-साथ जीवन विज्ञान के पाठ्यक्रम मे भी किसी प्रकार की मूढता नही है। उसमे वह लचीलापन है जिससे भविष्य मे होने वाले किसी भी नवीन सिद्धात को वह अपने मे आत्मसात् कर सकता है।

जीवन विज्ञान का स्वरूप ही अपने आप मे खुलेपन को लिए हुए है जो उसकी विशुद्ध समाहारक प्रवृत्ति का स्पष्ट लक्षण है। शिक्षा के अतिरिक्त भी जीवन विज्ञान व्यक्ति और समाज के विभिन्न पहलुओ से जुडा हुआ है। इसलिए जीवन विज्ञान का उपयोग केवल शिक्षा तक ही सीमित नही है अपितु व्यावसायिक क्षेत्र, प्रशासनिक क्षेत्र, स्वास्थ्य शिक्षा, प्रदूषण निवारण आदि अनेक क्षेत्रो मे जीवन विज्ञान को काम मे लिया जा सकता है। शिक्षा जगत् मे इसकी शुरूआत हो गई। निष्कर्ष के रूप मे कहा जा सकता है कि जीवन विज्ञान अनेक विवादास्पद बिंदुओ का समाहार करने वाली एक जीवन्त और सतत गतिशील विद्या शिखा है।

१०.३.०. जीवन विज्ञान : शिक्षा-दर्शन

जीवन विज्ञान प्राचीन एव नवीन शिक्षा आदर्शों का दस्तावेज है जो विद्यार्थी की सुषुप्त चेतना को जागृत कर उपनिषद के सूत्र मत्र "सा विद्या या विमुक्तये" को चरितार्थ कर रहा है। भारतीय सस्कृति के मूल तत्त्वो का प्रायोगिक प्रशिक्षण देता है एव भावात्मक विकास को साकार करता है। इससे जीवन मे मूल्यो का विकास होता है। जीवन विज्ञान नवीन शिक्षा के संदर्भ मे मूल्य परक शिक्षा का एक अभिनव प्रयोग है। इसके अन्तर्गत मूल्य-शिक्षा, नैतिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा और योग शिक्षा का समावेश है। इसका विकास सम्पूर्ण मानव समस्याओ के सदर्भ मे हुआ है। इसे शिक्षा के क्षेत्र मे अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान के समन्वय से विकसित किया गया है। इसका स्वरूप है—शिक्षा जगत् मे शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और भावात्मक मूल्यो के विकास का सतुलन स्थापित करना।

१०.३.१. शिक्षा शास्त्रियों की आकांक्षा

शिक्षा शास्त्री चाहते हैं कि शिक्षा से अच्छी पीढ़ी का निर्माण हो, अच्छा समाज बने, बुराइया कम हो, बच्चे सुसस्कारित बनें, अच्छे नागरिक बनें, किन्तु यह धारणा या चाह सफल नही हो रही है क्योंकि जो मार्ग चुना है वह पर्याप्त नही, केवल बौद्धिक विकास से यह संभव नही।

वर्तमान युग मे मनुष्य को प्रतिदिन अनेक विषमताओ का सामना करना पडता है। अनेक विकट परिस्थितिया आती है जो मनुष्य के मस्तिष्क

पर निरतर दबाव डालती रहती हैं। आदमी मे इन्हे झेलने की शक्ति नहीं है। ऐसी स्थिति मे क्या यह सभव है कि शिक्षा हमे सहारा दे सके ? अत आज की शिक्षा के साथ मानसिक विकास, भावात्मक विकास के कार्यक्रम अवश्य जुडने चाहिए जिससे मनोबल विकसित हो, सहिष्णुता बढे, सतुलन बना रहे। पर प्रश्न है कि भावनात्मक विकास हो कैसे ?

शिक्षा का उद्देश्य है व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास। सर्वाङ्गीण विकास का अर्थ है– व्यक्ति का शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक एव भावात्मक विकास। वर्तमान शिक्षा प्रणाली मे शारीरिक विकास पर थोडा एव बौद्धिक विकास पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता है। इसी का सुफल है—डॉक्टर, इजिनीयर, वकील आदि का निर्माण। पर पढ-लिखकर अच्छा वैज्ञानिक बन जाने पर भी तनाव मे ग्रस्त रहना, भावावेश मे आकर गलत व्यवहार कर लेना, अन्यान्य अनेक बुराइयो मे फसने की घटना आम बात होती जा रही है। बौद्धिकता के शिखर से वैज्ञानिक जब ईर्ष्या, निराशा या आवेश की ज्वाला मे जल उठता है और आत्महत्या कर लेता हैं, तब आश्चर्य होता है। क्या शिक्षा से इतना भी अनुशासन नही सीख सका कि अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थतियो मे अपना सतुलन रख सके ? यह भावात्मक विकास की उपेक्षा का परिणाम है।

१०.३.२. भावात्मक विकास एवं मनोविज्ञान

व्यक्ति मे मानवीय मूल्यो के विकास, चारित्रिक विकास एव नैतिक विकास का मूल आधार है—भावात्मक विकास। भावात्मक विकास का आधार है— व्यक्ति की भावधारा। जैसी भावधारा होती है, वैसा ही व्यक्ति का आचरण एव व्यवहार होता है। निर्मल भावधारा और भावनात्मक सतुलन से ही श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, करुणा, मृदुता आदि अनेक मूल्यो का विकास होता है। ये भाव दो वर्गों मे विभाजित किये जाते हैं —

१ विधेयात्मक (Positive)
२. निषेधात्मक (Negative)

आधुनिक मनोविज्ञान मे व्यक्ति के भाव, व्यक्तित्व एव उसके परिणामो पर बहुत सुन्दर ढग से विचार किया गया है[1]—

[1]. Adventure in Attitude.

तालिका १४ : भाव, व्यक्तित्व एव परिणाम

भाव	व्यक्तित्व (आचार/व्यवहार)	परिणाम
विधेयात्मक (Positive)		
विश्वास	उत्साही	सफलता
अभय	आशावादी	समादर
धैर्य	प्रसन्नता	निश्चिन्तता
सहिष्णुता	तनाव-मुक्त	आतरिक शान्ति
मृदुता	विनयशील	मैत्री
श्रद्धा	सहृदय	स्वस्थता
निष्ठा	सहानुभूतिपूर्ण	सुख
सामजस्य	वीरतापूर्ण	विकास
पारस्परिक समझ	अनुशासन बद्ध	साहस
निषेधात्मक (Negative)		
भय	क्रूर	तनाव
घृणा	दूर्बल	कुण्ठा
ईर्ष्या	कठोर	निराशा
सन्देह	उद्दण्ड	लाचारी
लोभ	नीरस	उद्विग्नता
माया	चिड़चिड़ापन	दु ख
दीनता/हीनता	रूखा	असफलता
छिद्रान्वेषण	आलसी	रुग्णता
अहं	डावाडोल	दरिद्रता
आग्रह	धोखेबाज	थकावट
द्वेष	स्वार्थी	ऊब, असतोष

१० ३.३. भावात्मक विकास एवं विज्ञान

विज्ञान द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि हमारी भावधाराओ का उत्पादक एव व्यवहार का निदेशक अन्त स्रावी ग्रन्थितंत्र है। इन ग्रन्थियो के स्राव (हार्मोन) हमारे नाड़ीतन्त्र को प्रभावित करते हैं। वर्तमान युग की विकट परिस्थितियो एव दबाओ के कारण ग्रन्थितंत्र के स्राव विकृत बन जाते हैं तथा नाड़ीतत्र के दो अंगो—अनुकम्पी और परानुकम्पी के बीच संतुलन विगड जाता है, इसी का परिणाम निषेधात्मक भावो की प्रचुरता और विधेयात्मक भावो का ह्रास है। यदि हार्मोनो का समुचित नियमन किया जाये और अनुकम्पी एव परानुकम्पी का संतुलिय संबध स्थापित किया जाये तभी समस्या का समाधान सभव हो सकता है। शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य होना चाहिए—विधेयात्मक भावधारा एव व्यक्तित्व का विकास तथा निषेधात्मक भावधारा एव व्यक्तित्व से मुक्ति। इससे ही नैतिकता, चरित्र एव मानवीय मूल्यो का विकास सभव है।

१०.३.४ जीवन विज्ञान का स्वरूप

शिक्षा मे जीवन विज्ञान का प्रयास शिक्षा प्रणाली को सतुलित और समन्वित करने का है। इस सतुलन स्थापना के चार सिद्धान्त है— १. प्राणधारा का सतुलन। २ जैविक सतुलन। ३ क्षमता की आस्था का जागरण। ४ परिष्कार।

१. प्राणधारा का सतुलन —इसके अन्तर्गत अनुकम्पी (Sympathetic) और परानुकम्पी (Parasympathetic) नाडी तत्र को सतुलित किया जाता है एवं सुषुम्ना को जागृत किया जाता है। इससे सतुलित व्यक्तित्व का निर्माण होता है जिससे उद्दण्डता, अनुशासनहीनता, भय का शमन होता है एव हीनभावना दूर होती है।

२. जैविक सतुलन :—खोजो द्वारा विज्ञान ने प्रस्थापित किया है कि मस्तिष्क का बाया भाग स्कूली अध्ययन, तर्क, गणित, भाषा आदि के विकास के लिए उपयोगी है। वर्तमान मे हमारा बाया मस्तिष्क ही अधिक सक्रिय है। यदि दायें भाग को सक्रिय बना दिया जाये तो प्रज्ञा, सृजनशीलता, अन्तर्दृष्टि, अध्यात्म, अन्तश्चेतना का विकास सभव है। पूरे मस्तिष्क को सक्रिय करना जैविक सतुलन की प्रक्रिया है। इसके द्वारा व्यक्तित्व के छिपे रहस्यो को उद्घाटित कर असीमित शक्तियो को जगाया जा सकता है।

गोनाड्स और एड्रीनल ग्रन्थि के असतुलित स्राव मूल्यो को विकृत करने मे अहं भूमिका निभाते हैं। जैविक सतुलन पर ध्यान देने से व्यक्ति के अन्तःस्रावी ग्रन्थियो के रसायनो का सतुलन स्थापित होता है।

३ क्षमता की आस्था :—मस्तिष्क की असीमित शक्तिया हैं। इनका विकास कर क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। इस तथ्य की आस्था पैदा हो जाये तो कोई भी कार्य असभव नही रहता।

४. परिष्कार —मनुष्य अनेक मिथ्या भाव, दृष्टिकोण एव व्यवहार से ग्रसित है। इनका परिष्कार सभव है और पतन से उत्थान के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है।

१० ३.५. सर्वांगीण विकास

यह सतुलन शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक और भावात्मक विकास का कारण बनता है। वर्तमान शिक्षा अधिकाश बौद्धिक और शारीरिक विकास का प्रयास है। यह मनुष्य को पूर्णता प्रदान नही करती। मानसिक और भावात्मक विकास के बिना विपरीत परिस्थितियो मे सतुलित व्यवहार, दायित्व बोध, नैतिक-चारित्रिक गुणो का विकास और मानवीय मूल्यो की वृद्धि सभव नही हो सकती। जीवन विज्ञान शिक्षा को पूर्णता प्रदान कर सर्वांगीण विकास का प्रयास है।

तालिका १५ : सर्वाङ्गीण व्यक्तित्व का विकास

विकास के प्रतिमान	अर्थ	वर्तमान शिक्षा का योगदान	जीवन विज्ञान का योगदान
शारीरिक विकास	स्वस्थ, बलवान, सशक्त शरीर	व्यायाम, खेल कूद आदि	आसन, प्राणायाम, यौगिक क्रियाए स्वास्थ्य-बोध, अच्छी आदतो का निर्माण, मिताहार-प्रशिक्षण
मानसिक विकास	जीवन विज्ञान की दृष्टि से मानसिक स्वास्थ्य एव मनोबल का विकास। एकाग्रता व जागरूकता का विकास, उच्च मानसिक शक्तियो—चिंतन, तर्क, स्मृति, कल्पना एव निर्णय शक्ति का विकास।	विभिन्न विषयो का अध्ययन एव प्रयोग – स्मृति और तर्क के विकास के लिए। किन्तु मानसिक स्वास्थ्य मनोबल, एकाग्रता व जागरूकता के उपक्रम नही हैं।	आसन, प्राणायाम, सतुलित आहार, प्रेक्षाध्यान और मानसिक स्वास्थ्य बोध, अनेकान्त का प्रशिक्षण।
सामाजिक विकास	सामाजिक समायोजन, उचित व्यवहार, आत्म-निर्भरता, सहयोग, सहानुभूति एव नेतृत्व का विकास।	विचार विमर्श, अध्ययन गोष्ठी, समिति कार्य, मोनीटर प्रणाली, सामूहिक शिक्षण प्रणाली।	सामाजिक मूल्यो का बोध। अहिंसा, करुणा, सह-अस्तित्व, स्वावलम्बन, मानवीय एकता, सयम, कर्त्तव्य निष्ठा आदि अनुप्रेक्षा के प्रयोग। अच्छे व्यक्ति के निर्माण द्वारा अच्छे समाज का निर्माण।
भावनात्मक विकास	दुखद सवेगो पर नियन्त्रण, अच्छे सवेगों का विकास, सवेग प्रकाशन की पद्धति पर नियन्त्रण करके उसमे मोड या परिवर्तन लाना।	० वर्तमान शिक्षा प्रणाली मे कोई शिक्षण व्यवस्था नही। ० अच्छे वातावरण के निर्माण पर बल।	भावात्मक मूल्यो का विकास, सवेग नियन्त्रण का सैद्धान्तिक व प्रायोगिक प्रशिक्षण।

१०.३.६. आधार : प्रायोगिक अभ्यास

अनेक बार शिक्षा जगत् मे चरित्र विकास के लिए नैतिक शिक्षा लागू करने के सुझाव सामने आते हैं। इसके लिए महापुरुषो की जीवन घटनाए, कथा-प्रसग आदि उपदेशात्मक प्रविधि का प्रयोग भी किया जाता है। पर प्राय देखा जाता है कि केवल उपदेशात्मक शिक्षा का प्रभाव सीमित होता है। यह स्पष्ट है कि परिवर्तन की प्रक्रिया को घटित करने के लिए प्रायोगिक अभ्यास के प्रशिक्षण की आवश्यकता है जो हमारे भीतर भावात्मक परिवर्तन के लिए जिम्मेदार तत्र एव केंद्रो को प्रभावित कर सके। भावधारा, आचरण और व्यवहार को नियन्त्रित कर सके।

शिक्षा का मूल अर्थ है—अभ्यास। अभ्यास के बिना अध्ययन अधूरा है। अभ्यास से पुष्ट ज्ञान ही भावात्मक सतुलन मे फलित होता है। कोरी बौद्धिकता व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के लिए उपयोगी नही होती। कई बार अनेक दुष्परिणाम भी आते हैं। इसलिए ऐसी शिक्षा होनी चाहिए जो सिद्धान्त के साथ-साथ व्यावहारिक भी हो अर्थात् प्रायोगिक हो। जो व्यक्ति मे दायित्व बोध, मानवीय मूल्य, नैतिकता तथा चारित्रिक गुणो का विकास कर सके। यह अभ्यास द्वारा ही सभव है।

जीवन विज्ञान इस दिशा मे एक सशक्त माध्यम है। इसके पाठ्यक्रम मे प्रायोगिक प्रशिक्षण का प्रमुख स्थान है। इससे भावधारा शुद्ध होती है। भावात्मक विकास होता है, सहनशीलता बढती है, आन्तरिक शक्तियो का जागरण होता है।

१०.३.७ प्रायोगिक प्रशिक्षण

जीवन के विज्ञान को समझने के लिए जीवन को समझना आवश्यक है। जीवन क्या है ? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। जीवन विज्ञान मे इसकी व्याख्या के सात सूत्र (तत्त्व) बताए गये हैं—

१ शरीर, २ श्वास, ३ प्राण, ४ मन, ५. भाव, ६ कर्म ७ चित्त-चेतना।

इन सबका सयुक्त नाम है जीवन। जीवन की समग्र परिभाषा के लिए इन सात बिंदुओ पर ध्यान देना आवश्यक है। इनके प्रशिक्षण और परिष्कार की दिशा मे सतत् प्रयास करना मानवीय मूल्यो के विकास का आधार है।

प्रत्येक कार्य की निष्पत्ति के लिए एक सशक्त तत्र अपेक्षित होता है। मनुष्य के जीवन मे कार्य सचालन के लिए एक तत्र है और इसमे चार तत्त्व कार्य कर रहे हैं वे हैं—शरीर, श्वास, वाणी और मन। ये चारो साधक भी

बनते हैं और बाधक भी । ये मूल्यो के विकास के हेतु भी बनते हैं और अवरोधक भी । यदि इन्हे प्रशिक्षित कर लिया जाय तो ये साधक बन सकते है यदि अप्रशिक्षित रह जाए तो बाधक बन जाते हैं । प्रश्न है अभ्यास करने का, प्रशिक्षित करने का या प्रशिक्षण की पूरी प्रक्रिया अपनाने का

शरीर, श्वास, वाणी एवं मन को प्रशिक्षित करना जीवन विज्ञान की प्रक्रिया का मौलिक आधार है। इन चारो तत्वों के प्रशिक्षण के अभाव मे व्यक्तित्व मे निहित दोषो का उपचार करना असम्भव होता है और जब तक आधार की बात समझ में नही आती ठीक उपचार नही होता । कभी-कभी ऐसा होता है कि चिकित्सा करने वाला स्वय बीमार पड़ जाता है तब चिकित्सा करने मे कठिनाई पैदा हो सकती है । ये चार तत्त्व ही उपचार करने वाले हैं। जब ये ही बीमार हो जाते हैं तो हमारे सामने मूल्यो की समस्या पैदा हो जाती है। इनको स्वस्थ बनाए, सशक्त बनाए, प्रशिक्षित करे तो मूल्यो के अवमूल्यन की समस्या निरस्त हो जाती है ।

१०.३.८. मूल्यों की प्रतिष्ठा

शिक्षा जगत् मे जीवन विज्ञान तीन प्रकार के मूल्यो को विशेष रूप से प्रतिष्ठित करना चाहता है—नैतिक मूल्य, मानसिक मूल्य और भावात्मक मूल्य ।

तालिका १६ : जीवन विज्ञान और मूल्यों की प्रतिष्ठा

क्रम संख्या	मूल्य	प्रशिक्षण
(१)	नैतिक मूल्यो का विकास— प्रामाणिकता, करुणा, मानवीय एकता, सह-अस्तित्व, सयम या सीमाकरण का विकास ।	अहिंसा, अणुव्रत, नैतिकता का दर्शन और सिद्धात, शिक्षा का सिद्धात, समाज विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, महापुरुषो के प्रेरक जीवनवृत, नैतिक विकास की प्रेरक कहानिया ।
(२)	मानसिक मूल्यो का विकास— एकाग्रता का विकास, सकल्प शक्ति का विकास, मानसिक सतुलन का विकास, धृति का विकास, मनोबल का विकास, मानसिक तनाव का विसर्जन,	अनेकात, प्रेक्षाध्यान, शरीर और मन के सबंध का प्रशिक्षण,

क्रम संख्या	मूल्य	प्रशिक्षण
(३)	भावात्मक मूल्यो का विकास— आत्म निरीक्षण का विकास, आत्म परीक्षण का विकास, आत्म नियत्रण/सवेग नियत्रण का विकास, अभय, मृदुता, सहिष्णुता, ऋजुता, अनासक्ति का विकास, मानवीय सबधो मे परिवर्तन या परिष्कार,	अध्यात्म विज्ञान, परामनोविज्ञान, कर्मशास्त्र, अनुप्रेक्षा,

नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा से होगा—प्रामाणिकता, मानवीय एकता, सह-अस्तित्व एव सयम का विकास। इनके विकास का आधार है—अहिंसा, अणुव्रत, नैतिक-दर्शन आदि। मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा से होगा—एकाग्रता का विकास, सकल्प शक्ति का विकास आदि। इसका आधार है—प्रेक्षाध्यान ध्यान आदि। भावात्मक मूल्यो की प्रतिष्ठा से होगा—आत्म-निरीक्षण आत्म परीक्षण का विकास, सवेगो के नियत्रण का विकास, मानवीय मूल्यो का परिष्कार एव विकास आदि। इनके विकास का आधार है अध्यात्म-विद्या आदि। इन मूल्यो को विद्यार्थियो तक पहुचाने के लिए जीवन विज्ञान पाठ्यक्रम की कल्पना की गई।

१०.३.६. कार्यविधि (Methodology)

मूल्यो के विकास के लिए जीवन तत्त्वो को प्रशिक्षित करना आवश्यक है। प्रशिक्षण की कार्यविधि के चार महत्त्वपूर्ण अग हैं—१ अहिंसा २ अनेकात ३ अणुव्रत और ४ प्रेक्षाध्यान।

१ अहिंसा—स्वस्थ समाज की सरचना के लिए व्यक्ति-व्यक्ति मे अहिंसा की चेतना का विकास आवश्यक है। इससे करुणा, मैत्री, सार्वभौम जैसी उदात्त चेतना का विकास होता है समाज मे अपराध, हिंसा, शत्रुता पर अकुश लगता है।

२ अनेकात—स्वस्थ जीवन के लिए एकाग्री आग्रह बाधक है। सतुलित जीवन के विकास के लिए समग्र दृष्टिकोण का विकास आवश्यक है। इसकी पूर्ति होती है—अनेकात के प्रशिक्षण से। इससे मिथ्या धारणाए, निरपेक्ष चिंतन व आग्रह से मुक्ति मिलती है।

३ अणुव्रत—सकल्प-शक्ति के विकास के बिना कोई भी जीवन मे सफल नही हो सकता। सयम एव व्रत की चेतना के अभाव मे कोई भी

सफलता सुरक्षित नही रह सकती, अच्छा जीवन नही जी सकता। स्वस्थ जीवन शैली के विकास का सूत्र है—अणुव्रत।

४ प्रेक्षाध्यान—अहिंसा, अनेकात एव अणुव्रत की चेतना को जगाने के लिए एक ओर इनका सैद्धातिक प्रशिक्षण है। दूसरी ओर प्रायोगिक अभ्यास की सम्पूर्ण प्रक्रिया है—प्रेक्षाध्यान।

अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन विज्ञान

अणुव्रत आदोलन का लक्ष्य है—व्यक्ति, समाज और राष्ट्र मे पनपने वाली बुराइयो को दूर कर एक नीतिमान, मूल्यों से परिपूर्ण और चरित्र निष्ठ पीढी का निर्माण करना।

अत अणुव्रत आदोलन ने सम्पूर्ण सामाजिक समस्याओ को ललकारा। व्यक्ति-व्यक्ति मे सामाजिक मूल्यों के प्रति चेतना को जगाया। समाज के सभी वर्ग—शिक्षक, छात्र, कर्मचारी, अधिकारी, राजनेता, मतदाता, व्यापारी को बुराइयो से मुक्त रहकर अच्छा जीवन जीने के लिए प्रेरित किया, सकल्पबद्ध किया और व्रत की चेतना को विकसित किया। इसके सिद्धात नैतिक दर्शन व आचार शास्त्र की सुदृढ भूमिका पर अवस्थित हैं। यह व्यक्ति-व्यक्ति के सुधार से स्वस्थ समाज की सरचना को मूर्तरूप देने मे अनवरत प्रयत्नशील है।

प्रेक्षाध्यान का लक्ष्य है—भावात्मक एव आध्यात्मिक विकास। इससे समग्र व्यक्तित्व का विकास प्रतिफलित होता है एव भावात्मक, मानसिक, शारीरिक स्वास्थ्य एव समाधि की अनुभूति होती है।

प्रेक्षाध्यान का यह सिद्धात है कि दृष्टिकोण बदल सकता है। आदत, स्वभाव और व्यवहार मे परिवर्तन हो सकता है। यह तथ्य शिविर काल मे और अधिक स्पष्टता से प्रमाणित हुआ। अनेक व्यक्तियो ने प्रयोग किये। परिणाम अच्छे आये। चिंतन चला कि शिक्षा के क्षेत्र मे अणुव्रत के साथ प्रेक्षाध्यान का संयुक्त प्रयोग करना चाहिए। इसकी व्यवस्थित परिणति जीवन विज्ञान के रूप मे २८ दिसम्बर १९७८ को सामने आई। जीवन विज्ञान ने अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान को समाविष्ट करते हुए मूल्यो के विकास, स्वास्थ्य सरक्षण और व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए पूरा पाठ्यक्रम व प्रशिक्षण को प्रस्तुत किया।

अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन विज्ञान—तीनों जीवन मूल्यो के विकास के लिए अपने आपमे प्रगति के चरण हैं। पर तीनो के सैद्धातिक आधार, कार्यक्षेत्र, कार्य और प्रतिधि को निम्न तालिका से स्पष्ट समझ सकते हैं -

तालिका १७ : अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन विज्ञान

अंग	कार्य क्षेत्र	कार्य	प्रविधि	सैद्धातिक आधार
१ अणुव्रत	सामाजिक समस्याओ का समाधान	नैतिक विकास, सयममय जीवन को प्रोत्साहन	जन-चेतना का जागरण एव व्यक्तिगत सकल्प	नैतिक-दर्शन-आचार-शास्त्र, अहिंसा, अनेकात एव अपरिग्रह का दर्शन
२. प्रेक्षाध्यान	वैयक्तिक समस्याओ का समाधान	आध्यात्मिक, भावात्मक, मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य एव विकास	प्रायोगिक अभ्यास, शिविर-आयोजन। अनौपचारिक शिक्षा।	अध्यात्म-विज्ञान और आधुनिक विज्ञान
३ जीवन विज्ञान	शिक्षा मे मूल्यो की समस्या का समाधान	जीवन-मूल्यो का विकास, अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय, जीवन के नियमो की खोज	सैद्धातिक अध्ययन एव प्रायोगिक प्रशिक्षण। विधिवत् कालाश, औपचारिक शिक्षा।	अणुव्रतअनुशास्ता श्री तुलसी एव आचार्य महाप्रज्ञ का शिक्षा-दर्शन

१०.४.० जीवन विज्ञान : शिक्षा के तत्त्व
(Elements of education)

शिक्षा-दर्शन से शिक्षा के तत्त्व उभरकर सामने आते हैं। शिक्षा के तत्त्वो मे मुख्यतया उद्देश्य, विषय-वस्तु, पाठ्यक्रम, प्रविधि एव मूल्याकन पर विचार किया जाता है।

जीवन विज्ञान के शिक्षा-दर्शन के आधार पर इस शिक्षा के तत्त्वो पर विचार किया जा रहा है। इसमे इसके उद्देश्य, विषय-वस्तु, पाठ्यक्रम, प्रविधि एव मूल्याकन आदि तत्वो को स्पष्ट किया जा रहा है और इनको विद्यालय, महाविद्यालय एव विश्वविद्यालय के स्तर पर चल रहे पाठ्यक्रम के सदर्भ मे प्रस्तुत किया जा रहा है।

१०.४.१. मुख्य उद्देश्य

१ स्वस्थ व्यक्तित्व का निर्माण जिसमें शारीरिक, मानसिक, भावात्मक एव सामाजिक मूल्यो का सतुलित विकास हो।

२ नये समाज का निर्माण--हिंसा, शोषण एव अनैतिकता से मुक्त समाज का निर्माण।

३ नई पीढी का निर्माण—ऐसी पीढी का निर्माण जो आध्यात्मिक भी हो एव वैज्ञानिक भी अर्थात् आध्यात्मिक-वैज्ञानिक मूल्यो से परिपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण।

इन मुख्य उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु विद्यालय, स्नातक एव स्नातकोत्तर स्तर पर विभिन्न उद्देश्यो का निर्माण किया गया है एव पाठ्यक्रम से उसे पुष्ट किया गया है।

1. विद्यालय के स्तर पर उद्देश्य :—

१ विद्यार्थियो मे मूल्य चेतना को जागृत करना।

२ शारीरिक, मानसिक एव भावनात्मक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता पैदा करना।

३. शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एव सामाजिक विकास के सतुलन की स्थापना करना।

४ योग एव प्रेक्षाध्यान पद्धति का प्रायोगिक प्रशिक्षण देना।

५ शरीर विज्ञान एव मनोविज्ञान के ज्ञान द्वारा वैज्ञानिक तथ्यो एव आध्यात्मिक अनुभवो के समन्वय का बोध जागृत करना।

२. स्नातक (Graduate) स्तर पर उद्देश्य :—

१. शिक्षा मे जीवन विज्ञान की आवश्यकता व स्वरूप का ज्ञान करना।

२ अणुव्रत, योग एव प्रेक्षाध्यान पद्धति के सिद्धान्तों का ज्ञान देना।

३. प्रायोगिक अभ्यास द्वारा सतुलित व्यक्तित्व का निर्माण कराना।

४. जीवन के मूल तत्त्व, शरीर, मन, भाव एव चेतना का ज्ञान कराना।

३ स्नातकोत्तर (Post-graduate) स्तर पर उद्देश्य :—

१. जीवन के परिष्कार द्वारा आध्यात्मिक वैज्ञानिक मूल्यो से परिपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करना । आध्यात्मिक व्यक्तित्व अर्थात् मैत्रीपूर्ण व्यवहार से ओत-प्रोत व्यक्तित्व और वैज्ञानिक व्यक्तित्व अर्थात् सत्य की खोज के लिए खुले दिमाग से समर्पित व्यक्तित्व ।

२ जीवन की शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एव चैतसिक प्रक्रियाओ पर योग एव प्रेक्षाध्यान की प्रक्रियाओ के प्रभावो का वैज्ञानिक अध्ययन करना ।

३. जीवन के उन नियमो एव प्रक्रियाओ के प्रभावो का अध्ययन एव अन्वेषण करना जिससे जीवन के ज्ञानात्मक, भावात्मक एव क्रियात्मक पक्ष का विकास एव परिष्कार हो ।

४ स्वस्थ समाज की सरचना के लिए ऐसे व्यक्तित्व (प्रशिक्षक) का निर्माण करना जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रो हेतु स्वस्थ जीवन की प्रायोगिक अभ्यासात्मक प्रक्रियाओ को वैज्ञानिक ढग से प्रस्तुत कर सके । इसके माध्यम से वह समग्र व्यक्तित्व एव स्वस्थ समाज के निर्माण मे सहभागी बन सके ।

१०.४.२. केन्द्रीय विषय वस्तु (core content) :

वर्तमान शिक्षा प्रणाली मे बौद्धिक विकास के तत्व पर्याप्त मात्रा मे हैं । इसमे सचाई है । यही कारण है कि अनेक बुद्धिजीवी इस शिक्षा-प्रणाली से सफलतापूर्वक निकल रहे हैं । अच्छे डॉक्टर, वकील, इजिनीयर, वैज्ञानिक आदि आज की शिक्षा प्रणाली की देन है किंतु विचारणीय पक्ष यह है कि भावनात्मक विकास के लिए कौन-कौन से तत्व हैं ? भावनात्मक विकृतियो-क्रूरता, प्रतिशोध, भय, घृणा, ईर्ष्या, वासना एव विकारो के परिष्कार के लिए आज की शिक्षा प्रणाली क्या दे रही है ? विधायक भाव जो स्वस्थ, चरित्रवान एव नैतिक व्यक्तित्व के लिए अत्यन्त आवश्यक है—इसके विकास के लिए आज की शिक्षा मे क्या-क्या उपक्रम हैं ? सकल्प शक्ति, इच्छा-शक्ति एव मानसिक एकाग्रता के विकास के लिए आधुनिक शिक्षा प्रणाली क्या समाधान देती है ? यह स्पष्ट है कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली इन तत्वो से परिपूर्ण नही है । यह आवश्यक है कि इन तत्वो का शिक्षा प्रणाली मे समावेश हो । न कि शिक्षा प्रणाली को ही दोषी ठहराया जाय । अधिकतर यही हो रहा है । शिक्षा प्रणाली को ही व्यर्थ एव गलत बताया जाने लगा है । आवश्यकता इस बात की है कि जो कमी है उसको पूरा किया जाये । आज की शिक्षा प्रणाली मे ऐसे तत्वो का समावेश हो जो विद्यार्थी के विवेक एव प्रज्ञा को जगा सके जिससे विद्यार्थी दबावपूर्ण स्थिति

में अपने आपको सम्भाल सके एव तनाव से मुक्त रह सके ।

केन्द्रीय विषय वस्तु (Core Content)

जीवन मूल्यो के विकास के लिए जीवन के तत्वो को प्रशिक्षित करना आवश्यक है । उनके प्रशिक्षण की प्रक्रिया मे है– अहिंसा, अनेकान्त, अणुव्रत एव प्रेक्षा ध्यान । परन्तु जीवन के उन तत्वो को एव उनके प्रशिक्षण की प्रक्रिया को पूरी तरह समझने के लिए आधुनिक विज्ञान, प्राच्य विज्ञान, मानविकी एव समाज विज्ञान का अध्ययन आवश्यक है । आधुनिक विज्ञान के अन्तर्गत शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान, परामनोविज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान एव पोषाहार तथा मनश्चिकित्सा विज्ञान का समावेश किया गया है ।

तालिका १८ : जीवन विज्ञान की विषय-वस्तु

जीवन के तत्व	आधुनिक विज्ञान	प्राच्य-विद्या
शरीर	शरीर विज्ञान, शरीर क्रियाविज्ञान	आयुर्वेद, योग, दर्शन
श्वास	शरीर विज्ञान, शरीर क्रिया विज्ञान	आयुर्वेद, स्वर-विज्ञान योग-साधना
प्राण	परामनोविज्ञान	भारतीय मनोविज्ञान, दर्शन, योग, आयुर्वेद
मन	मनोविज्ञान	भारतीय मनोविज्ञान दर्शन
भाव	मनोविज्ञान, परामनोविज्ञान	दर्शन, भारतीय मनोविज्ञान, आचार शास्त्र
कर्म	आनुवंशिक विज्ञान, विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान	कर्म शास्त्र, दर्शन शास्त्र
चित्त-चेतना	मनोविज्ञान, परामनोविज्ञान शरीर विज्ञान	अध्यात्म विद्या, धर्म, दर्शन-शास्त्र, आचार-शास्त्र
अणुव्रत	समाज विज्ञान	नैतिक दर्शन, आचार शास्त्र, धर्म (तुलनात्मक), अहिंसा-दर्शन, अहिंसा-प्रशिक्षण
प्रेक्षाध्यान	शरीर विज्ञान, स्नायु-ग्रन्थि तंत्र विज्ञान, मनोविज्ञान, परामनोविज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, पोषाहार, मानसिक चिकित्सा, प्रेक्षाध्यान-वैज्ञानिक आधार, विधि, लाभ	अध्यात्म-विज्ञान, जैन साधना पद्धति, योग, दर्शन, मन्त्र विज्ञान, स्वर-विज्ञान आदि । प्रेक्षाध्यान–आध्यात्मिक आधार, विधि एव प्रयोजन ।

प्राच्य विद्या, मानविकी एव समाज विज्ञान के अन्तर्गत दर्शन, शिक्षा (मुख्यत मूल्य शिक्षा), धर्म (तुलनात्मक), योग (सैद्धान्तिक एव प्रायोगिक), शाति-शोध, अहिंसा-प्रशिक्षण, समाज-शास्त्र, कर्मशास्त्र, आयुर्वेद (प्राकृतिक चिकित्सा) प्राणविज्ञान, मन्त्र-विज्ञान एव अध्यात्म विज्ञान का समावेश किया गया है।

उपरोक्त विषयो के आधार पर मूल विषय-वस्तु (core content) --

(क) अणुव्रत (ख) सप्तसूत्रीय प्रेक्षा कार्यक्रम (ग) अहिंसा-प्रशिक्षण

(क) अणुव्रत —जीवन मे नैतिक मूल्यो के विकास के लिए नैतिक जीवन की आचार सहिता[1] से परिचय करवाना। छोटे-छोटे सकल्प के द्वारा जीवन मे नैतिकता के विकास को प्रेरित करना।

(ख) सप्तसूत्रीय प्रेक्षा-कार्यक्रम . शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य के लिए सप्तसूत्रीय प्रेक्षा कार्यक्रम -

१ यौगिक क्रियाए २ योगासन ३ प्राणायाम ४ कायोत्सर्ग ५ प्रेक्षाध्यान ६ अनुप्रेक्षा और भावना के द्वारा मूल्य प्रशिक्षण ७ स्वाध्याय।

१ यौगिक क्रियाए प्रत्येक मासपेशी, अवयव और अग के व्यायाम लिए।

२. योगासन--शरीर के भीतर स्थित अवयवो के व्यायाम एव नियत्रण के लिए।

३. प्राणायाम—श्वास पर स्वैच्छिक नियत्रण, सकल्प शक्ति और इच्छा शक्ति के विकास के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। अतत इससे स्वायत्त नाडी सस्थान पर भी स्वैच्छिक नियत्रण बढता है।

४ कायोत्सर्ग – शरीर और मन को शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक तनावो से मुक्त करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

५. प्रेक्षाध्यान—यह विवेक शक्ति को जगाने की प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति अपने सवेगो पर अपना नियत्रण रख सके। प्रेक्षाध्यान मुख्यत रागद्वेष रहित देखने की एकाग्रता है। यह आतरिक चेतना एव आतरिक प्रक्रियाओ को अनुभव करने की प्रक्रिया है, अभ्यास है। इससे आतरिक प्रक्रियाओ का नियत्रण व रूपातरण भी किया जाता है।

यह आत्म-निरीक्षण, प्रेक्षा का अभ्यास चेतना की गहरी परतो, अवचेतन मन के रहस्यो को उजागर करता है एव अशुभ-सस्कारो से मुक्ति दिलाता है। यह पद्धति अन्त स्रावी ग्रन्थि तत्र के रसायनो को सतुलित व समन्वित करती है जो हमारे स्नायु तत्र को भी नियन्त्रित करते हैं। यह

---

१ देखें—पृष्ठ—८९-९०

अन्तत. स्नायु-अन्त:स्रावी ग्रन्थि मे सतुलन स्थापित करता है।

शारीरिक—शारीरिक स्तर पर प्रेक्षाध्यान पद्धति प्रत्येक कोशिका को प्राणवान बनाती है। पाचन तत्र स्वस्थ बनता है। श्वसन तत्र की क्षमता बढती है। रक्त सचार निर्बाध बनता है।

मानसिक—मानसिक स्तर पर प्रेक्षाध्यान मन की एकाग्रता को बढ़ाता है। मन को तनाव मुक्त करता है। जिसके फलस्वरूप प्राय: सभी मानसिक प्रक्रियाएं या शक्तिया भली-भाति एव सुचारु रूप से अपना योगदान कर सकती हैं। प्रेक्षाध्यान अनेक मनोकायिक बीमारियो का बिना दवाई समाधान प्रस्तुत करता है। आत्मानुशासन का यह सशक्त उपाय है जिससे व्यक्ति व्यसन एव बुरी आदतो से मुक्त हो जाता है। यह चेतन मन से परे जाने का उपाय है।

भावनात्मक स्तर पर—विवेक शक्ति जागृत होती है। बाह्य वातावरण, परिस्थितिया एव दूसरो के व्यवहार के प्रति प्रतिक्रियात्मक वृत्ति पर नियत्रण होता हैं। स्नायु तत्र और अन्त स्रावी ग्रन्थि तत्र का समन्वय स्थापित होता है। अतत. भय, ईर्ष्या, क्रोध,वासना आदि से छुटकारा मिलता है।

आध्यात्मिक स्तर पर— विवेक शक्ति का वृत्तियो पर पूरा नियत्रण स्थापित होता है। हमारे आतरिक रसायनो का नियमन व रूपातरण घटित होता है। जिससे समाधि, करुणा, आनन्द और समता का विकास होता है।

प्रेक्षाध्यान के निम्नलिखित प्रयोग हैं .—

(i) **श्वास प्रेक्षा**—(क) वैज्ञानिक दृष्टि से मद, गहरा और लयबद्ध श्वास ही सम्यक् एवं पूरा श्वास है। इसमे श्वसन क्षमता एव तनुपट का अधिकतम उपयोग होता है। इस श्वास को जागरूक होकर अनुभव करना दीर्घश्वास प्रेक्षा है।

(ख) समवृति श्वास प्रेक्षा—यह नथुनो मे क्रमश· श्वास के परिवर्तन के साथ श्वास के अनुभव (प्रति जागरूकता) का प्रयोग है।

(ii) **शरीर प्रेक्षा**—यह शरीर के प्रत्येक अवयव पर चित्त को केन्द्रित कर वहा पर होने वाले सूक्ष्म प्रकपनो के अनुभव का प्रयोग है। देखने का प्रयोग है।

(iii) **अन्तर्यात्रा**—यह सुषुम्ना पर चित्त को केन्द्रित कर ऊपर से नीचे यात्रा करते हुए वहा पर होने वाले प्रकपनो को देखने का, अनुभव करने का प्रयोग है।

(iv) **चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा**—शरीर मे चेतना के विशिष्ट केन्द्र है। जहा पर ग्रन्थिया भी अवस्थित है। यह प्रयोग वहा पर चित्त को केन्द्रित कर देखने, अनुभव करने का प्रयोग है।

(v) लेश्याध्यान—इसमे चैतन्य केन्द्र पर ध्यान करके चमकते हुए विभिन्न रगो का ध्यान करना। इससे चेतना के सूक्ष्म स्तरो पर रूपातरण घटित होता है।

६ अनुप्रेक्षा और भावना द्वारा मूल्य प्रशिक्षण .—

मूल्य परक गतिविधिया या चितन-चिकित्सा जीवन विज्ञान की रीढ है। विद्यार्थी मे जिन नैतिक, सामाजिक मानसिक भावात्मक और आध्यात्मिक मूल्यो का विकास अनुप्रेक्षा और भावना के द्वारा करणीय है वे निम्नलिखित है --

(i) कर्त्तव्य-निष्ठा
(ii) स्वावलम्बन
(iii) सत्य
(iV) समन्वय
(v) सम्प्रदाय-निरपेक्षता
(vi) मानवीय एकता
(vii) सह-अस्तित्व
(viii) राष्ट्रीय दायित्व
(ix) मानसिक सतुलन
(x) धैर्य
(xi) प्रामाणिकता
(xii) करुणा
(xiii) पवित्रता
(xiv) सहिष्णुता
(xv) मृदुता
(xvi) ऋजुता (सरलता)
(xvii) आत्मानुशासन
(xviii) मैत्री
(xix) अभय
(xx) अतिलोभ से मुक्ति
(xxi) सकल्प शक्ति
(xxii) अनासक्ति

इन मूल्यो का विकास केवल पुस्तकीय ज्ञान या उपदेश से सभव नही है। यह प्रयोग के नियमित अभ्यास से ही हो सकता है। स्वत सुझाव और चैतन्य केन्द्र पर रगो के ध्यान से वाछित आतरिक (रासायनिक) परिवर्तन घटित होते है। परिणामत. वाछित मूल्यो का विकास एव व्यक्तित्व मे रूपातरण घटित होता है। इसी प्रकार किसी भी वाछित मूल्यो के विकास के लिए अनुप्रेक्षा एव स्वत सुझावो के प्रयोग का निर्धारण एव निर्माण किया जा सकता है।

७. स्वाध्याय —महापुरुष, साधक एव वैज्ञानिको के जीवन साहित्य से परिचय कराना। उनके द्वारा खोजे हुए सत्य मे समान तत्त्वो को रेखाकित करना एव शाश्वत सत्य का बोध साहित्य द्वारा करवाना।

(ग) अहिंसा प्रशिक्षण[1]— विचार एव व्यवहार मे अहिंसा के विकास के लिए चतुःसूत्री कार्यक्रम—

१ हृदय परिवर्तन --मस्तिष्कीय प्रशिक्षण

---

१ अहिंसा-प्रशिक्षण, स मुनि धर्मेश।

२. दृष्टिकोण परिवर्तन—अनेकांत का प्रशिक्षण
३ जीवन शैली परिवर्तन—जीवन शैली मे परिवर्तन के लिए अणुव्रत का प्रशिक्षण
४ व्यवस्था परिवर्तन—सामाजिक, आर्थिक एव राजनैतिक व्यवस्था परिवर्तन के लिए मानवीय सम्बन्धो मे परिष्कार, स्वस्थ आर्थिक व्यवस्था एव शुद्ध साधनो के प्रयोग का प्रशिक्षण।

विद्यालय के स्तर पर :—

जीवन विज्ञान की मूल विषय वस्तु के आधार पर विद्यालयो के स्तर पर पाठ्यक्रम व पाठ्य पुस्तकें तैयार की गई हैं। जिसकी पृष्ठभूमि इस प्रकार है —

शिक्षाविदो के साथ किए गये विचार-विमर्श और प्रयोगो के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला गया कि वर्तमान पाठ्यक्रम के साथ जीवन-विज्ञान को स्वतत्र रूप से कक्षा मे पढाया जाए। इसी निर्णय को लेकर राजस्थान शिक्षा विभाग ने "जीवन विज्ञान समिति" का गठन किया। उसने सर्वप्रथम राज्य के विभिन्न स्कूलो के अध्यापको को प्रशिक्षित किया और कक्षाओ मे विधिवत् प्रयोग करवाए। इनके परिणामो को जानकर राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर के तत्कालीन अध्यक्ष श्री जगन्नाथ सिंह मेहता ने जीवन विज्ञान को पाठ्यक्रम के रूप मे अपनाने के लिए एक लेखक, सगोष्ठी आयोजित की। दिनाक २२-२३ मई, १९८९ को लेखको ने गहन विचार विमर्श के पश्चात् जीवन विज्ञान पाठ्यक्रम की विषय सूची और लेखन के मानदड निर्धारित किये। ये (जीवन विज्ञान भाग १ से १० तक) पुस्तके मूल्यपरक शिक्षा के सैद्धातिक एव प्रायोगिक पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी गई हैं। वे सिद्धात इस प्रकार विकसित किये गये हैं।

१. "सरलता से कठिनता की ओर" सिद्धात के अनुसार भाषा के अनुसार सरलता से क्रमश कठिनता की ओर ले जाते हुए किया गया है ताकि हर स्तर का विद्यार्थी पुस्तक का आसानी से उपयोग कर सके।
२ "ज्ञात से अज्ञात की ओर" सिद्धात को ध्यान मे रखकर यथासम्भव बच्चो की जानकारी वाले तथ्य जैसे—चित्र, रूपक, दृष्टात, तुलनात्मक घटना या कहानी आदि को सामने रखकर गूढ़ विषय को रोचक व सहज ग्राह्य रूप मे समझाने की कोशिश की गई है।
३. प्रत्येक पाठ को रोचक तथा सुपाच्य बनाने के लिए प्रश्न, कविता, इतिहास आदि का भी खुलकर प्रयोग किया गया है।
४. भाव-परिवर्तन जीवन-विज्ञान का मुख्य आधार है। निषेधात्मक भावो की जगह विधेयात्मक भावो को चरित्र का अग बनाना, बुरी आदत को

मिटाकर अच्छी आदतो का निर्माण करना, शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक तनावो से मुक्त रहकर जीवन जीना, अपनी कार्य-शैली एव कुशलता को वढाना आदि ऐसे विपय हैं जिनसे आजकल विद्यार्थी अछूता रहता है। इसके लिए प्रेक्षा-अनुप्रेक्षा, कायोत्सर्ग और यौगिक आसन-प्राणायाम के अभिनव प्रयोगो को शामिल किया गया है।

प्रस्तुत सिद्धातो को सरल एव रुचिकर बनाने के लिए १२ इकाइयो मे बाटा है—

१ ध्वनि —ध्वनि सबधी प्रयोगो और सिद्धातो के लिए
२. सकल्प —सकल्प शक्ति के विकास के लिए
३. सम्यक् व्यायाम—आसन और मुद्राओ के प्रयोग के लिए
४ श्वास—श्वास के महत्व और प्रयोगो के लिए
५. कायोत्सर्ग —तनाव मुक्ति के प्रयोगो के लिए
६ ध्यान—भावनात्मक परिवर्तन और सही दर्शन (सम्यक् दृष्टि) के लिए
७. शरीर विज्ञान—शरीर विज्ञान की समुचित जानकारी हेतु
८. शारीरिक स्वास्थ्य—शारीरिक स्वास्थ्य के लिए
९. मानसिक स्वास्थ्य—मानसिक स्वास्थ्य के लिए
१०. भावनात्मक स्वास्थ्य—भावनात्मक स्वास्थ्य के लिए
११ मूल्य-वोध—जीवन मूल्यो या आदर्शों को चरित्र का अग बनाने के लिए अभिनव प्रयोग अनुप्रेक्षा के रूप मे।
१२ अहिंसा प्रशिक्षण—अहिंसा-दर्शन और प्रशिक्षण की प्रक्रिया

पाठ्य पुस्तकें :—

विद्यालय की अपेक्षा को ध्यान मे रखकर निर्धारित विषय-वस्तु व मानदडो के आधार पर विद्यालयो के लिए ग्यारह पुस्तकें (जीवन विज्ञान भाग १-१० एव वर्णमाला) तैयार की गई। इनका अग्रेजी, तमिल आदि अन्य भाषाओ मे रूपातरण कार्य भी प्रगति पर है।

स्नातक स्तर पर :—

"जैन विद्या और जीवन विज्ञान" विषय को महर्षि दयानन्द विश्व विद्यालय, अजमेर ने १९९०-९१ मे अपने स्नातक पाठ्यक्रम मे एक विषय के रूप मे मान्यता प्रदान की है। वर्तमान मे इस विषय का "राजकीय महाविद्यालय" पाली, "तेरापथ महाविद्यालय" राणावास एव "आचार्य श्री तुलसी अमृत महाविद्यालय" गगापुर मे अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। जैन विश्व भारती सस्थान के दूरस्थ शिक्षा मे भी इसका समावेश है। महाविद्यालयो मे जीवन-विज्ञान के उद्देश्यानुसार निम्नलिखित पाठ्यक्रम वर्तमान (१९९५-९६) मे चल रहा है।

i प्रेक्षाध्यान : सिद्धात और प्रयोग

१. जीवन विज्ञान अर्थ एव प्रारूप, शिक्षा का नया आयाम, स्वास्थ्य और जीवन विज्ञान की आवश्यकता, आधार और प्रक्रिया, शिक्षा और भावात्मक परिवर्तन

२ प्रेक्षाध्यान : आधार और स्वरूप

३. लेश्याध्यान, अनुप्रेक्षा एव आसन, प्राणायाम और मुद्रा

ii जैन दर्शन और सस्कृति

१. दर्शन, आत्मवाद, कर्मवाद, स्याद्वाद, इतिहास, साहित्य और संस्कृति

iii जीवन विज्ञान : सिद्धात और प्रयोग

१. जीवन विज्ञान : स्वरूप और आवश्यकता

२. जीवन विज्ञान और सामाजिक जीवन

३ मूल्य परक शिक्षा . सिद्धात और प्रयोग

iv. अहिंसा और अणुव्रत : सिद्धात और प्रयोग

१. अहिंसा का सिद्धात २. अहिंसा और नि शस्त्रीकरण

३. अणुव्रत और उसका स्वरूप

v. मन का प्रशिक्षण—

१. सस्कार शोधन की प्रक्रियाए

२. आध्यात्मिक शुद्धि की प्रक्रियाए तथा मनोविज्ञान

३. सामान्य मनोविज्ञान

vi. जैन दर्शन और विज्ञान

१. दर्शन और विज्ञान : तुलनात्मक अध्ययन

२. अध्यात्म और विज्ञान ३. जैन दर्शन और परामनोविज्ञान

४. विज्ञान के संदर्भ मे जैन जीवन शैली ५. जैन दर्शन और विज्ञान

६. जैन दर्शन और विज्ञान मे पुद्गल, परमाणु एव विश्व।

स्नातक स्तर पर जीवन विज्ञान के उद्देश्य एव विषय-वस्तु को ध्यान मे रखकर कुछ पाठ्य पुस्तके तैयार की गई—

१. प्रेक्षाध्यान : सिद्धांत और प्रयोग

२ जीवन विज्ञान : सिद्धात और प्रयोग

३. अहिंसा और अणुव्रत : सिद्धात और प्रयोग

स्नातकोत्तर स्तर पर :—

जीवन विज्ञान के प्रशिक्षण हेतु प्रशिक्षको की आवश्यकता सामने आई। इस हेतु प्रशिक्षक परियोजन जैन विश्व भारती के तत्त्वावधान मे सन् १९८४ मे प्रारम्भ हुई। इस योजना की क्रियान्विति अध्यात्म और विज्ञान के समन्वित पाठ्यक्रम के रूप मे हुई।

सन् १९७० मे स्थापित "जैन विश्व भारती" के उद्देश्यो, कार्यक्रमो एव प्रवृतियो का मूल्याकन करते हुए विश्व विद्यालय आयोग (यू. जी सी) की सलाह पर भारत सरकार (मानव ससाधन मत्रालय) ने दिनाक २० मार्च १९९१ को "जैन विश्व भारती सस्थान" को मान्य विश्वविद्यालय के रूप मे घोषित किया। इस विश्वविद्यालय मे 'जीवन विज्ञान और प्रेक्षाध्यान' विषय का स्नातकोत्तर (पोस्ट-ग्रेजुएट) अध्ययन चलता है। इस अध्ययन का पाठ्यक्रम (१९९५-९६) मुख्य रूप से इस प्रकार है—

1 मूल्यपरक शिक्षा जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान एव योग
 १. जीवन विज्ञान का परिचय २. जीवन विज्ञान और शिक्षा
 ३. प्रेक्षाध्यान एव योग

11 जैन दर्शन, कर्म सिद्धात और भारतीय मनोविज्ञान

111 मानव शरीर रचना एव शरीर क्रिया विज्ञान (Anatomy & Physiology)

1V व्यावहारिक मनोविज्ञान एव अनुसधान

V. प्रायोगिक कार्य—१. मनोविज्ञान २. शरीर-क्रिया-विज्ञान प्रेक्षाध्यान एव योग का अभ्यास

V1 अध्यात्म और विज्ञान

V11 स्वप्रवधन एव मनोजीव-विज्ञान (Personal management & Psychobiology)

V111 असामान्य एव नैदानिक मनोविज्ञान

1X समाज, अणुव्रत और अहिंसा-प्रशिक्षण

X प्रायोगिक कार्य—१. मनोविज्ञान २. शरीर-क्रिया-विज्ञान ३ प्रेक्षाध्यान एव योग

१०.४.३. पारस्परिक प्रविधियां :—

(क) नियमित कालाश (ख) शिविर

जीवन विज्ञान के उद्देश्य एव मूल विषय-वस्तु को ध्यान मे रखकर इसकी प्रविधि का निर्धारण किया जाता है। जीवन विज्ञान मे प्रशिक्षित अध्यापको द्वारा सभी स्तर प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक, महाविद्यालय एव विश्वविद्यालय मे नियमित कालाश चलाये जाते हैं।

इस प्रकार के कार्यक्रमो मे अध्यापको का दृष्टिकोण एव व्यवहार बहुत प्रेरणा दायी होता है। अच्छे परिणामो के लिए प्रशिक्षित एव अनुभवी अध्यापको की अपेक्षा होती है। समय-समय पर ऐसे प्रयोगो मे बार बार प्रशिक्षण (Refreshing Course) की भी आवश्यकता होती है। यह भी अत्यन्त अपेक्षित होता है कि इसका स्वय अध्यापक अपने जीवन मे अभ्यास

अवश्य करे। अनुभव को परिपक्व बनाये।

जीवन विज्ञान की नियमित कलाशो के प्रभावशाली परिणामो के लिए जीवन विज्ञान की प्रयोगशालाओ की स्थापना भी अत्यन्त अपेक्षित है। इन प्रयोगशालाओ के उपकरण व्यक्तिगत अनुभूति से सम्वन्धित आधुनिक विज्ञान के सिद्धातो को समझाने मे सहायक होते हैं।

सामूहिक सगान, पोस्टर, उद्घोष आदि पारस्परिक प्रविधियो के अन्तर्गत उपयोगी होते हैं।

विद्यालय के स्तर पर कालाशो का आयोजन इस प्रकार किया जाता है।

१. प्रत्येक कक्षा मे प्रतिदिन जीवन विज्ञान भाग १-१० तक का अध्यापन एवं प्रयोग जिसमे सप्ताह मे एक या दो दिन सिद्धात व शेष दिन प्रायोगिक अभ्यास।
२. प्रारम्भ मे अनेक विद्यालयो मे किसी चयनित कक्षा मे सप्ताह मे सुविधानुसार पांच कालांश या दो कालाश का आयोजन।
३ प्रार्थना सभा मे सुविधानुसार १५ मिनट का प्रायोगिक अभ्यास
४ स्मरण शक्ति एव एकाग्रता मे वृद्धि के लिए कक्षा के प्रारम्भ में तीन मिनट का प्रायोगिक अभ्यास।

जीवन विज्ञान का सैद्धातिक प्रशिक्षण—व्याख्यान पद्धति से कराया जाता है। इसमे प्रश्नोत्तर प्रविधि, दृश्य-श्रव्य साधन जैसे चार्ट, मॉडल, रग और ध्वनि प्रभाव का उपयोग किया जाता है। प्रायोगिक प्रशिक्षण मे प्रयोग पद्धति (Experimental method), अभ्यास पद्धति (drill method) एव व्यक्तिगत पद्धति का उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त पर्यवेक्षण विधि, सामूहिक विचार-विमर्श पद्धति का भी समावेश किया जाता है।

(क) शिविर—जीवन-विज्ञान को क्रियान्वित करने के लिए शिविर एक शक्तिशाली प्रक्रिया है—१० से १५ दिवसीय आवासीय शिविर। विद्यालयो मे ही एक दिवसीय शिविर आदि। यह पाया गया है कि इन शिविरों का साधको पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है[1] क्योकि इनमे

१ "मैं दिनांक २६ जुलाई ९५ से ६ अगस्त ९५ तक 'अध्यात्म साधना केन्द्र' महरोली, नई दिल्ली मे रहा। वहा मैंने दस दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर मे सफलतापूर्वक प्रशिक्षण प्राप्त किया। वहा पर ही मुझे शिक्षा मे जीवन विज्ञान के अभिनव प्रयोग की जानकारी प्राप्त हुई। इससे मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ।

उनको प्रत्यक्ष अनुभूति का अवसर एव लाभ मिलता है। दूसरा कारण यह है कि शिविरार्थियो को अभ्यास के दौरान एकाग्रता के प्रयोग, प्रेक्षाध्यान, स्वतः सुझाव, कायोत्सर्ग एव योगासन के प्रयोग कराये जाते है। इनका परिपूर्ण अभ्यास कराया जाता है। पूरा प्रशिक्षण एव अवसर दिया जाता है, जिससे साधक उन्हे सीख सके। दक्षता प्राप्त कर सके। जब वह एक बार इनमे सफल हो जाता है, अनुभूति के स्तर पर चला जाता है तब अच्छे परिणाम के लिए प्रतिदिन मात्र आधा घटा पर्याप्त होता है। शिविर मे सैद्धातिक एव प्रायोगिक प्रशिक्षण निम्न प्रकार से होते हैं।

चार/पाच कालाश—प्रेक्षा (ध्यान), अनुप्रेक्षा (स्वत सुझाव) एव कायोत्सर्ग के प्रयोगो का अभ्यास

एक कलाश—यौगिक क्रियाए, योगासन एव प्राणायाम।

एक कालाश—व्यसन मुक्ति का प्रयोग।

एक कालाश—जीवन-विज्ञान का सैद्धातिक प्रशिक्षण।

एक कालाश—अध्यात्म विज्ञान का सैद्धातिक प्रशिक्षण।

पूरा कार्यक्रम प्रात ५ ०० से साय ९ ३० बजे तक व्यवस्थित होता है। जिसमे स्वत स्वाध्याय एव विश्राम का भी समय होता है।

मिताहार के साथ सम्यक् आहार का भी प्रशिक्षण दिया जाता है। उससे होने वाले मानसिक एव शारीरिक प्रभावो से भी परिचित कराया जाता है।

श्रम, स्वावलबन एव शिविर के सामूहिक जीवन की अनुभूतियां चारित्र निर्माण के लिए आवश्यक गुणो मे वृद्धि करते हैं।

सहायक पाठ्य सामग्री—(Material aids)—

पाठ प्रशिक्षण या व्याख्यान पद्धति के अतिरिक्त दृश्य-श्रव्य-साधन

सक्षिप्त मे, मैं इतना ही कहूगा कि आज की हमारी शिक्षा पद्धति न केवल त्रुटिपूर्ण है, बल्कि अधूरी भी है, क्योकि इसमे जीवन मूल्यो, नैतिकता एव चरित्र निमाण के लिए कोई भी स्थान नही है।

आज शिक्षा पद्धति मे जीवन विज्ञान की सर्वाधिक आवश्यकता ही नही, वरन् अनिवार्यता भी है। क्योकि जीवन विज्ञान, नैतिक जीवन जीने की एक कला है। भारतीय सस्कृति' को अपने जीवन एव आचरण मे उतारने की महाकला है। मानवीय गुणो एव सुसस्कारो के विकास व स्मृति का आधार है।"

रामचरनलाल पाठक
सम्पादक, शिक्षा समीक्षा
(अगस्त से सेप्टेम्बर १९९६)

चार्ट, मॉडल, रग और ध्वनि प्रभाव एव व्यक्तिगत प्रशिक्षण पद्धति का भी उपयोग किया जाता है।

नियोजन तथा व्यवस्था

१. शिविर का सचलान अणुव्रत अनुशास्ता गणाधिपति श्री तुलसी के सान्निध्य एव आचार्य महाप्रज्ञ के निर्देशन मे अनुभवी, कुशल एव दक्ष प्रशिक्षक साधको द्वारा होता है।
२. शरीर सरचना व क्रिया विज्ञान, आयुर्वेद, औषधी विज्ञान, ग्रथि-तत्र विज्ञान, जैव-रसायन, निदान-विज्ञान, आयुर्विज्ञान महाविद्यालय के चयनित विशेषज्ञो का भी समय-समय पर सान्निध्य प्राप्त होता है।
३. विश्वविद्यालय व अन्यान्य सस्थानो के मनोविज्ञान, दर्शन, शिक्षा एवं समाजशास्त्र के चयनित विशेषज्ञ का भी समय-समय पर सान्निध्य प्राप्त होता है।
४. प्रबुद्ध अतिथि विशेषज्ञो का भी सानिध्य प्राप्त होता है।

प्रशिक्षार्थी (Trainees)

१. विशिष्ट निर्देशक व्यक्ति (Resource person/Instructors)
२. शिक्षा अधिकारी/निरीक्षक ३. प्राध्यापक/अध्यापक ४. विद्यार्थी

जीवन विज्ञान शिविरो की संक्षिप्त अवगति (Report)

विगत २० वर्षों से जीवन विज्ञान का अनेक क्षेत्रो मे प्रयोग एव परीक्षण हुए है। उनका सक्षिप्त लेखा-जोखा इस प्रकार है—

१. अध्यापक प्रशिक्षण—२००० से अधिक अध्यापको (राज्य सरकार एव निजी विद्यालयो से सम्बद्ध) को जीवन विज्ञान मे प्रशिक्षित किया गया।
२ विद्यार्थी प्रशिक्षण—अब तक ५०,००० से अधिक विद्यार्थियो ने इसको नियमित सीखा है। व्यक्तिनिष्ठ मूल्याकन ने उत्साहवर्धक परिणाम प्रस्तुत किये हैं।
३ पुलिस अधिकारियो का प्रशिक्षण—एक प्रयोग के अन्तर्गत राजस्थान पुलिस अकादमी द्वारा लगभग सौ पुलिस अधिकारियो को प्रशिक्षित किया गया। वर्तमान मे यह श्रृखला दिल्ली एव राजस्थान में चल रही है।
४. व्यावसायिक प्रतिष्ठानो के अधिकारियो के लिए अल्पकालीन अभ्यास कार्यक्रमो का सचालन किया गया।
५ अहिंसा प्रशिक्षण शिविर एव अणुव्रत प्रशिक्षण शिविर भी आयोजित किये गये।

१०.४.४. मूल्यांकन

जीवन विज्ञान का मूल्याकन अनेक प्रकार से किया जाता है।

सैद्धांतिक मूल्यांकन—

१ सैद्धांतिक ज्ञान का मूल्यांकन प्रतिदिन प्रश्नोत्तर विधि से किया जाता है।

२ प्रायोगिक अभ्यास का मूल्याकन भी प्रतिदिन निरीक्षण विधि द्वारा किया जाता है।

३ सैद्धांतिक ज्ञान, प्रायोगिक अभ्यास का मूल्यांकन त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक और वार्षिक परीक्षाओ के माध्यम से किया जाता है।

४ जीवन विज्ञान प्रशिक्षण द्वारा शरीर, मन और भावो पर पडने वाले प्रभावो का मूल्याकन प्रशिक्षण के प्रारम्भ एव अन्त मे मनोवैज्ञानिक परीक्षणो एव वैज्ञानिक उपकरणो द्वारा भी समय-समय पर किया जाता है।

५ प्रश्नावली द्वारा विद्यार्थियो के व्यक्तिनिष्ठ अनुभव भी लिए जाते है।

६ प्रायोगिक मूल्याकन निम्नाकित बिंदुओ के आधार पर किये जाते हैं।

प्रायोगिक मूल्यांकन के बिंदु —

ध्वनि—मधुरता, अवधि, स्थिरता, ओज/तेज आदि।

मुद्रा—विधि, स्थिरता आदि।

सकल्प—स्पष्टता, विधि—बोलकर, मानसिक आदि।

सम्यक् व्यायाम—विधि, स्थिति, गति, श्वास, भाव-क्रिया, स्थिरता, शिथिलता आदि।

सम्यक् श्वास—श्वास की गति (प्रति मिनट), पेट की मासपेशियो की गति (अन्दर-बाहर) आदि।

कायोत्सर्ग —मुद्रा, स्थिरता, शिथिलता, जागरूकता (श्वास मद, पुतली स्थिर) आदि।

ध्यान आसन, मुद्रा, स्थिरता, जागरूकता आदि।

अनुप्रेक्षा—आसन, मुद्रा, स्थिरता, जागरूकता, स्पष्ट शब्दावली आदि।

जीवन विज्ञान प्रशिक्षण के मूल्याकन से प्राप्त परिणामो का सार सक्षेप इस प्रकार है—

१. जीवन के प्रति दृष्टिकोण मे उल्लेखनीय एव निश्चित परिवर्तन घटित हुए।

२ अहिंसा के प्रति दृढ़ आस्था का जागरण हुआ।

३ नैतिकता के प्रति दृढ आस्था निर्मित हुई।

४ विधायक भाव-मृदुता एव सहिष्णुता मे दर्शनीय विकास हुआ।

५ दुर्व्यसनो से छुटकारा मिला।

६ आत्मानुशासन और अनुशासन का विकास हुआ।

७ स्मरण शक्ति का विकास हुआ।
८. मानसिक एकाग्रता मे अतिशत वृद्धि हुई।
९. कार्यक्षमता मे वृद्धि हुई।
१० बिमारियो मे मुख्यतया मनोकायिक बीमारियो से छुटकारा मिला।

अन्वेषणात्मक अनुभव (Research experiences)

१. आमाशय (पेट) सवधी, श्वसन सवधी एवं मानसिक बीमारियो पर प्रेक्षाध्यान के प्रभाव के मूल्याक के लिए एस एम. एस. हॉस्पिटल जयपुर के तत्सबधी विशेषज्ञो के निर्देशन मे प्रोजेक्ट वर्क किया गया।
२. प्रशिक्षणार्थियो पर शारीरिक एव मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग किया गया एव उनका विश्लेषण किया गया।[1]

अतिरिक्त गतिविधियां (Extension activities)

जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान, अणुव्रत एव अहिंसा प्रशिक्षण को व्यापक बनाने के लिए भारत मे एव बाहर भी अनेक कार्यक्रम आयोजित किये गये।

१ "विश्व शाति एवं अहिंसक उपक्रम" पर तीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो का आयोजन किया गया—पहला लाडनू मे (१९८८) मे, दूसरा राजसमन्द (१९९१) मे एव तीसरा लाडनू (१९९६) मे।
२. भारत एवं विदेशो मे आयोजित जीवन-विज्ञान, प्रेक्षाध्यान शिविरो मे जापान, इग्लैण्ड, इटली, अमेरिका, कनाडा, पश्चिमी जर्मनी, हगरी, रूस हॉलैण्ड आदि देशो से अनेक लोगो ने भाग लिया। आक्सफोर्ड केम्ब्रीज एव बुडापेस्ट विश्वविद्यालयों मे आयोजित शिविर उल्लेखनीय रहे।
३. कुछ प्रबुद्ध एव विश्रुत प्रोफेसर जैसे—ग्लेन. डी पेज आदि ने जीवन विज्ञान एव प्रेक्षाध्यान के उपक्रम को प्रभावशाली पाया एवं उन्होने कहा कि यह पद्धति शिक्षा जगत् के लिए उपयोगी एव सर्वथा योग्य है।
४. अखिल भारतीय आयुर्वेद विज्ञान सस्थान (AIIMS) दिल्ली के तत्त्वावधान मे प्रेक्षाध्यान पर अनुसधान चल रहा है। यह अध्यात्म साधना केन्द्र, महरौली (दिल्ली) मे हो रहे हैं।
५ बोकारो स्टील प्लाट ने अपने शिक्षा अधिकारी एव अध्यापको को जीवन विज्ञान मे प्रशिक्षित किया है उन्होने जीवन विज्ञान के प्रशिक्षण को अपने यहा उच्च माध्यमिक विद्यालयो मे प्रारम्भ कर लिया हैं।
६. पूरे भारत मे "अणुव्रत शिक्षक ससद" के लगभग १,००,००० शिक्षक सदस्य है। उनमे जीवन विज्ञान, अणुव्रत एव अहिंसा प्रशिक्षण के कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं जिससे जीवन विज्ञान के कार्यक्रमो को

---

१. देखें—पृष्ठ

व्यापक स्तर पर लागू किया जा सके।

जीवन विज्ञान—गति प्रगति :—

"राजस्थान के नागौर जिले से शुरू होकर यह प्रयोग देश के विभिन्न प्रातो—सिक्किम, पश्चिमी बगाल, राजस्थान, आध्रप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र मध्यप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, असम, बिहार मे पहुचा है जहा पर यह काफी सख्या मे लोगो को आकर्षित कर रहा है। यह अब एक विषय के रूप मे ४७८ विद्यालयो जिसमे ६६६६५ छात्र हैं, पढाया जा रहा है। 'अणु-विभा' और 'जीवन विज्ञान अकादमी' ने जीवन विज्ञान प्रशिक्षण का प्रसार और प्रचार देश के विभिन्न भागो मे करने मे मुख्य भूमिका निभायी है। जीवन विज्ञान की लोकप्रियता शिक्षको शिक्षक, प्रशिक्षण महाविद्यालयो और स्वय-सेवी सस्थाओ मे तेजी से बढ रही है।

जीवन विज्ञान के लाभ केवल छात्रो तक ही सीमित नही हैं। इसके लाभ जीवन के हर क्षेत्र मे स्थापित किये गये हैं। यह शिक्षको व अभि-भावको पर समान रूप से लागू होने योग्य हैं। सरकारी कर्मचारी, व्यवसायी प्रशासक तथा न्यायाधीश सभी जीवन विज्ञान के प्रयोग से लाभ उठा पायेंगे। सक्षेप मे यह मनुष्य के सही व स्वस्थ व्यक्तित्व के निर्माण मे, नया समाज रचने मे और नई पीढी के सृजन मे सहायता करेगा।"[1]

१०.५.०. सारांश (Summary)

जीवन विज्ञान की प्रकृति

जीवन विज्ञान जीवन को स्पर्श करने वाली विद्या है। स्वस्थ सामाजिक एव सास्कृतिक मूल्यो के अभाव मे कोई भी व्यक्ति समाज मे स्वस्थ एव निश्चित नही रह सकता है। शिक्षा और समाज का सम्बन्ध अटूट है। शिक्षा और समाज की धुरी व्यक्ति का नैतिक विकास है और नैतिक विकास तभी सम्भव है जब शिक्षा वैज्ञानिक और तकनीकी होते हुए भी मूल्य-परक हो। यदि शिक्षा द्वारा लोकतन्त्रीय मूल्यो का विकास नही होता है तो उसकी सार्थकता मे सदेह किया जा सकता है। चरम-सीमा की प्रगति और आधुनिकीकरण ने व्यक्ति को मानसिक स्तर पर असतुलित कर दिया है। उसके असन्तुलन ने समाज की समस्याओ को प्रभावित ही नही किया, बल्कि बढ़ा भी दिया है। व्यक्ति जिन प्रमुख समस्याओ से जूझ रहा है, वे निम्न-लिखित हैं—

१ मानसिक और शारीरिक तनाव

---

१ शिक्षा समीक्षा—जीवन विज्ञान विशेषाक, पृष्ठ १४, जुलाई से सितम्बर १९९५ —भारतीय सस्कृति शिक्षा सस्थान प्रकाशन, नई दिल्ली-४१

२. अस्वास्थ्य और अशांति
३ हिंसा और क्रूरता
४ भ्रष्टाचार तथा अनैतिकता
५ पर्यावरण-प्रदूषण
६. नशीले-पदार्थो का प्रयोग
७ शोषण और अन्याय
८ कानून की अवहेलना।

जीवन विज्ञान और मूल्य-परक शिक्षा

वर्तमान असतुलित शिक्षा प्रणाली से व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास नही हो रहा है। वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली से शारीरिक एव बौद्धिक विकास तो हो रहा है किन्तु मानसिक एव भावनात्मक विकास नही हो रहा है। यदि शिक्षा को मूल्य-परक वना दिया जाये तो शेष दोनो आयाम भी विकसित किये जा सकते हैं। १९५९ मे श्री प्रकाशजी की अध्यक्षता मे धार्मिक नैतिक शिक्षा आयोग की स्थापना की गई थी। सुझाव दिया गया कि नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो का प्रशिक्षण शिक्षा मे अत्यन्त अपेक्षित है। १९५० से लेकर १९८६ तक अनेक आयोग वने और सबने यह सिफारिश की कि वर्त्तमान शिक्षा को चरित्र निर्माण और नैतिक-मूल्यो के प्रशिक्षण से जोड़ा जाना चाहिये। नैतिक शिक्षा को शिक्षा का एक आवश्यक अग बना दिया जाना चाहिये।

नैतिक और जीवन-मूल्यो के उत्तरोत्तर ह्रास को रोकने के लिये 'जीवन विज्ञान' विषय को शैक्षिक पाठ्यक्रम मे एक अनिवार्य विषय के रूप मे पढाया जाना अति आवश्यक है, क्योकि जीवन विज्ञान मे अध्यात्म, विज्ञान एव मनोविज्ञान तीनो का समावेश है। जीवन-विज्ञान यह मानता है कि मस्तिष्क मे असीम शक्ति हैं, जिनका संचालन अध्यात्म, शारीरिक क्रियाओ और मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओ के माध्यम से होता है।

जीवन विज्ञान क्या है ?

जीवन-विज्ञान शिक्षा की पूरक-पद्धति है। यह पद्धति मूल्य-परक शिक्षा को पूरा करती है। शिक्षा में जो भावनात्मक परिवर्तन तथा चरित्र निर्माण का पक्ष गौण है, उसकी यह पूर्ति करती है। जीवन विज्ञान एक गतिशील दर्शन है। समय व क्षेत्र की समस्याओ एव नवीनताओ को ग्रहण करते हुए आगे बढ़ता है। यह अनेकान्त दर्शन पर आधारित है। इसका एकांगिता मे विश्वास नही है। सस्कार, वातावरण, अध्यात्म, विज्ञान, मनोविज्ञान, अनुशासन, स्वतन्त्रता, आत्मानुशासन, मानवीय-मूल्यो का विकास, ज्ञान और आचार, मानव-स्वभाव आदि जीवन-विज्ञान की अध्ययन

सामग्री है, अर्थात यह सब पहलू जीवन-विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र हैं।

जीवन-विज्ञान प्राचीन एव नवीन शिक्षा-आदर्शों का दस्तावेज है, जो विद्यार्थी की सुप्त चेतना को जाग्रत कर उपनिषद के मूल-मत्र "सा विद्या या विमुक्तये" को चरितार्थ कर रहा है तथा भारतीय मूल तत्वो का प्रायोगिक प्रशिक्षण दे रहा है।

जीवन विज्ञान नवीन शिक्षा के सदर्भ मे मूल्य-परक शिक्षा का एक अभिनव प्रयोग है। इसके अन्तर्गत मूल्य-शिक्षा, नैतिक-शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा और योग-शिक्षा का समावेश है। इसका विकास सम्पूर्ण मानव समस्याओ के सदर्भ मे हुआ है। इसे शिक्षा के क्षेत्र मे अणुव्रत और प्रेक्षा-ध्यान के समन्वय से विकसित किया गया है। शिक्षा मे जीवन विज्ञान का प्रयास शिक्षा प्रणाली को समन्वित करने का है। इस सतुलन स्थापना के चार सिद्धान्त हैं—

जीवन विज्ञान की अध्ययन सामग्री अथवा उसका क्षेत्र

१ **प्राणधारा का सतुलन** · इसके अन्तर्गत सिम्पेथेटिक और पैरा-सिम्पेथेटिक नाड़ी तन्त्र को सक्रिय एव सतुलित किया जाता है तथा सुषुम्ना को जाग्रत क्रिया जाता है।

२. **जैविक संतुलन**—पूरे मस्तिष्क को सक्रिय करना जैविक सन्तुलन को प्रक्रिया है। इसके द्वारा व्यक्तित्व के छिपे रहस्यो को उद्घाटित कर असीमित शक्तियो को जगाया जा सकता है।

३ **क्षमता की आस्था**—मस्तिष्क की असीमित शक्तियो का विकास कर क्षमता को बढाया जा सकता है। इस विचार की आस्था पैदा करनी चाहिये।

४. **परिष्कार**—मनुष्य अनेक मिथ्या भाव, दृष्टिकोण एव व्यवहार से ग्रसित है। इनका परिष्कार सम्भव है और पतन से उत्थान के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है।

५. **सर्वांगीण विकास :**—सन्तुलन सर्वांगीण विकास के लिये उत्तरदायी होता है। शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक, भावनात्मक आदि विकास सन्तुलन के चार सिद्धान्तो पर आधारित होता है। इसके लिये प्रायोगिक अभ्यास आवश्यक है। इसके लिये सात सूत्र आवश्यक हैं—१ यौगिक क्रियाए, २ योगासन, ३ प्राणायाम, ४ प्रेक्षाध्यान, ५ कायोत्सर्ग, ६ अनुप्रेक्षा तथा ७ स्वाध्याय।

जीवन विज्ञान के उद्देश्य

जीवन विज्ञान शिक्षा के तत्व

जीवन विज्ञान शिक्षा-दर्शन को समझने के लिये उसके उद्देश्य,

विषय-वस्तु, पाठ्यक्रम, प्रविधि एवं मूल्यांकन आदि तत्वो को समझना आवश्यक है। जीवन विज्ञान के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

मुख्य उद्देश्य

१ स्वस्थ व्यक्तित्व का निर्माण जिसमे शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एव सामाजिक मूल्यो का सतुलित विज्ञान हो।

२ नये समाज का निर्माण हिंसा, शोषण एव अनैतिकता से मुक्त समाज का निर्माण।

३ नई पीढ़ी का निर्माण—ऐसी पीढी का निर्माण जो आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक विचारधारा को साथ लेकर चले।

उपरोक्त मुख्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये विद्यालय एव विश्व-विद्यालय के स्तर पर विभिन्न उद्देश्यो का निर्माण किया गया है।

मूलविषय-वस्तु (core content)

वर्तमान-शिक्षा-प्रणाली मे बौद्धिक-विकास के तत्व पर्याप्त मात्रा मे है, किन्तु भावनात्मक विकास के लिये कुछ भी नही है। भावनात्मक विकृतियो—क्रूरता, प्रतिशोध, भय, घृणा, ईर्ष्या, वासना एवं विकार पर नियन्त्रण के विकास के लिये आज की शिक्षा-प्रणाली क्या दे रही है ? इस प्रश्न के उत्तर मे यही कहा जा सकता है कि शिक्षा-प्रणाली को दोष न देकर उसमे जो कमी है उसे पूरा किया जाये। पाठ्यक्रम मे नैतिक शिक्षा एव प्रायोगिक प्रशिक्षण सम्मिलित किया जाना चाहिये।

पाठ्यक्रम (syllabus)

पाठ्यक्रम मे निम्नलिखित विषयो का समावेश किया गया है—

१ आधुनिक शरीर-विज्ञान मनोविज्ञान आदि

२ प्राच्य विज्ञान, मानविकी व समाज विज्ञान—इसके अन्तर्गत अणुव्रत, सप्त सूत्रीय प्रेक्षा कार्यक्रम एव अहिंसा प्रशिक्षण रखा गया है।

पारस्परिक प्रविधियां

जीवन विज्ञान के मूल उद्देश्य एव विषय वस्तु को ध्यान मे रखकर इसकी प्रविधि का निर्धारण किया जाता है। इसके लिये नियमित कालाश एव प्रशिक्षित अध्यापक होने चाहिये। अच्छे परिणामो के लिये यह आवश्यक है। सैद्धान्तिक पक्ष के साथ-साथ प्रायोगिक पक्ष पर भी ध्यान देना अति आवश्यक है। इसके लिये नियमित शिविरो का सचालन किया जाना चाहिये।

मूल्यांकन (Evaluation)

जीवन विज्ञान का मूल्याकन दो रूप मे किया जाता है—

१ सैद्धातिक मूल्याकन
२ प्रायोगिक मूल्याकन

सैद्धान्तिक मूल्यांकन – (१) प्रतिदिन प्रश्नावली विधि से किया जाता है, (२) प्रायोगिक अभ्यास का मूल्याकन निरीक्षण विधि द्वारा, (३) सैद्धान्तिक ज्ञान, प्रायोगिक अभ्यास का मूल्याकन त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक और वार्षिक परीक्षाओ के द्वारा, (४) जीवन विज्ञान प्रशिक्षण का प्रभाव मनोवैज्ञानिक परीक्षणो द्वारा किया जाता है।

प्रायोगिक मूल्याकन के विन्दु निम्नलिखित हैं—

१ ध्वनि—मधुरता, अवधि, स्थिरता आदि।
२. मुद्रा—विधि, स्थिरता आदि।
३ सकल्प—स्पष्टता, विधि, बोलकर, मानसिक आदि।
४ सम्यक व्यायाम—स्थिति, विधि, गति, श्वास, स्थिरता, शिथिलता।
५ सम्यक श्वास—श्वास की गति (प्रतिमिनट), पेट की मासपेशियो की गति आदि।
६ कायोत्सर्ग—मुद्रा, स्थिरता, शिथिलता, जागरुकता (श्वास मद, पुतली स्थिर) आदि।
७ ध्यान—आसन, मुद्रा, स्थिरता, जागरुकता आदि।
८ अनुप्रेक्षा—आसन, मुद्रा, स्थिरता, जागरुकता, स्पष्टता आदि।

१०.६.०. सहायक सामग्री

१ जीवन विज्ञान शिक्षा का नया आयाम, आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती, लाडनू।
२ जीवन विज्ञान : स्वस्थ समाज रचना का संकल्प, आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्व भारती, लाडनू।
३. Jeevan Vigyan (The Science of Living), Acharya Mahapragya; Jain Vishva Bharati, Ladnun 341306.
४ Science of living (Jeevan Vigyan) ed. by Muni Mahendra Kumar, Jain Vishva Bharati, Ladnun.
५. जीवन विज्ञान मूल्य परक शिक्षा का अभिनव प्रयोग, स. मुनि धर्मेश, जैन विश्व भारती, लाडनू।
६ अहिंसा प्रशिक्षण, स मुनि धर्मेश, जैन विश्व भारती, लाडनू।
७. जीवन विज्ञान, भाग १-१०, मुनि किशनलाल एव शुभकरण सुराणा, जैन विश्व भारती, लाडनू (राज)।
८. जीवन-विज्ञान : शिक्षक सदर्शिका, मुनि किशनलाल एव शुभकरण सुराणा, जै वि भा. लाडनू।

९. शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, डा लक्ष्मीलाल के ओड, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर ।
१० शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त, त्यागी एव पाठक, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।
११ शिक्षा के मूल सिद्धान्त, डा रामशकल पाण्डेय, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।
१२ Human Values through education, ed by T K.N Unnithan, Gujarath Vidyapith, Ahmedabad
१३ तुलसी प्रज्ञा, मूल्य परक शिक्षा विशेषाक (पत्रिका), जैन विश्व भारती, लाडनू ।
१४ तुलसी प्रज्ञा, अध्यात्म और विज्ञान विशेषाक (पत्रिका), जैन विश्व भारती, लाडनू ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१ शिक्षा मे जीवन विज्ञान की उपयोगिता पर प्रकाश डालिये ।

२ शिक्षा मे जीवन विज्ञान और समाहारक दर्शन की क्या आवश्यकता है ?

३ "जीवन विज्ञान एक गतिशील दर्शन है।" इस कथन की समीक्षा कीजिये ।

४. जीवन विज्ञान के सिद्धान्तो और प्रविधियो का वर्णन कीजिये ।

५. जीवन विज्ञान के शिक्षा तत्त्वो पर प्रकाश डाले ?

६ जीवन विज्ञान मे अणुव्रत के महत्व को समझाइये ।

७. जीवन विज्ञान के प्रायोगिक मूल्याकन के बिन्दुओ का वर्णन कीजिये ।

८. विद्यालय स्तर पर जीवन विज्ञान के उद्देश्य, पाठ्यक्रम एव प्रविधि को स्पष्ट करे ।

९ विश्वविद्यालय स्तर पर जीवन विज्ञान के उद्देश्य, पाठ्यक्रम एव प्रविधि को स्पष्ट करे ?